पदचि

अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी परिव्राजक हैं। परिव्रजन उनका जीवन-व्रत है। उन्होने इन बीस वर्षो मे हजारो मील लम्बी-लम्बी यात्राए की है। किन्तु उनकी ये यात्राए देश-दर्शन के लिए नही, एक विशेष उद्देश्य से हुई है। यह महान् उद्देश्य है—मानवीय मूल्यो की पुन. प्रतिष्ठापना।

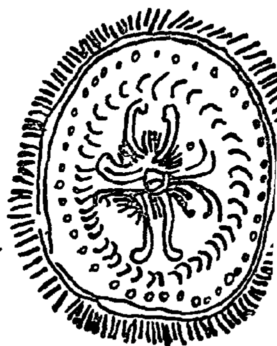
मनुष्य आज मानवता से रहित होकर दिग्भ्रान्त हो गया है। वह अपने गन्तव्य से भटक गया है। अब उसमे वह साहस नही रहा कि वह स्वय चल सके। उसे पद-प्रदर्शक की आवश्यकता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'पदचिह्न' ऐसे ही दिग्भ्रान्त और भटके मनुष्यो का मार्गदर्शन करेगी। इसमे आचार्यश्री के पदचिह्नो को शब्दचित्रो मे चित्रित किया गया है। यह चित्रण जितना सरस है उतना ही सुखद है, जितना बोधप्रद है उतना ही आकर्षक है; जितना प्रेरक है, उतना ही अमिट है।

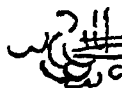
७·००



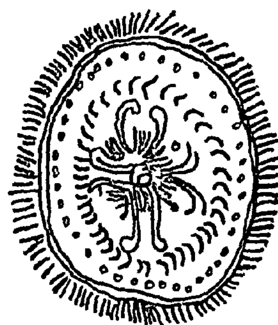
पदचिह्न



□ मुनि श्रीचन्द्र 'कमल'

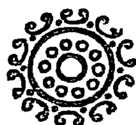


आचार्यश्री तुलसी का यात्रा-वर्णन



आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

स्वर्गीय सोहनलाल सेठिया की स्मृति में उनकी धर्मपत्नी
श्रीमती रतनीदेवी सेठिया के आर्थिक सौजन्य से



मूल्य ☐ सात रुपये
प्रथम सस्करण ☐ जनवरी, १६७१
प्रकाशक ☐ कमलेश चतुर्वेदी
प्रबन्धक, आदर्श साहित्य सघ
चूरू (राजस्थान)
मुद्रक ☐ रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

महान् परिव्राजक अणुव्रत-अनुशास्ता
आचार्य तुलसी को

भूमिका

जो भी मनुष्य चला है उसके पदचिह्न अंकित हुए हैं। कुछ अमिट और कुछ मिट जाने वाले। जो शाश्वत की दिशा में चला है उसके चरणचिह्न शाश्वत से जुड़कर अमिट बने हैं और अशाश्वत की ओर मुंह कर चलने वाले के विनश्वर। नश्वर से अनश्वर की ओर जाना जीवन की सफलतम यात्रा है।

आचार्यश्री तुलसी ने यात्रा की है। पद-पद पर उनके पदचिह्न अंकित हुए है। उनका अंकन केवल भूमि पर ही नही हुआ है, जन-जन के हृदय मे हुआ है। ये वे अमिट चिह्न हैं, जिन्हे हवा मिटा नही सकती। ये वे चिह्न है, जिन पर काल का आक्रमण नहीं हो सकता।

आचार्यश्री तुलसी ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण, मानवतावादी विचारधारा, सहिष्णुता और नैतिकता-प्रधान धर्म की व्याख्या के द्वारा जन-मन को प्रभावित किया है। उस प्रभाव की अनुभूति स्वसंवेद्य है। उसे शब्द और रेखाए व्यक्त नही कर सकती। फिर भी नाम और रूप की दुनिया मे जीनेवाला आदमी उनकी उपेक्षा नही कर सकता। इसी का प्रतिफलन है प्रस्तुत पुस्तक।

मुनि श्रीचन्द्रजी ने आचार्यश्री के पदचिह्नो को शब्दचित्र मे

चित्रित किया है। यह चित्रण जितना सरस है उतना ही सुखद है, जितना बोधप्रद है उतना ही आकर्षक है। पदचिह्नों के महत्त्व को समझने वाला व्यक्ति ही कृतार्थ नही होता, उनके महत्त्व को व्यक्त करने वाले शब्द भी कृतार्थ हुए है।

वि स २०२७ —मुनि नथमल
भाद्रपद शुक्ला ६
अणुव्रतनगर,
रायपुर

अपनी बात

भगवान् महावीर ने कहा—'विहारचरिया इसिण पसत्था'—ऋषि-मुनियो की विहारचर्या प्रशस्त होती है। जैन मुनि की चर्या का प्रमुख अग है—विहरण। वे एक स्थान पर अधिक नही रुकते। वे चलते हैं और तब तक चलते ही रहते हैं जब तक कि उनके चरणो मे शक्ति रहती है। शक्ति का ह्रास, अवस्था या रोग आदि का आक्रमण होता है, तब वे एक स्थान पर स्थिरवास करते है, अन्यथा नही।

परिव्रजन करना एक कला है। केवल चलना परिवर्जन नही कहलाता। परिवर्जन मे चलने के साथ-साथ जनजीवन के सूक्ष्म अध्ययन का अवकाश भी समाविष्ट है। निरन्तर चलने वाला अनेक स्थलो, पहाडियो, नगरो तथा गावो से गुजरता है। उसे विभिन्न सभ्यताओ और सस्कृतियो के दर्शन होते हैं। वह उनका स्थूल या सूक्ष्म अध्ययन किए चलता है और अपने अनुभव-भडार को भरता जाता है।

आचार्यश्री तुलसी परिव्राजक हैं। परिव्रजन उनका जीवन-व्रत है। उन्होने इन बीस वर्षो मे हजारो मील लम्बी-लम्बी यात्राए की हैं। यात्रा केवल देश-दर्शन के लिए नही, किन्तु एक विशेष उद्देश्य

से हुई है। उनका महान उद्देश्य है—मानवीय मूल्यो की पुन प्रतिष्ठापना।

मनुष्य आज मानवता से रहित होकर दिग्भ्रान्त हो गया है। वह अपने गन्तव्य से भटक गया है। अब उसमे वह साहस नही रहा कि वह स्वय चल सके। उसे पथदर्शक की आवश्यकता है। आचार्य तुलसी ने उसको पथ-दर्शन देने के लिए उपक्रम प्रारम्भ किया है। उस उपक्रम मे आचार्यश्री की उत्कठा और मानवीय मूल्यो के प्रति आस्था दृग्गोचर होती है।

इसी उपक्रम को घर-घर पहुचाने के लिए वे गाव-गाव और नगर-नगर मे घूम रहे हैं। हज़ारो-हज़ार व्यक्तियो से वे मिले हैं। उनकी सामयिक समस्याओ को सुना है और यथासभव उन्हे समाधान दिया है।

चरण चलते हैं। किन्तु सब के चरण-चिह्न अकित नहीं होते। उन व्यक्तियो के ही पद-चिह्न अकित होते हैं, जो विशेष उद्देश्य से, जनहित के लिए अपने स्वार्थो का त्याग कर चलते हैं। उन पद-चिह्नो के आधार पर हज़ारो-हज़ारो व्यक्ति चल पडते है। वे यह नही पूछते कि ये पद-चिह्न किनके हैं। उन गतिशील चरणो की मन्द ध्वनि मे प्रत्येक राही को समाधान मिलता है। और तब वह जान पाता है कि ये पद-चिह्न किसके है।

मैंने इस लघु सकलन का नामकरण 'पद-चिह्न' इसीलिए किया है कि वे अमिट है और उनमे समाधान देने की क्षमता है। जो इन पद-चिह्नो को पढने और समझने का प्रयत्न करेगा उसे प्रेरणा मिलेगी और वह गन्तव्य की ओर सहज अग्रसर हो सकेगा।

पद-चिह्न यात्रा का प्रतीक है। इन पद-चिह्नो मे आचार्यश्री तुलसी की यात्रा का इतिहास बोलता है। यह यात्रा देशनोक से प्रारम्भ होती है और राजनगर मे इसका परिसमापन होता है। २७ ३ ६२ से ३ २ ६३ तक (१० मास ६ दिनो मे) आचार्यश्री ने

१४४ गाव तथा शहरो मे विश्राम किया है और ७४३ मील को अपने पैरो से मापा है। वालू के टीलो का गाहन किया है तो पर्वत और घाटियो को भी लाघा है। बीच मे समतल भूमि का भी स्पर्श किया है। यात्रा मे सर्दी, गर्मी और बरसात तीनो ऋतुओ की अनुभूति हुई है।

आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा से अवनत हू जिन्होने मेरे सकोचशील स्वभाव को समझकर भी इसे लिखने के लिए मुझे उत्साहित किया। पद-चिह्न का लगभग पहला आधा भाग साध्वीश्री कानकुमारी द्वारा लिखित है और उन्ही के नाम से 'जैन भारती' मे प्रकाशित है। मैं उनका हृदय से आभारी हू।

मुनिश्री नथमलजी ने अपने व्यस्त समय मे भी पाण्डुलिपि का अवलोकन कर तथा भूमिका लिखकर मेरा मार्गदर्शन किया है। उनका किन शब्दो मे आभार मानू। वत्सलता मानकर ही विश्राम ले लेता हू। मुनि दुलहराजजी का भी आभारी हू जिनका सहयोग हरदम मिलता रहा है।

—मुनि श्रीचन्द्र 'कमल'

अणुव्रतनगर
रायपुर
२ ६ १९७०

संस्मरणो का अनुक्रम

परिशिष्ट

पद-चिह्न

विक्रम सवत् २०१८ का आचार्यश्री का वर्षावास बीदासर मे था। उस चातुर्मास मे धवल समारोह का प्रथम चरण मनाया गया। चातुर्मास पूर्ण कर राजलदेसर, सरदारशहर, श्रीडूगरगढ होते हुए माघ महोत्सव के लिए गगाशहर पधारे। वहा पर धवल समारोह का विराट् आयोजन किया गया जिसमे तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने आचार्य तुलसी को 'आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट किया। महोत्सव मे सम्मिलित साधु-साध्वियो को आगामी चातुर्मास के लिए विदाई देकर आचार्यश्री ने मेवाड की ओर कदम बढाए। उस समय ३१ साधु और २२ साध्विया साथ थी। गगाशहर से भीनासर होते हुए देशनोक पधारे।

२७ ३ ६२, देशनोक देशनोक भी एक तीर्थ-स्थल बना हुआ है। महाराजा गगासिहजी के श्रद्धा का केन्द्र एकमात्र 'करणी माता' ही थी। माता की स्वीकृति से ही वे प्रत्येक कार्य मे हाथ डालते थे। उन्हें श्रद्धा के अनुरूप सफलता भी मिली थी। इस विषय मे कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। प्रतिवर्ष यहाँ मेले मे लाखो आदमी सम्मिलित होते है।

देशनोक आगमन के समय पहला प्रवचन श्री ईश्वरचन्दजी छल्लानी की कोठरी में हुआ। इसके बाद आचार्यप्रवर निश्चित स्थान पर पधार गये।

तीसरा मार्ग

रात को बहन रतन आचलिया ने एक प्रश्न उपस्थित किया कि समाज मे कई ऐसी बहनें है जो अपने को साधुत्व के योग्य भी नही पाती और वे शादी भी नही करना चाहती, ऐसी स्थिति मे समाज उनकी स्वतन्त्रता को क्यो छीनता है ? श्री इन्द्रचन्दजी चोपडा ने कहा—'बगाल मे ऐसी प्रथा चल पडी है। वहाँ कुछेक बहनें विवाह करना पसन्द नही करती। स्वतन्त्र जीवन-यापन करना चाहती हैं।' उत्तर मे प्रश्न उठा—'इस परम्परा मे आचरण सम्बन्धी अनुभव क्या है ?' वे बोले—'साठ प्रतिशत अच्छा निकलता है।' मूल प्रश्न के उत्तर मे खेमचन्दजी सेठिया ने कहा—'यदि लडकी विवाह नही करना चाहती तो उसे साधना मे जीवन बिताना चाहिए और समाज की सेवा मे जीवन लगाना चाहिए।' बहन ने फिर प्रश्न किया—'क्या समाज इसे सह लेगा ?' एक भाई ने कहा—'नई परम्परा सहसा समाज नही पचा सकता। लेकिन वह दृढ निश्चय के समक्ष आलोचना के सिवाय कर भी क्या सकता है ? धीरे-धीरे सब आलोचना बन्द हो परम्परा गले उतर जायेगी। प्रारम्भ मे बहन को सहिष्णु बनना पडेगा।' मुनिश्री नथमलजी इस विषय को स्पष्ट करते हुए बोले—ऐसे विचारवालो के लिए अपने पैरो पर खडा रहना आवश्यक होता हैं, अन्यथा माता-पिताओ पर विवाह का भार हटकर जीवन का भार चढ जाता है। दूसरी बात है अपनी क्षमता को जीवन भर के लिए तोल लेना चाहिए। आगे चलकर विचारो मे फिसलन न आए। यदि साधु और गृहस्थ के बीच का यह तीसरा वर्ग तैयार होता है तो समाज की कतिपय आवश्यकताओ की पूर्ति स्वत होती है। साधु अपनी सीमा मे चलते हैं और गृहस्थ अपने काम मे फँसे रहते हैं। इस स्थिति मे तीसरा वर्ग साधनामय जीवन बिताता हुआ समाज के लिए विशेष उपयोगी बन सकता है।'

भ्रान्ति सदा खटकती

भ्रान्ति विचित्र रूप की होती है। एक भाई आया और बोला—'आचार्यजी! दीक्षा का हमारे मे जो उत्साह था वह फीका पड गया।' जिज्ञासा हुई क्यो? ईश्वरचन्दजी छल्लानी की कोठरी को छोडकर, स्कूल मे दीक्षा होना इसका प्रमुख कारण है। अमुक स्थान मे करने का तात्पर्य है आप हमसे भेद रखते हैं। आचार्यश्री बोले—'स्कूल मे स्थान की विशालता है। दर्शक लोग अमुक स्थान मे समा ही नही सकते, इसलिए स्कूल मे निश्चित किया गया।' वह प्रसनन्ना से खिल उठा और बोला—'यही कारण है तो हम आपके साथ है। हमे भरमाया गया कि अमुक स्थान तेरापथियो का नही है इसलिए दीक्षा वहाँ नही होगी।'

आचार्यश्री—'क्या स्कूल तेरापथियो की है? सार्वजनिक और विशाल स्थान की दृष्टि से दीक्षा का कार्यक्रम स्कूल मे रखा गया है। आप लोग व्यर्थ की सकीर्णता मे न फँसें। अच्छा हुआ आपने पूछ लिया अन्यथा छोटी-सी भ्रान्ति सदा आपको खटकती।'

दीक्षा समारोह का आयोजन हाईस्कूल के प्रागण मे सम्पन्न हुआ। आस-पास से हजारो व्यक्ति भाग लेने के लिए आए थे। स्थानीय व्यक्तियो मे सभी वर्ग के भाई-वहन उपस्थित थे। उपस्थिति करीवन छ-सात हजार थी। स्थान की विशालता के कारण बैठने की असुविधा न रही। आचार्य-श्री मध्यमे पट्ट पर आसीन थे। चारो ओर से लोगो को उनके दर्शन व वाणी का लाभ मिल रहा था, इसलिए वातावरण भी वडा शान्तिपूर्ण रहा। आचार्यश्री ने निश्चित समय पर दीक्षार्थिनी वहन को उनके माता-पिता की लिखित व मौखिक अनुमति के वाद भागवती दीक्षा दी। सिरलुचन साध्वीश्री अणचाजी ने किया। दीक्षागृहीता का नया नाम 'सयम श्री' दिया गया। उल्लासमय वातावरण मे कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

सर्व रोगो की दवा

दोपहर मे वहाँ से रासीसर के लिए विहार हो गया। विश्नोई परिवार की एक बहन दोपहर मे एक भावना लेकर आयी। उस समय हमारा अध्ययन चल रहा था। वह आकर बैठ गई। दो बजे समय की अवधि के साथ अध्ययन भी अवरुद्ध हो गया। बहन ने अपनी भावना बाहर निकाली—'मोटा बाबा! मेरी बेटी के लकवा हो गया है, मैं दुखी हूँ। आप बताएँ उसे क्या दूँ?' आचार्यश्री ने समझाया—'हम डॉक्टर या हकीम नही है। दवा देना उनका कार्य है।' बहन ने फिर कहा—'आपके पास सब कुछ है। आप जो कुछ कहेगे, मैं उसे दवा मान लूगी।' आचार्यश्री ने कहा—'बाहरी-भीतरी सब रोगो की एक दवा है—नवकार मन्त्र।' सभवत पाठक इसे बाहरी रोगो के लिए स्वीकार न भी करेंगे परन्तु वस्तुत यह सब रोगो की अचूक दवा है। अनुपान के लिए आवश्यक है कि मानस श्रद्धा से भरा हुआ होना चाहिए। श्रद्धालु ही इसकी अनुभूति को साक्षात्कार करते हैं।

बहन ने आज की स्मृति मे एक नियम माँगा। आचार्यश्री ने कहा—'इसका चुनाव तुम स्वय कर लो।' पर वह श्रद्धालु थी। उसने कहा—'जो आप कहेगे वही लूगी।' आचार्यश्री ने दूध और घी मे मिलावट न करने की प्रतिज्ञा सुझाई। उसने उसे स्वीकार कर लिया। आचार्यश्री ने झूठ न बोलने के लिए कहा। बहन ने उसे भी यह कहते हुए स्वीकार कर लिया कि 'आपने म्हारै मन की बात कह दी'। बहन ने हृदय खोलते हुए कहा—'म्हे दोनू (मैं और पतिदेव) लडाई बहुत करा हा।' पूछा गया—'क्यो?' उत्तर मिला—'मैं जो काम करती हूँ वह उनको नही सुहाता।'

'दोनो मे गाली कौन देता है?'

बहन ने सत्य कहा—'मैं गाली देती हूँ।'

'क्यो?'

'वे घी ढुलने पर भी नही उठते, तब मैं उन्हे कठोर वचन कह देती हूँ

यद्यपि मैं उन्हें झूठी बात नही कहती, पर कहती अवश्य हूँ।' आचार्यश्री ने कहा—'सच्ची बात भी मिठास के साथ कहनी चाहिए ताकि काम भी हो जाय और उसको भी अनुचित न लगे। जरा सोचो, तुम गाली देती हो, उस समय वह क्रोध मे आकर जूते की मार दे तो बात कितनी विगड जाय?' उसने भी सिर नीचा करके स्वीकृति दी। वहन ने पूछा—'अव यह कैसे मिटे?' आचार्यश्री ने उपाय बताया—'तुम्हे मिठास से काम लेना चाहिए। जिस दिन कठोर वचन कहा जाय, उस दिन नमक छोड देना।' वहन ने स्वीकार करते हुए कहा—'आपने यह वहुत अच्छा उपाय बताया। अव मैं ऐसा ही करूँगी।' सत्सग का यही फल है—

एक घडी आधी घडी, आधी मे पुनि आध।
तुलसी सगत साधु की कटे कोटि अपराध॥

२६ ३ ६२, नोखा धूप वढने के कारण 'स्वागत-समारोह का कार्यक्रम दोपहर के लिए स्थगित कर दिया गया। सक्षेप मे आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

मैं भ्रमर हूँ

दोपहर मे स्थानीय नगरपालिका के अध्यक्ष श्री धनराज वेताला ने अभिनन्दन-पत्र पढा। चातुर्मास के लिए वलवती प्रार्थना करते हुए स्थानीय लोगो ने कहा—'थली का पहला चातुर्मास वीकानेर चोखला मे होगा, ऐसी आपने स्वीकृति दी है। हम चाहते है कि वह चातुर्मास यही हो। शहरो मे आपने कई चातुर्मास किये है, छोटे गाव मे भी होना चाहिए। चोखले के लोगो को हम समझाकर एकमत कर लेंगे। अत आप यही चातुर्मास करने का निश्चय कर लें।'

आचार्यश्री ने फरमाया—'मुझे वीकानेर शहर से मोह नही है। मैं तो शहरों की अपेक्षा कई दृष्टि से छोटे गाँव मे रहना अधिक पसन्द करता हूँ। पहला चातुर्मास कलकत्ता किया तो दूसरा राजनगर। आवश्यकता है चातुर्मास के अनुकूल भूमिका तैयार हो। आप अपने पुष्पो मे सुवास

वढाएँ, मैं तो भ्रमर हूँ, स्वय चलकर आऊँगा ।'

मेरी असहिष्णुता

३० ३ ६२ आचार्यश्री पचमी समिति (शौच) से निवृत्त हो वापस स्थान पर आ रहे थे। मार्ग मे एक भाई ने प्रार्थना की—'महाराज,! हमारे घर को अपनी चरण-रेणु से पावन करें, क्योकि एक वहन दर्शन की अभिलाषिणी है, वह यहाँ आ नही सकती। अत आप अनुग्रह करके उसे दर्शन दे।'

जिज्ञासा की—'क्यो नही आ सकती?' उत्तर मिला—'वह नव-प्रसूता है।' 'जापे मे क्या दर्शन,' कहकर आचार्यश्री ने निषेध कर दिया। आगे वढ रहे थे पर चिन्तन की धारा उन्हे आगे वढने से रोक रही थी। ठहरने का स्थान पास ही था, इसलिए निष्कर्ष के पहले ही स्थान पर पहुँच गये। चिन्तन की धारा अवरुद्ध नही हुई, वह चलती रही। उसका पक्ष था, प्रार्थना करनेवाले स्वतत्र है। वे अपनी भावना को निवेदन करने के लिये पूर्ण अधिकारी है। मेरा कर्तव्य है, मैं उसे सुनूँ और यथासभव ध्यान दूँ। स्वीकृत न करूँ तो मिठास से उत्तर दूँ। इस असहिष्णुता को दूसरे चाहे न सोचें पर आत्मालोचन करनेवाला सहर्ष स्वीकार करेगा। आचार्यश्री के साधनाशील मानस ने अपनी स्थिति का अनुभव किया और इस ओर साधना करने का निश्चय किया। निश्चय के वाद अपने अनुभवो को उपस्थित करते हुए सन्तो को क्षमामार्दव आदि दस धर्मो मे से पहले किसी एक धर्म की विशेष साधना करने की प्रेरणा दी।

नौ वजे दीक्षा समारोह का कार्यक्रम कटला के चौक मे था। नोखा के इतिहास मे तेरापथी दीक्षा का यह दूसरा अवसर था। १७ वर्ष पहले ऐसा अवसर मिला था। लोगो मे उत्साह था, देखने की लालसा थी। स्थानीय प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। वीकानेर, गगाशहर, भीनासर, देशनोक आदि क्षेत्रो से हजारो व्यक्ति उपस्थित हुए थे। उपस्थिति लगभग पाच-छ हजार की थी। समारोह मे दीक्षार्थिनी वहन ने अपनी वैराग्य

भावना व्यक्त की और आचार्यश्री से निवेदन किया कि मुझे अविलम्ब श्री-चरणो मे स्थान दें। भाई, वहन, देवर आदि ने भाषणो के द्वारा अतीत मे ज्ञात या अज्ञात मे होनेवाले कटु-व्यवहारो के लिए क्षमा-याचना की और भविष्य मे सयम-साधना के मार्ग पर अग्रसर होने का आशीर्वाद दिया। भाई चन्दनमल ने दीक्षार्थिनी के वैराग्य का कारण वताया—'यौवन मे पैर रखनेवाली तेरहवर्षीया वहन रायकुमारी का श्री शुभकरण कुहाड के साथ पाणिग्रहण हुआ। तेरह दिन के वाद ही उसके जीवनसाथी ने ससार से सदा के लिए विदाई ले ली। कोमल हृदय पर वज्रपात हुआ। सुहाग का सिंदूर पोछ लिया गया। मेरे जैसे निष्ठुर भाई ने इससे तिलक का अधिकार छीन लिया। विधि को यही स्वीकार्य था। इसका मानस इतना सरल था कि इससे पूछा गया—'तुम क्यो रोती हो?' उत्तर मिला—'माता रोती है, इसलिए!' कितना सरल हृदय था! आगे चलकर यही इसके वैराग्य का हेतु वना।"

आचार्यश्री ने दीक्षार्थिनी का साधुत्व के कठोर नियमो की ओर ध्यान खीचा। वहन ने सहर्ष उस पर चलने का साहस दिखाया। अभिभावको की मौखिक व लिखित अनुमति के वाद आचार्यश्री ने उच्च स्वरो से दीक्षा-मन्त्रो का उच्चारण कर उसे साधुत्व की दीक्षा दी। नाम 'ऋजुमती' रखा गया। केश-लुचन साध्वीश्री अणचाजी ने किया। दीक्षा के अनन्तर ही आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे नवदीक्षिता को पडिता कहकर सम्वोधित किया। कवीर के दोहे के अनुसार—

पढ-पढ पोथी जग मुवा, पडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढे सो पडित होय॥

आज से यह वहन विश्व-प्रेम और विश्व-वन्धुता की भावना को लेकर चल रही है। इस दृष्टि से यह पडिता वन गई है। अन्त मे सभी भाई-वहनो ने भावात्मक एकता के नियमो का तुमुल-ध्वनि से उच्चारण किया।

रात को 'प्रश्न-गोष्ठी' का आयोजन पुस्तकालय में रखा गया। गोष्ठी

मे ७०-८० भाई थे। आचार्यश्री ने प्रश्नो के लिए आह्वान किया, पर नीरवता थी। नीरवता को भेदते हुए आचार्यश्री बोले—'जिज्ञासा दो प्रकार के व्यक्तियो के नही होती। पहले प्रकार मे सिद्ध हैं, जिनके सारी जिज्ञासाए समाहित हो गई हैं। दूसरे वे हैं, जो अज्ञानी हैं, जो कुछ नही जानते। शेष व्यक्तियो के कुछ न कुछ जिज्ञासाए होती ही हैं।' फिर क्या था, प्रश्नो का मुह खुल गया।

प्रश्न—परलोक सुधारने का भय क्यो है ?

उत्तर—परलोक है यह मानकर चलना चाहिए। क्योंकि पूर्वजन्म था तो पुनर्जन्म भी होगा। वर्तमान इसका सयोजक है।

'जस्स नत्थि पुरा पच्छा मज्झ तस्स कओ सिया'—किसी का मध्य है तो यह भी मानना होगा, कि उससे पहले और पीछे भी वह है, अन्यथा वह मध्य कैसे होगा ? वर्तमान जीवन मध्य है तो उससे पहले और पीछे भी जीवन होना चाहिए। परलोक है, उसको सुधारने का भय नही होना चाहिए, प्रयास होना चाहिए। धर्म से वर्तमान नही परलोक सुधरता है, यह गलत है। जो वर्तमान को नही सुधारता वह भविष्य को क्या सुधारेगा ? धर्म वही है जो इस जन्म को सुधारे और परजन्म को भी।

प्रश्न—इस जन्म मे लालसा के चक्र मे मनुष्य क्यो फसता है ?

उत्तर—सयम नही है, इसलिए। व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकता अल्प होती है पर मानसिक तृष्णा आकाश के समान अनन्त होती है। इच्छा के नियत्रण के विना शारीरिक तृष्णा मिटने पर भी मानसिक तृष्णा नही मिटती।

प्रश्न—तृष्णा और आवश्यकता मे क्या भेद है ?

उत्तर—आवश्यकता भी तृष्णा का एक अग है। वर्तमान की सीमा मे रहनेवाली आवश्यकता आवश्यकता है। जव वह भविष्य के लिए आगे चली जाती है तव वह आवश्यकता तृष्णा वन जाती है। आवश्यकता को द्रौपदी के चीर की तरह ज्यो-ज्यो वढाओगे, वढती जाएगी। भविष्य की अनन्त आवश्यकता तृष्णा वनकर फलित होती है। इस प्रकार सत्य क्या

है ? प्रलय के बाद क्या रहना है ? सेवा किसे कहते हैं ? परमात्मा क्या है ? उसकी प्राप्ति कैसे होगी ? भावात्मक एकता का श्रीगणेश कहाँ से हो ? दान, पुण्य आदि अनेक विषयो पर रात को साढे दस बजे तक प्रश्नोत्तरो का कार्यक्रम चला। स्थानकवासी भाइयो की प्रार्थना पर दूसरे दिन का प्रात कालीन व्याख्यान उसी पुस्तकालय के चौक मे होना निश्चित हुआ।

२१ ३ ६२ गाँव के श्रद्धालु भक्तो ने प्रार्थना की—'गुरुदेव! आप आज यहा से विहार करने वाले हैं। गाँव मे कई ऐसे भी भाई-बहन है जो वृद्धत्व और रुग्णत्व के कारण आपके दर्शन से वचित हैं, इसलिए आप कृपा करके उन्हे दर्शन दें। कई भाई आपकी चरण-धूलि से घर को पवित्र कराने के लिए लालायित है। अनुग्रह करके सबकी आशा को पूर्ण करें।' आचार्यश्री ने उनकी भावना को स्वीकार कर ३०-३५ घरो मे पादन्यास किया। अपने घर मे गुरुदेव को पाकर वे अपने आपको धन्य और कृतकृत्य अनुभव करते थे। घरो मे जाने से समय कुछ अधिक लग गया, फिर भी आचार्यश्री ने प्रतिदिन की तरह आसन, प्राणायाम का अभ्यास नही छोडा। आसन के अनन्तर आप व्याख्यान के लिए जैन जवाहर पुस्तकालय मे पधारे।

मध्याह्न मे दो बजे अणुव्रत-सम्बन्धी कार्यक्रम चला, जिसमे गाँव के अध्यापक वर्ग तथा अन्य बौद्धिक लोगो ने भाग लिया। अणुव्रत नियमावली का व्याख्या-सहित वाचन हुआ।

किरचा या मिरचा

अपराह्न मे चार बजे सोलमसर के लिए विहार हुआ। तीन लडके करीब दस-बारह वर्ष के थे। एक लडका बोला—'गुरुदेव! मुझे किरचा (सुपारी) का त्याग कराओ।' आचार्यश्री ने प्रश्न किया—'किरचा का त्याग करोगे या मिरचा का?' उसने उत्तर दिया—'केवल किरचा (सुपारी) का।' दूसरा बोला—'मुझे किरचा और मिरचा दोनो का त्याग करा दीजिए।' पूछने पर तीसरा बोला—'मुझे पान का त्याग करवा

दीजिए। आचार्यश्री ने फरमाया—'पान का ही क्यो, किरचा का क्यो नही ? क्या इसलिए कि पान के लिए पैसे चाहिए और किरचा घर मे माता से मागने से सीधा ही मिल जाता है।' लडका वोला—'हाँ।' आचार्यश्री समझाने लगे—'सुपारी से दाँत और स्वर दोनो खराव होते हैं।' लडके को सुपारी छोडने का नही जँचा। इसलिए उमने कहा—'मुझे तो पान का ही त्याग कराइए।' एक वर्ष के लिए तीनो को त्याग करा दिया। वच्चो मे त्याग के सस्कार यदि सहज ही जागृत होते हैं तो यह साधना का शुभ सकेत ही है।

१ ४ ६२, हरहिम्मतसर यहाँ महेश्वरी जाति का प्राधान्य है। आगमन के समय आचार्यश्री ने ३०-४० भाइयो के वीच उपदेश दिया। आम व्याख्यान दोपहर मे ही हुआ जिसमे प्राय तीन-चार सौ की उपस्थिति थी। प्रवचन के अन्त मे आचार्यश्री ने भावात्मक एकता का नियम सुनाया। लोगो ने उसी शब्दावली मे उसको दुहराया। प्रवचन की समाप्ति होने पर लोगो ने फिर चाहा कि व्याख्यान और आगे चलना चाहिए। विहार करने का समय होने पर भी उन लोगो की उत्कण्ठा देख पन्द्रह-वीस मिनट फिर कार्यक्रम चला। तदन्तर वहाँ से विहार हो गया।

काकडा यहाँ मन्दिर मे आचार्यश्री विराजे। महेश्वरी जाति के लोग यहाँ भी काफी सख्या मे रहते हैं। रात को प्रवचन मे मन्दिर के आसपास का सारा चौक खचाखच भर गया। उपस्थिति डेढ-दो हजार रही।

परीक्षा-काल

२ ४ ६२, जसरासर दोपहर मे एक वजे से दो वजे तक आचार्यश्री के सान्निध्य मे साध्वियो का अध्ययन चलता है। आचार्यश्री सटक पर ठहरे हुए थे, साध्वियाँ गाँव मे ठहरी हुई थी। वूप ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया। अग्नि का साक्षात् दर्शन नही होना था, फिर भी वह धूलि के कणो मे धुलकर पैर जला रही थी। दोनो स्थानो की दूरी मकान मे वाहर निकलने के लिए रोक रही थी और ज्ञान की उत्कठा अव्यक्त आग पर भी

चलने को कह रही थी। आखिर आन्तरिक भावना की विजय हुई। हम लोग अध्ययन करने आचार्यश्री के पास मे चली गई। वाह्य परिस्थिति से घवराकर यदि हम वहा नही जाती तो अध्ययन परम्परा के खडित होने का पश्चाताप ही रहता। एक घटे तक ज्ञान की साधना कर हम लोगो ने आत्म-तृप्ति का अनुभव किया।

गैस का प्रकाश

जसरासर गाव के वाहर वालू के पर्वत की गोद मे ग्राम पचायत भवन था। सामने सडक थी। स्थान की सुरम्यता मन की प्रसन्नता को वढा रही थी और वायुमडल की स्वच्छता भावनाओ मे स्वस्थता भर रही थी। आचार्यश्री ने रात्रिकालीन प्रवास और प्रवचन वही किया। ८०० घरो की वस्ती मे ६०० घर जाटो के थे। प्रवचन के हजार से अधिक उपस्थिति थी। वृद्धो की सख्या भी काफी थी। भापण के बाद एक वृद्धा खडी होकर साहस के साथ वोली—'महाराज! मैं इतनी दूर चलकर आयी पर अधकार मे आपका मुख दिखाई नही दिया। इस गैस के कारण हमे आपके दर्शन प्राप्त हो रहे हैं। वैसे ही इतने दिनो तक हमने अपनी उम्र खो दी, कुछ ज्ञान नही मिला, आज आपकी वाणी सुनी तो हमे ज्ञान का प्रकाश मिल गया। आपने जो कुछ कहा, शेप उम्र उसी मे लगाऊगी।' वृद्धा के विचारो ने कई लोगो को सजग कर दिया।

अकेला ही क्यो

रात के ग्यारह वजे थे। नौ व्यक्ति आचार्यश्री के पास मे आए, जिनमे एक खाती, एक व्राह्मण और सात जाट थे। एक भाई वोला—'महाराज! अभी आपका प्रवचन सुना। तमाखू आदि नशीली वस्तुओ के त्याग की भावना मेरे मन मे जागी। मैंने सोचा, व्रत अकेला ही क्या लेऊ? दोस्तो को भी दिलाऊँ। यह सोच आधे घटे तक हमने आपस मे अच्छी तरह से वातचीत की। सव एकमत हो, आपके पास आये हैं, हमे त्याग करा

दीजिए।' आचार्यश्री ने उनको नशे से मुक्ति दिलाई। बाद मे वे श्रद्धालु भी बन गए।

सोते समय त्याग का वातावरण और प्रकृति की अभिरामता ने आचार्यश्री को प्रसन्नता से गहरी नीद मे सुला दिया। सूर्योदय के समय कई बूढी बहनें दर्शन करने फिर आयी। सोचा, सूरज निकलने के बाद तो वह मूर्ति चली जाएगी। पास मे आकर मुँह देखा। मुँह देखते-देखते आँखे डबडबा आयी। भक्ति का सजीव चित्र उपस्थित लोगो ने अपनी खुली आँखो से देखा।

वेतन मे योग्यता मत मापो

३ ४ ६२, कातर ठाकुर भूरसिहजी नारभोत बुढापे मे भी अपने अतीत की कार्य-कुशलता पर गौरव कर रहे थे। अनुभव सुनाते हुए बोले—'आचार्यजी! मैं अपने समय मे अफसर था। आज मैं २८ वर्ष से पेंशन पा रहा हू। यद्यपि पेंशन के पैंतीस रुपये ही मिलते है, क्योकि मेरी सर्विस पुराने ज़माने की थी। मेरे भाई को दो हजार और पुत्र को ढाई सौ रुपये मिल रहे है। मुझे कहते गौरव होता है कि जो काम मैंने अपने जीवन मे किया वैसा काय वे नही कर पा रहे है।'

आचार्यश्री ने फरमाया—'योग्यता वेतन से जुडी हुई नही होती, उसका सम्बन्ध कर्तृत्व से होता है। वेतन मे योग्यता देखनेवाले व्यक्ति का सही मूल्याकन नही कर पाते।'

सदा चलनेवाली घडी

हमारा सस्कृत व्याकरण का वाचन चल रहा था। गाँव के भाई आए और बैठ गये। कुछ देर तो सुनते रहे, अन्त मे उकता गये। बोले—'महाराज! हमे तरसाते ही रहोगे या कुछ सुनाओगे भी?' आचार्यश्री ने उनकी स्थिति को समझ लिया और सान्त्वना के स्वर मे बोले—'क्या व्याख्यान का समय हो गया?' भाई ने गरीबी का श्वास लेते हुए कहा—'हमारे पास

घडी कहा, जो ठीक समय बता सकें ?' हीन भावना को मिटाते हुए आचायश्री वोले—'घडी न होने से कोई गरीब नही होता। अन्तर की घडी तो तुम्हारे पास है ही ?' उन्होने कहा—'हा, महाराज !'

आचार्यश्री—'अन्तर की घडी होने से वाह्य घडी न होने पर भी समय जाना जा सकता है, तव फिर चिन्ता क्यो ?' आचायश्री के उत्तर ने उनको गरीबी का अनुभव नही होने दिया। उन्होने सोचा, एक घडी हमारे पास भी है जो हमेशा चलती है।

४ ४ ६२, साडवा साडवावासियो मे आज हर्ष उमड रहा है, क्योंकि आचायश्री दो युग से भी अधिक समय (२५ वर्षों) के वाद पधार रहे थे। बीदासर मे कई वार आगमन होने पर भी साडवा एक ओर रहने से वचित ही रहा। दीर्घकालीन प्रतीक्षा के वाद उनके मनोरथ फल रहे हैं। इसलिए आनन्द होना स्वाभाविक ही था। गाव के प्राय सभी जाति के लोगो ने सम्मुख आकर आचार्यश्री का स्वागत किया। समयाभाव के कारण सक्षेप मे स्वागत-प्रवचन गढ मे हुआ और प्रवास भी वही पर। साडवा के नागरिको की ओर से अभिनन्दन-पत्र पढा गया। रात्रिकालीन प्रवचन के वाद गाँववालो ने वलवती प्रार्थना की कि सात दिन आपको रहना ही होगा। उनके आग्रह भरे अनुनय मे भक्ति प्राणवान हो वोल रही थी, इसीलिए आचायश्री ने तीन रात वहाँ रहना स्वीकार किया।

थारी माँ का

५ ४ ६२, साडवा श्री केशरीमलजी वोथरा सपरिवार मगल-पाठ सुनने के लिए आए। वे मातुश्री वदनाजी के दर्शनाथ बीदासर जा रहे थे। उनके साथ उनका दोहिता राजेश था। उस समय आचायश्री भोजन कर रहे थे। वह लडका साहस कर निकट चला आया और खडा हो गया। कुछ देर खडा रहकर विना पूछे ही वोला—'भाईजी महाराज! आज म्हें थारी मा का दर्शन करन ने जावा हा।' उसकी सहज सरल णी सुन सव कहकहाकर हँस पडे। वच्चे की मधुर वाणी 'थारी मा का'

मे जो आनन्द मिला, वह 'आपकी माताजी का' मे नही मिलता। यही कारण है कि लोग वच्चो के साथ खेल-खेलकर वात करने का प्रयत्न करते हैं। वच्चे की तरह दूसरे यदि सहज सरल वोलने लग जाएँ तो वायुमण्डल कितना विशुद्ध वन जाए।

श्रद्धा को भी निगल जाती है

मध्याह्न दो वजे का समय था। मुनिश्री रूपचन्दजी को चक्कर आने लग गया। उन्हे लवग की चटनी की आवश्यकता हुई। मुनि मणिलालजी ने आचार्यश्री से निवेदन किया। आचार्यश्री ने सोचा—वहनें प्राय यहाँ आयी हुई हैं, घर पर कौन मिलेगा ? कोई मिल भी जाए तो दोपहर के असमय मे घरो मे गरम करने का साधन कैसे मिलेगा ? आवश्यकता के सामने ये प्रश्न मन ही मे रहे। पास वैठी हुई सतियो को लाने को कह दिया गया। चिलचिलाती धूप मे सतियो ने अपने स्थान पर जाकर साध्वी रतनाजी से कहा। वे गवेषणा कर, २०-२५ मिनट मे ही लेकर आ गई और रूपचन्दजी को दे दिया। सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी के पास भाई श्री खेमचन्दजी सेठिया बैठे थे। उनके मन मे सन्देह उत्पन्न हुआ। साध्विया इस समय गरम कहाँ से करके लायीं। सम्भवत किसी ने राग का भाव मिलाकर काम किया हो, सन्देह को साथ ले वे उठे और सीधे घर पर आए। घर मे घुसते ही नौकर ने कहा—'सेठजी ! कुछ समय पहले साध्वियाँ आयी थी, कुछ लवग ले गई।' खेमचन्दजी का सन्देह कुछ शिथिल हुआ। फिर वह नौकर वोला कि यहाँ गरम भी किया था। उन्होने पूछा—'तुमने आग क्यो जलाई ?' वह वोला—'वाज़ार से अभी घी का एक पीपा लाया था, उसको गरम करने के लिए आग जलाई थी।' इतना कहते ही खेमचन्दजी का सन्देह भाग गया। वे मन मे कूदते-फाँदते साधुओ के स्थान पर आए और सारी घटना सेवाभावी मुनिश्री को सुनाई। साधुओ ने कटोरी दिखाते हुए कहा—'यह कटोरी भी तुम्हारी है। देखो इस पर तुम्हारा नाम खुदा है।' निष्कर्ष की भाषा मे वे वोले—'महाराज ! छोटी-छोटी वातो मे इसी

प्रकार हमारे मन मे सन्देह घुस जाता है। अगर मैं साहस नही करता तो मेरा सन्देह कभी नही मिटता।' घटना यह एक है पर मेरी दृष्टि मे यह खेमचन्दजी की तरह कई व्यक्तियों के विचारो का प्रतिनिधित्व करती है। शका का आना सरल है, वह विना निमन्त्रण के आ जाती है। पर उसका वापस जाना अधिक कठिन है। उसे हटाने का कठिन प्रयत्न करना पडता है। यदि वह नही निकलती है तो धीरे-धीरे श्रद्धा को भी निगल जाती है।

७ ४ ६२, बीदासर चातुर्मास की समाप्ति के वाद बीदासर मे आने का कारण मातुश्री वदनाजी ही हैं। उनकी उत्कट अभिलापा थी कि गुरुदेव दीघयात्रा से पहले मुझे दर्शन दें। आचार्यश्री ने अपने कतव्य का पालन किया। अपने पुत्र आचार्यश्री को अपने बीच पा मातुश्री वदनाजी का मानस हर्ष से भर गया। उन्होने अपनी भाषा मे कहा—'गुरुदेव! आज हूप मन मे मावै नही है और कह भी कोनी सकू।' सहज सरल भापा मे उन्होने अपना चित्त जनता के सामने रख दिया। खिलती हुई उनके मुख की मुद्रा उनके भावो का प्रतिनिधित्व कर रही थी। उपस्थित जनता विकस्वर नेत्रो से माता और पुत्र का मिलन देखने को उत्सुक थी।

सवसे पहले माता की ओर से 'आशीर्वचन' के रूप मे अभिनन्दन-पत्र का वाचन साध्वीश्री राजीमतीजी ने किया।

दीर्घायुर्भव भण्यते यदितदा तन्नारकाणामपि
चेत्प्रोच्येत धनाधिको भव तदा तन्म्लेच्छकानामपि
यद्युच्येत च पुत्रवान् भवतदातद् कुक्कुटानामपि
तस्मात् सर्वसुखप्रदोस्तु भवता श्री धर्मलाभ श्रिये।

पत्र मे इस श्लोक को उद्धृत करके सर्वजन-हिताय की व्यापक भावना की कामना की गई थी।

अन्त में मातुश्री ने स्वय दो दोहो का उच्चारण कर पत्र को आचार्य-चरणो मे उपहृत कर दिया। पत्र मे उल्लेखनीय वात यह थी कि माता ने ८३ वर्ष की उम्र मे लिखना सीखकर स्वय हस्ताक्षर किये थे। ज्योही माता

मे जो आनन्द मिला, वह 'आपकी माताजी का' मे नही मिलता। यही कारण है कि लोग बच्चो के साथ खेल-खेलकर बात करने का प्रयत्न करते है। बच्चे की तरह दूसरे यदि सहज सरल बोलने लग जाएँ तो वायुमण्डल कितना विशुद्ध बन जाए।

श्रद्धा को भी निगल जाती है

मध्याह्न दो बजे का समय था। मुनिश्री रूपचन्दजी को चक्कर आने लग गया। उन्हे लवग की चटनी की आवश्यकता हुई। मुनि मणिलालजी ने आचार्यश्री से निवेदन किया। आचार्यश्री ने सोचा—बहनें प्राय यहाँ आयी हुई है, घर पर कौन मिलेगा ? कोई मिल भी जाए तो दोपहर के असमय मे घरो मे गरम करने का साधन कैसे मिलेगा ? आवश्यकता के सामने ये प्रश्न मन ही मे रहे। पास बैठी हुई सतियो को लाने को कह दिया गया। चिलचिलाती धूप मे सतियो ने अपने स्थान पर जाकर साध्वी रतनाजी से कहा। वे गवेषणा कर, २०-२५ मिनट मे ही लेकर आ गई और रूपचन्दजी को दे दिया। सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी के पास भाई श्री खेमचन्दजी सेठिया बैठे थे। उनके मन मे सन्देह उत्पन्न हुआ। साध्विया इस समय गरम कहाँ से करके लायी। सम्भवत किसी ने राग का भाव मिलाकर काम किया हो, सन्देह को साथ ले वे उठे और सीधे घर पर आए। घर मे घुसते ही नौकर ने कहा—'सेठजी ! कुछ समय पहले साध्वियाँ आयी थीं, कुछ लवग ले गई।' खेमचन्दजी का सन्देह कुछ शिथिल हुआ। फिर वह नौकर बोला कि यहाँ गरम भी किया था। उन्होने पूछा—'तुमने आग क्यो जलाई ?' वह बोला—'बाज़ार से अभी घी का एक पीपा लाया था, उसको गरम करने के लिए आग जलाई थी।' इतना कहते ही खेमचन्दजी का सन्देह भाग गया। वे मन मे कूदते-फाँदते साधुओं के स्थान पर आए और सारी घटना सेवाभावी मुनिश्री को सुनाई। साधुओ ने कटोरी दिखाते हुए कहा—'यह कटोरी भी तुम्हारी है। देखो इस पर तुम्हारा नाम खुदा है।' निष्कर्ष की भाषा मे वे बोले—'महाराज ! छोटी-छोटी बातो मे इतनी

प्रकार हमारे मन मे सन्देह घुस जाता है। अगर मैं साहस नही करता तो मेरा सन्देह कभी नही मिटता।' घटना यह एक है पर मेरी दृष्टि मे यह खेमचन्दजी की तरह कई व्यक्तियो के विचारो का प्रतिनिधित्व करती है। शका का आना सरल है, वह विना निमन्त्रण के आ जाती है। पर उसका वापस जाना अधिक कठिन है। उसे हटाने का कठिन प्रयत्न करना पडता है। यदि वह नही निकलती है तो धीरे-धीरे श्रद्धा को भी निगल जाती है।

७ ४ ६२, बीदासर चातुर्मास की समाप्ति के वाद बीदासर मे आने का कारण मातुश्री वदनाजी ही हैं। उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि गुरुदेव दीर्घयात्रा से पहले मुझे दर्शन दें। आचार्यश्री ने अपने कर्तव्य का पालन किया। अपने पुत्र आचार्यश्री को अपने बीच पा मातुश्री वदनाजी का मानस हर्ष से भर गया। उन्होने अपनी भाषा मे कहा—'गुरुदेव! आज हर्ष मन मे मावै नही है और कह भी कोनी सकू।' सहज सरल भाषा मे उन्होने अपना चित्त जनता के सामने रख दिया। खिलती हुई उनके मुख की मुद्रा उनके भावो का प्रतिनिधित्व कर रही थी। उपस्थित जनता विकस्वर नेत्रों से माता और पुत्र का मिलन देखने को उत्सुक थी।

सबसे पहले माता की ओर से 'आशीवचन' के रूप मे अभिनन्दन-पत्र का वाचन साध्वीश्री राजीमतीजी ने किया।

दीर्घायुर्भव भण्यते यदितदा तन्नारकाणामपि
चेत्प्रोच्येत धनाधिको भव तदा तन्म्लेच्छकानामपि
यद्युच्येत च पुत्रवान् भवतदातद् कुक्कुटानामपि
तस्मात् सर्वसुखप्रदोस्तु भवता श्री धर्मलाभ श्रिये।

पत्र में इस श्लोक को उद्धृत करके सर्वजन-हिताय की व्यापक भावना की कामना की गई थी।

अन्त में मातुश्री ने स्वय दो दोहो का उच्चारण कर पत्र को आचार्य-चरणो मे उपहृत कर दिया। पत्र मे उल्लेखनीय वात यह थी कि माता ने ८३ वर्ष की उम्र मे लिखना सीखकर स्वय हस्ताक्षर किये थे।

ने पत्र दिया, आचार्यश्री वोले—'जीवन दिया है, अब पत्र क्या देना है।' कितनी कृतज्ञता-ज्ञापन थी आचार्यश्री के शब्दो मे। सरलमना माता ने कहा—'मेरी अन्तर-भावना है। आचार्यश्री ने उनकी भावना का सम्मान किया और उसे ले लिया। उसके बाद मुनिश्री जवरीमलजी ने स्वागत मे कुछ दोहे कहे। अन्त मे आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे कहा—'मेरी भावना थी कि नये वर्ष का प्रथम दिन माता के बीच विताऊँ, पर नोखावालो ने एक दिन अधिक ले लिया और एक दिन स्वय वदनाजी ने लाडवावालो को यह कहकर दिलवा दिया कि मुझे चाहे एक दिन कम दें पर लाडवा-वालो को सन्तुष्ट कर दें। वस्तुत अपना त्याग करनेवाला सर्वत्र प्रशसा का पात्र होता है। वदनाजी ने अपनी वृत्ति से इस पाठ को फिर एक वार दुहरा दिया।' उपस्थित जनता को सयम की प्रेरणा देते हुए आचार्यप्रवर ने अपना सक्षिप्त प्रवचन पूर्ण किया। अवशिष्ट कार्यक्रम मध्याह्न मे रहा।

८ ४ ६२ दूसरे दिन प्रातःकाल मे साध्वियो सहित मातुश्री वदनाजी दर्शन करने आयी। एकान्तर तपस्या के पारणे का दिन था। इस-लिए आचार्यश्री के मुख से सूत्र की पाच गाथाएँ सुनकर पारणा किया। व्रत खोलने से पहले सूत्रो का स्वाध्याय या जाप अध्यात्म मानस का प्रतीक है।

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में खाद्य-सयम की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट किया। आपने कहा—'खाद्य-सामग्री के अभाव मे मनुष्य मरता है तो वह परवशता है। पर लोलुपता के कारण अधिक खाकर मरे यह जीवन का अभिशाप है। अवस्था की प्रौढता के साथ शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से खाद्य-सयम अत्यन्त आवश्यक है। बुढापे मे इन्द्रियो के पुर्जे शिथिल पड जाते है। उनकी शक्ति से अधिक कार्य लेने से उनके टूटने का भय रहता है। चारो ओर से रोग उसको घेर लेते है। वस्तु का स्वाद चखते-चखते वाल्य और यौवन वीत गया। बुढापे मे भी यदि रस-लोलुपता पर नियन्त्रण नही हुआ तो शरीर सताने लग जाएगा और मन भी स्वस्थ नही रह पाएगा। मानसिक स्वस्थता के विना सुख की कल्पना व्यर्थ है।' मातुश्री वदनाजी की ओर सकेत करते हुए कहा—'देखो, सयम

का यह सजीव उदाहरण है। निरन्तर कभी भोजन नही करती हैं, कभी-कभी दो या तीन दिन तक नही खाती है। पारणे मे (नवकारसी) मुहूर्त्त दिन के पहले कुछ नही लेती। पारणा करते ही एक प्रहर तक का त्याग कर देती हैं, भोजन कर फिर दोपहर का त्याग। इस प्रकार दो दिनों मे ४६ घटे त्याग मे वीतते हैं। कहना चाहिए कि इनका सारा जीवन ही त्याग मे वीत रहा है। खाद्य-सामग्री मे जीवन भर के लिए इने-गिने द्रव्य हैं, जिनसे शरीर का ढाचा चला रही है। तपस्या का दिन हो अथवा पारणे का दिन, प्रतिदिन ८००० गाथाओ का स्वाध्याय करती हैं। आसन के दो विकल्प है। पद्मासन अथवा सीधे खडा रहना। ८४ वप की अवस्था मे इस प्रकार तपस्या के साथ स्वाध्याय का सगम वस्तुत आदर्श है। मैं समझता हू सभी लोग इनसे सवक लेकर जीवन मे खाद्य-सयम को स्थान देंगे।'

६ ४ ६२ रात को मातुश्री वदनाजी के सान्निध्य मे साध्वियो के स्थान पर आचार-सम्बन्धी एक गोष्ठी हुई। साध्वीश्री मजुला ने आचार का आधार विचार वताया तथा लक्ष्य के प्रति आस्थावान् रहने पर वल दिया। साध्वीश्री राजीमतीजी ने कहा—'व्यक्ति का अकन व्यवहार से जाना जा सकता है, इसलिए व्यवहार-शुद्धि के लिए जीवन मे दस धर्मो की साधना करनी चाहिए।' साध्वीश्री जयश्री ने जीवन में स्वाभाविकता व सरलता पर बल दिया। व्यवहार को निभाने के लिए कभी-कभी आत्मा के साथ धोखा करना पडता है। व्यवहार मे सफल होने पर भी वस्तुत वह साधना के क्षेत्र मे पिछड जाता है। इसलिए साधक को सहजता की ओर वढना चाहिए।

मैंने (साध्वी कानकुमारी) अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—'सघीय जीवन मे सहिष्णुता की साधना अत्यन्त अपेक्षित है। एक-दूसरे की गलती को हजम करने के लिए अपनी पाचन-शक्ति को वढाना चाहिए अन्यथा उसकी अजीर्णता का परिणाम परस्पर कलह और दु ख की सवेदना के रूप मे भोगना पडता है। छिछलेपन से न तो व्यक्तित्व बनता है

और न व्यवहार मे आनन्द ही आता है। अत जीवन मे सरसता लाने के लिए सहिष्णुता का पथ सरल है।'

अन्त मे वयोवृद्धा साध्वीश्री खुमाजी ने विनय पर विशेष वल देते हुए साध्वियो को विनीत वने रहने की प्रेरणा दी।

१० ४ ६२, वीदासर साध्वी समाज के वीच भापण करते हुए आचार्यश्री ने कहा—'जीवन का लक्ष्य केवल सावु वनना ही नहीं है। साधुत्व तो साधना के क्षेत्र मे प्रवेशद्वार है। लक्ष्य तक पहुचने के लिए कई सोपानो को लाघना होगा।'

नवदीक्षित साध्वी वातावरण के अनुकूल ही ढलती है, इसलिए आवश्यक है कि प्रारम्भ मे उसकी ओर ध्यान दिया जाय। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति मे अध्यात्म झलके, ऐसा प्रयत्न होना चाहिए। ध्यान आत्म-साधना का प्रमुख अग है। इससे चित्त की एकाग्रता का अभ्यास वढता है। ध्यान से आत्मा की ओर गति होती है, इसलिए प्रत्येक साध्वी इस ओर सचेष्ट रहे। ध्यान की प्रवृत्ति को अधिक से अधिक वढाया जाय।

क्षमा-धर्म पर वोलते हुए आपने कहा—'यह यो साधक की प्राइमरी पुस्तक है। जिस साधक ने क्षमा का अभ्यास नही किया वह साधना के क्षेत्र मे कहाँ तक वढ पाएगा। सहिष्णुता के अभाव मे कदम-कदम पर साधक को अनुत्तीर्ण होना पडता है। सघ के सदस्यो का सीधा सम्वन्ध गण और गणी से होता है। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति का प्रतिविम्व गण पर पडता है। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक सदस्य यह चिन्तन करे कि मेरी असावधानी से कही गण को अस्वस्थता का अनुभव न हो।'

कष्ट भी अभिनन्दन

११ ४ ६२, वीदासर थली प्रदेश मे लू और आधी मरुस्थल के प्रतीक हैं। यहाँ आधी आखोवालो से भी तेज चलती है। खुली आखो वालो की आखो मे धूल झोककर उनको भी देखने से रोकती है। न जाने अपनी जातित्व की वृद्धि का मोह इसमे कव मे घर कर गया है।

दोपहर का समय था। आधी तेज चल रही थी। देखते-देखते आचार्यश्री के बिछौने पर धूल की परतें जमने लगी। वे अपने हाथो से बार-बार धूल झटका रहे थे, पर आधी अपनी धुन मे मस्त थी, तीव्र गति से चल रही थी। मातुश्री वदनाजी मौन नही रह सकी। उनके मुख से बोल फूट पड़े—'गुरुदेव! आपको यहाँ की धूलि सताती होगी?'

सस्मित वदन आचार्यश्री बोले—'जिसके पास जो वस्तु होती है वह वही देता है। यह भी धूलि के द्वारा स्वागत कर रही है। इसको सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।'

दृष्टिकोण बदलने से कष्ट भी अभिनन्दन बन गया।

रात को सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी के सान्निध्य मे अन्ताक्षरी का कार्यक्रम रहा।

श्रद्धा को वाणी मिल गई

१२ ४ ६२ आचार्यश्री प्रवचन-सभा मे विराजे हुए थे। दो बहनें बेनातो (बीदासर से तीन मील पूर्व-दिशा) से दर्शन करने आयी। साथ मे प्रार्थना लायी—'महाराज! आपकै दर्शना खातिर अडिकती रहवा हा। पन्द्रह वर्ष होग्या, गाँव मे पधार्‌या ही कोनी, अब के तो म्हारै कानी देखो।' ऐसा लगता था मानो बहन की सहज वाणी मे श्रद्धा की वाणी मिल रही है। हृदय से चलकर जीभ तक आने मे उसे कोई मानसिक बाधा न रोक सकी हो।

माता का मोह

१४ ४ ६२ सूर्योदय की मगलवेला मे मातुश्री वदनाजी ने आचार्यश्री को लम्बी यात्रा के लिए विदाई दी और आशीर्वाद दिया कि जन-कल्याण करते हुए चिरायु हो। करोड दीवाली तक तेरापन्थ शासन की सेवा करते रहे। स्वास्थ्य की मगल-कामना करते हुए नम्र शब्दो मे 'गुरुदेव! ग्रीष्म ऋतु है, अत विहार लम्बे-लम्बे कर शरीर के

साथ अन्याय न करें। आखिर इसी शरीर से काम लेना है।' मातृ-हृदय की वाणी को आचार्यश्री ने सहर्ष स्वीकार किया और उत्तर मे बोले—'क्या आप नही जानती कि गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर के शरीर पर मोह किया, उससे उनको केवलज्ञान आता हुआ रुक गया। इसलिए मोह को छोडना ही अच्छा है। जब वह आए तो उसको सत् स्वाध्याय से भगा देना चाहिए।' इसके उत्तर मे मा बोल नही सकी। हृदय का स्नेह आखो के द्वार से अश्रु बन बोल उठा। मैं पास खडी देख रही थी—एक ओर मातृ-हृदय की वत्सलता, दूसरी ओर साधक का मानस। कैसा सगम था दो विचारो का! दोनो एक-दूसरे मे मिलकर एक बन गये थे। माता की विदाई के बाद वहाँ से विहार हो गया। विहार का दृश्य दर्शनीय था।

१४ ४ ६२, चाडवास यह एक छोटा-सा गाँव है। केन्द्र मे होने के कारण आते-जाते कई बार आचार्यश्री यहाँ आए हैं। इसलिए अनेक स्मृतिया यहाँ से जुडी हुई हैं। निवासस्थान को देखते ही वे एक-एक कर जागने लगी। कई साधुओ ने यहाँ स्थिरवास करके अपना कार्य साधा था। उनके नाम मुख पर आने लगे—पन्नालालजी स्वामी, छवीलजी स्वामी, भीमराजजी स्वामी आदि। गाधीजी के निधन का समाचार भी यही सुना था। इस प्रकार अनेक विपयो की छोटी-मोटी स्मृतिया उभरने लगी।

आचार्यश्री ने सर्वप्रथम वर्तमान मे स्थिरवास करनेवाली साध्वीश्री पारवताजी को दर्शन दिये और सुख पृच्छा की। व्याख्यान से पूर्व आचार्यश्री के प्रवासकाल तक स्थानीय भाई और वहनो ने सामूहिक रूप से पाँच प्रतिज्ञाए स्वीकार की

१ व्रह्मचर्य पालन करना।

२ सचित वस्तु नही खाना, आदि-आदि।

दोपहर मे गीतिका-गोष्ठी मे अनेक गीतिकाएँ हुई। रात को मुनिश्री वालचन्दजी के सगीत के वाद मुनिश्री श्रीचन्द 'कमल' का 'सत्य' विपय पर भाषण हुआ। तदनन्तर सत्य-विकास पर प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने

मन, वाणी और काया विषयक ऋजुता रखने की प्रेरणा दी। सयोजन मुनिश्री दुलहराजजी ने किया।

१५ ४ ६२, छापर चाडवास से दो मील पर छापर है। बीदासर, सुजानगढ और लाडनू के सैकडो भाई आये हुए थे। कुल मिलाकर पाँचो गाँवो के हजार की सख्या के लगभग भाई-बहन हो गए थे। दो मील की सूनी सडक आज चाडवास और छापर को एक बना रही थी। धवल वस्त्रो से ऐसा लग रहा था मानो सडक आचार्यश्री का पादस्पर्श पा अपनी कालिमा को धो उज्ज्वल बन गई हो।

छापर मे स्थानीय लोगो द्वारा अभिनन्दन हुआ। आचार्यश्री ने प्रवचन किया। अन्त मे 'भावात्मक एकता' के नियम का लोगो ने आचार्यश्री की वाणी मे पुनरुच्चारण किया। साध्वीश्री फूलकुमारीजी के सत्प्रयास से बहनो मे अध्ययन की परम्परा सतत चलती है। बीस-तीस बहनें धार्मिक अध्ययन से रुचि लेती हैं, दो बहनें अध्यापिका का काम करती हैं।

दोपहर मे इन अध्ययनशील बहनो ने आचार्यश्री का समय लिया और उसमे भावी अध्ययन सम्बन्धी प्रेरणा ली।

१६ ४ ६२, सुजानगढ छापर से सुजानगढ आते समय सुजानगढ स्टेशन के पास गाधी आश्रम आया। यहाँ के सचालक श्री बनवारीलाल वेदी आचार्यश्री को अपने आश्रम मे प्रार्थना कर ले गए। स्वागत के उत्तर में आचार्यश्री ने भावात्मक एकता पर प्रवचन किया। फिर वहाँ से शुभकरणजी दसाणी के स्थान पर पधार गये। यहाँ स्वागत-समारोह मनाया गया।

दोपहर मे महावीर जयन्ती के उपलक्ष मे होनेवाले 'सहवन्दन' का पूर्वाभ्यास भाई और बहनो को कराया गया। सहवन्दन मे नवकार, चार मगल का पाठ और सूत्रो की गाथाएँ थी।

रात को मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन' के सगीत के बाद मुनिश्री दुलहराजजी ने स्वाध्याय विषय पर भाषण किया।

१७ ४ ६२ श्री ओसवाल स्कूल मे 'महावीर जयन्ती' का कार्य-

क्रम रखा गया। आचार्यश्री आठ बजे प्रवचन-स्थल मे पधारे। 'सह-गमन' मे आगे साधु पक्तिवद्ध चलते थे, पीछे क्रमश भाई और वहन। स्कूल मे जाकर वह जुलूस सभा के रूप मे परिणत हो गया। हजारो की उपस्थिति के बीच महावीर जयन्ती के अवसर पर बोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—'आज महावीर जयन्ती है। जन्म-दिवस है। जन्म सब कुछ होता है और कुछ भी नही। किसी भी वस्तु की उत्पत्ति के बिना उसका क्या मूल्य है? जन्म भविष्य जीवन का मूल है। इसलिए वह सब कुछ है और जन्म के समय सारा भविष्य अस्पष्ट रहता है इसलिए वह कितना मूल्यवान है, इसका अकन नही किया जा सकता।'

जयन्ती के सम्बन्ध से आज हम उनकी साधना और वाणी को याद कर रहे हैं। भगवान् महावीर ने जातिवाद को अतात्त्विक कहकर उस पर कडा प्रहार किया था। मध्ययुग मे उन्ही के अनुयायी उसे पकड बैठे, इतना चिपक गए कि उसको छोडने मे हिचकिचाहट हो रही है। कुछ खोया-सा समझ रहे है। यहाँ सम्मिलित रूप से महावीर-जयन्ती न मनाने का यही प्रमुख कारण है। कई भाइयो ने कहा—'जातिवाद पर कुछ न बोला जाये।' मुझे यह प्रतिबन्ध उचित नही लगा। इसलिये मैंने उसे स्वीकार नही किया। जातिवाद मे फसकर हमने पाया कुछ नही प्रत्युत खोया अधिक है। जातिवाद का ही परिणाम है कि आज जैन-धर्म एक वर्गविशेष मे बध गया।

भगवान महावीर का जीवन-दर्शन सत्य की आराधना पर आधारित है। उन्होने बारह वर्ष तक मन्थन किया और अन्त मे उन्होने नवनीत पाया। वह यह है कि—असत्य और सत्य ऊपर भी है, नीचे भी है और बीच मे भी है। सत्य को ऊपर भी पाया जा सकता है, नीचे भी और बीच मे भी। वह गाव मे भी प्राप्त हो सकता है और अरण्य मे भी। भगवान् ने सत्य को बन्धनमुक्त रखा। फिर भी उनके अनुयायी उसे एक सीमा मे बाधना चाहते है।

साध्वीश्री कमलूजी को केन्सर की बीमारी नौ वर्षो से घेरे हुए है। दो

वर्षों से यहाँ पर स्थिरवास मे है। आचार्यश्री उनको दर्शन देने पधारे। उन्होने वन्दन कर सबसे पहले पुस्तक और साध्वियो को आचार्य-चरणो मे समर्पित किया, जो कि परम्परा के अनुसार दर्शन की प्रथम वेला मे प्रत्येक सिंघाडपति करते हैं। खाली हाथ दर्शन न करते हुए पानी पीने का एक प्याला उपहृत किया। आचार्यश्री ने उनकी सुख पृच्छा करते हुए पूछा — 'तुम्हारी परिचर्या अच्छी तरह होती है या नही ?' उन्होने उत्तर दिया— 'आपके सघ के प्रताप से ये साध्विया अम्लान भाव से मेरी सेवा करती है। जब मैं सोती हू तब ही ये सोती हैं, अन्यथा सारी-सारी रात जागरण करती हैं।'

'क्या रात को नींद आती है ?'

'नही, वेदना काफी होती है, कुछ क्षणो के लिए आँखे बन्द हो जाती है। सतियो के सहयोग से मुझे शाति मिलती है। मैं इस योग्य नही कि इतनी सतियो की मुझे सेवा मिले, फिर भी आचार्यश्री मेरी परिचर्या करा रहे है। ऐसी चाकरी इसी सघ मे हो सकती है।' ऐसा कह सघ के प्रति उन्होने कृतज्ञता प्रकट की।

आचायश्री ने उनकी सेवा का उल्लेख किया और कहा—'साधुत्व मिला क्या यह कम बात है ?' शरीर की ओर देखते हुए आचार्यश्री बोले— 'गत वर्ष मे जब हम यहाँ आए थे उससे आज दिन-रात का-सा अन्तर लगता है। शरीर की चिन्ता नही करनी चाहिए। सयमी जीवन बिताया जाय तो अच्छा है और पडित मरण भी हो जाय तो अच्छा है।' उन्होने कहा— 'शरीर की मुझे कोई चिन्ता नही है और न मरण का भय है। आपके प्रताप से सब कुछ ठीक है।'

अन्त मे मगलपाठ सुना आचार्यश्री वापस पधार गये। दोपहर मे साध्वियो के स्थान पर सस्कृत-गोष्ठी का कार्यक्रम रहा। नि शस्त्रीकरण की सफलता पर भाषण हुए। गोष्ठी मे भाग लेनेवाली सात साध्विया थी— साध्वीश्री कानकुमारीजी, मजुलाजी, जयश्रीजी, सरोजकुमारीजी, कनकश्रीजी, यशोधराजी और कनकप्रभाजी।

क्रम रखा गया। आचार्यश्री आठ बजे प्रवचन-स्थल मे पधारे। 'सह-गमन' मे आगे साधु पंक्तिबद्ध चलते थे, पीछे क्रमश भाई और बहन। स्कूल मे जाकर वह जुलूस सभा के रूप मे परिणत हो गया। हजारो की उपस्थिति के बीच महावीर जयन्ती के अवसर पर बोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—'आज महावीर जयन्ती है। जन्म-दिवस है। जन्म सब कुछ होता है और कुछ भी नही। किसी भी वस्तु की उत्पत्ति के बिना उसका क्या मूल्य है ? जन्म भविष्य जीवन का मूल है। इसलिए वह सब कुछ है और जन्म के समय सारा भविष्य अस्पष्ट रहता है इसलिए वह कितना मूल्यवान है, इसका अकन नही किया जा सकता।'

जयन्ती के सम्बन्ध से आज हम उनकी भावना और वाणी को याद कर रहे हैं। भगवान् महावीर ने जातिवाद को अतात्त्विक कहकर उस पर कडा प्रहार किया था। मध्ययुग मे उन्ही के अनुयायी उसे पकड बैठे, इतना चिपक गए कि उसको छोडने मे हिचकिचाहट हो रही है। कुछ खोया-सा समझ रहे है। यहाँ सम्मिलित रूप से महावीर-जयन्ती न मनाने का यही प्रमुख कारण है। कई भाइयो ने कहा—'जातिवाद पर कुछ न बोला जाये।' मुझे यह प्रतिबन्ध उचित नही लगा। इसलिये मैंने उसे स्वीकार नही किया। जातिवाद मे फसकर हमने पाया कुछ नही प्रत्युत खोया अधिक है। जातिवाद का ही परिणाम है कि आज जैन-धर्म एक वर्गविशेष मे बध गया।

भगवान महावीर का जीवन-दर्शन सत्य की आराधना पर आधारित है। उन्होने बारह वर्ष तक मन्थन किया और अन्त मे उन्होने नवनीत पाया। वह यह है कि—असत्य और सत्य ऊपर भी है, नीचे भी है और बीच मे भी है। सत्य को ऊपर भी पाया जा सकता है, नीचे भी और बीच मे भी। वह गाव मे भी प्राप्त हो सकता है और अरण्य मे भी। भगवान् ने सत्य को बन्धनमुक्त रखा। फिर भी उनके अनुयायी उसे एक सीमा मे बाधना चाहते है।

साध्वीश्री कमलूजी को कैन्सर की बीमारी नौ वर्षों से घेरे हुए है। दो

वर्षों से यहां पर स्थिरवास मे है। आचार्यश्री उनको दर्शन देने पधारे। उन्होने वन्दन कर सबसे पहले पुस्तक और साध्वियो को आचार्य-चरणो मे समर्पित किया, जो कि परम्परा के अनुसार दर्शन की प्रथम वेला मे प्रत्येक सिघाडपति करते है। खाली हाथ दर्शन न करते हुए पानी पीने का एक प्याला उपहृत किया। आचार्यश्री ने उनकी सुख पृच्छा करते हुए पूछा— 'तुम्हारी परिचर्या अच्छी तरह होती है या नहीं?' उन्होंने उत्तर दिया— 'आपके सघ के प्रताप से ये साध्विया अम्लान भाव से मेरी सेवा करती है। जब मैं सोती हू तब ही ये सोती हैं, अन्यथा सारी-सारी रात जागरण करती है।'

'क्या रात को नीद आती है?'

'नही, वेदना काफी होती है, कुछ क्षणो के लिए आंखे बन्द हो जाती है। सतियो के सहयोग से मुझे शाति मिलती है। मैं इस योग्य नही कि इतनी सतियो की मुझे सेवा मिले, फिर भी आचार्यश्री मेरी परिचर्या करा रहे हैं। ऐसी चाकरी इसी सघ मे हो सकती है।' ऐसा कहकर सघ के प्रति उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की।

आचार्यश्री ने उनकी सेवा का उल्लेख किया और कहा—'आनन्द मिला क्या यह कम बात है?' शरीर की ओर देखते हुए आचार्यश्री बोले— 'गत वर्ष मे जब हम यहाँ आए थे उसने आज [illegible] है। शरीर की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसमें [illegible] तो अच्छा है और परिश्रम भी [illegible] अच्छा है।' उन्होंने कहा— 'शरीर की मुझे कोई चिन्ता नहीं है और [illegible] है। [illegible] से सब कुछ ठीक है।'

वचन की चोट

१८ ४ ६२ जाजोदिया स्कूल मे आचार्यश्री ने धूम्रपान पर बोलते हुए कहा—'उन अध्यापको को बोलने व उपदेश देने का कहाँ तक अधिकार है जो बीडी-सिगरेट का स्वाद स्वय चखते हैं !' प्रवचन के बाद एक अध्यापक ने कहा—'प्रवचन से मेरा हृदय बदल गया। मैं जीवन भर के लिये धूम्रपान छोडने के लिए प्रस्तुत हू।' बुराई पर किया गया तीखा प्रहार शीघ्र चोट कर गया।

रात को 'धर्म और जीवन' विषय पर मुनिश्री नथमलजी का भाषण हुआ।

१९ ४ ६२ शौच मे वापस पधारकर आचार्यश्री ने कई भाइयो को उनके घर जाकर दर्शन दिये जो दर्शनोत्सुक होने पर भी अस्वस्थता व वृद्धत्व के कारण दर्शन नही कर पाए थे। साध्वीजी कमलूजी को भी दर्शन दिया। उन्होने आचार्यश्री की महती कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अतीत मे किसी के साथ कटु व्यवहार हुआ हो तो उसका प्रायश्चित्त मागा। आचार्यश्री ने दो मास तक मिठाई व तली हुई फीकी वस्तुओ को छोडने को कहा, उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

शाम को चार बजे सुजानगढ से प्रस्थान हुआ। सुजानगढ का विहार दक्षिण भारत की यात्रा का प्रथम चरण है, ऐसी लोग कल्पना करते हैं। क्योकि सुजानगढ थली प्रदेश की सीमा पर अवस्थित है। जसवतगढ और लाडनू मारवाड के प्रवेशद्वार हैं। इसलिए थली प्रदेश को केन्द्र मानकर यात्रा का प्रारभ सुजानगढ से करने की कल्पना करते है।

शाम को जसवतगढ पधारे। सीमा मे प्रवेश करते ही श्री जगन्नाथ तापडिया स्कूल के विद्यार्थियो ने सम्मुख आकर स्वागत किया। कर्तृत्व के बीज अपने मे छिपाये हुए ये विद्यार्थी कर्तृत्व की साकार मूर्ति आचार्यश्री तुलसी का स्वागत कर रहे थे।

जसवन्तगढ लाडनू और सुजानगढ के बीच मे बसे हुए इस गाव को

छोटा होने पर भी रेल, बिजली और सडक आदि भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

प्रार्थना के बाद आचार्यश्री ने मुनिश्री दुलहराजजी को व्याख्यान देने को कहा। साधुओ ने सोचा, आज आचार्यश्री को सहज विश्राम मिल जाएगा। पर यह उनकी केवल कल्पना थी। वस्तुत प्रहर रात्रि बीत जाने के बाद भी आचार्यश्री डेढ घटे तक डालमचदजी सेठिया को सेवा करा रहे थे। रात को ग्यारह बजे के बाद विश्राम मिला। वर्ष भर मे सभवत दो दिन भी ऐसे नही देखे कि प्रहर रात्रि के अन्दर ही आचायश्री ने शयन किया हो। १५-१६ मील का दिन मे विहार करके भी वे रात को जल्दी विश्राम नही करते। थकान की अनुभूति अभिव्यक्त नही करते। साधुओ द्वारा की गई विश्राम की प्राथना को मधुर हास्य मे ऐसा कह टाल देते है कि मेरी कुडली मे योग ही ऐसा है। आचार्यश्री शयन को ही विश्राम नही मानते। उनकी अपनी स्वतत्र परिभाषा है। वे कहते ह—'जब मैं एक काय को करते-करते थक जाता हूँ तब दूसरा प्रारभ कर देता हूँ। *कार्य का परिवर्तन ही मेरी दृष्टि मे विश्राम है।* निष्क्रिय बनकर बैठा रहना विश्राम नहीं, समय का अपव्यय है। ऐसा विश्राम मेरी प्रकृति के प्रतिकूल है।' अन्त मे श्री डालमचन्दजी सेठिया ने जीवन भर ब्रह्मचर्य-पालन का सकल्प कर तथा एक वष तक मिठाई का परित्याग कर सेवा फलवती बनाई।

२० ४ ६२ निवासस्थान से बीस-तीस कदम पर ही स्कूल था। पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार आचायश्री ने विद्यार्थियो और अध्यापको के बीच प्रवचन किया। फिर वहा से लाडनू की ओर प्रस्थान हुआ।

लाडनू के साथ तेरापन्थ के कई ऐतिहासिक तथ्य जुडे हुए है। द्वितीय आचार्य भारमलजी स्वामी के अतिरिक्त आठो आचार्यों का इस नगरी के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा है—

१ आचार्य भिक्षु ने अपने पाद-स्पर्श से इस भूमि को पावन किया था।

२ तृतीयाचार्य ऋषिराय ने कई चातुर्मास बिताए थे।
३ जयाचार्य ने साध्वियो के स्थिरवास की स्थापना की।
४ मघवागणी का दीक्षा सस्कार सम्पन्न हुआ था।
५ माणकगणी का दीक्षा सस्कार सम्पन्न हुआ था।
६ डालगणी को उनकी अनुपस्थिति मे यही आचार्यपद मिला और यही स्वर्गारोहण हुआ।
७ कालूगणी को आचार्यपद प्राप्त हुआ था।
८ वर्तमान आचार्यश्री का जन्म और दीक्षा सस्कार-स्थल भी यही है।

स्टेशन के पास मे स्थित जौहरी बहुद्देशीय उच्चतर माध्यमिक-विद्यालय मे नगरपालिका की ओर से आचार्यश्री का स्वागत हुआ। नगरपालिका के अध्यक्ष श्री दीपकर शर्मा ने कहा—'हमे गर्व है कि इस नगरी ने आप जैसे विश्व-सत और युगपुरुष को पैदा किया। यह तीर्थ-स्थल बन गया है। आप द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन आज जन-जन-व्यापी बन गया है। हम चाहते हैं कि उसका एक सस्थान यहा स्थायी रूप से रहे।'

छात्र अणुव्रत समिति की ओर से विद्यार्थी प्रतापसिंह कठौतिया ने स्वागत मे कहा—'प्रार्थना-सभा मे नित्य गृहीत अणुव्रत नियमो की हम आवृत्ति करते हैं। हमारा निवेदन है कि इस ओर प्रेरणा व मार्गदर्शन के लिए सतो को चातुर्मास की स्वीकृति दे।'

दाऊलाल (तहसीलदार), अब्दुल लतीफ, रूपचन्द हरिजन और सदासुख कोठारी (मन्त्री, जौहरी उच्च विद्यालय) ने स्वागत मे दो शब्द कहे। कवियो की ओर से मेघराज नाहटा, कन्हैयालाल फूलफगर और मोहन दीक्षित ने अपनी श्रद्धाजलि समर्पित की।

अन्त मे आचार्यश्री ने स्वागत के उत्तर मे बोलते हुए कहा—'यहा के लोगो ने सादगी से मेरा स्वागत किया है—सफेद वस्त्र पर प्रेरणाप्रद वाक्य लिखकर लटकाए हैं। मैं चाहता हू सफेद वस्त्र की तरह हृदय को

स्वच्छ बनाकर इन वाक्यो को जीवन मे लिखा जाय, उनका आचरण हो तो जीवन का नक्शा बदलते समय नही लगेगा।' प्रवचन-सभा ने जुलूस का रूप ले लिया। मार्ग मे जौहरी स्कूल के दुधमुहे विद्यार्थियो ने जयनारो से आचार्यश्री का स्वागत करते हुए वायुमडल को कम्पित कर दिया। बच्चो के निश्छल हृदय की अन्तर आवाज़ भविष्य की सफलता का सकेत कर रही थी।

राहु दरवाज़े के पास हनुमानजी का मन्दिर था। श्री गणपतराय सेठी की प्रार्थना पर आचायश्री मन्दिर मे पधारे। उन्होने कहा—'महाराज! राघव और हनुमानजी (पहले दिन राम और हनुमान की मूर्ति की प्रतिष्ठापना हुई थी) पधार गए तो आपको भी पधारना होगा।' जुलूस ओसवाल पचायत भवन में सभा के रूप मे बदल गया।

दोपहर मे एक घटे तक आचार्यश्री के सान्निध्य मे भाई और बहनो के बीच 'भिक्षु-विचार-दशन' का वाचन प्रारभ हुआ।

२१४६२ दोपहर मे 'भिक्षु-विचार-दर्शन' का वाचन फिर हुआ। रात को मुनिश्री नथमलजी का 'भावात्मक एकता' पर प्रवचन हुआ।

२३४६२ लाडनू मे तेरापन्थियो के लगभग हजार घर हैं। जयाचार्य के कर कमलो द्वारा यहा पर साध्वियो का स्थिरवास हुआ था। वह १०५ वर्षो से अखड रूप से चला आ रहा है। स्थिरवास मे २० और २५ के बीच साध्विया रहती हैं। वर्तमान मे २१ साध्विया है, जिनमे ६ अचक्षु हैं। सघ-व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक साध्वी को यहाँ की सेवा देनी होती है। आचार्यश्री प्रतिवर्ष आठ साध्वियो के एक ग्रुप का चुनाव कर यहाँ भेजते हैं।

दोपहर मे आचार्यश्री तीन बजे साध्वियो के स्थान पर पधारे। अपने बीच आचार्यश्री को पा वे वृद्ध साध्वियाँ हर्ष-विभोर हो उठी। आचार्यश्री ने उनके स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुख प्रच्छा की। फिर पूछा, 'क्या तुम्हारी परिचर्या ठीक होती है?' सभी ने एक स्वर से परिचर्या की

प्रशसा की। अन्य पूछताछ के बाद आचार्यश्री ने सेवा करनेवाली साध्वियो से कहा—'लाडनू की चाकरी जीवन मे सौभाग्य से मिलती है। इसमे उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण का प्रमाणपत्र ये वृद्ध साध्विया ही देंगी। तुम्हारा कर्तव्य है कि अम्लान वृत्ति से परिचर्या करती रहो। इससे दोनो को लाभ है। तुम्हारे कर्म निर्जरा होगी और इनको चित्त-समाधि मिलेगी। सेवा-धर्म बडा कठिन होता है। उसमे रोगी की प्रकृति पर ध्यान देकर उनके मनोनुकूल चलना पडता है इसलिये यह बहुत बडी साधना है।'

वृद्धा और अस्वस्थ साध्वियो को शिक्षा देते हुए आचार्यश्री ने कहा—'तुम्हारी अवस्था परिपक्व हो गई है। ज्यो-ज्यो अवस्था बढती है त्यो-त्यो खाद्य सयम भी बढना चाहिए, क्योकि बुढापे मे शरीर के पुर्जे शिथिल हो जाते है। साधु-जीवन सयम का जीवन है, वृद्ध अवस्था में सयम अधिक पुष्ट होना चाहिए। स्थविरो के लिये तो और अधिक खाद्य-सयम आवश्यक है क्योकि उन्हे विहार नही करना होता। उनका जीवन तो त्याग, तपस्या, स्वाध्याय की मूर्ति होनी चाहिए। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि जीवन भर के लिए साध्वियाँ एकान्तर तप करती हैं, बीच-बीच बेले-तेले आदि भी करती हैं। कई साध्वियाँ दवा मात्र भी नही लेती। साध्वी चन्द्रूजी को अचानक चलते-चलते चोट आ गई। आग्रह करने पर भी उन्होने लवग, हल्दी आदि औषधि रूप मे भी ग्रहण नही की।

२४ ४ ६२, लाडनू रात्रि मे मुनिश्री मागीलालजी 'मधुकर' के सगीत के बाद प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम रहा। मुनिश्री दुलहराजजी ने 'प्रश्न की उपयोगिता' पर प्रकाश डाला। उसके बाद भाइयो को प्रश्नो के लिये आह्वान किया। उनमे कतिपय प्रश्न ये हैं

प्रश्न—द्रौपदी के पाच पति थे, फिर भी क्या वह सती थी ?

उत्तर—भारतीय परम्परा मे सती के दो अर्थ होते हैं—ब्रह्मचर्य स्वीकार करनेवाली और विवाहित पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषो मे सयम रखनेवाली। विवाहित पति के सिवाय दूसरो मे उसका सयम

था। उस समय स्त्रियों का अभाव था, इसलिये ऐसी व्यवस्था भी थी कि चार-पाच भाई एक लडकी के साथ सम्बन्ध कर लेते थे। आज भी कही-कही इसका व्यवहार देखा जाता है। वहुपत्नियो को रखकर पुरुष शीलवान वन जाता है, फिर स्त्री वहुपति होकर सती क्यो नही हो सकती ?

प्रश्न—भिक्षु-स्वामी की दान-दया मे आपने परिवर्तन किया, उसका आपके पास आधार क्या है ?

उत्तर—मैंने भिक्षु-स्वामी की दान दया के तत्त्व मे कोई परिवतन नही किया। परिवर्तन केवल निरूपण-शैली मे किया गया है। तत्त्वो को युग की भापा मे रखा है। ऐसा परिवतन समय-समय पर आवश्यक भी होता है।

प्रश्न—विहार के समय रास्ते की सेवा मे लोग रहते है उसका आधार क्या है ?

उत्तर—सेवा का अर्थ है सत्सग। वह गाँव मे, नगर मे, जगल मे, विहार मे, जहाँ चाहे वहाँ किया जा सकता है। भगवान् महावीर के दशन के लिये कई राजा आये थे और वे साथ ही रहते थे।

प्रश्न—अणुव्रत-आन्दोलन आर्थिक समस्या का क्या समाधान देता है ?

उत्तर—अणुव्रत-आन्दोलन विशुद्ध आध्यात्मिक आन्दोलन है, प्रत्यक्ष रूप मे आर्थिक समाधान नही देता है पर अप्रत्यक्ष रूप मे वह समाधान भी देता है। आर्थिक समाधान का तात्पय है आर्थिक सुधार। आय और व्यय के साधनो को वह प्रभावित करता है। अपव्यय मे नियत्रण देता है, इस दृष्टि से वह आर्थिक समस्याओ को समाहित भी करता है।

प्रश्न—दस वप पहले जो तेरापन्थ था आज वह अपनी धुरी से हटकर वदल गया है, इसमे आप कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर—परिवर्तन वस्तु-मात्र का धर्म है। परिवर्तन के विना कोई भी सत्ता टिक नही सकती। इस दृष्टि से यदि तेरापन्थ को वदला हुआ

माना जाय तो मुझे मान्य है। स्थूल दृष्टि मे तेरापन्थ मे कोई परिवर्तन नही हुआ है। आज भी वह उसी सिद्धान्तो पर खडा है, जहाँ कि दस वर्ष या दो सौ वर्ष पहले खडा था।

प्रश्न—विरोधी तत्त्व इतने उभर रहे है, उनके मुकावले मे आप अहिंसात्मक तरीका उपयोग मे लाने को कहते है, वह क्या है ?

उत्तर—विरोधी तत्त्वो का आक्षेप यदि निम्नस्तरीय हो तो हमे उस ओर ध्यान नही देना चाहिए। उच्चस्तरीय विरोधो—तर्को का सयत भाषा मे समाधान करना चाहिए। दूसरी वात, गुमराह करनेवाले को गुमराह होने से वचाया जाय।

प्रश्न—नई पीढी के विषय मे आप क्या सोचते है ?

उत्तर—यह सत्य है कि नई पीढी मे अध्यात्म और धर्म के प्रति रुचि कम है, इस दृष्टि से उनका भविष्य चिन्ता-चिह्न वना हुआ है। हमे सत्साहित्य का सर्जन कर उसके माध्यम से धार्मिक तत्त्व पढाना होगा। साहित्य ही जीवन की खुराक है, इससे सस्कारो मे परिवर्तन आता है, इस ओर उनकी जो उदासीनता है उसे मिटाने के लिए साहित्य पढने की प्रेरणा समय-समय पर देना है। साहित्य का निर्माण कर हमने एक आवश्यकता को पूर्ण कर दिया है। उसको पढने की प्रेरणा चालू है।

७ ५ ४ ६२ शाम को आचार्यप्रवर लाडनू से विहार कर शहर के वाहर श्री गणपतरायजी सरावगी के मकान मे विराजे। स्थानीय नगर-पालिका के अठारह सदस्यो ने, जिनमे दीपकरजी शर्मा, अब्दुल लतीफ, अजीमखा, जमाल ठेकेदार, रूपचद हरिजन आदि सभी वर्गो के सदस्य थे—सम्पर्क किया। पौन घटे तक अणुव्रतो के सम्बन्ध मे चर्चा चली। उन्होने 'नैतिक विकास योजना' प्रारम्भ करने की वात कही। आचार्यश्री ने कहा—'आज के जनमानस पर उन्ही व्यक्तियो के कहने का प्रभाव पडता है जो स्वय उसका आचरण करता हो। मैं कहना चाहूगा कि कार्यकर्ताओ को पहले अणुव्रती वनना चाहिए जिससे कार्य सुगमता से हो सके।' सभी सदस्यो ने यह अनुभव करते हुए 'प्रवेशक अणुव्रती' के नियमो को ग्रहण

किया। आचार्यश्री ने नैतिक विकास-योजना के अन्तर्गत तीन बातो पर बल दिया—(१) नशाबन्दी, (२) मिलावट-विरोधी अभियान, (३) भावात्मक एकता। सभी सदस्यो ने विश्वास दिलाया कि हम लोग अपने-अपने क्षेत्र मे इस योजना को सफल करने का प्रयास करेंगे।

श्री गणपतरायजी सरावगी यहाँ के धनी-मानी व्यक्तियो मे से एक हैं। वे श्रद्धालु हैं, धर्म पर उनकी अटूट श्रद्धा है। आचार्यश्री से वे प्रभावित हैं। रात को वार्तालाप के प्रसग मे उन्होने कहा—'मैंने समझ लिया पैसा पाप का मूल है, अब मैं इसे जल्दी से जल्दी खत्म करना चाहता हूँ। धन पर मेरी कोई लालसा नही है। मैं अपनी व्यक्तिगत धन-राशि का भी सार्वजनिक कार्यों मे उपयोग कर रहा हू। आपके आगमन के उपलक्ष मे 'बाल-भारती' नामक एक सस्था खोलना चाहता हूँ, फिर वह कार्य बढता जाएगा। तीन-चार वर्ष पहले एक बहन का सथारा मैंने देखा था। उस दिन से मेरी तीव्र भावना हो रही है कि मैं भी उसी प्रकार जीवन को पूर्ण कर दूँ। आपका आशीर्वाद रहा तो वह दिन भी मुझे देखने को मिलेगा।'

प्राकृतिक और सामाजिक

उस दिन साडवा मे देखा था—बकरी का बच्चा और कुत्ते का बच्चा एक साथ मुंह मे मुँह मिलाकर खेल रहे थे। कभी वह नीचे पडता तो कभी वह। परस्पर इतना स्नेह टपक रहा था, जैसे पुत्र और माता मे होता है।

उस दिन लाडनू मे देखा—कुत्ता भेड के यूथ में से एक बच्चे को मुंह मे पकडकर भाग रहा था। गवाल उसके पीछे दौडा। कुत्ते के मुंह से छुडाया। तब तक भेड का बच्चा जीवित अवश्य था, पर अन्तिम सासें गिन रहा था।

दो घटनाए थी। पात्र समान होने पर भी परस्पर-विरोधी थे। आँखो का काम था देखना, उसने देखकर छोड दिया, मन उससे आगे

वढा। फलित यही आया कि पहली घटना प्राकृतिक थी, दूसरी सामाजिक। पहली घटना मे दोनो वच्चे थे, निश्छल थे, ससार से अपरिचित थे, व्यवहार की कुटिलता से दूर थे।

दूसरी घटना मे एक सरल स्वभावी वच्चा था, पर दूसरा कुटिल था। जन्म से कुत्ता कुटिल नही था, पर समाज ने उसे कुटिल वना दिया था। समाज के व्यवहार से ऊवकर वह कुटिल वन गया था। यही दशा मानव समाज की है। व्यक्ति समाज के थपेडो से सरलता को छोड मायावी वनता जा रहा है।

२६ ४ ६२, वाकलिया मध्याह्न मे लाडनू से आए हुए भाइयो को, विशेषकर युवको को प्रश्न के लिए आह्वान किया गया। पर वे जानकारी के अभाव मे सकुचा रहे थे। आचार्यश्री ने जैन धर्म, श्वेताम्वर या दिगम्वर, मूर्तिपूजक, वाईस सम्प्रदाय और तेरापन्थ का इतिहास वताया। जैन साहित्य पढने के लिए प्रेरणा दी। एक साल की अवधि मे तीन भाइयो ने ५०० पृष्ठ और छह भाइयो ने १००० पृष्ठ और एक भाई ने १५०० पृष्ठ पढने की प्रतिज्ञा ली। पुस्तको के चुनाव मे—जैन परम्परा का इतिहास, भिक्षु-विचार-दर्शन, आचार्य सत भीखणजी, आचार्यश्री तुलसी, प्रश्न प्रकाश, जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व आदि का उल्लेख किया गया।

एक भाई ने पूछा—जैनधर्म जाति विशेष मे क्यो वधा हुआ है ?

आचार्यश्री ने कहा—भगवान् महावीर के समय कुभार, कृपिकार आदि प्रमुख श्रावक थे। समय की चोट से, राजा लोग जैन न रहने से, सकीर्ण मनोभाव से, अन्य जातियो मे भिक्षा व, व्यक्ति-सम्पर्क न रहने से वह धीरे-धीरे सकीर्ण वनता गया। श्रावको ने भी अपने सम्पर्क मे आने वाली अन्य जातियो को धार्मिक तत्त्व नही वताया। इस प्रकार जैन धर्म कुछ एक जातियो मे वध गया है।

प्रश्न—अपने व्याख्यान मे आप नेताओ की वात को उद्धृत क्यो करते हैं ? आपको तो आगमवाणी का ही उद्धरण देना चाहिए।

उत्तर—यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि व्याख्याता को परिपद् देखना चाहिए। कुशल व्याख्याता के लिये आवश्यक है कि वह सर्व धर्म का ज्ञाता हो। सव धर्मों मे भिन्नता होती है तो समान तत्त्व भी वहुत है। मुसलमानो के वीच कुरान और वैज्ञानिको के वीच गीता का उद्धरण श्रोताओ मे आकर्षण पैदा करता है। आज का जन-मानस राजनीति-प्रधान हो गया है। इस दृष्टि से उसका उद्धरण कोई खटकने जैसा नही है। राजनीतिज्ञ होने से क्या पृथक् व्यक्तित्व नही है ? उनको एक दृष्टि मे ही क्यो देखा जाय, जीवन का दूसरा पक्ष भी देखना चाहिए।

२७ ४ ६२, सिंघाणा यह १२१ घरो की वस्ती का एक गाँव है। अधिकाश घर जाटों के हैं। आचार्यश्री से हम लोग डेढ घटा पहले आ गई थी, क्योकि वे नौ मील चलकर आए थे और हम पाँच मील। गाँव मे ठहरने के लिये स्थान मागा पर लोग दे नही रहे थे। पौन घटे तक घूमने पर आवश्यकता से कम स्थान मिला, फिर भी हमे आनन्द था। यही तो यात्रा का स्वाद है। एक ओर तो श्रावक शहरो मे हवेली और प्रासादो के लिये मनुहार करते हैं वहाँ दूसरी ओर टाट-फूस से लदी छोटी-छोटी झोंपडियाँ भी मागने पर नही मिल रही थीं, इसका कोई दु ख नही था पर मैं जानना चाहती थी कि आखिर यह रहस्य क्या है ? इतना बडा गाँव, घर मे जगह। फिर भी जगह नही देते। इनमे कौन-सी मनोवृत्ति काम कर रही है ? एक भाई से पूछा, कोई विशेप उत्तर नही मिला। यात्रियो के द्वारा जानने का प्रयास किया गया, फिर भी सतोपप्रद उत्तर नही मिला। श्री मालचन्द जी भन्साली ने वताया—'साधुओ को ये लोग अपना घर इसी-लिये नही देते है कि फिर वह गृहस्थ का घर न रहकर साधुओ का स्थान कहलाने लग जाता है। उनका कहना है कि साधुओ को मठ-मन्दिर मे ही रहना चाहिए, उनको घर से क्या काम ? तुम गृहस्थ ठहर सकते हो पर साधुओ को घर मे नही ठहरायेंगे।' ऐसी भावना गाँवो मे ही नही, शहरो में पलनेवाले भाइयो मे भी देखी। न जाने इसके पीछे कौन-सा दार्शनिक तत्त्व है।

२८ ४ ६२, डीडवाना यहाँ स्वागत का कार्यक्रम आनन्द भवन मे सम्पन्न हुआ। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे धर्म को आम की उपमा देते हुए कहा—'अन्य फलो की अपेक्षा आम विलम्ब से फलवान वनता है। किवदन्ति है—'आम वारह वर्षो मे फलता है। धम-साधना के फल के विपय मे भी लोगो का विश्वास है कि वह परजन्म के लिये करना चाहिए। आजकल आम भी कलमी होते है और वे शीघ्र फल देते है। मेरी दृष्टि मे धम का फल कलमी आम से भी जल्दी मिलता है। धर्म का वास्तविक फल है आत्म-शुद्धि। वह तत्काल मिलता है।'

दोपहर मे चर्चा-गोष्ठी का कार्यक्रम रहा, जिसमे 'अहिंसा' और 'ईश्वर कर्त्तृत्ववाद' प्रमुख विपय थे। [प्रश्नकर्ताओ मे एडवोकेट श्री श्रीनिवास, एडवोकेट श्री जयसिंह मणोत तथा अध्यापक आदि प्रमुख थे।

२९ ४ ६२ आज प्रवचन मे वौद्धिक लोगो ने विशेपकर भाग लिया। कॉलेज के पाँच-सात लेक्चरार, जवाहरसिंह राव (एस० डी०), रामदयाल, भवरसिंह, तुलसीराम, हरिशकर, हाजी अब्दुलगनी, श्रीनिवास, मिलापचन्द आदि सभी एडवोकेट, सरपच प्रधान चतराराम मुख्य रूप से थे। व्यापारी वर्ग भी अधिकाश सख्या मे उपस्थित था।

दोपहर मे कॉलिज के प्रोफेसर वार्तालाप के लिये आए। मुनिश्री नथमलजी के पास साहित्य निर्माण, तेरापन्थ विकास आदि विपयो पर वार्तालाप हुआ। उसके वाद आचार्यश्री के पास आये। साहित्य की प्रशसा करते हुए वोले—'आपके सघ ने जो साहित्य निर्माण किया है वह तत्त्व तलस्पर्शी है। चिर विद्वज्जन भोग्य है।' आचार्यश्री ने कहा—'वास्तव मे साहित्य वही है जो जीवन मे सस्कार डाल सके। आजकल साहित्य मे वाजारी साहित्य की प्रचुरता हो रही है। साहित्यकार, साहित्यकार न रहकर साहित्यकार-व्यापारी वन रहे है। वैसा साहित्य अधिक निर्माण करते हैं जिससे स्वार्थ सध सके। रुचि से ठोस साहित्य पढनेवाले कम है। आवश्यकता है उनमे तत्त्व के प्रति रुचि पैदा की जाय।'

वालिया मुसलमानो की वस्ती है। स्टेशन मास्टर और कर्मचारी

आदि कई घर हिन्दुओं के हैं। यह नमक की झील के कारण प्रसिद्ध है। यहाँ पर झील से ऊपर नमक निकलता है और नीचे सोडियम। झील पर अधिकार सरकार का है। निकट भविष्य मे ही यहाँ पर सोडियम का कारखाना खुलने वाला है। अभी यह यहाँ से निर्यात होता है जिसमे भी छह लाख की आय है। कारखाने से आय मे वृद्धि की सभावना है।

आचार्यश्री शाम को यहाँ पधारे। सूर्यास्त के वाद प्रतिक्रमण किया, फिर 'महावीर-प्रार्थना'। व्याख्यान मुनिश्री जयचदलालजी ने किया। पन्द्रह मुसलमान भाइयों ने शराव का त्याग किया। आचार्यश्री ने स्टेशन मास्टर तथा अन्य लोगो से बातचीत की।

३०-४ ६२ खुनखुना स्टेशन के पास धर्मशाला मे आचार्यश्री के ठहरने का स्थान निश्चित किया गया था। आचार्यश्री पधारे। भाइयो से स्थान खचाखच भर गया। स्थान की सकीर्णता के कारण आगम के कार्य मे बाधा पहुंच रही थी, क्योकि उसके लिए एकान्त स्थान की अपेक्षा होती है। गाववालो ने वताया, 'स्कूल मे स्थान की अधिकता है। वर्तमान मे परीक्षा चल रही है। एक घटे के बाद परीक्षा समाप्त हो जाएगी, फिर और अधिक कमरे मिल जाएगे। आचार्यश्री ने मुनिश्री सुमेरमलजी को स्कूल देखने के लिए भेजा। गाँव से दूर होने के कारण वह स्थान नही जचा। आचार्यश्री आगम कार्य को प्रधानता देते हुए स्वय पार्श्ववर्ती स्थानो मे चले गए। हवा की दृष्टि से पूर्व स्थान की अपेक्षा दूसरा स्थान सुविधाजनक नही था। फिर भी आचार्यश्री ने अपनी शारीरिक सुविधा को आगम कार्य के सामने गौण कर दिया। आपने कहा—'आगम काय एक दिन यदि बद रहता है तो वह मुझे बहुत अखरता है।' आचार्यश्री की सतत जागरूकता ही साधुओ को सतत सजग बनाए हुए है।

दोपहर मे अचानक आचार्यश्री के पैर मे दद हो गया। स्थानीय वैद्य और भाइयो ने विश्राम की सलाह दी। पर गुरुदेव ने कहा—'मैंने पीरवा स्टेशन जाना कह दिया है। इसलिए वही पहुचना है।' शरीर की पीडा भाव-सत्य (पूर्व कथित या चिंतित के अनुसार करना) के सामने टिक

न सकी। वहाँ से विहार हो गया।

विहार से पूर्व आचार्यश्री ने व्याख्यान दिया। तीस भाइयों ने मद्य-पान का परित्याग किया।

३०४६२ 'पीरवा' स्टेशन पर इने-गिने घर थे, इसलिए स्थान का अभाव था। आचार्यश्री रात को प्लेटफार्म पर ही सोये। जो प्लेटफार्म रेल-यात्रियो से भरा रहता था, आज वह मोक्ष-यात्रियों से भरा था। धवल वस्त्रो की एक पोशाक मे ये यात्री जीवन को धवल बना रहे थे।

१५६२, छोटी खाटू इस गाव के आसपास के चारो ओर से सैकडो की सख्या मे भाई-बहन दर्शन करने के लिए आए थे। बोरावड के भाइयो ने अपने गाव मे पधारने के लिए विनम्र प्रार्थना की, पर स्वीकृत न हो सकी। क्योकि उधर जाने से समय काफी लगने की सम्भावना थी, फिर ६ मई को पुष्कर पहुचना निश्चित हो चुका था।

यहा मुनिश्री गणेशमलजी स्थिरवास हैं इसलिए आचायश्री ने १६ मील का चक्कर लेकर भी उनके दर्शन की अभिलापा पूर्ण की।

स्वागत मे भाई-बहनो ने गीतिकाएँ गायीं। स्वागत के समय तथा रात्रि मे भी आचार्य प्रवर का प्रवचन हुआ। जैनेतर लोगो ने भी व्याख्यान का लाभ लिया।

२५६२, जाखेडा · छोटी खाटू से जाखेडा-पदापण के समय बीच मे 'राजपुरा' आया। वहाँ के जाट व चारण भाइयो ने आचार्यश्री को घेर लिया और कहने लगे—'कुछ तो हमे भी ज्ञान दीजिये।' आचार्य श्री ने प्रवचन सुनाया। पचास के लगभग भाइयो ने मद्यपान न करने का त्याग लिया। उपस्थिति साठ के लगभग थी।

जहाँ एक ओर आचार्यश्री हजारो की सख्या मे भावात्मक एकता की भावना देते हैं वहाँ ५०-६० भाइयो के बीच मे भी आप उसको नहीं भूलते हैं। यह उनकी दृढ-निष्ठा का सजीव चित्र था। आगे पहुँचने मे देर हो रही थी, इसलिए गोचरी न पधारकर केवल उपदेश दे वहाँ से आगे

के लिए प्रस्थान कर दिया।

व्यापकता का नशा

मुनिश्री मागीलालजी 'मधुकर' चार-पाँच स्व-हस्तलिखित पत्र लाए, जिनमे पाच सौ राजस्थानी दोहे थे। आचार्यश्री ने ध्यान से देखा और कहा—'कबीर आदि व्यक्ति विशेप का स्वतत्र सग्रह नही है, यह तो मिश्रित है।' वात आगे चली। सत सतियों पर आयी। आपने कहा—कई सत कबीर आदि के दोहे व भजन ही अधिकतर काम मे लेते हैं, यह उपयुक्त नही है। क्योकि इससे उनके सस्कार ही तद्रूप वन जाते है। व्यापकता का यह अर्थ भी गलत है कि दूसरो के ही दोहो को काम मे ले, यह तो आग्रह है। उन दोहो को भी काम मे लेना चाहिए तथा अपने जैन सन्तो के दोहो को भी काम मे लेना चाहिए। मुझे लगता है व्यापकता भी एक नशा है। अधिक व्यापकता में बहकर मनुष्य अपना सत्व खो देता है, फिर उसका आधार नही रहता। मेरी दृष्टि मे व्यापकता का अर्थ है—जिसका सब उपयोग कर सकें। दो तटो के बीच वहती हुई नदी इसलिए व्यापक है कि उसका जल सबके काम मे आता है। वृक्ष की छाह इसलिए व्यापक है कि प्रत्येक व्यक्ति उसका उपयोग कर सकता है। पर नदी और वृक्ष की व्यापकता का यह अर्थ नही कि नदी सम्पूर्ण धरती पर और वृक्ष सम्पूर्ण आकाश मे फैल जाए।'

दर्शन के विविध रूप

गाव का एक भाई दर्शन करने आया। देर से आने के कारण वह व्याख्यान नही सुन सका। उसके मन मे पश्चाताप रहा और कहा—'महाराज ! ८४ लाख योनि मे घूमते-घूमते जव मानव भव के दरवाज़े के पास आया तो सिर मे खाज आने लगी। खुजलाते-खुजलाते दरवाजा छुट गया। यही आज मेरे साथ हुआ। वहुत प्रतीक्षा के बाद आप आए पर मैं काम मे फँसा रहा। सोचा, रात तक दर्शन और ज्ञान का लाभ

लूगा। पर आप तो अभी जा रहे है। मेरे तो भाग्य का पन्ना ही उलट गया।'

दूसरे भाई ने कहा—'समाचारपत्रो मे आपकी फोटो आयी थी, उसको मैंने अपने पास मे रख ली, हमेशा उसका दर्शन किया करता हूँ।'

कई भाइयो ने कहा—'महाराज! आपके दर्शनो की वडी इच्छा रहती है। दो वर्ष पूर्व जव आप यहाँ से पधारे थे तो आपने माझी गॉव मे प्रवास किया था। हम लोग मिलकर वहाँ आपके दर्शन के लिए गए थे।'

यद्यपि आचार्यश्री पहली वार ही यहा आए है और कई लोगो को साक्षात् दर्शन करने का मौका आज ही मिला है, फिर भी उनके मन मे श्रद्धा और भक्ति कई वर्षो से फल रही है।

राजपुरा से चडीदानजी वारठ आए। आचार्यश्री के दर्शन करते ही उन्होने एक दोहा कहा—

"महाऋपि तप मूर्ति, आप रूप आनन्द।
जैन सघ जाग्रत करण नमोस्तु वदनानद ॥"

आधा घटे तक वातचीत हुई। पूर्व-स्मृति कराते हुए वारठजी ने कहा—'१९९० चैत्र वदी ११ को अप्टमाचार्यश्री कालूगणी यहाँ पधारे थे। मैंने एक दोहा वनाकर उनकी सेवा मे सुनाया था—

काम क्रोध और लोभ मद, तजियो तुरन्त तमाम।
अवश्य विराजो एक दिन, कृपया कालूराम॥

मेरी प्रार्थना को उन्होने स्वीकार किया और राजपुरा मे एक दिन विराजे। २८ वर्ष पूर्व की स्मृति आज ताजा हो गई।' वारठजी ने कई अलकारिक छन्द भी सुनाए।

दोपहर को रुक-रुककर आनेवाले वादल तप्त धूलिकणो को शात कर रहे थे। उन्हे देख गुरुदेव ने कहा—'वैशाख का महीना, मरुस्थल की पद-यात्रा और वह भी दुपहरी मे। यदि प्रकृति का सहयोग न भी हो तो भी हम यात्रा तो करेंगे ही। वह सहयोग करती है तो हमे उसका उपयोग कर लेना चाहिए।' पास मे खडे मुनिश्री श्रीचदजी ने कहा—'दृढ सकल्प

और उत्साही व्यक्तियो की प्रकृति चेरी होती है। प्रकृति अनुकूल न भी हो तो भी वे उसे अनुकूलता मे परिणत कर लेते है। अपने उत्साह को क्षीण होने नही देते। यही महापुरुषो का लक्षण है।'

३ ५ ६२, डेगाना स्टेशन चादारुण मे श्रद्धालुओ के पन्द्रह घर है। स्टेशन पर कई व्यक्ति अपने गाँव के लिए प्रार्थना करने आए। एक मील का चक्कर लेकर आचार्यश्री वहाँ पर पधारे। प्रवचन किया व गोचरी भी की।

आचार्यश्री ने पहला प्रवचन बाजार मे किया। अन्त मे भावात्मक एकता के नियमो की व्याख्या की। उपस्थित लोगो ने नियमो का उच्चारण कर उनके भाव को ग्रहण किया। प्रवचन कर आचार्य प्रवर स्कूल मे पधारे जोकि ठहरने का निश्चित स्थान था। प्रधानाध्यापक श्री रतनलाल जी अरोडा ने अध्यापको-सहित आचार्यश्री से बातचीत की। कई अध्यापक दिल्ली, जयपुर व उत्तरप्रदेश मे आचार्यश्री के प्रवचनो का लाभ ले चुके थे, इसलिए परिचित भी थे। साध्वियो की हस्तकला को देखकर वे आश्चर्यान्वित हो गए। आचार्यश्री ने तेरापथ के साहित्य का परिचय दिया तथा आगम के अन्वेषणात्मक कार्य की ओर उनका ध्यान खीचा।

४ ५ ६२, डेगाना सूर्योदय का समय था। गाँव से विहार हो चला था। साठ वर्ष की एक वृद्धा लम्बे साँस भरती हुई आगे बढी और कहा—'बाबा, थोडी देर पग थामो।' उसने अपनी कटोरी के पानी को आगे बढाया। पैर के अगूठे को प्रक्षालन के लिए झुकने लगी। एकाएक एक भाई कह उठा—'बहन! दूर रहो, दूर रहो!' आचार्यश्री ने भाइयो को रोकते हुए कहा—'सुनो, यह क्या कहती है?' सब का ध्यान बहन की ओर लग गया। वह बोली—'महाराज! मेरे पास और कुछ नही है, गरीब हूँ। मेरी इतनी शक्ति कहाँ कि आपको कुछ भेंट दे सकू। मैं देना नहीं, लेकिन आपका चरणामृत (पैर धोल कर पानी) लेना चाहती हू। मेरे पति छ महीने से बीमार हैं, उनको पिलाऊगी।' आचार्यश्री का

चिन्तन दो मिनट के लिए परस्पर-विरोधी तत्त्वो के बीच था। एक ओर अधरुढि थी और दूसरी ओर श्रद्धा मुखरित हो रही थी। बहन से कहा—'हम कच्चे जल का स्पर्श नही करते।' बहन ने कटोरी नीचे रख दी। फिर आचार्यश्री ने रुढि पर प्रहार करते हुए कहा—'यह कितना बडा अज्ञान है कि पैर को खोलकर बीमार को पिलाए। ऐसा अधविश्वास अनावश्यक है। पैर को खोलना मानवता से परे की वस्तु है।' वह समझ गई, आचार्यश्री ने हाथ से उसकी वदना स्वीकार की। उसने उसे ही आशीर्वाद मान लिया। जाते हुए कहा—'आपका आशीर्वाद ही उन्हे ठीक कर देगा।' औषधि से न मिटनेवाला असाध्य रोग श्रद्धा की भावना से भागता हुआ-सा दिखाई देता है।

५ ५ ६२, सूर्यास यह छोटा-सा गाँव है। पचास घरो की बस्ती है जिसमे २५ घर हिन्दुओ और २५ घर मुसलमानो के हैं। हिन्दुओ मे जाटो के घर अधिक हैं। ग्रामीण भाई इतने सरलमना है कि युग की दूपित हवा उन्हे छू तक नही पायी है। दूध, दही, घी विशुद्ध मिलता है। मिलावट तो दूर, दूध को वेचते तक नही हैं। आचार्यश्री के आगमन से उनका मन हर्प से भर गया। सारे गाँव को साफ किया। गाँव मे जितनी जगह बैठने-उठने की थी सब यात्रियो को देकर स्वय वृक्षो की छाया मे बैठकर विश्राम किया। पानी और लकडी देकर उनका सत्कार किया। यात्रियो को दूध की आवश्यकता हुई। बिना मूल्य उन्होने दूध दिया। जिसके घर मे जितना दूध था खुले हाथो से यात्रियो को बाटा। थोडे से घरो मे एक मन से ऊपर दूध यात्रियो को मिला। आज के युग मे दूध तो कहाँ पानी मिश्रित किया हुआ दूध भी मुश्किल से मिलता है। अशिक्षित कहलाने वाले ग्रामीण भाइयो ने अपने गाँव मे आए हुए यात्रियो का अच्छा सत्कार किया। अतिथि-सत्कार के सस्कार आज भी इनके मानस मे धुधले नही हुए हैं। साधु-सतो को परमेश्वर के तुल्य मानते हैं। इन्हे देखने पर लगता है—साम्यवाद यहाँ आकर अनुत्तीर्ण हो जाएगा।

आचार्यश्री जब गाँव मे पधारे तो ये ग्रामीण भाई उनको चारो ओर

से घेर बैठ गये। आचार्यप्रवर की यह विशेषता है कि आप जहाँ भी जाते हैं वहाँ उनमे घुलकर एकमेक हो जाते है। दार्शनिको के बीच दर्शन के गूढ तत्त्वो की गुत्थी को खोलते हैं, तो जनसाधारण ग्रामीणो के बीच उनकी भाषा बोलकर उनके बन जाते हैं और ग्रामीण लोग भी आचार्यश्री को अपना मानते हैं। आत्मीयता जुड जाती है, हृदय खुल जाता है। इसीलिए वे जन-जन के प्रिय बने हुए है। पौन घटे तक उनको जैन साधुओ का आचार बताया। दोपहर मे नीम की छाया के नीचे उनके बीच मे बैठकर व्याख्यान सुनाया। कई भाइयो ने मद्यपान आदि के त्याग भी लिये। पाच बजे के बाद वहाँ से भैंरूदा के लिए प्रस्थान हुआ।

७ ५ ६२, थावला स्थान और समय की अनुकूलता देख आचार्यश्री ने एक गोष्ठी की कल्पना की। तत्कालोत्थित कल्पना ने व्यवहार मे उतरकर गोष्ठी का रूप ले लिया। सन्त-सतियो व अध्यात्म-प्रिय भाई-बहनो के बीच आचार्य ने कहा—'प्राचीन समय मे योग-साधना की विस्तृत विधि रही है। पर आज वह विस्मृत-सी हो गई। उसे पुनर्जीवित करना है। इस गोष्ठी और चिन्तन का उद्देश्य भी यही है। अध्यात्म साधना जीवन का आधार है। अध्यात्म के बिना जीवन मे नीरसता छा जाती है और वह अध-कच्ची अवस्था मे ही पुष्प की तरह झड जाता है। अध्यात्म के बिना साधक की सभ्यता, कला व ज्ञान आदि फलवान नही बनते, प्रत्युत अलाभ के निमित्त बन जाते हैं। तीर्थङ्कर व स्वय बुद्ध अपना मार्ग स्वय निर्माण करते है। हम उनकी तुलना करना नही चाहते। सिद्ध पुरुष के अभाव मे योग-साधना पद्धति को अनुभवो के आधार पर स्वय हस्तगत करना होगा। 'मनोनुशासनम्' पुस्तक इसी पथ की ओर एक कदम है। मन का अनुशासन करने का सिद्धान्त नही, अभ्यास करने का माग है। मैं समझता हू अध्यात्म-प्रेमी इस माग पर चलकर जीवन को शान्त एव सरस बनाएँगे।'

इसी गोष्ठी मे बोलते हुए मुनिश्री नथमलजी ने कहा—'मन को अनुशासित करने मे जो यथार्थ आनन्द प्राप्त होता है वह मन को खुला

छोडने मे नही मिलता। ससार मे ऐसा कोई भी व्यक्ति न है, न था और न होगा जो समस्या, उलझन या परिस्थिति से न घिरा हो। परिस्थिति का दास वननेवाला पराजित हो जाता है और परिस्थिति को परास्त करनेवाला विजयी वन जाता है। परिस्थिति से परवश व्यक्ति के छोटी घटना भी विशाल रूप ले लेती है और कभी-कभी वह आत्महत्या तक भी पहुँच जाता है। जो परिस्थिति मे सन्तुलन नही खोता है उसके लिए वडी समस्या भी छोटी वन जाती है।

'मन पर नियन्त्रण करनेवाला हजार व्यक्तियो के वीच मे रहकर भी अकेला रह सकता है। मन पर नियन्त्रण न करनेवाला अकेला रहकर भी द्वन्द्व से मुक्त नही हो पाता।'

योग की परिभाषा करते हुए कहा—

'तदर्थ मनावाक्कायाऽऽनापानेन्द्रियाहाराणा निरोधो योग'।

'शोधनश्च'

'पूर्व सशोधन ततो निरोध'

इनमे आहारशुद्धि सवका आधार है। दिन भर आसन, प्राणायाम, ध्यान करनेवाला भी आहारशुद्धि के विना योग मे सफलता नही पा सकता। जिसने भावक्रिया समझ ली, मानना चाहिए उसने योग को समझ लिया। क्रिया करते समय उसी विषय का चिन्तन ही भावक्रिया का योग है। क्रिया करते समय सकल्प को मन के साथ जोडने से कार्य मे अधिक सफलता मिलती है। सकल्प की शक्ति अप्रत्याशित होती है। भोजन करते समय मन को स्वस्थ रखना चाहिए। मानसिक खिन्नता होने से अमृत भी जहर वन जाता है, इसके वाद सन्तो ने कई प्रश्न पूछे।

प्रश्न—मनोनुशासन मे अनुशासन का तात्पर्य क्या है?

उत्तर—मन वन्दर के समान चपल है। वह कूदता-फाँदता रहता है। उसको शिक्षित करना ही अनुशासन है। मदारी वन्दर को शिक्षित कर जैसा चाहे वैसा नाच नचा लेता है। वैसे ही मन को भी शिक्षित कर अपना दास वना लें, फिर जैसा आदेश देंगे मन वही कार्य करेगा।

शिक्षित न करने पर मन आदेश का पालन नही करेगा।

प्रश्न—क्या सकल्पशुद्धि आहारशुद्धि के अभाव मे रह सकती है ?

उत्तर—सकल्प का वल वढता है तो आहार-शुद्धि मे भी सफलता मिल सकती है। मीरा का जहर का प्याला इसका प्रमाण है।

प्रश्न—सकल्प के वल पर यदि रोग पर विजय पा सकते है तव औपधि का सेवन क्या व्यर्थ नही है ?

उत्तर—सकल्प से रोग पर विजय मिल सकती है यदि श्रद्धा का वल साथ मे हो तो। सकल्प स्वय एक शाब्दिक चिकित्सा पद्धति है। औपधि-सेवन से ऊबनेवाले सकल्प-चिकित्सा मे शाति का अनुभव करते है। सकल्प मे दृढ निष्ठा और आहारशुद्धि हो तो औषधि-सेवन के बिना भी मनुष्य स्वस्थता का अनुभव करता है। सकल्प का चमत्कार औपधि-सेवन से आगे है।

दोपहर मे यात्री वहनो का परिचय-सम्मेलन हुआ जिसमे वहनो ने अपना-अपना परिचय दिया। रात को सस्मरण गोष्ठी चली। आचार्यश्री ने अतीत के आचार्यों के तथा अपने सस्मरण सुनाए। सस्मरणो मे इतिहास तो वोलता ही था पर उसका प्रतिविम्व वर्तमान पर भी पड रहा था। एक-एक घटना से प्रकाश मिलता था कि सामूहिक जीवन मे किस प्रकार व्यवहार को मृदु वनाए रखना चाहिए। सुख की घडियाँ वीतते देर नही लगती। समय सरकता-सरकता एक प्रहर रात से एक घटा आगे चला गया। इच्छा को दमन कर कार्यक्रम को वही स्थगित करना पडा।

पुष्कर टाउनहॉल मे पुष्कर की जनता की ओर से स्वागत का कायक्रम सम्पन्न हुआ। प्रसिद्ध लेखक श्री जनार्दन शर्मा ने नगरपालिका की ओर से स्वागत किया। फिर मरुधर-भूषण पडित श्रीधर ने स्वागत मे वोलते हुए कहा—'पुष्पो का हार आप पहनते नहीं, क्योकि आपकी मर्यादा है। सस्कृत मे पुष्प का पर्यायवाची 'सुमन' शव्द है इसलिए आज हम पुष्कर के सुमनो—विशुद्धमनो को आपके चरणो मे समर्पित करते है।' मुन्सिफ उमरावचन्द मेहता ने स्वागत मे कहा—'स्थावर तीर्थ

(पुष्कर) और जगम तीर्थ (आचार्यश्री तुलसी) दोनो का सगम हमारे लिये सौभाग्य एव प्रेरणा का विषय है।'

प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने कहा—'पुष्कर वडा तीर्थस्थल है और आज अक्षय तृतीया पर्व का दिन भी वडा है। इसका नाम ही शाश्वत का परिचायक है। दोनो का सयोग वहुत कठिनता से मिला है। जैनो के लिए अक्षय तृतीया का दिन इसलिए महत्त्व का है कि आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभनाथ को वारह मास की तपस्या के वाद ईक्षुरस का पारण मिला था। कितना अच्छा हो आज के दिन भारतवर्ष का भी पारणा हो जाए। वारह वर्षों से अनैतिकता को मिटाने के लिए भारत तप तप रहा है, यदि आज भी उसका पारणा होकर देश में चरित्रहीनता मिटती है तो पर्व का कई गुणा महत्त्व और वढ जाएगा। हमरी पैदल यात्रा का उद्देश्य भी यही है कि हम साधना के साथ जन-कल्याण करते रहे।'

भेंट लेनेवालो को सलाह देते हुए आपने कहा—'क्या ही अच्छा हो, भेंट लेनेवाले व्यक्ति वुराई को उपहार के रूप मे स्वीकार कर लें और अच्छाई से ही उसे समृद्ध होने दे। यदि यह क्रम रहा तो आप देखेंगे कि देश की दशा सुधरते समय नहीं लगेगा।'

दोपहर मे चार-पाँच वहनें आयी। पन्द्रह मिनट तक मौन खडी रहीं। आचार्यश्री के दर्शनो मे अपने को खोती रहीं। सहसा गुरुदेव ने पूछा—'ये कौन हैं ?' परिचय मिला—'ये भेरूदा की ठकुरानी हैं।' कितना शात व श्रद्धा से भीगा हुआ मानस था उनका। ठकुरानीजी ने कहा—'महाराज! पादु से मेडता जाते समय आपने हमारा गाँव छोड दिया। हमने एक आदमी को आपकी सेवा मे भेजा था पर वह निराश लौट आया। पन्द्रह वर्षो से प्रतीक्षा कर रही हैं आपकी। यदि पाच-सात मील का चक्कर लगे तो भी आप हमें न भूलना। गाव को पवित्र अवश्य करना, यह हमारी विनम्र विनती है।'

साधु-सतिया जो भी इस मार्ग से गुजरती है, ठकुरानीजी की भक्ति उन्हे गाव को लाघने नही देती। कम-से-कम एक दिन का विश्राम करना

ही होता है। हर साधु-सतियो के द्वारा वे आचार्यश्री के पास अपनी भावना भेजती रहती हैं। ठकुरानी ने तीन जिज्ञासाए आचार्यश्री के समक्ष रखी

१ भक्ति किसे कहते हैं ?
२ 'आपके शरणागत हूँ।' यहा शरणागत का क्या तात्पर्य है ?
३ साधु-सतियो को पैरो मे कुछ-न-कुछ पहनने की अनुमति क्यो नही देते ?

आचार्यश्री ने उनको समाहृत किया। आध घटे तक बातचीत हुई।

८ ५ ६२, अजमेर जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, ब्यावर व आसपास के सैंकडो भाई-वहन दर्शन के लिए यहा पहुच गये थे। स्वागत-जुलूस मे इन यात्रियो के अतिरिक्त शहर के विभिन्न वर्गो के व्यक्ति सम्मिलित थे। आदर्श कारागृह के अधीक्षक प्रेमचन्दजी चौधरी ने बदियों को भी स्वागत के लिए भेज दिया था। वे भी जुलूस के एक अग बन गये थे। जुलूस ने मेगजीन के मैदान मे सभा का रूप ले लिया। मैदान पहुचने के पूर्व स्वागत-अध्यक्ष श्री हरिभाऊजी उपाध्याय भी नगे पैर जुलूस मे सम्मिलित हो गये थे।

स्वागताध्यक्ष के रूप मे बोलते हुए राजस्थान के शिक्षामन्त्री श्री हरिभाऊजी ने कहा—'बादल अपनी राह आते हैं, बरसते है और चले जाते हैं। वैसे ही सत पुरुष भी आते है, उपदेश देते हैं और चले जाते है। पर आचार्यश्री हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर मार्ग बदलकर भी आये हैं और कुछ दिन के लिए यहा पर ठहरेंगे भी। वे महाभाग हैं जो उनके उपदेश से अपने जीवन की खेती को हरी भरी करेंगे। आचार्यश्री तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य हैं। उनका दूसरा विश्वव्यापी रूप भी सामने है। वे अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवतक हैं। सम्प्रदाय के बिना सगठन स्थिर नही रह पाता। आचार्यश्री ने सगठन को दृढ रखा है। उनके छ सौ से अधिक शिष्य-शिष्या भारत-भ्रमण कर जन-कल्याण कर रहे हैं। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवतन से आचार्यश्री का तेरापन्थ व राजस्थान ही नही अपितु

भारतवासी मात्र ऋणी है। आन्दोलन के परिणामस्वरूप लोग साम्प्रदायिक सकीर्णता को छोड परस्पर मिल रहे हैं। आचार्यश्री स्थान, वस्त्र और परिग्रह मात्र का त्याग कर पैदल चलते है, इससे बढकर त्याग की और क्या सीमा व पराकाष्ठा हो। समाज और देश त्याग से ही प्रगति कर सकता है, भोग के आदर्शो से नही। इसीलिए सतशक्ति का स्वागत करने के लिए राजशक्ति का प्रतीक विद्यमान है।'

आदर्श कारागृह के अधीक्षक श्री प्रेमचन्दजी चौधरी ने कहा— भौतिकवाद के स्थान पर अध्यात्मवाद लाने के लिए ही अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ है। समय-समय पर बन्दियो को भी इससे प्रेरणा मिली है, उनमे जागृति हुई है। मैंने वदियो से कहा है कि अणुव्रत नियमो को स्वीकार कर आचार्य तुलसी को अपनी दक्षिणा दें।'

श्री लक्ष्मीलाल जोशी ने कहा, 'वादल वरसकर खाली हो जाते हैं पर आचार्यश्री की पीयूषवाणी सदा भरी रहती है। वादल पहाडो से टकराकर मुड जाते है पर आपकी अवाध गति अपने लक्ष्य से च्युत नही होती। वादल कई स्थलो को छोडकर आगे चले जाते है पर आप मार्ग मे आये हुए गाँवो को नही छोडते।'

तत्पश्चात् जिला-प्रमुख श्री विश्वेश्वर, भागचद सोनी, प० जगन्नाथ उपाध्याय, श्री जीतमल लूणिया आदि ने भी स्वागत मे अपने उद्गार व्यक्त किये। अन्त मे आचार्यश्री ने स्वागत का उत्तर देते हुए कहा—

'यह स्वागत मेरा नही, सत्य और अहिंसा का व भारतीय सस्कृति का सत्कार है। विकास की दृष्टि से व्यक्ति का महत्त्व हो सकता है पर पूजा की दृष्टि से मैं व्यक्तिवाद को महत्त्व नही देता। भारतवर्ष की पद्धति मे वैभव से सदा त्याग का आसन ऊँचा रहा है। राजाओ के मुकुट फकीरो के पैरो मे झुके है और आज भी वह अपनी सस्कृति को निभाए चल रहा है।

'मुझे खेद है कि नैतिकता मे समृद्ध भारतवर्ष आज गरीव वनता जा रहा है। इसका दोप दूसरो को नही देना चाहिए। जैन दृष्टि से ईश्वर को

भी मैं दोषी नही कह सकता। दोष स्वय का है। भारतवासियो ने अपनी सस्कृति का आदर नही किया, उस पर चलना छोड दिया, भौतिकता के पीछे अधे वन चल पडे। भौतिकता भी अनावश्यक नही है, पर वही सव कुछ नही है। सत्य, अहिंसा को जीवन मे साथ लेकर चलने से ऐसी स्थिति नही वनती। मेरा विश्वास है धर्म के विना मनुष्य एक दिन भी नही चल सकता। धर्म का तात्पर्य है सत्य और अहिंसा। 'हिंसा करूँगा,' यह प्रतिज्ञा एक दिन भी नही निभ सकती। हिंसा करते-करते हाथ थक जाएगे, पागल वन जायेंगे। वैसे ही झूठ की प्रतिज्ञा भी नही चल सकती। जीवन-व्यवहार की छोटी-छोटी वातो मे सत्य वोलना ही पडेगा। आप कौन हैं, क्या कर रहे हैं आदि प्रश्नो के समक्ष सत्य वोलना ही पडेगा। 'सत्य और अहिंसा का आचरण करूँगा'—यह प्रतिज्ञा जीवन भर चल सकती है। वास्तव मे धम वही है जो जीवन मे उतरे। मन्दिर, मस्जिद व धर्मग्रन्थो का धर्म किस काम का, यदि वह जीवन मे स्थान नही लेता है। धर्म चहारदीवारी मे वन्दी नहीं है, उसके लिए हर क्षेत्र खुला है।'

सभा का सयोजन श्री रामस्वरूप गर्ग ने तथा आभार-प्रदर्शन श्री गुलावचद मुणोत ने किया।

मेगजीन के मैदान से आचार्यश्री चदननिवास मे पधारे।

ईश्वर के भी ईश्वर

जयपुर का रहनेवाला वीस-पचीस वर्ष का एक क्षत्रिय युवक कार्यवश यहाँ आया हुआ था। आचार्यश्री के पास दर्शन करने आया। कहा—'आचाय जी! अणुव्रत-आन्दोलन मुझे अच्छा लगा पर पहला नियम नही जँचा।' गुरुदेव कारण समझ गए और जिज्ञासा की—'क्या शिकार करते हो?' वह वोला—'हाँ।'

'क्या क्षत्रिय हो, इसलिए?' उत्तर मिला—'हाँ।'

आगे वह वोला—'मेरा निश्चित मत है कि शिकार के विना मनुष्य मे वीरता नही रहती, कायरता घुस जाती है। शिकार का अभ्यास न करने से

हम कमजोर हो जायेंगे। चीन और पाकिस्तान हमे खा जायेंगे। देश की सुरक्षा के लिए प्रत्येक को शिकार का अभ्यास करना चाहिए।'

आचार्यश्री ने उसके कथन को काटते हुए कहा—'लडाकू नही शक्तिशाली होना चाहिए। कल्पना करो, एक व्यक्ति सोचता है—मुझे चोर व डाकू मारने होगे। इसलिए मुझे पहले किसी को मारकर पूर्वाभ्यास करना चाहिए। वह तुम्हे ही चुनता है। तुम्हारे साथ द्वेप या अन्य कोई भाव नही है, केवल अभ्यास-हेतु वह तुम्हारा वध करना चाहता है। क्या तुम्हे स्वीकार है?' भाई ने कहा—'नही।'

तर्क से तर्क कट गया। शिक्षा उसके गले उतर गई। दूसरा तर्क फिर उपस्थित किया—'साँप, बिच्छू, शेर आदि प्राणी तो दूसरो को सताते है, इसलिए इनको मारने मे कोई दोप नही है?' प्रश्न मे प्रश्न उठा—'इनको किसने बनाया?' वह बोला—'ईश्वर ने।' गुरुदेव ने कहा—'तुम्हारे विचार से मान लेते हैं, सृष्टि की रचना भगवान् ने की। उसने आवश्यकता समझी इसीलिए तो बनाया और तुम उसे अनावश्यक समझ मारना चाहते हो। क्या तुम ईश्वर के भी ईश्वर हो? दोनो मे कौन सत्य है?' थोडा चिंतन कर उसने उत्तर दिया—'मेरा ज्ञान ईश्वर से ऊँचा नही है। वास्तव मे उनको मारने का अधिकार हमे नही है।' उसने समाधान को स्वीकार किया और प्रवेशक अणुव्रती के नियमो को भी स्वीकार कर लिया।

दोपहर मे 'महिला सुख सचारिणी सभा' की ओर से आचार्यश्री के सान्निध्य मे महिला-सम्मेलन हुआ। विद्यालय की छात्राओ ने प्रार्थना के द्वारा कार्य प्रारम्भ किया। दो बहनो ने भजन-पाठ किया। विद्यालय के प्रचारक-मत्री श्रीरामस्वरूप गर्ग ने विद्यालय की विविध गतिविधि का परिचय दिया।

आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—'मानव जाति के दो अग हैं—स्त्री और पुरुप। दोनो मे एक छोटा, एक बडा हो नही सकता। पैरो से गति तभी सभव है जब दोनो समान हो। समाज के विकास मे भी एक की हीनता अखरती है। यह सर्वसम्मत है कि प्राचीनकाल मे भी स्त्री जाति

को समान अधिकार देने का साहस भगवान् महावीर ने किया। गौतम बुद्ध घबराते रहे पर भगवान् महावीर ने उनके लिए द्वार खोल दिया। यही कारण था कि भगवान् महावीर के सघ मे जहाँ चौदह हजार साधु थे वहाँ साध्वियाँ छत्तीस हजार थी। उनकी परम्परा में आज भी हजारो साध्विया हैं।

आज हजारो स्त्रियाँ घूँघट मे है। वाह्य जगत मे क्या होता है, उन्हे कुछ ज्ञान नहीं है। उनकी ही लडकियाँ साध्वियाँ बनकर जन-कल्याण के लिए हजारो मील की पदयात्रा करती हैं।

स्त्रियो मे हीन भावना अधिक है। अपने को बडा मानना अभिमान है तो हीन मानना भी कमजोरी है। 'नो हीणे नो अइरित्ते'—उन्हे अपनी शक्ति को समझना होगा। दूसरे सहयोगी हो सकते हैं पर उत्थान स्वय को करना होगा।

जगत् आप पर आश्रित हैं। दस-बारह वर्षो तक बच्चो का पालन करना आपके ही हाथ मे है। पिता के मरने पर भी माता बच्चे का पालन कर लेती है। पर माता की मृत्यु बच्चे के लिए दुर्भाग्य की बात है।

नारी जाति मे भय की मात्रा प्रचुर होती है। भय का भूत भगाकर उन्हें अभय का पाठ पढना चाहिए। भूत भी बहनो को सताते हैं, पुरुषो को नही। भूत और क्या है ? उनका भय ही उनके लिए भूत बन जाता है, जैसे रात को व्यक्ति की अपनी छाया।

आप मे वीर-वृत्ति होनी चाहिए। यदि पति व्यसनो के जाल मे उलझ गये हो तो समझाकर सत्पथ पर लाने का प्रयास करें, न कि उनसे भय खाकर सकोच करती रहे। वह सकोच किस काम का जो जीवन के सद्गुणो पर छा जाये।

जीवन मे सादगी अत्यन्त अपेक्षित है। स्त्रियो मे आभूषण पहनने का शौक होता है। यहाँ तक कि उनके लिए वे कान और नाक को छेदने मे भी कष्ट का अनुभव नही करती। आभूषण के लिये पति को बाध्य नही करना चाहिए। अनैतिक साधनो द्वारा पति आपको आभूषण बनवा देंगे तो क्या

आपका सौन्दर्य खिल जायेगा ? यह भ्रम है। वास्तव मे आपका सौन्दर्य शील, लज्जा और नम्रता मे है। कभी-कभी नारी का सौन्दर्य स्वय के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। जीवन मे सुख और शाति के लिए सादगी तथा आवश्यकताओ का अल्पीकरण बहुत आवश्यक है।

अन्त मे आपसे दो बातें कहना चाहता हू

१ बच्चो को न पीटें और न गाली दें। क्योकि इससे बच्चे का स्वभाव चिडचिडा बन जाता है। आपकी वृत्तियो का असर बच्चो पर अवश्य पडता है। गर्भावस्था मे जैसा भोजन व आचरण आप करेंगी वैसी ही वृत्ति गर्भस्थ बच्चे की हो जायेगी, ऐसा मनोवैज्ञानिक मानते है।

२ रूढिग्रस्त न बने। ससार मे जितनी देवी, देव, देवता है क्या वे आपसे अछूते रह सकते है ? समाज की रूढियाँ जितनी आपके लिए अभिशाप बनती हैं उतनी पुरुषो के लिए नही। पति के मरने पर कही-कही पत्नी छ मास तक मकान के कोने से नही उठती, पैर जुड जाते है। क्या कही पत्नी की मृत्यु पर पति को ऐसा करते देखा है ?'

रात को मेगजीन के मैदान मे सार्वजनिक प्रवचन हुआ। ताराचन्दजी जैन ने अपने भाषण मे कहा—'अणुव्रत-आन्दोलन की उपयोगिता स्वयसिद्ध है। शैशवकाल ही मे आन्दोलन ने भौतिकता प्रधान युग मे इतना स्थान पाया है, इससे स्पष्ट है कि मानव अध्यात्म का भूखा है। आध्यात्मिकता के बिना जीवन नीरस रहता है। भौतिकता मे सुख-शान्ति नही है, वहाँ तो मृग-मरीचिका ही है। वास्तविक आनन्द हमे अध्यात्म मे मिलेगा। पाँच अणुव्रतो मे से यदि एक नियम ही हम अपने जीवन मे लेकर चलेंगे तो जीवन सुखमय बन जायेगा।'

डा० मुकुन्दलालजी ने बताया—'जीवन का उद्धार करनेवालो को अणुव्रत के पथ पर आना होगा। जहाँ समस्या उपस्थित हो वहाँ आचार्यश्री से मार्गदर्शन ले आगे बढते रहे।'

राजवैद्य डा० अम्बालालजी (सचालक, आयुर्वेद विभाग) ने कहा—'आज हम नैतिकता से दूर होकर विचित्र वायुमडल मे श्वास ले रहे हैं।

आवश्यक तत्त्वो का अभाव दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है। किन्तु अन्धकार के साथ प्रकाश भी होता है। इस देश के तपस्वियो ने सदैव इस ज्योति को जगमगाया है। आचार्यश्री भी उसी शृखला मे बढनेवाले इस युग की विभूति है। वे विश्व के हैं—सम्पूर्ण मानव जाति के हैं। आचार्यश्री ने अणुव्रतो का व्यावहारिक रूप हमारे सामने रखा है। इसको लेकर चलने से हम परम तत्त्व तक पहुच जायेंगे। फिर तत्त्वो का अभाव नही खटकेगा।'

डा० सूर्यदेव ने अणुव्रत और अणुवम्ब का अन्तर दिखाते हुए कहा—'पश्चिमी राष्ट्रो ने भौतिकता की खोज मे आत्म तत्त्व को खो दिया। भारत अध्यात्म-प्रधान था पर आज भौतिकता के पीछे भागा जा रहा है। कितना आश्चय है कि जिस वस्तु को सदा ठुकराया आज उसे ही पाने को ललचा रहा है। ऐसी स्थिति मे आचार्यश्री ने हमे सजग किया है, डूबते हुए को उवारा है।'

आचार्यप्रवर ने हजारो की उपस्थिति मे प्रवचन करते हुए कहा—'आज धर्म के प्रति लोगो की अरुचि दिखाई देती है। इसका एक कारण यह है कि उन्होने धर्म को गलत समझा, स्वार्थ-सिद्धि का साधन मानकर चले। कार्य-सिद्धि के अभाव मे उनके पैर लडखडा गये। धर्म, परमात्मा, उपासना को छोड नास्तिकता की ओर चल पडे। धम का वास्तविक उद्देश्य समझते तो उन्हे धर्म से दूर जाना नही पडता। भगवान् महावीर ने कहा—धर्म का आचरण आत्मशुद्धि के लिए करो।

दूसरा कारण यह है कि धर्माधिकारियो ने धर्म को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बना लिया। धर्म के साथ खिलवाड की। प्रत्येक कार्य मे धर्म बताकर अपना उल्लू सीधा करने लगे। धर्म और पुण्य को सस्ता बना दिया। पुण्य का लेवल हर कार्य मे लगाने लगे। आचार्य भिक्षु ने इस पर तीव्र प्रहार किया। उन्होने कहा—प्रत्येक कार्य मे धम का प्रलोभन मत फसाओ। धम और कर्तव्य की भेद-रेखा को एक मत करो। कर्तव्य को कर्तव्य की दृष्टि से देखो। धर्म के आवरण मे कर्तव्य को मत ढाको। उसे

स्पष्ट रहने दो। चद्दर से ढके कुए की अपेक्षा खुला कुआं कम खतरनाक होता है। भारतवर्ष मे कर्तव्य-बुद्धि कम जगी है, इसीलिए वे कर्तव्य को धर्म की ओट मे कराना चाहते हैं।

मेरा विश्वास है—धर्म को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नही करता। धर्म के विना मनुष्य जी भी नही सकता। जैसे शरीर के लिए श्वास आवश्यक है वैसे आत्मा के लिए धर्म। दूपित वायुमडल मे श्वास भी दूषित हो जाता है, शरीर स्वस्थ नही रह पाता। वैसे ही स्वार्थ के वायुमडल से धर्म भी शुद्ध नही रह पाता। धर्माचरण की दूपितता से आत्मा पर श्रद्धा नही रहती है। वास्तव मे धर्म जीवन के लिए उपयोगी तत्त्व है। अणुव्रत आन्दोलन धर्म का ही व्यावहारिक रूप है। वास्तव मे धार्मिक वही है जो धर्म को जीवन मे उतारता है। धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझने से आपकी उस पर अश्रद्धा नही होगी।'

९ ५ ६२ प्रात आठ वजे मेगनीज मैदान मे अणुव्रत-विद्यार्थी सम्मेलन हुआ। श्री विसेसरलालजी के भावपूर्ण भजन से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मुनिश्री श्रीचन्द, एस० डी० आई० रामगोपाल जी, अध्यापक महेशकुमारजी मुणोत, पडित जगन्नाथजी आदि के भापण के वाद आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे कहा—'विद्यार्थियो मे प्रारम्भ से ही सुसस्कार डालना अत्यन्त आवश्यक है। गुरुकुल या अन्य सस्थाओ मे विद्यार्थी नियत अवधि तक रहते हैं। शेप समय उनका घर मे वीतता है। जव तक घर का नारकीय वातावरण शुद्ध नही होगा, तव तक वच्चो मे अच्छे सस्कारो की कल्पना करना व्यर्थ है। अभिभावक अपनी सुविधा के लिए वच्चो को तमाखू आदि के लिए स्वय प्रेरित कर उनके सस्कारो को विगाड देते हैं। विद्यार्थी व्यसनो मे पडकर जीवन को खो डालते हैं। जवानी पर छलाग मारकर वचपन से सीधा वुढापे मे प्रवेश कर लेते है। यह कुसस्कारो का ही परिणाम है। इस दृष्टि से विद्यार्थियो की जिम्मेवारी अभिभावको पर है।'

आगे आपने विद्या के लक्ष्य पर वोलते हुए कहा—'विद्या का लक्ष्य

आजीविका ही नही है। आजीविका के लिए विद्या की साधना वहुत छोटी वात है। अत लक्ष्य महान् रखो। गौण फल स्वय मिलेगा। विद्या निम्न चार कारणो से प्राप्त करनी चाहिए

१ श्रुतवान वनने के लिए।

२ एकाग्रचित्त होने के लिए।

३ आत्म-स्थित होने के लिए।

४ दूसरो को उस पर स्थिर करने के लिए।

विद्या के लिए यदि ये भाव रहेगे तो परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की लालसा ही नही रहेगी। डिग्री के प्रति आकर्षण नही रहेगा। आज की शिक्षाप्रणाली निर्दोष नही है। शिक्षाविद् मन्त्री और शिक्षाशास्त्री भी अनुभव करते हैं, परिवतन की आवाज लगाते है, पर कुछ कर नही रहे है। न जाने कौन-सा स्वार्थ वीच मे अटक रहा है। भारतीय सस्कृति के अनुकूल शिक्षा-प्रणाली न होने से मूल मे भूल चल रही है। इसीलिए विद्यार्थी अनुशासन को भूलकर उच्छृखलता की ओर तेजी से वढ रहे हैं।'

दोपहर मे श्रावको का सम्मेलन हुआ। उनके वीच वोलते हुए गुरुदेव वोले—'श्रावक शब्द वहुत प्रतिष्ठासूचक है। इसका शाब्दिक अर्थ है सुननेवाला। पर इसके पीछे भावना है—सम्यग् दृष्टि, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्रवाला। सम्यग् दृष्टि का अर्थ है कि जो वस्तु जैसी हो उसे वैसा ही समझें, उस पर वैसा ही विश्वास करें। सवसे वडा पाप है मिथ्या दृष्टि। चोरी करना, झूठ वोलना पाप है लेकिन वह महान पापी है जो कहता है कि चोरी करना अच्छा है। झूठ वोले विना काम नही चलता। हिंसा करना व्यक्तिगत पाप है, लेकिन वह एक पतित लाखो को पतित कर सकता है। श्रावक वह है जिसके हृदय मे पाप के प्रति ग्लानि हो। पाप के प्रति अनुराग न हो। ससार के करोडो व्यक्ति एक ओर है और एक श्रावक एक ओर है। श्रावक वह है जो श्रमणोपासक हो। श्रमण वह है जिसने त्याग का पथ स्वीकार किया है। उपासना वह है कि श्रमणों द्वारा वताये पथ पर चलते रहना। श्रद्धाभक्ति व आचार की एकरूपता

स्पष्ट रहने दो। चद्दर से ढके कुए की अपेक्षा खुला कुआ कम खतरनाक होता है। भारतवर्ष मे कर्तव्य-बुद्धि कम जगी है, इसीलिए वे कर्तव्य को धर्म की ओट मे कराना चाहते है।

मेरा विश्वास है—धर्म को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं करता। धर्म के बिना मनुष्य जी भी नहीं सकता। जैसे शरीर के लिए श्वास आवश्यक है वैसे आत्मा के लिए धर्म। दूषित वायुमडल मे श्वास भी दूषित हो जाता है, शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता। वैसे ही स्वार्थ के वायु-मडल से धर्म भी शुद्ध नही रह पाता। धर्माचरण की दूषितता से आत्मा पर श्रद्धा नहीं रहती है। वास्तव मे धर्म जीवन के लिए उपयोगी तत्त्व है। अणुव्रत आन्दोलन धर्म का ही व्यावहारिक रूप है। वास्तव मे धार्मिक वही है जो धर्म को जीवन मे उतारता है। धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझने से आपकी उस पर अश्रद्धा नहीं होगी।'

९ ५ ६२ प्रात आठ बजे मेगनीज मैदान मे अणुव्रत-विद्यार्थी सम्मेलन हुआ। श्री विसेसरलालजी के भावपूर्ण भजन से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मुनिश्री श्रीचन्द, एस० टी० आई० रामगोपाल जी, अध्यापक महेशकुमारजी मुणोत, पडित जगन्नाथजी आदि के भाषण के बाद आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे कहा—'विद्यार्थियो मे प्रारम्भ से ही सुसंस्कार डालना अत्यन्त आवश्यक है। गुरुकुल या अन्य संस्थाओं मे विद्यार्थी नियत अवधि तक रहते हैं। शेष समय उनका घर मे बीतता है। जब तक घर का नारकीय वातावरण शुद्ध नहीं होगा, तब तक बच्चो मे अच्छे संस्कारो की कल्पना करना व्यर्थ है। अभिभावक अपनी सुविधा के लिए बच्चो को तमाखू आदि के लिए स्वय प्रेरित कर उनके संस्कारो को बिगाड देते हैं। विद्यार्थी व्यसनों मे पडकर जीवन को खो डालते हैं। जवानी पर छलाग मारकर बचपन से सीधा बुढापे मे प्रवेश कर लेते हैं। यह कुसंस्कारों का ही परिणाम है। इस दृष्टि से विद्यार्थियो की जिम्मेवारी अभिभावकों पर है।'

आगे आपने विद्या के लक्ष्य पर बोलते हुए कहा—'विद्या का लक्ष्य

आजीविका ही नही है। आजीविका के लिए विद्या की साधना बहुत छोटी बात है। अत लक्ष्य महान् रखो। गौण फल स्वय मिलेगा। विद्या निम्न चार कारणो से प्राप्त करनी चाहिए

१ श्रुतवान बनने के लिए।

२ एकाग्रचित्त होने के लिए।

३ आत्म-स्थित होने के लिए।

४ दूसरो को उस पर स्थिर करने के लिए।

विद्या के लिए यदि ये भाव रहेगे तो परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की लालसा ही नही रहेगी। डिग्री के प्रति आकर्षण नही रहेगा। आज की शिक्षाप्रणाली निर्दोष नही है। शिक्षाविद् मन्त्री और शिक्षाशास्त्री भी अनुभव करते हैं, परिवर्तन की आवाज लगाते हैं, पर कुछ कर नही रहे हैं। न जाने कौन-सा स्वार्थ बीच मे अटक रहा है। भारतीय सस्कृति के अनुकूल शिक्षा-प्रणाली न होने से मूल मे भूल चल रही है। इसीलिए विद्यार्थी अनुशासन को भूलकर उच्छृखलता की ओर तेजी से बढ रहे है।'

दोपहर मे श्रावको का सम्मेलन हुआ। उनके बीच बोलते हुए गुरुदेव बोले—'श्रावक शब्द बहुत प्रतिष्ठासूचक है। इसका शाब्दिक अर्थ है सुननेवाला। पर इसके पीछे भावना है—सम्यग् दृष्टि, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्रवाला। सम्यग् दृष्टि का अर्थ है कि जो वस्तु जैसी हो उसे वैसा ही समझें, उस पर वैसा ही विश्वास करें। सबसे बडा पाप है मिथ्या दृष्टि। चोरी करना, झूठ बोलना पाप है लेकिन वह महान पापी है जो कहता है कि चोरी करना अच्छा है। झूठ बोले बिना काम नही चलता। हिंसा करना व्यक्तिगत पाप है, लेकिन वह एक पतित लाखो को पतित कर सकता है। श्रावक वह है जिसके हृदय मे पाप के प्रति ग्लानि हो। पाप के प्रति अनुराग न हो। ससार के करोडों व्यक्ति एक ओर है और एक श्रावक एक ओर है। श्रावक वह है जो श्रमणोपासक हो। श्रमण वह है जिसने त्याग का पथ स्वीकार किया है। उपासना वह है कि श्रमणों द्वारा बताये पथ पर चलते रहना। श्रद्धाभक्ति व आचार की एकता

श्रावक पद प्रदान करनेवाली होती है। श्रावक शब्द की गरिमा हमे ही बनाये रखना है—नैतिक बनें, चरित्रवान बने। धर्म का रास्ता सकुचित इसलिए हुआ कि इसे किसी एक सीमा मे बन्द कर दिया गया। जो अच्छा बनना चाहता है उसे अच्छा बनने का अवसर दें। उसे हीन या अनुपयुक्त न समझे। हम स्वय को देखें। मैं अपने श्रावको से कहूँगा कि वे सबके साथ मैत्री का व्यवहार करें।'

स्नेह पापाशसि

डा० दुर्गाप्रसादशकर सपत्नीक आचार्यश्री के पास आए। अपनी भावना व्यक्त करते हुए उन्होने कहा—'ओमप्रकाश शर्मा तीस वर्ष मे है। गत वर्ष उसने नीलकठ की चोटी पर आरोहण किया था। उसकी सफलता मे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने उसे राष्ट्रीय पदक दिया। नेहरूजी ने एक घडी देकर उसे पुरस्कृत किया। जनता ने उसका स्वागत किया। इस वर्ष माउट एवरेस्ट की चोटी पर चढने को उत्साहित किया गया। सात के स्थान पर चौदह सिपाही इस वर्ष साथ गए हैं। आज पत्र मिला है वह चौवीस हजार फुट चढ गया है, पाच हजार फुट और चढना है। उसमे यह भी लिखा है कि एक व्यक्ति गिरकर मर गया है। यह सुन उसकी माता परेशान है, अपने पुत्र के लिए आपसे राहत मागती है।'
आचार्यश्री ने सान्त्वना देते हुए कहा—'स्नेह पापाशसि—'स्नेही व्यक्तियो मे ही अनिष्ट की कल्पना जगती है। पर वही सत्य नही होता। जिस कार्य के लिए वह गया था, आप उससे सुपरिचित हैं। यह भी जानते हैं कि उसमे खतरा भी है। फिर भी आपने उसे प्रसन्नता से विदाई दी है। कार्य मे सफलता की कामना हो सकती है पर चिंता क्यो? आपकी चिंता वहा पहुचनेवाली नही है, फिर मोह से भारी क्यो बनें?'

कवि-सम्मेलन

रात को अन्तर्भारतीय साहित्य एव कला परिषद, अजमेर की ओर से

आचार्यश्री के सान्निध्य मे अन्तर्भारती कवि-गोष्ठी हुई जिसमे सस्कृत, हिन्दी, मराठी, सिन्धी, राजस्थानी और गुजराती आदि भाषाओ मे कविता-पाठ हुआ। मुनिश्री नथमलजी, सागरमलजी, सम्पतमलजी (राजगढ), मागीलालजी 'मधुकर', पानमलजी, वसतीलालजी, दुलहराज जी, रूपचन्दजी ने वक्ता के रूप मे भाग लिया। स्थानीय कवियो मे सत्यनारायण शास्त्री (सस्कृत), त्रिलोक गोयल (हिन्दी), जी० आर० आफले (मराठी), देवदत्त कुन्दाराम शर्मा (सिन्धी), वालकृष्ण गर्ग (राजस्थानी), उत्तमराम त्रिवेदी (गुजराती) आदि ने कविता-पाठ किया। स्थानीय कवियो मे प्राय प्रौढ अनुभवी कवि थे। भाषाओ की विविधता मे भावात्मक एकता का शुभ सकेत था।

अन्त मे आचार्यश्री ने कवियो के वीच भाषण करते हुए कहा—'आज काट-छाट का युग है। केवल समानता नही मिलेगी, केवल असमामता नही मिलेगी। जैन दर्शन के अनुसार एकता मे अनेकता व अनेकता मे एकता है। जड व चेतन मे भिन्न तत्त्व के साथ—एकता भी है। पदार्थ व द्रव्य के रूप मे दोनो में एकता है। भाषा, वेशभूषा, धार्मिक मान्यता की दृष्टि से अनेकता है—लेकिन इन सब मे भी मानवता-चेतनता की दृष्टि से एकता है। फिर भी मनुष्य कैंची का काम कर रहा है, सूई का नही। हमने अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से विभिन्न विचारधाराओ में एकता लाने का प्रयास किया। मानव एक वन जाऍं—यह नितात कठिन है। किन्तु अपना कर्तव्य समझकर जो कुछ मैं कह रहा हू वह मेरी साधना है—यही सफलता है। सफलता को आकने से पहले असफलताओ को देखना चाहिए। क्योकि मैं प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट नही कर पाया हू, लेकिन मेरी सफलता इसमें है कि मैं अनेक के निकट आया और अनेक मेरे निकट आये। सब वर्गों व सब सम्प्रदायो के व्यक्ति अणुव्रती वने। इस आन्दोलन के अन्तर्गत भावात्मक एकता का एक नया अध्याय जोडा गया है। जातिया भिन्न-भिन्न है और उनकी भिन्नता रहेगी। जाति कर्म (कार्य) से निर्धारित होती रहेगी। भाषाएँ भिन्न-भिन्न

रहेगी। फिर भी अनेकता मे एकता लाने के लिए ही प्रयत्न करना आवश्यक है। इमके वारे में यह प्रतिज्ञा रखी गई—मैं भावात्मक एकता की दृष्टि से धर्म, जाति, भापा, प्रान्त आदि के मतवादो से ऊपर रहूगा और किसी प्रकार की हिंसात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नही दूगा।

आप गभीर वनकर इसका चिन्तन करें व इस मान्यता का प्रसार करने का प्रयत्न करें। भारतीय सस्कृति की समन्वयवादी नीति को अपनाए, दूसरो को इसे अपनाने मे महयोग प्रदान करें। इस तरह के कार्यक्रम अद्वितीय हैं। भावात्मक एकता का साकार रूप मुझे यहा देखने को मिला। मुझे वडी खुशी हुई। मैं ऐसे कार्यक्रम सर्वत्र सफल रूप मे देखना चाहता हू। आप इस राष्ट्रीय विधि का प्रसार करे। विविधता मे एकता ढूढें।'

१० ५ ६२ 'चन्दन निवास' से आदर्श कारागृह दो मील था। आचार्यश्री ठीक साढे सात वजे वहा पहुचे। अवीक्षक श्री प्रेमचन्द चौधरी कारागृह को दिखाते हुए आचार्यश्री को प्रवचन-स्थल पर ले गये। सार्वजनिक प्रवचन होने के कारण भाई और वहनो के लिए जेल मे प्रवेश वन्द नही था। वन्दियो में दो सौ भाई और तीस वहनें भी थीं। वन्दी वहनो को देखने का यह हमारा पहला अवसर था।

मवसे पहले आजीवन कारावासी श्री भवरसिंह ने कहा—'राजा, नेता व धनी-मानी व्यक्तियो के पास सव जाते हैं। हमारे वन्दियो के वीच विरले ही आते हैं। आचार्यश्री उन विरलो मे से एक हैं जिन्होने हमारी सुध-वुध ली और उपदेश देने इतनी दूर चलकर आए। आज हम धन्य-धन्य हुए। देव! वन्दीजन आपका हृदय से स्वागत करते हैं। सात्विक प्रवचन देकर हमारा उद्धार करे।'

अधीक्षक प्रेमचन्दजी ने कहा—'समाज की परिस्थिति मे फसकर कई भाई यातना-गृह मे आते हैं। प्राचीन काल मे जेल यातना-गृह था पर आज वह सुधार-गृह वन गया है। मनोवैज्ञानिक पद्धति से उन्हें सुनागरिक वनाने का प्रयत्न किया जाता है। आचार्यश्री तुलसी यहा नही आए

हैं, वल्कि भगवान् ने प्रकाश-पुज भेजा है। मैं समझता हू, हमारे मन के अन्धकार को मिटाकर अपने प्रकाश से हमे आलोकित करेंगे।'

तत्पश्चात् आचार्यप्रवर ने प्रवचन करते हुए कहा—'जेल मे आने का मुझे कई बार अवसर मिला है। आजादी के लिए नेता भी जेल गये थे। मैं जेल मे आया हूँ, उसके दो कारण है

१ वस्तुस्थिति का निरीक्षण।

२ उपदेश सुनाने के लिए।

यू० पी०, दिल्ली व विहार की सेन्ट्रल जेलो को देखकर मुझे यह अनुभव हुआ कि अपराधियो के साथ भी अच्छा व्यवहार हो रहा है। 'शठे शाठ्य समाचरेत्'—युग के साथ राजनीति के इस सिद्धान्त मे परिवर्तन आ रहा है। वास्तव मे यह नया मोड है, जो मनुष्य जीवन के लिए अपेक्षित है। घृणा दोपी के प्रति नही, दोप के प्रति होनी चाहिए। जन्म से कोई चोर, जुआरी और पापी नही होता। पाप छोडने से पापी भी अच्छा वन जाता है।

ससार मे वहुत कम व्यक्ति ऐसे है जो पाप नही करते। कुछ लोगो का पाप प्रकट हो जाने से, कानून के पजे मे फसने से उनको यहाँ आना पडा है। कई लोगो को अभी पाप का फल नही मिला है। समझना चाहिए उनका व्याज वढ रहा है। पाप का फल उन्हे भोगना अवश्य पडेगा। भोगना और प्रायश्चित करना दो कार्य हैं। भोगने मे वलात् की भावना है और प्रायश्चित स्वय किया जाता है। एक मे रोष और दुख है, दूसरे मे प्रसन्नता।

धन आदि छिन जाने से एक शरणार्थी-परिवार मेरे पास आया और दुख-गाथा गाने लगा। मैंने कहा—हम दोनो समान हैं। न धन हमारे पास है और न आपके पास। इतना अन्तर अवश्य है—हमने छोड दिया है और आपसे छीन लिया गया है। हमे प्रसन्नता है और आपको दु ख है। इससे स्पप्ट है कि त्याग मे जो आनन्द है, वह वलात् छोडने मे नही।

सवसे पहले आपको विचारो मे परिवर्तन करना होगा। दृष्टिकोण

को सम्यक् बनाना होगा। आप यह मानकर चलिये कि हमने पाप किय। है। दूमरो की ओर देखने से आप भटक जायेंगे। अपनी शुद्धि का भाव भूल जाएँगे। शरीर बाधा जाता है पर मन नही। पाप मे मन की प्रधानता होती है। इमलिये मन को सुधारना ही प्रथम काय है। अधिकारी लोग आपका सुधार करना चाहते है। इसमे आपका सहयोग भी अपेक्षित है। अगर आप सुधरना चाहे तो वह कार्य शीघ्र हो सकता है, अन्यथा उनका प्रयत्न फलवान नही बनेगा। अतीत के दोषो का प्रायश्चित कर भविष्य मे उसे न दोहराने का सकल्प करना चाहिए।

पाप परिस्थितिवश ही होता है, ऐसा मैं नही मानता। परिस्थिति भी उनमे एक कारण है। मेरी दृष्टि से मनुष्य चार कारणो से पाप करता है

१ कुसगति।

२ खान-पान की अशुद्धता।

३ परिस्थिति।

४ पूर्व-सचित कर्म।

आज पाप करते भी मनुष्य को भय नही लगता, तब सुधार कैसे हो ? अभी मैं यहाँ आ रहा था। मार्ग मे देखा हाथ बाधे हुए कई कैदियो को पुलिस ले जा रही थी। उनके चेहरे पर कोई खिन्नता नही थी। मस्ती से बीडी पी रहे थे। धुआँ निकालते हुए हँसते जा रहे थे। ऐसा लग रहा था पाप की घृणा उन्हे छू तक नही पायी है। जब तक मनुष्य मे पाप के प्रति घृणा नही होगी, तब तक उसका सुधार असम्भव है।

अधिकारियो ने आपको सुधरने का अच्छा अवसर दिया है। सत्सगति का लाभ आपको मिला है। मैंने बक्सर (बिहार) मे देखा, जज को चकमा देनेवाले बन्दियो ने मेरे सामने खुलेआम अपने दोषो को स्वीकार किया। यह मत सोचिये कि दोष को स्वीकार करने से हम मुक्त हो जाएँगे। दोष की स्वीकृति आत्मशुद्धि के लिये होती है। जिसमे साहस होता है वही दोष को स्वीकार कर सकता है। सम्भव है उसके प्रति विश्वास जम जाये,

पर उसे तो आत्म-शुद्धि के लिये ही स्वीकार करना चाहिए।'

आचार्यश्री ने उपस्थित वन्दियो को भी आह्वान किया। दो भाइयो ने अपने दोष स्वीकार किये। एक ने कहा—'मैंने कत्ल किया था। भविष्य मे नही करूँगा।' दूसरे ने कहा—'बुरी सगत मे फँसकर ऐसा पाप मैंने किया है, भविष्य मे नही करूँगा। मैंने अणुव्रतो के नियमो को ले लिया है।' ग्यारह वहनो ने चोरी करने के दोष को स्वीकर किया, भविष्य मे न करने की प्रतिज्ञा ली। तीस वदियो ने शराव का त्याग किया। जेलर श्री प्रेमचन्दजी ने पाँच साल तक तमाखू का परित्याग किया। वातावरण त्यागमय वन गया। नौ वर्षीय वालक अशोककुमार के मन मे भी त्याग की भावना जगी। साहस के साथ खडा हुआ। परिषद को चीरता हुआ आचार्यश्री के पास आया और कहा—'वारह मास तक सुपारी न खाने का मुझे भी त्याग करवा दीजिये।' वच्चे का साहस देखकर सव आश्चर्यान्वित थे। कुछ क्षण के लिये सवका ध्यान उसने अपनी ओर खीच लिया।

प्रवचन के बाद अधीक्षक ने वदियो के पुस्तकालय, अध्ययन-कक्ष, भजन-मडप आदि स्थान दिखाये। उन्हें देख ऐसा लगा कि वास्तव मे यह कारागृह नही, सुधारगृह ही है। यहाँ पर वदी आठ घटे के काम को छ घटे मे पूरा कर, दो घट का समय वचत कर अध्ययन आदि मे उसका उपयोग करते है।

आदर्श कारागृह से वापस आते समय मार्ग मे शिशु-शिक्षा सदन मे सक्षिप्त कार्यक्रम रहा। सस्थापिका श्री मनोरमा देवी पडित ने स्वागत-भाषण किया। वच्चो के भजन के बाद आचार्यश्री ने उनको शिक्षा के रूप मे दो शब्द कहे।

सस्कृत-गोष्ठी

रात को आठ वजे अजयमेरु सस्कृत परिषद्, अजमेर की ओरसे चन्दन निवास मे आचार्यश्री के सान्निध्य मे सस्कृत-गोष्ठी का आयोजन हुआ।

वक्ता के रूप मे स्थानीय विद्वान सत्यनारायण शास्त्री, तारादत्तजी पन्त, धरणीधर शास्त्री, कृष्णजी ओझा, आचार्य ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ने भाग लिया। साधुओ मे मुनिश्री नथमलजी, दुलीचन्दजी, मागीलालजी, श्रीचन्दजी, दुलहराजजी और रूपचन्दजी के नाम उल्लेखनीय हैं। सयोजन श्री रमाशकरजी शास्त्री कर रहे थे।

श्री लक्ष्मीलाल जोशी ने आचार्यश्री के सान्निध्य मे होनेवाली सस्कृत साहित्य साधना की प्रशसा करते हुए कहा—'आज भी जहाँ सस्कृत मे ऐसा सरस साहित्य, नई कल्पना, नई उपमाएँ आ रही है, फिर भी उसको मृत-भाषा कहना अज्ञान से बढकर क्या होगा?' समय की मर्यादा देखते हुए कार्यक्रम को स्थगित करना पडा। आचार्यप्रवर ने साध्वी वर्ग की सस्कृत-साधना का उल्लेख भी किया।

अध्यापक-सम्मेलन

११ ५ ६२ अध्यापक-सघ की रजत-जयन्ती पर भाषण करते हुए आचार्यश्री ने कहा—'मुझे प्रसन्नता है कि एक साथ इतने बौद्धिको से सम्पर्क हो रहा है। आप श्रुत की उपासना करते हैं। श्रुतोपासक और भगवान् के उपासको मे कोई अन्तर नही है। श्रुत की उपासना करना जीवन का सर्वोत्कृष्ट सत्प्रयत्न है। श्रुतोपासक ससार के लिए चक्षुदाता होता है। आपकी चक्षु अधिक निर्मल होनी चाहिए, अन्यथा सत्य-दर्शन न तो आप स्वय कर सकेंगे और न दूसरो को करा सकेंगे।

आपको आजीविका के गौण प्रश्न मे न उलझकर मुख्य प्रश्न जीवन-निर्माण पर चिन्तन करना चाहिए। अध्यात्म-विकास के बिना शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास निष्प्रभ होते हैं। इसलिये अन्य विकासो की अपेक्षा अध्यात्म-विकास पर ध्यान अधिक केन्द्रित करना चाहिए। उलझनो का कोई पार नही आता। जीवन नीरस बन जाता है।

यह सत्य हैं कि दूसरे देशो की अपेक्षा भारत मे साहित्यकारो, वैज्ञानिको व विद्वानो का उतना मूल्य नही है, जितना होना चाहिए।

लक्ष्मी-पुत्रो के स्थान पर वहुश्रुत, साधनाशील व सरस्वती-पुत्रो के सम्मान की अपेक्षा है पर उन्हे अधिक लाभ मिलने पर गर्व और न मिलने पर दुःख नही करना चाहिए। कर्तव्यनिष्ठा से कार्य करते रहना चाहिए। कर्तव्यनिष्ठा की कमी के कारण ही अध्यात्म का पूर्ण विकास नहीं हो रहा है। मैं अध्यापको से तीन बातें कहना चाहूँगा

१ आरामपरक न बनें।

२ कष्ट-सहिष्णु रहे।

३ व्यसन-मुक्त रहे।

विश्वस्रष्टा अध्यापक यदि व्यसनो मे फसा रहेगा तो दूसरो को क्या मार्गदर्शन देगा ?

अध्यापको को अध्यापक के साथ-साथ विद्यार्थी भी बना रहना चाहिए, अन्यथा विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा। साधना की सफलता इसी मे है कि जहाँ जैसा वातावरण हो उसमे घुल-मिल जाए।'

अन्त मे जीवन-निर्माण पर बल देते हुए आपने कहा—'अध्यापकों को अणुव्रती बनना चाहिए। अणुव्रत व्रतो की न्यूनतम मर्यादा है। इसके बिना किसी को मत्री, अधिकारी, नेता व शिक्षक बनने का अधिकार नही है। अणुव्रती का अर्थ है—अणुव्रतो के आदर्शो पर चलना। अपने द्वारा अपने लिये अपना सयम। मैं समझता हूँ प्रत्येक शिक्षक स्वय का निर्माण कर अपने मनोनुशासन द्वारा भावी पीढी का निर्माण करेंगे तो राष्ट्र का निर्माण स्वय होकर रहेगा।'

शाम को आचार्यश्री ने विहार कर मुख्य बाजार होते हुए रामगज के दयानन्द कॉलेज मे विश्राम किया। रात को कॉलेज के प्रिंसिपल दत्तात्रेय ने एक घटे तक बातचीत की। दान, दया आदि विपयो का आचार्यश्री ने सैद्धान्तिक पक्ष समझाया। प्रिंसिपल ने भिक्षु स्वामी को युगपुरुष स्वीकार किया और कहा—'उनके सिद्धान्त सत्य की कसौटी पर खरे हैं।'

१२ ५ ६२ रामगज से सराधना की ओर प्रात काल प्रस्थान हुआ। शहर की सीमा को पार करते ही एक मील तक गदगी से वायुमडल इतना

दूषित था कि खुले नाक चलना कठिन हो रहा था। ऐसा लगता था मानो शहर अपनी अशुद्धता को बाहर फेंक शुद्ध बन गया है। शहर मे स्थान की स्वच्छता थी और जन-मानस के विचारो मे भी। कुछ दूर आगे चलने पर सुख से सास ली। सडक के दोनो ओर की वृक्षावलि पथिक की थकान को दूर कर आगे बढने की प्रेरणा दे रही थी। सडक भी गति मे सहायक बन रही थी। परिस्थिति की अनुकूलता मे हम लोग शीघ्र ही सरावना पहुच पाए।

दो दिन पहले ही श्री फूलचन्दजी साखला और श्री मालचन्दजी खटेड स्थान की व्यवस्था के लिए यहाँ आए थे। उन्होने कहा—'आचार्यश्री तुलसी का नाम लेते ही प्रधानाध्यापक ने अपना सारा स्कूल खाली कर दिया, यद्यपि पहले सकुचा रहे थे। फिर कहा—समाचार-पत्रो द्वारा आचार्यश्री से भली-भाँति परिचित हूँ। यदि वे आए तो हमारा सौभाग्य होगा। उनका साक्षात् दर्शन हमे मिलेगा।'

आज आचार्यश्री पधारे तो श्री अब्दुल सत्तार ने अपने साथियो सहित स्वागत किया। एन० सी० सी० के तीन सौ विद्यार्थियो का कैम्प लगने वाला था, उसे स्थगित कर दिया।

अजमेर से कई भाई आए थे। मनोरमा देवी पडित भी उनके साथ थी। मनोरमा देवी साठ वर्ष की अवस्था मे है। प्रकृति से इतनी भद्र महिला है कि चेहरे पर शाति टपक रही थी। आचार्यश्री ने आधा घटे तक उनसे बातचीत की। वे वर्षो से अणुव्रत-आन्दोलन से प्रभावित है। आचार्यश्री के इस चतुर्थ दिवसीय प्रवास मे अणुव्रती भी बन गई है। अणुव्रत समिति की सदस्या बनकर महिला वर्ग मे प्रचार-कार्य मे सक्रिय भी बन गई हैं।

दोपहर मे अणुव्रत-आन्दोलन के नियमो का वाचन हुआ। लोगो ने प्रत्येक नियम को व्याख्या के द्वारा समझा। प्रधानाध्यापक और पाँच भाइयो ने 'प्रवेशक अणुव्रती' बनकर जीवन मे एक दिशा ली।

१३ ५ ६२, जेठाना जेठाना जाने मे दो मील का चक्कर पडा।

अजमेर के स्वागत-समारोह मे उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा—'चक्कर उनको अनुभव होता है जो एक केन्द्र या घर से निश्चित स्थान पर चलें, और वापस वही पर आए। हम तो घुमक्कड है। हमारा कोई केन्द्र नही, जिसको धुरी मानकर नाप सकें। और चलना ही हमारा जीवन-व्रत है। निश्चित मर्यादा के अतिरिक्त एक स्थान पर नही ठहरते। फिर हमारे लिए चक्कर और सीधा रास्ता क्या? जहाँ जाएँ वही कार्य करना है। इस दृष्टि से मैं चक्कर को चक्कर नही मानता।'

जेठानावालो की बहुत समय से प्रार्थना थी। यहाँ श्रद्धालुओ के दस-बारह घर है। उनमे उत्साह है, भक्ति है और गुरु के प्रति एकनिष्ठा है। आचार्यश्री उनकी भावना को स्वीकार कर पधारे। प्रवचन किया। दोपहर मे फिर प्रवचन हुआ। इस वार उपस्थिति बहुत अच्छी थी। ग्रामीण भाइयो की सख्या भी काफी थी। व्याख्यान का अच्छा प्रभाव रहा। ग्यारह व्यक्तियो ने 'प्रवेशक अणुव्रती' के ग्यारह नियमो को स्वीकार किया और कइयो ने दस नियमो को स्वीकार किया।

चार वजे ओकारप्रसादजी शास्त्री आए। ये अणुव्रत के कार्य मे रस लेते आ रहे हैं और अणुव्रत के एकनिष्ठ कार्यकर्ता हैं। उनका परिपार्श्व वातावरण अणुव्रतमय है। उन्होने अणुव्रत सम्वन्धी चर्चा के वाद एक निवेदन किया—'मैं जैन तीर्थङ्करो को एक प्रबन्ध-काव्य का पुष्प चढाना चाहता हूँ। आप मुझे मार्गदर्शन दें।' मुनिश्री नथमलजी ने आदिनाथ भगवान् का नाम सुझाया। उन्होने उसे स्वीकार किया। आप समय-समय पर गाव के जैन भाइयो को महावीर जयन्ती की प्रेरणा देकर समारोह मनाते है। जैनत्व के प्रति आपका आन्तरिक प्यार भी है।

१४ ५ ६२, खरवा दोपहर मे आज फिर अध्यात्म-गोष्ठी हुई। गत गोष्ठी मे आहार-शुद्धि का प्रकरण चला था। उस विषय मे 'मनोनुशासन' के 'हितमित सात्विकाहरणमाहार शुद्धि' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए मुनिश्री नथलमजी ने कहा—'हिताहार साधक के लिए आवश्यक होता है। अपथ्य आहार किसी के लिए लाभप्रद नही होता। हित दो अक्षरो

का शब्द है पर इसको समझने के लिए ज्ञान की अपेक्षा है। इसमे भोजन का बडा विवेक है। प्रत्येक ऋतु के साथ खाद्य-सामग्री का सम्बन्ध होता है—अमुक पदार्थ अमुक ऋतु मे त्याज्य होता है। विरुद्ध पदार्थों का मिश्रण कर खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नही होता। अज्ञान के कारण कोई विरुद्ध भोजन करता है तो उसका परिणाम भी भोगना पडता है। इसलिए विवेक की बहुत बडी अपेक्षा है।

मिताहार स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। जितनी भूख हो उससे आधा भोजन करना चाहिए। चौथाई भाग पानी के लिए और चौथाई भाग वायु के लिए खाली रहना चाहिए। कम खाना कमजोरी का हेतु है—यह मिथ्या धारणा है। एक जर्मन लेखक ने अपना अनुभव बताते हुए लिखा है—युद्धकाल मे देशवासियो को खाद्य-सामग्री कठिनाई से मिलती थी, फिर भी हमारा स्वास्थ्य पचास प्रतिशत सुधर गया। जो अधिक खाते है उनकी पाचनशक्ति का व्यय अधिक होता है। आँतो को विश्राम नही मिलता। अधिक कार्य लेने मे स्नायुओ की शक्ति शिथिल हो जाती है। मानसिक व बौद्धिक शक्ति को सुरक्षित रखनेवाले अधिक न खाए।

सात्विक आहार साधना से सम्बन्धित है। भक्ष्याभक्ष्य मे प्याज, लहसुन आदि पर धार्मिक दृष्टि से विचार किया गया है। यह म्लेच्छ भोज्य है। साधारण आहार भी अतिमात्रा मे खाने से उत्तेजक होकर असात्विक हो जाता है। कई पदार्थ स्वय उत्तेजक होते हैं। सात्विक और असात्विक की परिभाषा करना कठिन है। प्याज शरीर के लिए उपयोगी हो सकता है पर उत्तेजक होने के कारण साधक के लिए वर्जनीय है। मसाला आदि भी शरीर के लिए उपयोगी हो सकते है पर साधना मे वे बाधक है।'

शाम को यहा से विहार कर मोहनपुरा के स्टेशन पर विराजे। मुनिश्री मागीलालजी 'मधुकर' के भजन के बाद मुनिश्री श्रीचन्दजी ने अपना वक्तव्य दिया।

१५ ५ ६२, ब्यावर अजमेरी दरवाजे से शहर मे प्रवेश हुआ। यहाँ के लोगो मे आचार्यश्री के दर्शन की उत्सुकता दिखाई दे रही थी। सडक

के दोनो ओर की दुकानो मे दुकानदार सौदे को छोड खडे थे। मकानो की छत पर भी खडे-खडे भाई-बहन दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी जाति के लोगो मे स्नेह का वातावरण था। जुलूस ने नये बाजार के पण्डाल मे सभा का रूप ले लिया। पारमार्थिक शिक्षण-सस्था की बहनो द्वारा मगलाचरण का कार्यक्रम शुरू हुआ।

एस० डी० गवनमेन्ट कॉलेज के प्रिंसिपल डा० फतेहसिंहजी ने कहा—'आचार्यश्री ने भारतीय समाज को सगठित करने का एक प्रयत्न किया है। उनका माध्यम अणुव्रत-आन्दोलन बहुत सफल रहा है।'

व्यापारी एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री मोतीलालजी ने कहा—'आज यहा शान्ति के अग्रदूत आए है। भगवान महावीर ने बारह वर्ष तपस्या करके जो व्यवस्था दी थी, आचार्यश्री ने इतने वर्ष बाद उसे फिर से युग के अनुकूल व्यवस्था दी है। आज भाषा, प्रात, वेशभूषा को लेकर जो विवाद उठ रहे है उन्हे एक सूत्र मे बाँधने की आवश्यकता है। मेरी दृष्टि से अणुव्रत-आन्दोलन इसमे सफल होगा।'

श्री शोभाचन्दजी भारिल्ल ने कहा—'मेरा सम्बन्ध इस सम्प्रदाय से करीब चालीस वर्षो से है। आचार्यश्री के नेतृत्व मे तेरापथ तथा जैन समाज ने जो उन्नति की है वह अपूर्व वस्तु है। आचार्यश्री जिस ध्येय व अभियान को लेकर जन-जागरण हेतु इस ग्रीष्मऋतु मे भी पदयात्रा करते हैं, यह भारत के लिए सौभाग्य की बात है। मेरा विश्वास है कि आपके कुशल नेतृत्व मे देश सही दिशा मे आगे बढेगा। इस आगमन के पुण्य प्रसग पर मैं हृदय से आपका स्वागत करता हूँ।' तत्पश्चात् नगर की ओर से नगर-पालिका के अध्यक्ष श्री चिमनसिंह लोढा ने स्वागत किया।

श्री डी० एस० शर्मा ने बोलते हुए कहा—'आज नगर का परम भाग्य है कि एक दिव्यमूर्ति यहाँ आयी है। अणुयुग मे भी वे हमे अध्यात्म का उपदेश देकर एक शक्ति देंगे। वर्तमान मे गृहस्थ की भूमिका सुखद समय मे नही गुजर रही है। समस्याएँ गभीर बनती जा रही है। ऐसे समय मे आचार्यश्री अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा इस ओर हमारा मार्गदशन करेंगे।'

श्रीमती पारस रानी ने सरस व साहित्यिक भाषा मे आचार्यश्री को श्रद्धाजलि अर्पित की।

कई सस्थाओ के व्यक्तियो की ओर से आचार्यश्री को एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया, जिसका वाचन पडित भारिल्लजी न्यायतीर्थ ने किया। एस० डी० ओ० डी० वी० रमणन् के बाद आचार्यश्री ने प्रवचन किया। आपने कहा—'नौ वर्ष के बाद मैं ब्यवार मे तीसरी बार आया हूँ। प्रथम आगमन यहाँ के वासियो के लिए सरस नही रहा। दूसरा आगमन विशिष्ट भक्त श्री डूगरमलजी साखला के लिए वरदान सिद्ध हुआ। तीसरा आगमन विशेष उद्देश्य को लिए हुए है पर उसी उद्देश्य को लेकर है जिसके लिए हम घूम रहे है।

परिवर्तन ससार मे आया है, देश मे आया है, राजस्थान मे आया है, सम्प्रदायो मे आया है, आप और हममे आया है। परिवर्तन कुछ आया है और कुछ लाया गया है। आया है उसका श्रेय युग को है। परिवर्तन लाने मे घरवालो और दूसरो के तूफान आए, पर हम घबराए नही, थककर पीछे नही हटे। चिन्तनपूर्वक कार्य करते रहे। जो बाधाएँ आयी, उनको सहन किया। फलत आज सारी समस्याए समाहित हो गई हैं और पथ प्रशस्त बन गया है। परिवर्तन का अर्थ शरीर-परिवर्तन से नहीं है। हमारी आकृति और वेशभूषा से नही हैं। मूल को सुरक्षित रखकर आवश्यक परिवर्तन किया है, जो कि करना अपेक्षित होता है। क्षणक्षयी और स्याद्वादी मे यही तो अन्तर है कि क्षणक्षयी मूल मे परिवर्तन मानते है और स्याद्वादी मूल को ध्रुव मान ऊपर के धर्मो मे परिवर्तन।'

आगे आपने धर्म के विषय मे बोलते हुए कहा—'धर्म के दो भेद हैं—उपासना और जीवन-व्यवहार। अणुव्रत-आन्दोलन ने उपासना की स्वतन्त्रता को छीनना नहीं चाहा। उसे मुक्त रखकर जीवन-व्यवहार की शुद्धता पर बल दिया। इसीलिए वह सभी धर्मो और वर्गो के व्यक्तियो को एक सूत्र मे पिरोने मे सफल हुआ है। इतनी सफलता मे एक असफलता भी है कि धर्म-सम्प्रदायो की एकता न हो पायी। निकट

लाने का प्रयास किया गया पर पूर्ण सफलता नही मिली। जो कुछ वातावरण शुद्ध बना वह अच्छा है। हम निराश नही हुए हैं, प्रयत्न चल रहा है।'

अन्त मे आपने कहा—'व्यावर मे प्रवेश करते ही मैंने हजारो लोगो का प्यार पाया। मैं देख रहा था लोगो के हाथ, नेत्र और हृदय। हृदय का प्यार नेत्रो मे बरस रहा था। आज वह लाली भी नही थी जो एक समय कटाक्ष के भाव लिए हुए थी। श्रद्धा से हाथ जुड रहे थे। लग रहा था—नम्रता मानव का सहज गुण है। ऐसा वातावरण देख मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आज हम एक-दूसरे के कितने निकट आ रहे हैं। सब लोगो मे एकत्व की भावना का होना अध्यात्म का शुभ-सकेत है।' प्रवचन के बाद आचार्यश्री ने भावात्मक एकता के नियम का वाचन किया, उपस्थित जनता ने उसको दुहराया। कायक्रम का सयोजन श्री बाबूलाल आच्छा ने किया।

आचार्यश्री से कुछ समय पहले महासती श्री लाडाजी ने शहर मे प्रवेश कर प्रवचन-सभा मे दर्शन किये। आप स्वास्थ्य-लाभ के लिए गगाशहर रुक गई थी। सेवा से दूर रहने की इच्छा न होते हुए भी स्वास्थ्य के लिए रुकना पडा। यही तो मन और तन का द्वन्द्व है। जिस समय जिसकी शक्ति प्रबल होती है वह जीत जाता है। बाह्य परिस्थिति ने आपके तन के साथ होकर वहाँ रोक लिया। पर मन अपनी शक्ति को भीतर-ही-भीतर बढाता रहा। उसी का ही परिणाम है कि आपने कल्पना से पहले ही आचार्यश्री के दर्शन कर लिए। आपके आगमन से हम साध्वियो को बहुत प्रसन्नता हुई।

दोपहर मे महासती श्री लाडाजी की ओर से सतियाजी ने गीतिका गायी तथा रात को मुनिश्री सुमेरमलजी के भजन के बाद मुनिश्री दुलहराज जी ने भाषण किया। अन्त मे आचायश्री का प्रवचन हुआ। प्रवचन का प्रभाव इससे स्पष्ट है कि दूसरे दिन के लिए उन्होने बलवती प्राथना की।

१६ ५ ६२ दोपहर मे आचार्यश्री ने स्थानीय तेरापथी सभा के

कार्यकर्ताओ को सेवा का अवसर दिया। परस्पर मन-मुटाव बढा हुआ था। आचार्यश्री ने मार्गदर्शन दिया। मध्यस्थता उसी को मिलती है जो दोनो का श्रद्धा-केन्द्र हो। आचार्यश्री को यह वरदान सहज मिला है।

रात को मुनिश्री सुमेरमलजी का सगीत और नथमलजी स्वामी का भाषण हुआ। अन्त मे आचार्यप्रवर ने प्रवचन किया।

रात्रि-जागरण

प्रवचन एक प्रकार का व्यायाम है। उससे शरीर मे गर्मी बढती है। ग्रीष्म-ऋतु की गर्मी और प्रवचन की गर्मी ने बन्द स्थान का सहयोग पा भयकर रूप ले लिया। आचार्यश्री की प्यास भभक उठी। प्यास ने नींद के निमन्त्रण को ठुकरा दिया। सारी रात जागरण मे बीती। पर साधक का मन उससे कब घबराने वाला था। सहिष्णुता की साधना करता रहा। समय सभी का साथ देता है, कभी किसी का, कभी किसी का। प्रात काल मे देखा, समय ने गर्मी का साथ छोड दिया है।

१७ ५ ६२ आचार्यश्री के मेवाड-आगमन के उपलक्ष मे आज स्वागत-समारोह का आयोजन रखा गया। उदयपुर से बहुत से भाई-बहन समारोह मे भाग लेने आए। आसिन्द, लाछूडा, दौलतपुर, गगापुर आदि-आदि गावो के भाई-बहन भी उपस्थित थे। श्री भैरूलालजी धाकड, सोहनलाल जी पोरवाल, कनकमलजी (अध्यक्ष, मेवाड कान्फ्रेंस), फूलचन्दजी दलाल (मन्त्री, युवक-मण्डल), मोहनलालजी धूपिया (मन्त्री, मेवाड कान्फ्रेंस) ने अपने-अपने भाषण मे आचार्यश्री से मेवाड पधारने की प्राथना की और चातुर्मास की घोषणा का आभार स्वीकार किया। एक गीतिका सामूहिक रूप से गायी गयी।

दोपहर मे एक अध्यापक आए। किसनगज के वासी हैं पर यहाँ सनातन हाई स्कूल मे अध्यापक है। तीस वर्ष की अवस्था है और कत्थक नृत्यकार हैं। इनके नेतृत्व मे बीस सदस्य कार्य कर रहे है, दस भाई और दस बहनें। अजमेर, जयपुर, दिल्ली आदि कई स्थानो मे अपना प्रदर्शन भी कर चुके

है। आचार्यश्री से निवेदन करने लगे—'मैंने अणुव्रतो के कार्यक्रम को देखा है। मेरा विश्वास है आज के युग मे इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। मै चाहता हू अपने माध्यम से ग्रामीण जनता तक इसको पहुँचाऊँ।' आचार्य-श्री की प्रेरणा पा वे अणुव्रती भी वने।

सनातन गवर्नमेंट कॉलेज के प्रिंसिपल डा० फतेहसिंहजी से 'अणुव्रती' बनने के लिए पूछा गया तो उत्तर मिला—'मैं तो छ वर्षो से अणुव्रती हूँ। गगानगर मे रामचन्द्रजी जैन के सम्पक से अणुव्रती बना था। ऐसा लग रहा है—अणुव्रत आन्दोलन अब स्थिरता पकड रहा है। अनेक माध्यमो से वह जन-जन मे घुसकर मनुष्य-मनुष्य को नैतिक पथ पर चलाना चाहता है। निकट भविष्य ही इसकी सफलता को बतलाएगा।'

दोपहर मे महिला सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमे साध्वीश्री स्नेहकुमारीजी, आशारानी, वसन्तीदेवी आदि ने अपने-अपने वक्तव्य रखे। अन्त मे आचार्यप्रवर ने अपना प्रवचन किया।

मुन्सिफ उमरावचन्दजी मेहता के साथ एक भाई आया, जो उनका सहपाठी था। वतमान मे वकालत करता है। उसने कहा—'महाराज! मैं उपासना करता हूँ पर उसमे प्रतिफल की भावना रहती है। इसलिए अभिष्ट सफलता न मिलने से अस्थिरता आ जाती है और उसे छोड देता हूँ। इस प्रकार जीवन मे अस्थिरता के कारण शान्ति नही मिल रही है। मेरे साथी ये है। इनका जीवन सादा है और ये सुख से सास ले रहे हैं।'

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'यही तो जीवन का मूल-मन्त्र है कि जीवन को सादा व त्यागमय बनाओ। आवश्यकताओ को सीमित करो। फिर देखो कि उपासना मे मन लगता है या नही? आकाक्षा अधिक न होने मे उपासना मे स्थिरता का अनुभव करोगे।' आचायश्री ने उसको अणुव्रती बनने की प्रेरणा दी। अन्त में उसने अणुव्रतो को स्वीकार कर लिया।

रात को वाजार में सावजनिक व्याख्यान होना निश्चित हुआ। सेवा-भावी मुनिश्री चम्पालालजी स्थान देखने को गए। पहले जो स्थान देखा था वह कुछ असुविधाजनक था। पास मे एक दूसरा स्थान था, वह

सुविधाजनक था, पर था वह स्थानकवासी भाई का। मुनिश्री वहाँ पहुंचे और उन्हें समझाया। और फिर उन्ही के द्वारा स्थान की अर्ज करवाई। स्थान की समस्या सुलझ गई। व्याख्यान होना निश्चित हुआ।

मुनिश्री मागीलालजी के मगीत के बाद मुनिश्री रूपचन्दजी का भाषण हुआ। तदनन्तर आचार्यश्री का हृदयस्पर्शी प्रवचन हुआ। उपस्थिति लगभग चार हजार की थी। लोगो मे आचार्यश्री की वाणी को सुनने की उत्कण्ठा बढ रही थी। पर समय इतनी तेजी मे बट गया कि व्याख्यान को पूरा करना पडा। भाइयो ने मिलकर प्रार्थना की कि 'आप रविवार तक यहाँ विराजे। आपको हम जाने नही देगे। मार्ग मे सो जाएगे। ऐसा अवसर बार-बार कब आएगा!' उनके मुख से भक्ति मुखरित होकर व्यवहार में उतरना चाहती थी पर आचार्यश्री ने उत्तर दिया, 'रविवार को राजियावास के पचायत सम्मेलन मे भाग लेना निश्चित हो गया है, इस-लिए ठहर नही सकता।' भाइयो की आन्तरिक भावना अब भी शात नही हुई वे प्रार्थना करते ही रहे जब तक वहाँ से विहार नही हुआ। उनके मन में एक ही लालसा थी कि आचार्यश्री रविवार तक यहा विराजे।

१७ ५ ६२ रात को श्री जैन युवक सघ की ओर से प्रवचन तथा प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम रखा गया। प्रवचन का विषय था—'बुद्धिवादी युवक और धर्म'। सबसे पहले लालचद जी सिंघी (मत्री, श्री जैन युवक सघ) ने आज के कार्यक्रम की जानकारी दी। उनके बाद चन्दूलालजी कर्नावट (अध्यक्ष, श्री जैन युवक सघ) ने अपनी सस्था का परिचय दिया और मुनिश्री नथमलजी को भाषण देने के लिए निवेदन किया। विषय पर बोलते हुए मुनिश्री नथमलजी ने कहा—'आपातत विषय बडा बेमेल सा लगता है। बुद्धिवादी युवक और धर्म का भला क्या मेल? फिर भी विषय रखा है तो उसका मेल बिठाना ही चाहिए। लगता नही कि बुद्धि और धर्म मे कोई विरोध है। लोग समझते है कि उनमे विरोध है। इसलिए अपने आपको बुद्धिवादी-माननेवाला धर्म से दूर भागता है। इस समझ मे थोड़ा परिवर्तन लाना जरूरी है।

जिसके प्रयोजन और परिणाम की व्याख्या नही होती वह बुद्धि से अगम्य हो सकता है। किन्तु धार्मिक प्रवृत्ति के प्रयोजन और परिणाम की बुद्धि-सगत व्याख्या है, इसलिए यह बुद्धि से अगम्य नही है, अबौद्धिक भी नही है। यह भी सच है कि धर्म केवल बुद्धिगम्य भी नही है। धर्म क्या, दुनिया की कोई भी वस्तु बुद्धिगम्य नही होती।

धर्म का प्रयोजन है आत्मोदय और परिणाम भी, वही प्रयोजन आदि मे होता है और परिणाम निष्पत्ति मे। जन साधारण के लिए धर्म श्रद्धागम्य होता है और बौद्धिको के लिए बुद्धिगम्य भी। जैन-परम्परा मे चातुर्मास मे अधिक तपस्या की जाती है। एक प्राकृतिक चिकित्सक ने लिखा कि यह बहुत ही वैज्ञानिक है। सावन-भादो मे बादल छाए रहते हैं। उस समय अग्नि मद होती है, उपवास करना बहुत लाभप्रद होता है।

रात्रि-भोजन का त्याग भी बहुत व्यावहारिक है। सूर्यास्त के बाद भोजन परिपाक वैसा नही होता जैसा दिन मे होता है।

मासाहार करना नरक का कारण है—यह श्रद्धालुओ के लिए गम्य हो सकता है, पर आज इस विषय पर अनेक दृष्टियो से विचार किया जा चुका है। मनुष्य मूलत मासाहारी नहीं है। शाकाहारी और मासाहारी की शरीर-रचना भी सदृश नही होती।

धर्म को बौद्धिक बनाने की जरूरत नही है। उसे आत्मा से हटाकर बुद्धि के आसन पर बिठाने की जरूरत नही है। परन्तु उसके बुद्धिगम्य रूप और व्यावहारिक या प्रासगिक परिणामो से अनभिज्ञ रहना भी उचित नही है।

धर्म हमे श्रद्धा से ही नही, बुद्धि और तर्क से भी प्राप्त होना चाहिए। वैसे तो मैं श्रद्धा और तर्क को एकान्तत भिन्न नही मानता। बुद्धि और क्या है? श्रद्धा का उत्कर्ष ही तर्क है। उसका समसूत्र ही तर्क है। हमारे तर्क उसी ओर झुकते हैं, जहाँ श्रद्धा प्रबल होती है।

जो अनेकान्त दृष्टिवाले है उन्हे एकान्त मे विश्वास नही करना चाहिए। श्रद्धा और बुद्धि का विभक्त करना एकान्त दृष्टिकोण है, वह निर्दोष नही है। कोरी श्रद्धा से अतिक्रमण करनेवाले उतना लाभ नहीं

उठा पाते तो कोरी बुद्धि से उसकी उपेक्षा करनेवाले भी उससे लाभ नहीं उठा पाते। धर्म का सर्वाधिक बुद्धिगम्य रूप है—मानसिक सन्तुलन। मानसिक असन्तुलन आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है। शेष सब वस्तुओं से सम्पन्न व्यक्ति भी अपने मानसिक असन्तुलन से दुःखी बन जाते हैं। धर्म या साम्ययोग के बिना मानसिक सन्तुलन प्राप्य नहीं है।

आचार्यश्री ने धर्म की बुद्धिगम्य व्याख्या के द्वारा हजारों बुद्धिवादियों को धर्मोन्मुख किया है। आचार्यश्री धर्म के इस पक्ष को दृढ़ता से स्पष्ट करते हैं कि जो धर्म वर्तमान जीवन को पवित्र नहीं बनाता, उससे परलोक भी पवित्र नहीं बनता। सही अर्थ में धर्म वही है, जिससे इहलोक और परलोक दोनों पवित्र बनें।

धर्म जीवन के लिए श्वास से भी अधिक आवश्यक है। उसे कोई कैसे छोड़ सकता है? धर्म अणु से भी अधिक सूक्ष्म है। सम्यक् व्याख्या के बिना उसे कोई कैसे पकड़ सकता है? धर्म की आराधना करनेवाले आज भी कम नहीं हैं। कम हैं—धर्म की बुद्धिगम्य व्याख्या करनेवाले।'

भाषण के अनन्तर प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम रहा। प्रश्नोत्तर बुद्धिवाद से सम्बन्धित थे और युवकों की भावना का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उनमें से कतिपय प्रश्न और समाधान ये हैं

प्रश्न—क्या कारण है कि जिन्हें हम केवल भौतिकवादी कहते हैं वे तो चन्द्रलोक में जाने का प्रयत्न कर रहे हैं और अध्यात्मवादी दृष्टिकोण रखने वाले पृथ्वी की स्थिति को भी नहीं पहचानते?

उत्तर—आत्मवादी के लिए आत्मा तक पहुंचना आवश्यक है। उनकी गति बाहर की अपेक्षा अन्तर की ओर अधिक होना चाहिए। अध्यात्मवादी को पृथ्वी का ज्ञान नहीं होता ऐसा तो नहीं है किन्तु जिन्हें अध्यात्मवादी कहा जाता है वे सब अध्यात्मवादी ही हैं यह कहना कठिन है।

प्रश्न—जिस प्रकार पुरानी परम्परा के लोग धर्म में श्रद्धा रखकर तप करते थे वह केवल भार रूप साबित हुआ। उसी प्रकार दैहिक कार्य के लिए किया गया धर्म आत्मा को सन्तुष्ट कर सकेगा या नहीं?

उत्तर—दैहिक कार्य के लिए किये जानेवाला तप आत्मा को सन्तुष्ट नही कर सकता। अध्यात्मवादी दृष्टिकोण यह है कि धर्म केवल आत्मा की पवित्रता के लिए ही करना चाहिए। श्रद्धापूवक किया गया तप भार-भूत नही होता किन्तु अज्ञानपूर्वक किया गया तप पर्याप्त लाभदायी नही होता।

प्रश्न—अध्यात्मवादी का सबसे बडा त्याग क्या आत्मत्याग है ?

उत्तर—अनात्म-त्याग ही सबसे बडा त्याग है। आत्मा का त्याग नहीं, उसकी उपलब्धि होनी चाहिए।

प्रश्न—धर्म श्रद्धा पर निभर है या विश्वास पर ?

उत्तर—धर्म पवित्रता पर निर्भर है। श्रद्धा या विश्वास धर्म के साधन हैं। श्रद्धालु और विश्वासशील व्यक्ति ही धर्म की आराधना मे सफल हो सकता है। इस दृष्टि से उसे श्रद्धा-निर्भर या विश्वास-निर्भर भी कहा जा सकता है।

प्रश्न—आत्मा व धर्म का कहा तक सम्वन्ध है ? क्या आत्मा अमर है ?

उत्तर—आत्मा व धर्म का सम्बन्ध आदि से अन्त तक है। आत्मा के शुद्ध रूप से भिन्न कोई धर्म नही है। आदि मे जो प्रयोजन होता है वही अन्त मे स्वभाव हो जाता है। धर्म का प्रयोजन है आत्मशुद्धि और परिणामकाल मे धर्म आत्मा से अभिन्न हो जाता है।

आत्मा ही क्या, ससार के सभी पदार्थ अमर हैं और सभी मरणशील हैं। एकान्तत अमर या मरणशील कुछ भी नही है।

प्रश्न—इस बुद्धिवाद का अन्त कहाँ है ?

उत्तर—बुद्धिवाद का अन्त आत्मोदय मे होता है। आत्मोदय यानी वीतरागता या साम्यभाव। जब तक साम्य का विकास नही होता तब तक बुद्धि के वाद का अन्त नही होता। विपमता मे तर्क का जाल फैलता ही जाता है। साम्य मे कोई तर्क नही होता।

प्रश्न—क्या सम्यक् ज्ञान बुद्धिगम्य नही है ?

उत्तर—सम्यक् ज्ञान बुद्धिगम्य अवश्य है, किन्तु बुद्धि से पहले आत्मा मे गम्य है। जो आत्मगम्य होकर बुद्धिगम्य होता है वही सम्यक्ज्ञान है। शेप ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहना कठिन है। सम्यक् ज्ञान बुद्धि के कठघरे का बन्दी भी नही, वह उससे बहुत आगे भी है।

प्रश्न—धर्म का सही प्रयोजन, प्रवृत्ति और परिणाम क्या है?

उत्तर—धर्म का सही प्रयोजन है—आत्मोदय या पूर्ण स्वतन्त्रता। क्षमा, सत्य, सन्तोष आदि की प्रवृत्ति स्वय धर्म है। उसका परिणाम वही है जो प्रयोजन है। साधनाकाल मे जो प्रयोजन होता है वही सिद्धिकाल मे परिणाम हो जाता है।

प्रश्न—मासाहारी नरक मे ही क्यो जाता है?

उत्तर—मासाहारी नरक मे ही जाता है ऐसा कोई नियम नही है। हा, मासाहार नरक का एक कारण अवश्य है।

प्रश्न—बुद्धिवाद का सही अर्थ क्या है?

उत्तर—बुद्धिवाद का अर्थ है—कोरे व्यवहार का अवलम्बन। वस्तु-सत्य इससे भी आगे होता है। जहाँ व्यवहार वस्तु-सत्य का साथ नही छोडता वहाँ सत्य का द्वार खुला रहता है। और जहा ये दोनो अलग-अलग हो जाते है वहाँ बुद्धिवाद भयानक रूप ले लेता है।

प्रश्न—श्रद्धा का चरम रूप ही तर्क है तथा बुद्धि और श्रद्धा भी एक ही चीज है, यह कैसे सम्भव है? बुद्धिवाद का सम्बन्ध दिमाग से है या हृदय से?

उत्तर—श्रद्धा का चरम रूप ही तर्क है—यह मैं इस अर्थ मे कहता हू कि जिस विषय मे हमारी श्रद्धा प्रबल होती है उसी विषय मे हमारे अपने तर्क दौडते हैं। जहाँ हमारी रुचि श्रद्धा या मनोभिनिवेश नही होता वहाँ हमारे तर्क स्पष्टग्राही और बलवान नही होते। स्पष्ट तर्क वही होता है जो श्रद्धा के प्रकर्ष मे से फूटता है। एक आत्मवादी का तर्क आत्म-स्पर्शी होता है और अनात्मवादी का तर्क अनात्म-स्पर्शी। दोनो के विरोधी स्पर्शो का हेतु उनकी अपनी-अपनी ही श्रद्धा है। श्रद्धा केवल अस्तित्व मे ही नही

होती, वह नास्तित्व मे भी होती है।

दिमाग और हृदय को सर्वथा पृथक् नही किया जा सकता, वे दोनो एक ही सस्थान के अभिन्न अग है। उनके कार्य मे कुछ भेद है तो अभेद भी है। पैर मे कोई काँटा चुभता है तो उसकी अनुभूति केवल पैर को ही नही होती, ठेठ सिर तक होती है। नाडी सस्थान का जहाँ इतना तादात्मय है वहाँ बुद्धि और श्रद्धा को एक दृष्टि से एक कहना भी अनुचित नही है।

श्रद्धा की फल-परिणति बुद्धि मे होती है और बुद्धि की गति श्रद्धा मे से होती है। इस दृष्टि से बुद्धि और श्रद्धा का अन्योन्याश्रित एकत्व है।

प्रश्न—अन्धविश्वासी की शुद्ध परिभाषा क्या है?

उत्तर—बहुलाश मे अन्धविश्वास की शुद्ध परिभाषा है—व्यक्ति का अज्ञान। जहा सत्य की अनन्तता है वहा उसके बुद्धिगम्य छोटे-से भाग को छोड शेष विपुल सत्य को अन्धविश्वास की परिधि मे बाध देना बहुत बडा दुस्साहास है। हमे जितना सत्य ज्ञात हो उसे ज्ञात कहे यह उचित है किन्तु जो अज्ञात है वह सारा अन्धविश्वास ही है यह कहना उचित नही। हमारा दृष्टिकोण अनन्त सत्य की उपलब्धि के लिए अनाग्रही और अन्वेषी होना चाहिए।

अन्त मे आचायश्री ने अपने सक्षिप्त प्रवचन मे युवको को मार्गदर्शन दिया।

शभुगढ से विहार कर आचार्यश्री सग्रामगढ पधारे। यह सग्रामगढ चार मील की दूरी पर है। कहते है सन १९४३-४४ मे पास ही बहने वाली खारी नदी मे बहुत जोर से बाढ आयी। उस बाढ से आसपास के क्षेत्र काफी प्रभावित हुए थे। धन-क्षति के साथ-साथ अनेक मनुष्यो ने भी उस समय अपने प्राण गवा दिये थे। सग्रामगढ भी उस बाढ से अछूता नही रहा। कच्चे मकान तो गिरे ही, कुछ पक्के मकान भी ढह पडे। उस के बाद बसनेवाले गाँव के दक्षिण पार्श्व मे आकर बस गये। इस प्रकार गाँव स्वय दो भागों मे बट गया। आचायश्री यहाँ राजकीय माध्यमिक

उत्तर—सम्यक् ज्ञान बुद्धिगम्य अवश्य है, किन्तु बुद्धि से पहले आत्मा मे गम्य है। जो आत्मगम्य होकर बुद्धिगम्य होता है वही सम्यक्ज्ञान है। शेप ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहना कठिन है। सम्यक् ज्ञान बुद्धि के कठघरे का वन्दी भी नही, वह उससे वहुत आगे भी है।

प्रश्न—धर्म का सही प्रयोजन, प्रवृत्ति और परिणाम क्या है?

उत्तर—धर्म का सही प्रयोजन है—आत्मोदय या पूर्ण स्वतन्त्रता। क्षमा, सत्य, सन्तोप आदि की प्रवृत्ति स्वय धर्म है। उसका परिणाम वही है जो प्रयोजन है। साधनाकाल मे जो प्रयोजन होता है वही सिद्धिकाल मे परिणाम हो जाता है।

प्रश्न—मासाहारी नरक मे ही क्यो जाता है?

उत्तर—मासाहारी नरक मे ही जाता है ऐसा कोई नियम नहीं है। हा मासाहार नरक का एक कारण अवश्य है।

प्रश्न—वुद्धिवाद का सही अर्थ क्या है?

उत्तर—वुद्धिवाद का अर्थ है—कोरे व्यवहार का अवलम्वन। वस्तु-सत्य हमसे भी आगे होता है। जहाँ व्यवहार वस्तु-सत्य का साथ नहीं छोडता वहाँ सत्य का द्वार खुला रहता है। और जहा ये दोनो अलग-अलग हो जाते है वहाँ बुद्धिवाद भयानक रूप ले लेता है।

प्रश्न—श्रद्धा का चरम रूप ही तर्क है तथा बुद्धि और श्रद्धा भी एक ही वीज है, यह कैसे सम्भव है? वुद्धिवाद का सम्वन्ध दिमाग से है या हृदय से?

उत्तर—श्रद्धा का चरम रूप ही तर्क है—यह मैं इस अर्थ मे कहता हू कि जिस विपय मे हमारी श्रद्धा प्रवल होती है उसी विपय मे हमारे अपने तर्क दौडते हैं। जहाँ हमारी रूचि श्रद्धा या मनोभिनिवेश नही होता वहाँ हमारे तर्क स्पष्टग्राही और वलवान नही होते। स्पष्ट तर्क वही होता है जो श्रद्धा के प्रकर्प मे से फूटता है। एक आत्मवादी का तर्क आत्म-स्पर्शी होता है और अनात्मवादी का तर्क अनात्म-स्पर्शी। दोनो के विरोधी स्पर्शो का हेतु उनकी अपनी-अपनी ही श्रद्धा है। श्रद्धा केवल अस्तित्व मे ही नहीं

होती, वह नास्तित्व मे भी होती है।

दिमाग और हृदय को सर्वथा पृथक् नही किया जा सकता, वे दोनो एक ही सस्थान के अभिन्न अग है। उनके कार्य मे कुछ भेद है तो अभेद भी है। पैर मे कोई काटा चुभता है तो उसकी अनुभूति केवल पैर को ही नही होती, ठेठ सिर तक होती है। नाडी सस्थान का जहा इतना तादात्मय है वहाँ बुद्धि और श्रद्धा को एक दृष्टि मे एक कहना भी अनुचित नही है।

श्रद्धा की फल-परिणति बुद्धि मे होती है और बुद्धि की गति श्रद्धा मे से होती है। इस दृष्टि से बुद्धि और श्रद्धा का अन्योन्याश्रित एकत्व है।

प्रश्न—अन्धविश्वासी की शुद्ध परिभाषा क्या है ?

उत्तर—बहुलाश मे अन्धविश्वास की शुद्ध परिभाषा है—व्यक्ति का अज्ञान। जहा सत्य की अनन्तता है वहा उसके बुद्धिगम्य छोटे-से भाग को छोड शेष विपुल सत्य को अन्धविश्वास की परिधि मे बाध देना बहुत बडा दुस्साहस है। हमे जितना सत्य ज्ञात हो उसे ज्ञात कहे यह उचित है किन्तु जो अज्ञान है वह सारा अन्धविश्वास ही है यह कहना उचित नही। हमारा दृष्टिकोण अनन्त सत्य की उपलब्धि के लिए अनाग्रही और अन्वेषी होना चाहिए।

अन्त मे आचार्यश्री ने अपने सक्षिप्त प्रवचन मे युवको को मार्गदर्शन दिया।

शभुगढ से विहार कर आचार्यश्री सग्रामगढ पधारे। यह सग्रामगढ चार मील की दूरी पर है। कहते है सन १९४३-४४ मे पास ही बहने वाली खारी नदी मे बहुत जोर से बाढ आयी। उस बाढ मे आसपास के क्षेत्र काफी प्रभावित हुए थे। धन-क्षति के साथ-साथ अनेक मनुष्यो ने भी उस समय अपने प्राण गवा दिये थे। सग्रामगढ भी उस बाढ से अछूता नही रहा। कच्चे मकान तो गिरे ही, कुछ पक्के मकान भी ढह पडे। उस के बाद बसनेवाले गाँव के दक्षिण पार्श्व मे आकर बस गये। इस प्रकार गाँव स्वय दो भागो मे बट गया। आचार्यश्री यहाँ राजकीय माध्यमिक

विद्यालय मे ठहरे। विद्यालय दोनो भागो के मध्य मे होने से दोनो ओर के लोगो के लिए सुविधाजनक रहा।

रात की प्रार्थना के वाद मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन' ने भजन सुनाया। फिर मुनिश्री दुलहराजजी के भाषण के बाद आचार्यश्री का भाषण हुआ। आसपास के ग्रामीण लोग सैकडा की सख्या मे उपस्थित थे।

२३ ५ ६२ स्थानीय लोगो के अमित उत्साह और अत्याग्रह से आचार्यश्री को आज भी मध्याह्न तक यहीं रुकना पडा।

शाम को विहार कर वहाँ से चार मील दूर जेतगढ आए। बीच मे रूप-नगर पडता था। वहाँ के निवासियो ने आचार्यश्री को पन्द्रह-बीस मिनट तक रोका। मेवाड मे पास-पास ही अनेक गाँव बसे होने के कारण प्रत्येक गाँव को परसना आचार्यश्री के लिए कठिन पडता है। इधर हरेक गाँव आचार्यश्री के पदार्पण के लिये लालायित है। इसलिए जहाँ तक बन पडता है वे आचार्यश्री को अपने यहाँ ले जाने की कोशिश करते हैं। आचार्यश्री भी धूप-छाँव कुछ भी न गिनते हुए हर गाँव मे पहुँचना चाहते हैं। फिर भी काफी गाँव वचित रह ही जाते है। मेवाड के लोग आचार्यश्री के प्रति अत्यन्त निष्ठाशील तो हैं ही, पर साथ ही साथ श्रमशील भी। जहाँ भी आचार्यश्री का पधारना सभव नही हो पाता वहाँ के सैकडो-सैकडो ग्रामीण आचार्यश्री का दर्शन व प्रवचन सुनने के लिये आते हैं।

जेतगढ मे ठहरने का स्थान गाँव से कुछ दूर होने के कारण अधिक सख्या मे लोग नहीं आ सके। फिर भी कुछ किसान भाई आए। मुनिश्री सम्पतमलजी के भाषण के बाद आचार्यप्रवर का प्रवचन हुआ।

२४ ५ ६२ जेतगढ से छह मील दूर वदनोर मे आचार्यश्री का भव्य स्वागत किया गया। टूटे-फूटे मकानो के खण्डहर, विशाल राजमहल अपने मे अपनी प्राचीन समृद्धि आज भी लिये हुए है। कुछ वर्षो पूर्व यह कस्बा विकास के पथ पर था, पर आज सामान्य स्थिति पर ही है।

पारसजी राका के सयोजकीय वक्तव्य के बाद गिरधारीलालजी व्यास एम० एल० ए० ने आचार्यश्री का अभिनन्दन किया। इसके अतिरिक्त

टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज के प्राध्यापक श्री रूपचन्दजी, श्री रामनारायणजी वर्मा और श्रीदिलदार खां ने अपने भाषण व कविताएं पढ़ीं। फिर आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

दोपहर मे स्थानीय युवकों के बीच तेरापंथ की मान्यताओं को लेकर करीब एक घंटे तक प्रश्नोत्तर चले।

२५ ५ ६२ बदनोर से करीब छह मील पडासोली में आचार्यश्री का आगमन हुआ। सडक पर स्थित नई पडासोली में भी वहां के किसान व अन्य भाइयों ने रोकना चाहा। लेकिन ठहरने का निर्णय पुरानी पडासोली मे ही हो चुका था। अत आचार्यश्री वहां नही रुक सके। फिर भी भाइयो की अन्तर भावना परखते हुए आचार्यश्री ने कुछ समय तक वहां उपदेश सुनाया।

महोत्सव के समय पर नहीं पहुंचनेवाले साधु-साध्वियो के सिंघाडो का आज से आगमन शुरू हो गया। आचार्यप्रवर के नमोक्कार मन्त्र के बाद मुनिश्री बालचन्दजी व नवरत्नमलजी ने आचार्यश्री के दर्शन करने के उपलक्ष्य मे अपने हर्षोद्गार व्यक्त किए। फिर आचार्यश्री ने प्रवचन फरमाया। रात को व्याख्यान के बाद काफी देर तक दान-दया सम्बन्धी तत्त्व-चर्चा चलती रही।

२६ ५ ६२ जिस क्षेत्र के लिये आचार्यश्री ने गंगाशहर से ही घोषणा कर दी थी उस आसींद क्षेत्र मे आचार्यश्री का आगमन आज हुआ। वहाँ के निवासियो मे आचार्यश्री के आगमन से जहां एक ओर उत्साह व कार्यशीलता टपक रही थी वहाँ दूसरी ओर मेवाड के अनेक स्थानो के हजारो व्यक्ति भी आचार्यश्री के स्वागत के लिए उतावले दिखाई दे रहे थे। आसींद और पडासोली के बीच का चार मील का मार्ग एक रूप दिखाई दे रहा था। सैकडो की संख्या मे ग्रामीण भाई और बहनो की कतारें आचार्यश्री की सार्वजनिकता का परिचय दे रही थी। पचीस वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद आसींद-निवासी आचार्यश्री को अपने बीच पाकर फूले नही समा रहे थे। इस प्रकार बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण मे

आचार्यश्री का आसीद-प्रवेश हुआ।

शिक्षण-सस्था की वहनो द्वारा उच्चरित मगल-गीतिका से स्वागत-कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। आचार्यश्री के आगमन पर केवल वाचिक ही स्वागत न हो, इसे ध्यान मे रखते हुए आसीद-निवासी श्री कवरलालजी गोखरु ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार किया और ४३ वहनो ने मृतक के पीछे वारह दिनो के वाद प्रथा रूप से नही रोने का सकल्प किया। श्री चादमल दूगड के सयोजकीय वक्तव्य के वाद राजस्थान विधान सभाई सदस्य और पचायत समिति के अधिकारी श्री गिरधारीलालजी व्यास ने अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। विकास-अधिकारी श्री जगदीशप्रसाद दीक्षित, स्थानीय हायर सेकडरी स्कूल के प्राध्यापक और माधवलालजी अग्रवाल ने भी आचार्यश्री के अभिनन्दन मे अपने विचार प्रकट किये।

मुनिश्री वालचन्दजी (आसीद) ने आचार्य के मेवाड-आगमन के उपलक्ष मे प्रतिदिन एक समय से अधिक भोजन नही करने का जीवन-पर्यन्त सकल्प किया। सचमुच ही दूसरो के लिए यह एक अनुकरणीय त्याग था। मुनिश्री किशनलालजी ने इस अवसर पर अपना कहानी-सग्रह 'कुछ सीप और कुछ मोती' आचार्यश्री को भेंट किया। यद्यपि स्वागत मे वोलने के लिए अन्य काफी वक्ता उत्सुक थे, किन्तु अधिक समय हो जाने से अवशिष्ट कार्यक्रम दोपहर के लिए स्थगित कर दिया गया। तत्पश्चात् आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

आचार्यश्री ने इस अवसर पर अपना विशेप प्रवचन देते हुए कहा—"मैं पचीस वर्प की लम्वी अवधि के वाद आज यहाँ आया हूँ। और मुझे यहाँ लाने मे यहाँ के लोगो को काफी आयास भी उठाना है। पर भाइयो! 'मोटे घर वेटी दीधी, मिलवा का भी सासा'—यह तो हमारे व्यापक वनने का परिणाम है। हमने अपना दायरा जितना अधिक वटाया, समय का अभाव उतना ही वढ गया।"

अपने सामने प्रत्येक वर्ग के लोगो को देखते हुए आचार्यश्री ने कहा—'मैं सवसे पहले मानव हूँ। इसलिये हर मानव के साथ मेरा प्यार है। आप

नहीं समझ सकते कि इन गरीब किसानों के साथ बैठने, इनसे बातचीत करने, इनके जीवन की बुराइयां दूर करने के लिए प्रयत्न करने में मुझको कितना आनन्द मिलता है। फटे-पुराने कपड़ों से कभी इन्सान का माप नहीं आंका जा सकता। वस्तुतः भारत की सही तसवीर तो हम इन छोटे-छोटे गावों में ही मिलती है। यद्यपि गावों का जीवन सुसंस्कृत नहीं है, फिर भी इनके जीवन में जो लचीलापन है, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा-भाव है वह शहरों में बहुत कम देखने को मिलता है। अभी परसों ही उपदेश के पश्चात् मैंने जब किसानों को अपनी बुराइयां छोड़ने के लिए आह्वान किया तो एक सत्तर वर्ष का बूढ़ा उठा, जिसने कहा कि आचार्यजी! जब से मुझे समझ पड़ी है तब से लेकर आज तक मैं तमाखू पीता आया हूं। आज आपकी बात मानकर मैं इस चिलम और तमाखू का परित्याग करता हूं। सचमुच ही त्याग का यह अनूठा उदाहरण है। यह निश्छलता और पवित्रता गावों के लोगों में आज भी मूर्तिमती है।'

प्रवचन को दूसरा मोड़ देते हुए आपने कहा—'मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए, केवल सच्चा इन्सान चाहिए। आज जहां अन्य सब चीजों का निर्माण हो रहा है, वहां अच्छे मनुष्यों का अभाव होता चला जा रहा है। बिजली, पानी आदि जहां सुगम हो रहे हैं वहां अच्छे आदमी मिलने दुर्लभ हो रहे हैं।'

मेवाड़-आगमन की ओर निर्देश करते हुए आचार्यश्री ने फरमाया—'मैं चाहता हूं कि मेरे दिल की आवाज जन-जन के दिलों तक पहुंचे। मैं अभिनन्दन-पत्रों से खुश होनेवाला नहीं हूं। मैं नहीं चाहता कि स्थान-स्थान पर मुझे ये अभिनन्दन-पत्र मिलें। हार्दिक भावनाएं मौखिक रूप से या कोई एक पत्र के द्वारा भी व्यक्त की जा सकती हैं। फिर सैकड़ों की संख्या में उनका प्रकाशन हो, यह सिवाय धन के व्यय के विशेष क्या मूल्य रखता है। मेवाड़वासी इसका पूरा-पूरा ध्यान रखेंगे, यह मुझे पूर्ण विश्वास है।

नया मोड़ आपके यहां से प्रारम्भ हुआ। इस ओर भी अब आपका

आचार्यश्री का आसीद-प्रवेश हुआ।

शिक्षण-सस्था की बहनो द्वारा उच्चरित मगल-गीतिका से स्वागत-कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। आचार्यश्री के आगमन पर केवल वाचिक ही स्वागत न हो, इसे ध्यान मे रखते हुए आसींद-निवासी श्री कवरलालजी गोखरू ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार किया और ४३ बहनो ने मृतक के पीछे बारह दिनो के बाद प्रथा रूप मे नही रोने का सकल्प किया। श्री चादमल दूगड के सयोजकीय वक्तव्य के बाद राजस्थान विधान सभाई सदस्य और पचायत समिति के अधिकारी श्री गिरधारीलालजी व्यास ने अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। विकास-अधिकारी श्री जगदीशप्रसाद दीक्षित, स्थानीय हायर सेकडरी स्कूल के प्राध्यापक और माधवलालजी अग्रवाल ने भी आचार्यश्री के अभिनन्दन मे अपने विचार प्रकट किये।

मुनिश्री बालचन्दजी (आसींद) ने आचार्य के मेवाड-आगमन के उपलक्ष मे प्रतिदिन एक समय से अधिक भोजन नही करने का जीवन-पर्यन्त सकल्प किया। सचमुच ही दूसरो के लिए यह एक अनुकरणीय त्याग था। मुनिश्री किशनलालजी ने इस अवसर पर अपना कहानी-सग्रह 'कुछ सीप और कुछ मोती' आचार्यश्री को भेंट किया। यद्यपि स्वागत मे बोलने के लिए अन्य काफी वक्ता उत्सुक थे, किन्तु अधिक समय हो जाने से अवशिष्ट कार्यक्रम दोपहर के लिए स्थगित कर दिया गया। तत्पश्चात् आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

आचार्यश्री ने इस अवसर पर अपना विशेष प्रवचन देते हुए कहा—"मैं पचीस वर्ष की लम्बी अवधि के बाद आज यहाँ आया हू। और मुझे यहाँ लाने मे यहाँ के लोगो को काफी आयास भी उठाना है। पर भाइयो! 'मोटे घर बेटी दीधी, मिलवा का भी सासा'—यह तो हमारे व्यापक बनने का परिणाम है। हमने अपना दायरा जितना अधिक बढाया, समय का अभाव उतना ही बढ गया।"

अपने सामने प्रत्येक वर्ग के लोगो को देखते हुए आचार्यश्री ने कहा—'मैं सबसे पहले मानव हूँ। इसलिये हर मानव के साथ मेरा प्यार है। आप

नही समझ सकते कि इन गरीव किसानो के साथ वैठने, इनसे वार्तालाप करने, इनके जीवन की वुराइया दूर करने के लिए प्रयास करने मे मुझको कितना आनन्द मिलता है। फटे-पुराने कपडो से कभी इन्सान का मोल नही आँका जा सकता। वस्तुत भारत की सही तसवीर तो हमे इन छोटे-छोटे गाँवो मे ही मिलती है। यद्यपि गाँवों का जीवन सुसस्कृत नही है, फिर भी इनके जीवन मे जो लचीलापन है, गुरूजनो के प्रति श्रद्धा-भाव है, वह शहरो में वहुत कम देखने को मिलता है। अभी परसो ही उपदेश के पश्चात् मैंने जव किसानों को अपनी वुराइयाँ छोडने के लिए आह्वान किया तो एक सत्तर वर्ष का वूढा उठा, जिसने कहा कि आचार्यजी ! जव से मुझे समझ पडी है तव से लेकर आज तक मैं तमाखू पीता आया हूँ। आज आपकी वात मान-कर मैं इस चिलम और तमाखू का परित्याग करता हू। सचमुच ही त्याग का यह अनूठा उदाहरण है। यह निश्छलता और पवित्रता गाँवो के लोगो मे आज भी मूर्तिमती है।'

प्रवचन को दूसरा मोड देते हुए आपने कहा—'मुझे और कुछ भी नही चाहिए, केवल सच्चा इन्सान चाहिए। आज जहाँ अन्य सव चीजो का निर्माण हो रहा है, वहाँ अच्छे मनुष्यो का अभाव होता चला जा रहा है। विजली, पानी आदि जहाँ सुगम हो रहे हैं वहाँ अच्छे आदमी मिलने दुर्लभ हो रहे हैं।'

मेवाड-आगमन की ओर निर्देश करते हुए आचार्यश्री ने फरमाया—'मैं चाहता हूँ कि मेरे दिल की आवाज जन-जन के दिलो तक पहुचे। मै अभिनन्दन-पत्रो से खुश होनेवाला नही हूँ। मैं नही चाहता कि स्थान-स्थान पर मुझे ये अभिनन्दन-पत्र मिलें। हार्दिक भावनाए मौखिक रूप से या कोई एक पत्र के द्वारा भी व्यक्त की जा सकती हैं। फिर सैकडो की सख्या मे उसका प्रकाशन हो, यह सिवाय धन के व्यय के विशेष क्या मूल्य रखता है। मेवाडवासी इसका पूरा-पूरा ध्यान रखेंगे, यह मुझे पूर्ण विश्वास है।

नया मोड आपके यहाँ से प्रारम्भ हुआ। उस ओर भी अव आपको

विशेप सजग होना है। पिछला वर्ष आपके सामने है। उसको ध्यान मे रखते हुए इस वर्प उसमे विशेप सक्रियता की आवश्यकता है। मैं कभी-कभी यह भी सुनता हूँ कि लोग उसमे गलतियाँ निकालने की सोच रहे है, यह सर्वथा गलत है। आप अपने पथ से खिसकें, यह अनुचित है।' अन्त मे भावात्मक एकता पर वल देते हुए आचार्यश्री ने भापण का उपसहार किया।

दोपहर मे राजस्थान गाधी-निधि के सचालक और प्रसिद्ध सर्वोदयी कार्यकर्ता श्री केशरपुरी गोस्वामी ने राजस्थान सर्वोदय मडल की ओर से चल रहे प्रायोगिक नशावन्दी कार्यक्रम के वारे मे आचार्यश्री से वातचीत की। शरावबन्दी आन्दोलन की चर्चा करते हुए पुरीजी ने कहा—'मैं अणुव्रत आन्दोलन से बहुत प्रभावित हूँ। आन्दोलन की ओर से हृदय-परिवर्तन का जो कार्य हो रहा है, वह अत्यन्त सराहनीय है। इस वार हमारे कार्यकर्ताओ ने नशावन्दी का जो आन्दोलन प्रारम्भ किया है उस दृष्टि से हम ऐसा सोचते है कि *अणुव्रत-आन्दोलन और सर्वोदय—दोनो के कार्यकर्ता* सगठित रूप से यदि यह कार्य करें तो हमे अपने लक्ष्य मे अधिक सफलता मिलेगी।'

आचार्यश्री ने नशावन्दी की रूपरेखा को ध्यान मे रखते हुए कहा—'पुरीजी! जो कार्य आपके द्वारा आज प्रारम्भ हुआ है, हमारे साधु-साध्वी उसे वर्पो से कर रहे है। अगर उसका व्यवस्थित आकडा होता तो आपको पता चलता कि हर वर्ष इस तरह का कार्य कितना और कहाँ हो रहा है। फिर यह भी वहुत उचित है कि सर्वोदयी और अणुव्रती कार्यकर्ता मिलकर इस दृष्टि से प्रान्त-व्यापी कार्य करें। लेकिन इस सम्बन्ध मे सफलता तव ही मिल सकती है जवकि कार्यकर्ता वेतन-भोगी न होकर सेवा-भाव से और एकनिष्ठ होकर कार्य करें। हमारे साधु-साध्वी अधिक सख्या मे राजस्थान के क्षेत्र मे ही कार्य करते हैं, जिनका भी उपयोग किया जा सकता है।'

पुरीजी ने कहा कि सगठित रूप से कार्य करने के लिए हम समय-समय

पर आन्दोलन के कार्यकर्ताओ से बातचीत करते रहेगे और उदयपुर तक एक निश्चित निर्धारण करने का प्रयत्न करेंगे।

दोपहर मे मेवाड की ओर से देवेन्द्र कर्णावट, राजस्थान गाधी-निधि के सचालक श्री केशरपुरी गोस्वामी, प्रधानाध्यापक श्री मोहनलालजी ओझा, कानोड, श्री मदनमोहनजी व्यास, वरिष्ठ अध्यापक, चरू आदि ने आचार्यश्री का अभिनन्दन किया।

२७ ५ ६२ आज नये मोड का दूसरा अधिवेशन रखा गया। मेवाड अणुव्रत समिति द्वारा निर्धारित नये मोड के नियमो का वाचन हुआ। नियमो मे सशोधन की दृष्टि से भी विचार-विमर्श हुआ। सशोधन या नये आनेवाले प्रस्तावो को अन्तिम रूप देने के लिये यह निर्णय किया गया कि राजनगर, काकरोली, आसीद, भीलवाडा और अन्य-अन्य स्थानो के प्रतिनिधियो की एक समिति बना ली जाय और आचार्यश्री के उदयपुर चातुर्मास मे इन नये प्रस्तावो को अन्तिम रूप दे दिया जाय। श्री देवेन्द्र कर्णावट, गणेश कूकडा आदि के भाषण होने के पश्चात् आचार्यश्री का प्रेरणादायी भाषण हुआ।

उपस्थित लोगों के उल्लास और उत्कण्ठा से यह प्रतिध्वनित हो रहा था कि नये मोड ने सचमुच ही यहाँ के लोगो के जीवन मे एक बहुत बडा परिवर्तन ला दिया है। जिस परिवर्तन ने न केवल उनके जीवन को हल्का और सादा ही बनाया है, पर वर्षो से चली आ रही अन्धश्रद्धा और कुरूढियो से भी उनको मुक्त कर दिया है।

शाम के करीब चार बजे भारत के शिक्षामन्त्री डॉ० के० श्रीमाली आचार्यश्री के दर्शनार्थ आए। बातचीत के दौरान में उन्होने कहा कि आचार्यजी! मैं हमारी भारतीय सस्कृति को ध्यान मे रखते हुए आपके दर्शनो के लिए ही दिल्ली से यहाँ आया हूँ। फिर उन्होने सुझाव के रूप मे कहा कि मैंने एक बार मुनि नगराजजी से कहा था कि आप सन्त लोगो को मन्त्रियो आदि के पास नही आना-जाना चाहिए। हमारी भारतीय सस्कृति यह है कि वे स्वय आपके पास आएँ।

आचार्यश्री ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"इसके पीछे भी एक कारण है। उस समय स्थिति यह थी कि अधिकाश शिक्षित वर्ग साधु नाम से घृणा करने लगा था तब यह आवश्यक था कि व्यक्तिश उनके साथ सम्पर्क करके यह भ्रान्त धारणा मिटाई जाय।"

दिल्ली की एक घटना का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री ने फरमाया—"एक बार जैनेन्द्रकुमारजी ने काका कालेलकर से कहा कि यहाँ आचार्यजी आये हुए है। अगर आपको भी कभी बातचीत का मौका मिले तो अच्छा रहेगा। काका कालेलकर ने कहा कि सभी लोग आचार्यजी के पास ही जाते है या आचार्यजी भी किसी के पास जाते है ? जैनेन्द्रजी ने तत्काल उत्तर दिया कि ऐसी बात तो नही है कि सभी आचार्यजी के पास ही जाएँ और आचार्यजी किसी के यहाँ न जाएँ। आचार्यजी कल ही मेरे घर पर आये थे। यह सुनकर काकासाहब बहुत प्रभावित हुए और बोले—तब तो मैं भी अवश्य चलूगा।"

शिक्षा-प्रणाली की ओर सकेत करते हुए आचार्यश्री ने फरमाया—"शिक्षा के क्षेत्र मे जहाँ अन्यान्य प्रयोग चल रहे है वहाँ उसकी बुनियाद पर भी सोचा जाय, यह मुझे अत्यन्त आवश्यक लगता है। मैं सोचता हू उस दृष्टि से यदि कोई सर्वमान्य मानव आचार-संहिता तैयार की जाय और उसका शिक्षण, व्यवहार मे उपयोग किया जाय तो सचमुच ही राष्ट्र-निर्माण मे महत्त्वपूर्ण कार्य होगा।"

डॉ० श्रीमाली ने कहा—"आचार्यजी! यदि हमे हिन्दुस्तान की आत्मा को जीवित रखना है तो ऐसा ही करना होगा। राष्ट्र का सर्वागीण विकास केवल भौतिकता के आधार पर ही नही हो सकता। इस दृष्टि से भारत सरकार सोच रही है कि शिक्षा के साथ अध्यात्म और नीति विषयक प्रशिक्षण भी विद्यार्थियो को मिले और उसके लिये ऐसे स्वतन्त्र आन्दोलनो या विचारको की आवश्यकता है, जो किसी भी धर्म या सम्प्रदाय विशेष से न बँधे हो। अणुव्रत-आन्दोलन, अरविन्द विचार दर्शन आदि जो सम्प्रदाय भावना से दूर है और सार्वभौम तत्त्व है, उनको इस दृष्टि से

प्रोत्साहन मिलना चाहिए। मैं चाहूंगा कि आप अपने विचारो से भी हमे समय-समय पर लाभ देते रहे। श्री श्रीप्रकाशजी आदि भी इस सम्बन्ध मे काफी सक्रिय है। आप उन्हें भी अपने विचारो से अवगत कराते रहे।"

अणुव्रत आन्दोलन के विषय मे डॉ० श्रीमाली ने कहा—"आचार्य जी! मुझे अणुव्रत-आन्दोलन मे अत्यन्त विश्वास है और यह अपने ध्येय मे निश्चित सफल होगा। क्योंकि इसके पीछे अध्यात्म और सत-शक्ति लगी है। भारतीय जनता के दिलो मे सतो के प्रति आज भी अटूट आस्था है।"

तदनन्तर ज्येष्ठ बन्धु सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने फरमाया—"आचार्यश्री जनजागरण को ध्यान मे रखते हुए अपने स्वास्थ्य का बिलकुल ध्यान नही रखते। न धूप को देखते हैं और न छाँह को गिनते हैं। ऐसा लगता है मानो यह कार्य आपके जीवन का अभिन्न अग बन गया है।"

फिर आचार्यश्री ने सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी का डॉ० श्रीमाली को परिचय दिया।

२८ ५ ६२ आज प्रात मेवाड युवक सम्मेलन का कार्यक्रम रखा गया। सम्मेलन के बीच मे एक ऐसी घटना घटी कि जिसने उपस्थित जन-समुदाय में एक आश्चर्य और कौतुहल का वातावरण खडा कर दिया। बीस वर्षीय नवयुवक तेजमल बाफणा (आसीद) दम्पति ने खडे होकर आचार्यश्री से प्रार्थना की कि आप हमे आजीवन अब्रह्मचर्य का परित्याग दिला दीजिये। ऐसा देखकर जनता स्तब्ध-सी रह गई। दम्पति के अपूर्व त्याग का यह साहस देखकर एक ओर जहा लोगो के दिल बधाई दे रहे थे, वहा उनकी छोटी उम्र देखकर जनमानस करुणा मिश्रित भावी कल्पनाओ से गद्‌गद् था। जनता ने उन्हें समझाया, पर वे सकल्प पर दृढ रहे। कुछ लोगो ने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि आप इन्हे दस वर्ष तक का व्रत दिलवा दीजिये। जनमानस की आवाज ध्यान मे रखकर आचार्यश्री ने वैसा ही करना चाहा। पर देखते ही नवयुवक ने अपना आत्मबल बटोरा और बोला— 'आचार्यश्री! यदि आप हमारी अवस्था को ध्यान मे रखते

हुए परित्याग कराने मे हिचकिचाते हैं तो हम दोनो आपकी साक्षी से यह सकल्प करते हैं कि हम दोनो आजीवन ब्रह्मचर्य पालेंगे। हमारे पारस्परिक सम्बन्ध एक भाई और बहन के सम्बन्ध होगे।" समूचा जन-समुदाय इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर (देखकर) अवाक् था और दम्पति के इस अभूतपूर्व साहस के प्रति बधाई और मगल-कामना कर रहा था। लेकिन साथ ही भावी कल्पनाओ से सबका दिल भी भर आया था। तब आचार्यश्री से फिर प्रार्थना की गई कि अब तो वे आजीवन तक का व्रत दिला दें। आचार्यश्री ने तब स्थितियो की अनुकूलता और दम्पति का अटल निश्चय देखकर उन्हे व्रत दिलाया। पुत्र के व्रत-ग्रहण के इस कठोर निश्चय को मा का कोमल हृदय सहन नही कर सका। तत्काल वह वही बेहोश हो गई। जनता एक ओर सयम का उत्कर्ष देख रही थी तो दूसरी ओर मोह का उत्कर्ष। इसीलिये भगवान् महावीर ने मोह को आत्मा का सबसे बडा शत्रु बताया है।

प्रात कालीन प्रार्थना के बाद पितास-निवासी दीक्षार्थी श्री मोहनलाल कोठारी ने आचार्यश्री से दीक्षा की अनुमति के लिये अर्ज की। करीब दो वर्षो से वह दीक्षा के लिये आचार्यश्री से आग्रह कर रहा था। इधर आसीद-वासियो की उत्कट अभिलाषा थी कि दीक्षा महोत्सव का अवसर हमे अवश्य मिले। दीक्षार्थी और उनके माता-पिता ने दीक्षा की अनुमति के लिए काफी आग्रह किया। सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने दीक्षार्थी भाई को साधुत्व की कठिनाइयो से अवगत कराया। आचार्यजी ने दीक्षार्थी की दृढ भावना परखते हुए जठ सुदी ३ के लिए दीक्षा की अनुमति दी।

दोपहर मे मेवाड के युवको की फिर दूसरी बैठक हुई। स्वास्थ्य, वाचन, अणुव्रत-प्रचार आदि को ध्यान मे रखते हुए युवको का एक सगठन तैयार किया गया। पचीस-तीस युवको ने इस अवसर पर अणुव्रतो की प्रतिज्ञाएँ ली। इस प्रकार सम्मेलन विचारात्मक और रचनात्मक रूप लिये सम्पन्न हुआ।

३० ५ ६२ आसीद से सात मील दूर आमेसर आचार्यश्री पधारे। विहार मे हवा का वेग काफी तीव्र रहा। स्थान पर आने के बाद आचार्यश्री ने बड़े-बड़े तख्तो को देखकर पूछा—ये तख्त यहाँ कैसे आए ? गृहस्थो ने हमारे लिए ही तो लाकर नही रखे है ? इसकी पूरी छान-बीन करनी चाहिए और जब तक इसका कोई निश्चित निर्णय न हो जाए तब तक आपने उन पर बैठना अस्वीकार कर दिया। साध्वियो ने कहा कि हम जब यहा आयी थी तो ये यहीं पडे थे। आचार्यश्री ने मुनिश्री बालचन्दजी को इसकी पूरी जानकारी करने के लिए कहा। संत गए। छानबीन की तो पता लगा कि अभी थोडे दिनो पहले यहाँ बारात ठहरी थी, उनके लिए तख्त लाये गये थे। उस समय से ये यहीं पडे है। इस प्रकार विश्वस्त और निश्चित निर्णय के बाद आचार्यश्री ने तख्तों का उपयोग करना स्वीकार किया। यद्यपि यह एक बहुत साधारण घटना है और आचार्यश्री से अधिक सम्बन्धित भी नही है, क्योकि पाट तख्त आदि के बिछाने की व्यवस्था तो शिष्य साधु वर्ग ही करते हैं, फिर भी आचार्यश्री प्रतिपल प्रत्येक कार्य मे सजग दिखाई देते है। संघ मे नियमानुवर्तिता विस्तार पाए इस दृष्टि से यह एक साधारण घटना भी अपने मे बहुत बडा महत्त्व छिपाए है।

दोपहर मे मुनिश्री बालचन्दजी के भाषण के बाद आचार्यश्री ने प्रवचन दिया। शाम को विहार कर यहाँ से चार मील दूर मोतीपुरा आए।

३१ ५ ६२ मोतीपुरा से चलकर आचार्यश्री कालियावास पधारे। यह यहाँ से दो मील दूर पडता है। १९४४ मे आचार्यश्री मघवागणी का भी इस गाँव मे पदार्पण हुआ था। उसके बाद आचार्यश्री का ही आना हुआ। गाव के लोग सैकडो की सख्या मे स्वागत के लिए सामने आए। श्री चन्दनमलजी बैद (उपमंत्री, अर्थ विभाग, राजस्थान) भी यहा दर्शन करने के लिए आए थे। उन्होने अपना संक्षिप्त वक्तव्य देने के बाद यह इच्छा भी प्रकट की कि इस यात्रा के बीच ही तीन दिन आपके साथ रहकर मैं सेवा-लाभ उठाना चाहता हू। इसलिए आगे समय निकालकर सेवा करूगा।

आचार्यश्री के आगमन के उपलक्ष मे समूचे गाँववालो ने अपनी इच्छा

से 'अगता' (सभी प्रकार के धधे वन्द रखना) रखा। कहते है कि इस प्रकार का 'अगता' पुराने जमाने मे ठाकुरो के विवाह आदि के अवसर पर विशेप आदेश से ही रखा जाता था। प्रवचन के वाद जव आचार्यश्री ने वुराइयो के त्याग के लिए लोगो से आह्वान किया तो एक भाई उठा और वोला, 'मुझे अमावस के दिन मास खाने का त्याग दिलवा दीजिए।' आचार्यश्री ने पूछा—'क्यो भाई! महीने मे केवल एक ही दिन के लिए परित्याग करने का कारण?' उसने उत्तर दिया—'महाराज! इससे अधिक मुझसे निभ नही सकता।' इससे यह तो स्पष्ट होता है कि ग्रामीण लोग केवल भावुकता के वश ही त्याग नही लेते, किन्तु सोच-समझकर ही प्रतिज्ञाए ली जाती है।

दोपहर मे जनता की अच्छी उपस्थिति देखकर आचार्यश्री ने मुनिश्री हर्पचन्द्रजी की ओर सकेत करते हुए फरमाया—'मेवाडी भापा भूल गये या अच्छी तरह वोल सकते हो?' उन्होने कहा कि हिन्दी मे ही वोलने का काम पडता है, इसलिए मेवाडी भापा का अभ्यास छूट-सा गया है। आचायश्री ने फरमाया—'हिन्दी तो है ही। फिर भी प्रादेशिक भापाओ का भी अभ्यास रखना चाहिए।' जनता से घुल-मिलने के लिए जनता की भाषा ही व्यवहार मे आनी चाहिए। इस प्रकार सामान्योक्ति मे आचार्यश्री का साहित्य की ओर एक विशेप ध्यान रहता है।

मुनिश्री हर्पचन्द्रजी के वक्तव्य के वाद मुनिश्री वालचन्दजी (आसीद) का व्याख्यान हुआ। रात को मुनिश्री किशनलालजी के भापण के पश्चात् आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

१६६२ कालियावास से विहार कर आचार्यश्री धोली, झावर होते हुए जैतपुरा पधारे। धोली मे वहाँ के ठाकुर ने अपने गढ मे आचार्यश्री का स्वागत किया। ठाकुर साहव और अन्य वीस-पचीस भाइयो ने यथाशक्ति दारू-मास खाने का परित्याग किया। ठाकुर साहव ने यह भी कहा—'आचार्यश्री! राजपूत जाति के पतन का कारण शराव और मास ही है। ये दोनो चीजें इतनी घर कर गई है कि इनसे मुक्त होना आज भी

हमारे लिए अत्यन्त मुश्किल है।' फिर उन्होंने उडनेवाले जानवरो का शिकार न करने का परित्याग किया।

जैतपुरा पहुचते-पहुँचते काफी विलम्व हो गया था। अत प्रवचन का कायक्रम दोपहर के लिए रखा गया। आचार्यश्री के आगमन के उपलक्ष मे ग्रामवासी वहुत प्रफुल्लित दिखाई दे रहे थे। वे न केवल आचार्यश्री का ही हृदय से स्वागत कर रहे थे, किन्तु आचार्यश्री के साथ चलने वाले यात्रियो का भी अच्छी तरह स्वागत करना चाहते थे। माधोजी नामक खाती अपने घर का समूचा दूध यात्रियो को विना किसी मूल्य पर देने के लिए आग्रह करने लगा। लोगो ने चाहा कि किसी भी रूप मे वह कुछ रुपये ले ले, लेकिन उसने सर्वथा इनकार कर दिया। 'वसुधैव कुटुम्वकम्' की भावना आज भी गावो मे देखने के लिए मिलती है।

शाम को वहाँ से दो मील दूर पालडी आए। रात को मुनिश्री वाल-चन्दजी (आसीद) के व्याख्यान के वाद आचार्यप्रवर का प्रवचन हुआ। प्रवेशक अणुव्रतो का जिक्र करते हुए आचार्यप्रवर ने 'वोट के लिए रुपया नही लूगा', इस नियम की चर्चा की तो वहाँ के एक अध्यापक ने पूछा—'वोटो के लिए रुपये लेने का मकसद यह है कि अन्याय और शोपण से इकट्ठा किया हुआ पैसा जैसे-तैसे उनसे वापिस ले लिया जाए। इस दृष्टि से यदि रुपये लिए भी जाए तो क्या हर्ज है?' आचायश्री ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—'लेकिन रुपये वापस लेने का यह तरीका भी तो न्यायपूर्ण नही है।' अध्यापक ने स्वीकार करते हुए कहा कि महाराज! आप जो कुछ कहते हैं सो ठीक है, फिर भी मेरी दृष्टि से उनसे तो पैसा जैसे-तैसे ले ही लेना चाहिए। हा, यह हो सकता है कि उसका उपयोग फिर किसी सार्वजनिक काय मे हो जाए।

७ ६ ६२ पालडी से आचार्यप्रवर वराणा पधारे। यह गाँव छोटी-छोटी पहाडियों के वीच वसा हुआ है। आते ही आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। उपदेश से प्रभावित होकर कई भाइयो ने वीडी-सिगरेटो को तोडते हुए आजीवन तमाखू-सेवन का परित्याग कर दिया।

शाम को यहाँ से चार मील दूर आचार्यप्रवर आसीद पधारे। विहार का समय कुछ जल्दी होने के कारण ताप अधिक तेज रहा। किन्तु (मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु ख न च सुखम् ।) कार्यशीलता के सामने आचार्यश्री अपनी प्रत्येक सुविधा का त्याग कर देते है, उनकी सफलता के मूल मे यही तो कारण छिपा है।

रात्रि को गढ के चौक मे आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

३ ६ ६२ दीक्षा-महोत्सव मे केवल एक ही दिन अवशेष होने से आस-पास के ग्रामो से हजारो की सख्या मे लोगो का आगमन शुरु हो गया। आसीद क्षेत्र के सभी मार्ग बसो, बैलगाडियो और सैकडो की सख्या मे पैदल आनेवाले यात्रियो से आज आबाद-से लग रहे थे। यहा के निवासियो के लिए दीक्षा एक नई चीज होने से देखने की उत्कण्ठा होना स्वाभाविक ही है। आचार्यश्री के प्रात कालीन प्रवचन के बाद आनेवाले भाइयो से सम्पर्क का काम दिनभर चलता रहा।

दोपहर मे दीक्षार्थी मोहनलाल कोठारी के साथ जुलूस निकाला गया। जुलूस मे सादगी का ध्यान रखा जाय, आचार्यश्री का यह निर्देश पहले से ही था। फिर भी कुछ स्थानीय भाइयो ने कहा कि जुलूस के आगे कम-से-कम एक बैंड तो रखा ही जाना चाहिए। बाहर के लोग हजारो की सख्या मे जुलूस मे शामिल हो और उस जुलूस मे एक बैंड भी न हो, यह लोगो को अखर रहा था। इसलिए वे मिलकर आचार्यश्री के पास आए। आचार्यश्री ने मनोविनोद भाव से पूछा—'क्या बैंड के बिना दीक्षा नही हो सकती ?' 'दीक्षा तो हो सकती है'—सभी भाइयो ने कहा। आचार्य ने फरमाया—'तो फिर बैंड की क्या आवश्यकता है ? फिर जब मेवाड मे अन्य सभी कार्यो मे नये मोड का पालन किया जाता है तो दीक्षा के मौके पर नये मोड का पालन क्यो नही किया जाए ?' लोगो ने भी अतर्कित रूप से आचार्यश्री की बात शिरोधार्य की और चले गये। तेरापथ की एकसूत्रता का कारण आस्था ही तो है, अन्यथा इसके पास कोई अर्थ या सुरक्षा-शक्ति तो है नहीं।

रात को विदाई-समारोह का कार्यक्रम मनाया गया।

४ ६ ६२ सूर्योदय से पूर्व ही लोग अपनी-अपनी जगह की टोह मे दिखाई दे रहे थे। दीक्षा का समय साढे आठ बजे रखा गया था। उस समय तक जनता की उपस्थिति आठ-दस हजार तक पहुच गयी थी।

नमोक्कार मन्त्र से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मेवाड के उत्साही नवयुवक कार्यकर्ता श्री गणेश कूकडा के सयोजकीय भाषण के बाद मुन्सिफ (अजमेर) ने 'दीक्षा क्या है?' विषय पर प्रकाश डाला। फिर श्री चादमल दूगड ने दीक्षार्थी भाई मोहनलाल कोठारी का परिचय देते हुए कहा कि आपका जन्म स० २००१, आषाढ सुदी ११ को हुआ। आपके पिता का नाम श्री फूलचन्दजी तथा माता का नाम श्री प्यारीबाई है। आप चार भाई हैं। इस प्रकार एक भरा-पूरा परिवार होने के साथ-साथ सब दृष्टियो से सुसम्पन्न है। स० २०१३-१४ मे आपके मन मे वैराग्य-भावना जागी, लेकिन अपनी वैराग्य-भावना को आपने २०१७ तक घरवालो के समक्ष नही रखा। इस बीच की लम्बी अवधि मे आपने अपने आपको खूब तोला और इधर शिक्षा के क्षेत्र मे भी आपने इण्टर पास किया। इस तरह वर्षो के चिन्तन के बाद अपनी भावना परिवारवालो के समक्ष रखी। माता-पिता ने भी आपका फिर कठोर परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। द्विशताब्दी समारोह के उपलक्ष मे जब आचार्यश्री का मेवाड पधारना हुआ तब मजेरा मे आपने आचार्यश्री से आजीवन असत्य बोलने और अब्रह्मचर्य-सेवन का परित्याग कर दिया।

कठोर परीक्षा मे उत्तीर्ण देख परिवारवालो ने आमेट मर्यादा-महोत्सव पर आचार्यश्री से आपकी दीक्षा की प्रार्थना की। आचार्यश्री ने उस समय प्रतिक्रमण सीखने की आज्ञा दी। फिर आप पारमार्थिक शिक्षण-सस्था मे शिक्षा पाने लगे। करीब डेढ वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद आचार्यश्री ने आपको आसींद मे दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान की।

दीक्षार्थी का त्याग व सयम-प्रधान जीवन, माता-पिता के कठोर परीक्षण और तेरापथ की विशुद्ध सास्कृतिक परम्परा को देखकर जनता सचमुच

ही विस्मृत थी। ऐसा लग रहा था कि चाहे भौतिकता कितना ही विकास क्यों न कर ले, त्याग के सामने वह हमेशा पराभूत रहेगी।

डालचन्द श्रावक की कविता के बाद दीक्षार्थी भाई ने अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किए। वह अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा मे दिखाई दे रहा था, क्योकि वर्षो की चिर-प्रतीक्षा के बाद उसे अपना अभीप्सित आज मिल रहा था। फिर उनके छोटे भाई सोहनलाल कोठारी ने माता-पिता द्वारा लिखित आज्ञा-पत्र पढकर सुनाया।

इस अवसर पर स्थानीय हायर सेकडरी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री कन्हैयालाल तबोली ने कहा—'आचार्यश्री! मैं आज इस प्रकार के दीक्षा-क्रम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हू। आपने जो युग को अध्यात्म-जागरण की महान् देन दी है वह कभी भी भुलाई नही जा सकती।' अणुव्रत-आन्दोलन की चर्चा करते हुए उन्होने बताया कि 'मैं इस आन्दोलन का प्रयोग अपने स्कूल मे भी करना चाहता हू। वैसे तो चरित्र-निर्माण को लक्ष्य मे रखते हुए हर सप्ताह हमारे यहाँ एक गोष्ठी का आयोजन रखा जाता ही है, अब से मैं सोच रहा हू कि निर्धन सहायता कोष की पेटी की तरह हम एक ऐसी मजूषा भी रखेंगे जिसमे विद्यार्थी अपने नाम सहित अपनी प्रतिज्ञाए लिखकर उस मजूषा मे डाल देंगे। प्रतिज्ञा व नैतिक सकल्पो का बिना कोई दबाव या सकोच के स्वेच्छा से स्वीकरण हो, इस दृष्टि से अणुव्रत-आन्दोलन का माध्यम रखते हुए हमने ऐसा प्रयोग सोचा है। समय-समय पर इस दिशा मे आपसे निर्देशन भी मिलता रहेगा, ऐसी हम आशा रखते हैं।'

दीक्षा अध्यात्म का एक पुण्यतम पर्व है। इस अवसर पर हर नर-नारी के मन मे सयम और त्याग के भाव पनपें, यह स्वाभाविक ही है। इस बार भी कई भाइयो ने काफी कडे त्याग लिए हैं। श्री चैनसुख दूगड (अविवाहित) ने आजीवन रात्रि-भोजन, सचित और अब्रह्मचर्य-सेवन के परित्याग किये। नाथूलालजी गोखरू (उम्र ३३ वर्ष), श्री पूनमचन्दजी कोठारी और छगनमलजी गोखरू ने भी ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार किया।

फिर आचार्यश्री ने दीक्षार्थी को साधुत्व के कठोर नियमो मे अवगत कराया। परिवारवालो से उनके पुत्र की दीक्षा के लिए मौखिक रूप से पूछा गया। दीक्षार्थी को एक बार फिर सोचने व अपने आपको तालने के लिए आचार्यश्री ने कहा। इस प्रकार के त्याग व वैराग्यमय वातावरण मे श्री मोहनलाल का दीक्षा-सस्कार सम्पन्न हुआ। अव इनका नाम मुनि मोक्षरुचिजी रखा गया है। फिर आचार्यश्री ने साधु-साध्वियो के कुछ चातुर्मास घोपित किये।

आहार करने के वाद नव-दीक्षित साधु को किस प्रकार चलना चाहिए इस पर अपना एक सस्मरण सुनाते हुए आचार्यश्री ने कहा—सवत् १९८३ की वात है। मेरी दीक्षा का वह दूसरा वर्ष था। आचार्यश्री कालूगणी उस समय गगाशहर विराज रहे थे। एक दिन मुझे दोपहर मे आवश्यकतावश वाहर जाना पडा। गर्मी का मौसम था और शीघ्रता भी। अत मैं शीघ्रगति से चल रहा था। श्रीचन्दजी गधैया ने मुझे देखा। वे आचायश्री के पास आए और वोले—इन साधुओ की चाल शीघ्र तो अवश्य थी, किन्तु आँखे विलकुल सयत रूप से काम कर रही थी। आचार्यश्री ने निष्कर्ष के रूप मे कहा कि साधु की चाल ऐसी ही होनी चाहिए जिससे देखनेवाला केवल चाल से पहचान ले कि साधु आ रहा है।

५ ६ ६२ प्रात आचार्यश्री के सान्निध्य मे आसीद के नवयुवको की मीटिंग हुई। नवयुवको ने मृतक के पीछे होने वाले किसी भी प्रकार के भोज मे भाग नही लेने का सकल्प किया। नवयुवको ने एक सगठन भी तैयार किया जोकि प्रतिदिन सम्मिलित रूप से कम-से-कम पन्द्रह मिनट तक स्वाध्याय या अध्यात्म-चर्चा करेगा।

दोपहर मे नये मोड के लिए विशेप चिन्तन चला। कुछ भाइयो ने चाहा कि नये मोड के नियमानुसार मृतक के पीछे पन्द्रहवें दिन पर जो भोज का निपेध किया गया है, वह सामूहिक रूप से निभना मुश्किल है। आचार्यश्री ने कहा कि मैं नये मोड की दृष्टि से इस नियम को उचित मानता हू। फिर भी मैं किसी को किसी भी नियम के लिए वाध्य नही करूगा।

फिर आचार्यश्री ने इस प्रतिज्ञा को वैयक्तिक रूप से दिलाना अधिक उचित समझा। थोडे से आह्वान से एक-एक करके अधिकाश परिवारो ने यह व्रत स्वीकार कर लिया। वही प्रश्न जो कि समूह के लिए एक उलझन वना हुआ था व्यक्तिश रूप से सुलझाने पर कुछ ही क्षणो मे समाहित हो गया। इस तरह न लोगो के दिलो पर यह असर रहा कि कोई भी नियम दवावपूर्वक स्वीकार करना पड रहा है और न आचार्यश्री का लक्ष्य अधूरा रहा, जव कि नए मोड के पूरे नियमो मे केवल एक नियम के लिए लोग पीछे खिसक रहे थे।

रात को मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' तथा मुनिश्री दुलीचदजी की कविता के वाद आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

६ ६ ६२ आसींद के कुल आठ दिन के सुखद प्रवास के वाद आज आचार्यश्री का यहाँ से चैनपुरा की ओर विहार हुआ। वैसे तो प्रत्येक क्षेत्र आचार्यश्री के प्रवास के समय विशेष प्रेरणा लेता ही है किन्तु यहाँ के निवासियो ने आचार्यश्री के प्रवास मे वह सवल भी जुटाने की कोशिश की जिससे कि उन्हे एक लम्वे समय तक प्रेरणा और जागरण का सन्देश मिलता रहे। आज वे आचार्यश्री को विदा देते समय कुछ गद्गद्-से दिखाई दिए, फिर भी वे आचार्यश्री को विदा रहे थे। क्योकि वे जानते है कि सन्त लम्वे समय तक एक स्थान पर नही ठहरते। दूसरे, जिस अध्यात्म-सौरभ को आचार्यश्री ने आसींद मे विखेरा उसे पाने के लिए अन्य गाँवो के सहस्रो लोग भी लालायित है। इसलिए यह आवश्यक है कि आचार्यश्री वहाँ भी पहुचें। इस प्रकार एक प्रसन्न वातावरण मे आचार्यश्री वहाँ से चैनपुरा पधारे।

शाम को वहाँ से विहार कर आचार्यश्री कीडीमाल आए। रास्ते मे उन पत्थरो को भी देखा जिनमे एक के वारे मे किंवदन्ति है कि पुराने ज़माने मे यह 'पाव कम पसेरी' के रूप मे व्यवहृत होता था, जव कि हम उसे आज हज़ारो मनो के रूप मे देखते है। दूसरे पत्थर के वारे मे कहा जाता है कि यह पत्थर 'काण' (अन्तर) निकालने मे प्रयुक्त होता था। कीडी-

माल के इतिहास मे एक घटना यह भी उल्लेखनीय है कि स० २००९ मे यहाँ वहुत वडा डाका पडा था। डाकू लोग करीब दस हजार रुपये का माल गाँव से लूटकर ले गए। मकानो को लूटते-लूटते वे उस मकान पर भी पहुचे जहाँ कि साध्विया ठहरी हुई थी। साध्वियो को देखते ही वे यह कहते हुए वापस मुड गए कि आप अपना भजन-जाप कीजिए। मकान-मालिक के धन की सुरक्षा तो प्रासगिक रूप से हो गई। लेकिन विशेपता यह है कि भारतवर्ष मे आज भी यहाँ के डाकू साधु-सन्तो का उसी रूप मे सम्मान करते हैं जो सम्मान वे किसी भी सत्ता या धन को नही देते।

रात को आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

७ ६ ६२ कीडीमाल से तीन मील दूर आचार्यश्री कटार पधारे। इसे 'वडलेवाला गाँव' भी कहा जाता है। गाँव के निकट ही एक विशाल वट वृक्ष है जो कि करीव वारह बीघे जमीन को घेरे हुए है। शाखाएँ-प्रशाखाएँ इतना विस्तार लिए हुए है कि कौन-स। मूल है और कौन-सी शाखा इसका पता लगाना भी आज मुश्किल-सा हो रहा है। पास ही वहनेवाली खारी नदी पर बाध वाधा गया तो इसकी कुछ शाखाए काट दी गयी पर आज भी वह काफी वडा और घना है। आचार्यश्री यहाँ गढ मे विराजे। दोपहर को प्रवचन का कायक्रम रखा गया जिसमे सैकडो की उपस्थिति मे भाई-वहन थे। प्राय सभी लोगो ने अणुव्रत के ग्यारह नियमो को स्वीकार किया।

शाम को वहाँ से करीव चार मील दूर 'दातडा' की ओर आचायश्री का विहार हुआ। रास्ते मे लोगो ने देखा कि पास की ही एक छोटी-सी वस्ती से एक आदमी हाँफता-हाँफता आचायश्री की ओर चला आ रहा है। उसके एक हाथ मे दही का वर्तन तथा दूसरे मे 'खाखरे' (एक वृक्ष के वडे-वडे पत्ते) थे। आचार्यश्री ने उसका नाम पूछा। उसने कहा—'कशो (केशी दरोगा)।' फिर दही के वतन को आगे करते हुए वह वोला—'महाराज! आपका प्रवचन सुनने के बाद मैं अपनी वस्ती मे गया और फिर यह दही का वर्तन लेकर आपके पास मे यहाँ आया हू इसीलिए

विलम्ब हो गया। लेकिन अब भी आप इसे स्वीकार कीजिए।' आचार्यश्री ने दूसरे हाथ के पत्तो की ओर सकेत करते हुए पूछा—'यह क्यो लाए हो ?' वह बोला—'मैंने सोचा, महाराज के पास दूसरा कोई बर्तन नही होगा तो इन बडे-बडे पत्तो मे ही ग्रहण कर लेंगे।' आचार्यश्री ने उसके भक्ति से गद्गद् हृदय को परखते हुए समझाया कि साधु-सन्त तो भावना को ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार हमारे लिए लायी हुई वस्तु और हरी सब्जी-युक्त हाथो से हम ग्रहण नही कर सकते। लेकिन वह अपने भक्तिभरे आग्रह को पुन -पुन दोहरा रहा था। आखिर उसे बडी मुश्किल से समझाया गया।

'दातडा' मे आचार्यश्री खारी नदी के बाध पर बने बगले मे विराजे। एक ओर छोटी-छोटी घाटियाँ तथा दूसरी ओर पानी का दृश्य बडा ही मनोरम लग रहा था। स्थान पर पहुचते ही कुछ किसान भाई आचार्यश्री के दर्शनार्थ आए। आचार्यश्री ने उनकी फटी हालत देखकर गरीबी का कारण पूछा। वे बोले—'महाराज ! हमारे पैदावार की कोई कमी नही है। हमारे खेत बारह महीना ही हमे कुछ-न-कुछ देते रहते है लेकिन क्या बताए एक ही मौसर (मृत्युभोज) मे सब कुछ स्वाहा हो जाता है। कही-कही एक ही भोज मे तीन सौ मन गुड घालना पडता है। तो फिर कमाया हुआ सारा धन एक बार मे ही व्यय हो जाता है और हम गरीब और फटेहाल ही रह जाते है।' आचार्यश्री ने किसानो की ओर देखते हुए कहा—'भारत के किसानो की गरीबी का एकमात्र कारण ये अन्धविश्वास, कुरूढियाँ और ये गलत रीति-रिवाज ही तो हैं, अन्यथा उनकी सम्पन्नता मे कौन सन्देह कर सकता है ? किन्तु फिर भी आश्चर्य है कि लोग इन्हे जैसे-तैसे निभा रहे है।'

पास ही खडे भर्तृहरी की परम्परा के साधु को देखकर आचार्यश्री ने पूछा—'आपकी इस परम्परा मे अभी कितने साधु हैं ?' उसने उत्तर दिया, 'पता नही, महाराज ! कितने साधु हैं ? जब भोजन आदि के अवसर पर एकत्रित होते हैं तब तो मनो का भी सफाया कर देते हैं।' आचार्यश्री ने

नि श्वास छोडते हुए कहा—'आज अधिकाश साधुवर्ग की यही स्थिति है। इसीलिए जनता के दिलो मे उनके प्रति भिखमगो से अधिक सम्मान नही।'

८ ६ ६२ दातडा से छ मील दूर आचार्यश्री का दौलतगढ मे आगमन हुआ। मेवाड के रास्ते कितने बीहड और पथरीले होते है, यह इन दिनो ही मालूम हो रहा है। जरा-सी भी ईर्या समिति की स्खलना बडे-से-बडा प्रायश्चित स्वय दे देती है, मानो ये टेढे-मेडे, उबड-खाबड, ऊँचे-नीचे रास्ते प्रतिपल सजग और सावधान होकर चलने की प्रेरणा दे रहे हो। यात्री को अन्तिम मोड तक गाँव दिखाई नही देता है। ऐसे बीहड मार्ग को पारकर आचार्यश्री जब दौलतगढ पधारे तो नागरिको के जयनारो से समूचा पहाडी इलाका गूज उठा। दौलतगढ का कण-कण आचार्यश्री को अपने बीच पा खुशी मे पागल सा झूम रहा था। किसान, मजदूर, श्रावक-श्राविकाए आदि सभी आचार्यश्री का हृदय से स्वागत कर रहे थे। आचार्यश्री के दर्शनो से कोई भी वञ्चित न रह जाए इसलिए लोगो ने सबसे पहले गाँव का पूरा चक्कर लगवा दिया। यद्यपि चक्कर शायद एक या डेढ मील से कम नही था, फिर भी आचार्यश्री सीधे पण्डाल मे पधारे जाए यह लोगो को कैसे स्वीकार हो सकता था। इसलिए गाँव के पूरे चक्कर के बाद ही आचार्यश्री पण्डाल मे पधारे, जहाँ कि प्रवचन व स्वागत-समारोह का कार्यक्रम रखा गया था।

स्थानीय जनता द्वारा अभिनन्दन के बाद आचार्यश्री का जीवन को हल्का तथा कुरूढियो से मुक्त बनाने का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ।

दौलतगढ वैसे बहुत पुराना क्षेत्र है, ठेठ स्वामीजी के समय का है। पचम आचार्य मघवागणी ने तो इस क्षेत्र को एक मर्यादा महोत्सव का भी अवसर दिया था। आज भी वह शासन के एक रग मे रँगा हुआ है। 'दौलतगढ रलियामणो, धणी धर्म की ध्वजा'—इस प्रकार का एक दोहा भी इसके लिए पुराने काल से चला आ रहा है।

दोपहर मे नये मोड का विशेप कार्यक्रम रखा गया। नये मोड के अन्यान्य नियमो के साथ दौलतगढ ने एक नया और अनुकरणीय प्रस्ताव रखा। वह यह है—लडकी व लडके का पैसा न लेना और न देना। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोग नये मोड के लिए कितने जागरूक है। जन्म, विवाह आदि जो कि एक मगल पर्व के रूप मे मनाया जाता है, वह भी भारभूत वन जाये ऐसा लोग नही चाहते लेकिन इतने दिनो तक उनमे पुरानी कुरूढियो के अतिक्रमण का साहस नही था, अत वे उसे भारभूत रूप मे भी निभाते आए। पर अव आचार्यश्री का उद्‌वोध पाकर वे इतने सजग और तत्पर दिखाई दे रहे है कि अपने जीवन को अधिक से अधिक हल्का और अनारभ वनाना चाहते हैं।

६ ६ ६२ प्रात आचार्यप्रवर का प्रवचन हुआ। दोपहर मे साधु-साध्वियो के वीच नियमित रूप से चलने वाला सस्कृत व्याकरण—भिक्षु शब्दानुशासन, साहित्य मे कालिदासकृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का स्वाध्याय सम्पन्न हुआ। सस्कृत व्याकरण का वाचन राजनगर चातुर्मास मे प्रारम्भ हुआ था, जिसे कि आज डेढ वर्ष होने को आये हैं। लेकिन इतने विशाल ग्रन्थ का पारायण आचार्यश्री के व्यस्त जीवन को देखते हुए सचमुच ही अल्प समय मे हुआ। अन्य आवश्यक कार्यो को गौण करते हुए भी आचार्यश्री ने अध्ययन की नियमितता का उल्लघन प्राय नही होने दिया। यही कारण था कि विद्यार्थी साधु-साध्वियो मे इस व्याकरण जैसे नीरस विपय के प्रति अलस भाव नही आए।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' का पठन तो अभी नोखामडी मे चैत्रमास मे ही प्रारम्भ हुआ था। अध्ययन के उपसहार मे आचार्यश्री ने फरमाया—प्रत्येक वस्तु अपने मे ग्राह्य और अग्राह्य तत्त्व लिए होती है। आवश्यकता यह है कि उपभोक्ता अपने लिए जो उपयोगी हो वह ले, शेप को उपेक्षा भाव से टाल दे। हम 'अभिज्ञान शाकुन्तल' को ही लें। वर्णन-शैली की दृष्टि से यह आधुनिकतम है। चरित्रनायको की अभिव्यक्ति स्फूर्त्त है। कही भी शिथिलता नही आयी है। जो कवि को अभिप्रेत है उसे विलकुल प्रकृत

भाव से कह दिया गया है। शब्दो का कलेवर नही, पात्रो की कृत्रिमता नही, भाषा मे उलझन या घुमाव नही, वस्तुस्थिति के प्रकटीकरण मे मन की भी सूक्ष्मतम व्यजना और उसकी भौतिक प्रतिक्रिया का भी उसी खूबी से निदर्शन—ये सब गुण नाटक की अपनी विशेषता हैं। स्थान-स्थान पर प्रयुक्त नीतिसूक्त, शाश्वत सत्यो के सवाहक मार्मिक श्लोको ने तो काव्य-सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है। यह सब कुछ है लेकिन इसके अतिरिक्त भी कुछ है जो साधक के लिए मात्र ज्ञेय ही होता है, उपादेय नही। तो यह पाठक के विवेक पर निर्भर होता है कि मैं किस भूमिका पर हू और उस भूमिका को ध्यान मे रखते हुए मेरे लिए क्या हेय है, क्या ज्ञेय है और क्या उपादेय ? बस इसी दृष्टि को सामने रखते हुए अध्ययन की गति का क्रम होना चाहिए।

पाठक के लिए यह जरूरी होता है कि वह अपने विवेक को जागृत करे, अपने विवेक-चक्षुओ से यह देखे कि किस प्रकार का साहित्य मेरे जीवन-विकास मे उपयोगी होता है। जो जीवन-विकास मे सहायक हो उसे पढे अन्यथा छोड दे। दवा वही ली जाती है जो शरीर को स्वस्थ वनाने मे सहायक बनती है। जो दवा कुछ असर नही करती उसके सेवन से क्या लाभ ? ठीक यही स्थिति अध्ययन की है। अध्ययन के साथ विचार-परिपक्वता, गभीरता, सहिष्णुता और प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति को पी जाने की क्षमता आदि गुणो का विकास हो तभी समझना चाहिए कि ज्ञान फलदायी हो रहा है।

व्याकरण को लक्ष्य करते हुए आपने फरमाया कि भाषा की मौलिकता की दृष्टि से व्याकरण का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होता है। किसी भी भाषा का अध्ययन विना व्याकरण के करने का अर्थ है उसकी मौलिकता या उसके हार्द से अनजान रहना। अत इसे भी आवश्यक समझते हुए इस ओर गति करनी चाहिए।

९ जून को दोपहर मे आचार्यश्री के सान्निध्य मे महिला-सम्मेलन का आयोजन रखा गया। अनेक महिलाओ ने प्रथा रूप से न रोने और

मृत्युभोज न करने की प्रतिज्ञाएँ ली।

१० ६ ६२ प्रात युवक-सम्मेलन का कार्यक्रम रखा गया, जिसमे युवक समिति का गठन हुआ जो कि स्वाध्याय, अणुव्रत-प्रचार आदि कार्यों को नियमित रूप से चलाये।

प्रात कालीन प्रवचन मे आचार्यश्री ने भावात्मक एकता की प्रेरणा दी। उपस्थित करीब तीन-चार सौ भाइयो ने भावात्मक एकता की प्रतिज्ञा भी दुहराई।

११ ६ ६२ दौलतगढ से चार मील दूर लाछूडा पधारना हुआ। मुनिश्री हर्षचन्दजी ने अपनी ससार-पक्षीय जन्मभूमि की दृष्टि से आचार्यश्री के अभिनन्दन मे एक गीतिका गायी और हार्दिक भाव व्यक्त किये। फिर ग्रामसेवक बालचन्दजी के भाषण के बाद आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। आचार्यश्री ने यहाँ पर चल रहे मृत्युभोज के प्रकरण को त्यागने के लिए भी काफी जोर दिया।

रात को आचायश्री का प्रवचन हुआ। फिर भावात्मक एकता का महत्त्व बताते हुए उसकी प्रतिज्ञाएँ दिलाई। उपस्थिति सात-आठ सौ के लगभग थी।

कभी हाथ भी नही लगाऊगा

१२ ६ ६२ आसपास के गाँवो से आनेवाले पटेल भाइयो से आचार्यश्री ने पूछा—"क्यो, तमाखू पीते हो ?" उन्होने सकुचाते हुए कहा—"हाँ, पीते तो हैं।" फिर पूछा—"तो छोड दो आज से।" "आप कहे तो छोड सकते हैं।" आचार्यश्री ने कहा—"यदि तुम्हारा मानसिक साहस हो तो इससे अधिक अच्छा मौका फिर कब मिलेगा ?" जेब मे से तमाखू और चिलम को फेंकते हुए वे बोले—"तो महाराज ! आज से तमाखू पीने का त्याग दिलवा दीजिए। कभी हाथ भी नही लगाएँगे।" लोगो ने देखा सतवाणी का प्रत्यक्ष प्रभाव और उसके साथ ही ग्रामीण लोगो का श्रद्धा-भरा निश्छल व सरल जीवन।

मृत्यु-भोज

दोपहर मे दृश्य अत्यन्त दर्शनीय बना जबकि यहाँ पर होने वाले चार जीमनवारो को स्थगित रखने की आचायश्री ने प्रेरणा दी। स्थिति यह थी कि चार मे से दो जीमनवारो की तो पूर्व तैयारी पूरे रूप से हो चुकी थी और दो की वात चल रही थी। आचायश्री ने फरमाया—"यह सोचना विलकुल गलत है कि ये भोज होने के वाद ही हम मृत्युभोज का त्याग करेंगे। केवल मीठे के लालच मे एक कुरूढि को आगे से आगे चलाना कोई बुद्धिमानी नही है। त्याग की महत्ता भी वहा अधिक है जव कि मनुष्य अपने को सुलभता से मिलने वाली भोग्य सामग्री का परित्याग कर दे।" प्रेरणा पाकर लोगो के दिल वदले। उन्होने चारो जीमनवारो को स्थगित कर मृत्युभोज और इसके नाम पर होने वाले गगोज आदि सभी प्रकार के जीमनवारो का त्याग कर दिया। मेवाड-जैसे रूढिग्रस्त देश के लोग आचार्यश्री के सकेत पर किस प्रकार अपनी अपरिहार्य रूढियो का त्याग कर देते हैं, यह सचमुच ही आचार्यश्री के प्रति दृढ निष्ठा का प्रतिफल है, अन्यथा अपने सामने मिठाई देखकर कौन मुँह मोड सकता है ? लेकिन आचायश्री के इगित पर वे अपने प्रत्येक स्वाथ या प्रियतम वस्तु का वलिदान करने मे तत्पर है। अभी दौलतगढ मे भी आचायश्री का निर्देश पाकर लोगो ने सामूहिक रूप से यह त्याग लिया कि मृत्यु के पीछे हम किसी भी प्रकार का भोज नहीं करेंगे।

इसके अनन्तर नए मोड का पठन और महिला-सम्मेलन का भी कार्यक्रम रखा गया। रात को उपाश्रय के चौक मे आचायश्री का प्रवचन हुआ।

१३ ६ ६२ लाछूडा से आचार्यश्री का विहार तिलोली की ओर हुआ। तिलोली के ठाकुर की प्रतिष्ठा आज भी लोगो के दिलों मे जमी है जिन्हे गुजरे अभी चार वर्ष हुए हैं। वे जनता के वहुत काम आए। जागीर-समाप्ति के दो वप वाद की घटना है कि करीव चौदह ऊँटो

पर सजे-धजे डाकुओ ने शहर को घेर लिया। यह सारा कार्य इतनी शीघ्रता से किया गया कि किसी को पता ही नही चला। फिर भी डाकुओ को ठाकुर साहब का भय था। अत उन्होने अपने एक साथी को ठाकुर साहब के पास भेजा जो कि किसी बहाने ठाकुर को गढ से बाहर लाकर समर्पित कर दे। वह गया लेकिन उसे सफलता नही मिली क्योकि बातचीत और व्यवहार से ठाकुर साहब ने भाँप लिया था कि यह और इसके साथी अवश्य ही डाका डालने आए हैं। उन्होने उससे कहा कि तुम बाहर चलो, मैं शीघ्र ही तुमसे मिलने आ रहा हू। इतना कहकर ठाकुर साहब और उनके भाई गढ के ऊपर चढे और मोर्चा बनाकर बैठ गए। कहते हैं कि करीब साढे तीन घटो तक ठाकुर साहब और डाकुओ के बीच सघर्ष चलता रहा। ठकुरानियो ने कारतूस भर-भरकर दिए और ठाकुर साहब डाकुओ का मुकाबला करते रहे। अन्त मे डाकुओ का एक साथी मारा गया और तीन ऊँट घायल हो गए। डाकू दल बिना एक पैसा लिए भाग खडा हुआ। इस तरह ठाकुर साहब ने अपने को खतरे मे डालकर भी गाँव-वालो और उनकी सम्पत्ति की रक्षा की। आसपास के गाँववाले आज भी उनके प्रति श्रद्धावनत है और उनकी श्रद्धा बार-बार बोल रही है कि आज हमे वही शास्ता चाहिए जो जनता के लिए अपने सर्वहितो का त्याग कर दे।

दोपहर मे आचार्यश्री का प्रवचन हुआ जिसमे आसपास के गाँवो के लोग सैकडो की सख्या मे उपस्थित थे।

साधु की करामात

शाम को प्रतिक्रमण के बाद एक भाई आया और कहने लगा—"महाराज, बडी ही लज्जा की बात है कि अभी दस दिन पहले पासवाले रतनपुरा गाँव मे भगवान् के मन्दिर मे चोरी हो गई। लेकिन उससे भी अधिक शर्मनाक बात यह हुई कि चोरी करने वाला एक साधु ही था। वह घटना से दो दिन पहले आया और गाँववालो से कहने लगा कि मन्दिर की

चावी मुझे दे दो। अभी जल्दी ही यहा साधुओ की एक जमात आनेवाली है। उनकी व्यवस्था के लिए मैं यहा आया हू। लोगो ने साधुओ के नाम पर विश्वास करते हुए चावी दे दी। वह दूसरी रात को मूर्ति का समूचा जेवर उतारकर चलता बना।" वह भाई सकुचाता हुआ कहने लगा—"महाराज, इस प्रकार की घटनाओ से समाज मे साधुओ के प्रति अनास्था वढती है।" आचार्यश्री ने समाधान देते हुए कहा कि इसीलिए तो हम कह रहे हैं कि साधु नाम से ही सब कुछ करने की अपेक्षा पहले उसके आचरणो और व्यवहारो की परीक्षा करो और फिर उसे सम्मान दो। समाज मे साधुओ के प्रति अनास्था वढने का कारण ये दम्भपूर्ण व्यवहार है यह तो स्पष्ट है ही, लेकिन इतने मात्र से साधु नाम से घृणा करना भी उचित नही।

१४ ६ ६२ आचार्यश्री का आगमन आज 'धवजी का खेडा' मे हुआ। यह गाँव विलकुल एकान्त मे आ जाने के कारण आचार्यश्री छोडना चाह रहे थे लेकिन लोगो के अत्याग्रह भरे हठ से आखिर जाना ही पडा। रायपुर के पाँच-सात अध्यापको का एक शिष्टमडल भी यहाँ आया। वह आचार्यश्री के रायपुर पधारने के निश्चित दिन और वहाँ के आयोजनो के वारे मे वातचीत करने आया था।

दोपहर मे आचार्यश्री का किसानो के वीच प्रवचन हुआ। मुनिश्री छोगालालजी 'वावा' ने आचार्यश्री के समक्ष ही कुछ प्रेरक चित्र दिखाए, जिनमे वासना को त्यागने की प्रेरणा की गई थी। 'वावा' वृद्ध होते हुए भी हँसमुख, निश्छल व सहज व्यक्तित्व को लिए है अत हरेक व्यक्ति इनसे कुछ-न-कुछ वातचीत करना चाहता है। इनकी कही हुई वात को सब वहुत ध्यान से सुनते हैं। यही कारण है कि वयासी वर्ष की अवस्था मे भी सभी उनको चाहते है।

दोपहर मे यहाँ से पाँच मील दूर 'आमदला' पधारे। वीच मे ब्राह्मणो की वस्ती 'मेखडा मे भी कुछ देर तक रुकना पडा। रात को प्रवचन का कार्यक्रम रखा गया।

१५ ६ ६२ आचार्यश्री 'आमदला' से पाँच मील दूर 'वेमाली'

पधारे। वेमाली वहुत पुराना कम्वा है और सम्पन्न भी। लेकिन अशोभनीय वात यह है कि समूचा गाँव एक छोटी-सी वात के लिए दो भागो मे बँटा हुआ है। कहते है कि इन आपसी विवादो को मिटाने के लिए आज तक काफी प्रयास किए गए, मगर सफलता नही मिली। यहाँ तक कि इन आपसी कलहो को मिटाने के लिए अनशन कर दिया गया, फिर भी 'तड' तक नही टूटा। लेकिन अव की वार न जाने क्यो सवको विश्वास था कि आचार्यश्री के प्रयास से यह मनमुटाव दूर हो जाएगा और हुआ भी ऐसा ही। दोपहर मे दोनो दलो के लोग आचार्यश्री के सान्निध्य मे सम्मिलित हुए। वात-की-वात मे सव विवाद सुलझ गए और लोगो ने एक-दूसरे से आपस मे क्षमा-याचना कर ली। वर्षों से चले आ रहे झगडे की समाप्ति से लोग सचमुच ही शान्त व प्रफुल्लित दीख रहे थे। वाद मे आचार्यश्री ने मृत्युभोज छोडने के लिए फरमाया। गाँव के मुखिया ने मृत्यु के पीछे किसी भी रूप का जीमनवार का त्याग कर किया। रात मे आचार्यश्री ने अणुव्रत की भावना पर वल देते हुए प्रवचन फरमाया।

१६ ६ ६२ राजाजी का करेडा वेमाली से तीन मील दूर है। यद्यपि यह गाँव ज्यादा वडा नही है, फिर भी लोगो का उत्साह और उमग क्षेत्र व आवादी को लाँघ रहा था। कार्यकर्ताओ के कर्तृत्व ने चाहा कि आचार्यश्री के आगमन का लाभ न केवल करेडा को ही प्रत्युत आसपास के सभी गाँववालो को भी मिले, इस दृष्टि से काफी गाँवो मे आचार्यश्री के आने की खवर दे दी। आचार्यश्री के स्वागत मे हजारो की सख्या मे जनता उपस्थित थी। स्थानीय हायर सेकण्ड्री स्कूल के प्रधानाध्यापक व उत्साही कवि श्री मेघसिह चुण्डावत आदि के अभिनन्दन-भाषण के वाद आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

दोपहर मे श्रावक-सम्मेलन रखा गया। मृत्युभोज सामूहिक रूप से तो वन्द नहीं हो सका किन्तु सभी तेरापथियो ने मृत्युभोज का परित्याग कर दिया था। आचार्यश्री ने अन्य जैन परिवारो को सकेत करते हुए फरमाया कि इस सम्वन्ध मे—'मैं कह रहा हू'—यदि इसलिए आप

प्रतिज्ञा लेने मे सकोच कर रहे हैं तो मैं चाहूगा कि आप मेरे सामने प्रतिज्ञा न भी लें किन्तु फिर भी आप इसे निभाने की कोशिश करें। यह एक ऐसी कुरूढि है कि जिसके लिए साधारण स्थितिवाले लोगो को अन्य बहुत सारे पाप करने पडते हैं। ऐसी कुरूढियाँ सदा समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुई हैं।

१७ ६ ६२ लोगो के अत्यधिक आग्रह और उत्साह के कारण आचार्यश्री को आज भी यहाँ रुकना पडा। प्रात कालीन प्रवचन मे साधु-मर्यादावली का वाचन हुआ। आचार्यश्री ने साधु-साध्वियो को साधना के प्रति जागरूक रहने की प्रेरणा दी। आपने कहा कि साधु अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति मे ध्यान रखे कि 'समणोऽहं'—'मैं श्रमण हू'। चलना-फिरना, खाना-पीना, सोना-उठना आदि सर्व क्रियाए समणोऽहं की भावना से भावित हो। वैसी अवस्था मे प्रमोद स्वय ही कोसो दूर रहेगा।

दोपहर मे युवक-सम्मेलन का कार्यक्रम रखा गया। यहाँ के कुछ युवक काफी उत्साही हैं। उन्होने इस अवसर पर यह निर्णय किया कि भीलवाडा युवक परिषद् के अन्तर्गत चलनेवाली प्रवृत्तियो मे हमारा सहयोग बडे उत्साह से देंगे। तत्पश्चात् व्यापारिक सम्मेलन का कार्यक्रम चला।

रात को कवि-सम्मेलन रखा गया। सन्तो की कविताएँ तो हुई ही, स्थानीय मेघसिंह चुण्डावत ने भी कविता-पाठ किया।

हायर सेकण्ड्री स्कूल के प्रधानाध्यापक ने आचार्यश्री से काफी देर तक वार्तालाप किया। उन्होने अपने कुछ सुझाव आचार्यश्री के समक्ष रखे। जैसे—जनहित को ध्यान मे रखते हुए साधुत्व के नियमो का आधुनिकीकरण करना चाहिए अर्थात् आधुनिक वैज्ञानिक साधनो का उपयोग करना चाहिए। तेरापथ सघ मे शिक्षा-प्रसार की दृष्टि से भी आपको कुछ विशेष व्यवस्था करनी चाहिए।

१८ ६ ६२ करेडा से लगभग छ मील दूर आचार्यश्री चितामा पधारे। चितामा पहाडी धरती पर बसा होने के कारण काफी ऊँचा-नीचा

है । जनता द्वारा स्वागत होने के वाद आचार्यश्री का प्रवचन हुआ ।

यहाँ के लोगो मे काफी अरसे से मनमुटाव चला आ रहा था। वैसे मेवाड भर मे 'तड' का होना कोई नई वात नही है, प्राय छोटे-छोटे गाँवो मे भी यह देखने को मिलता है। 'तड' को कोई नही चाहता। लेकिन अपना आग्रह भी कोई छोडना नही चाहता, क्योकि उसके साथ हार-जीत का प्रश्न जो जुडा हुआ होता है। पर किसी महान् व्यक्ति को अपने वीच पाकर भी उस अवसर का उपयोग नही करे तो मूर्खता है। अत सभी लोग चाहते हैं कि ऐसे अवसर पर सवके सभी मनमुटाव दूर हो। यहाँ भी ऐसा ही हुआ। आचार्यश्री के प्रयास से दोनो दलो के लोग झुके और स्थिति सुधर गई।

रात को मुनिश्री नौरतनमलजी के भाषण के वाद आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

१९ ६ ६२, वागोलिया आचार्यदेव चितामा से करीव सात मील दूर वागोलिया पधारे। रास्ते मे निम्वाडा मे काफी देर तक ठहरना पडा। निम्वाडा काफी वडा गाँव है। यहाँ लोगो का काफी आग्रह रहा कि आचार्यश्री यहाँ कम से कम दिन-भर तो रुकें। लेकिन समय की अल्पता, गाँवो की वहुलता और वर्षा की निकटता—ये सव वातें आचार्यश्री को आगे से आगे और जल्दी से जल्दी चलने को विवश कर रही थी। पधारते ही आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। इस अवसर पर आचार्यश्री से प्रेरणा पाकर चितामा से आए हुए प्राय सभी भाइयो ने मृत्युभोज का परित्याग कर दिया। कुछ किसान लोगो ने शराव व मास भी छोडा।

प्रवचन के वाद ज्यो ही आचार्यश्री वागोलिया की ओर चलने को तैयार हुए कि लोगो ने ठहरने के लिए आग्रह किया। यहा तक कि लोग मार्ग मे लेट गए और वोले कि आप हमारे ऊपर पैर रखकर जाना चाहे तो जा सकते है। आचार्यश्री ने महासती श्री लाडाजी को वही ठहरने के लिए कह दिया। लेकिन फिर भी वे मानने को तैयार नही हुए। आखिर

मे जैसे-तैसे कर आचायश्री वहाँ से रवाना हुए।

वागोलिया विलकुल छोटा गाँव होने से रहने के स्थान का अत्यन्त अभाव है। आचार्यश्री जिस मकान मे ठहरे उसमे भी पक्का फर्श नही वना हुआ था। फर्श के लिए पत्थर के चौके अवश्य वहाँ पर लाए पडे थे। आहार करने के वाद आपने फरमाया कि दो-तीन चौको को ठीक से लगा दो, आज इन्ही पर विश्राम करेंगे। ऐसा मौका तो आज तक मिला ही नही। 'मही रम्या शय्या विपुलमुपधान भुजलता'। पास मे खडे हम लोगो ने यह जाना कि महत्ता का प्रारम्भ वही से होता है जव कि मनुष्य अल्पतम सामग्री मे भी अपने आनन्द को अल्प न होने दे।

दोपहर मे प्रवचन के वाद 'वोराना' की ओर प्रस्थान हुआ। चलने के समय धूप काफी कडी थी। लेकिन ज्यो ही गाँव के वाहर आए कि सूरज वादलो की ओट मे छिप गया। रात्रि को आचायप्रवर का सार्वजनिक प्रवचन वाजार मे रखा गया।

२० ६ ६२, वोराना लोगो के आग्रह ने प्रात कालीन प्रवचन फिर यहाँ करवा लिया। वोराना मे ओसवाल और माहेश्वरी दोनों की वस्ती हैं। दोनो मे साधारण वात को लेकर काफी तनाव था। इस अवसर पर आचार्यश्री की प्रेरणा पा दोनो ने चाहा कि यह झगडा खत्म कर दें पर किन्ही कारणो से ऐसा नही हो सका। सुवह प्रवचन के वाद करीव नौ वजे आचार्यश्री का रायपुर की ओर विहार हुआ। वोराना से रायपुर दो मील की दूरी पर वसा हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र मे रायपुर मे काफी प्रवृत्तिया चल रही है। नवयुवको मे उत्साह है और अपने ग्राम-विकास के लिए वे नानाविध कार्यो को भी चला रहे हैं। नवयुवको का अच्छा सगठन है। आचार्यश्री के स्वागत का आयोजन कचहरी के सामने वने पडाल मे रखा गया। स्वागताध्यक्ष श्री माधवलालजी शर्मा, प्रधानाध्यापक हायर सेकण्ड्री स्कूल, काकरोली के स्वागत-भाषण के वाद वोराना स्कूल के हेड मास्टर श्री मदनलालजी का सयोजकीय वक्तव्य हुआ। समय की सीमा को देखते हुए अवशिष्ट कार्यक्रम दोपहर के लिए स्थगित कर दिया गया।

दोपहर को करीब दो बजे से फिर कार्यक्रम शुरू हुआ। रायपुर के नागरिको की ओर से अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया। इसके अतिरिक्त सस्कृत और हिन्दी मे भी आचार्यश्री का स्वागत किया गया, फिर आचार्य प्रवर का प्रेरणाप्रद प्रवचन हुआ।

रात को कवि-सम्मेलन करने का निर्णय हुआ था, लेकिन छोटे-छोटे जन्तुओ की बहुलता से ऐसा नही हो सका। गैस के प्रकाश मे क्षुद्र जीव वैसे ही हो जाते है, फिर आजकल वरसात का आरम्भ होने से उनकी सख्या और भी बढ गई थी। अत कार्यक्रम स्थगित रहा।

२१ ६ ६२ स्थानीय युवक-सगठन की ओर से युवक-सम्मेलन का आयोजन किया गया। राजनगर, आसीन्द, उदयपुर आदि और रायपुर के आसपास के गाँवो के युवक प्रतिनिधियो ने भी भाग लिया। सम्मेलन का कार्यक्रम प्रवचन-पडाल मे रखा गया। प्रवचन के लिए आचार्यश्री जब पडाल मे जा रहे थे तव एक ऐसी घटना घटी जो कि विलकुल साधारण होते हुए भी असाधारणता लिए हुए थी। जिस रास्ते से आचार्यश्री पधार रहे थे, उसी के एक ओर स्थानकवासी सम्प्रदाय की साध्वियो का व्याख्यान चल रहा था। इधर आचार्यश्री के पीछे सैंकडो की सख्या मे लोग जय-नारे लगाते आ रहे थे। कहना चाहिए वह एक अनौपचारिक जुलूस-सा वन गया था। लेकिन वह इतनी बडी भीड ज्यो ही उस स्थल पर पहुँची, जहाँ कि अन्य सम्प्रदाय की साध्वियो का व्याख्यान चल रहा था, आचार्यश्री ने भीड को लक्ष्य करते हुए कहा कि जयनारे न लगाए जाएँ। हमारी प्रवृत्तियो से दूसरो के कार्यो मे वाधा आए, यह उचित नही। दूसरे ही क्षण वातावरण बिलकुल नीरव था जैसे कि सडक पर कोई चल ही न रहा हो। घटना विलकुल साधारण थी, फिर भी देखने-वालो के हृदय पर वहुत वडा असर छोड गई। समन्वय की भावना साधक की प्रत्येक प्रवृत्ति मे झलके, साधना तभी फलवती होती है। फिर चाहे दूसरे उसकी अपेक्षा समझें या न समझें।

ठीक आठ वजे युवक-सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। श्री मदनलालजी के

सयोजकीय वक्तव्य के बाद भीलवाडा के उत्साही कार्यकर्ता श्री डालचन्द वोरदिया ने युवको को सगठित होने की प्रेरणा दी। फिर माधवलाल जी व्यास ने अपने विचार व्यक्त किये। श्री देवेन्द्र कर्णावट ने नवयुवको को प्रेरणा देते हुए कहा कि आज जमाने की शिकायत है कि नवयुवक जहाँ पुरानी परम्पराओ के उन्मूलन के लिए कटिवद्ध हैं वहाँ वे अपनी सुविधाओ का त्याग करने के लिए सवसे पहले पीछे खिसक्ते है। स्थिति यह है कि प्राचीन परम्पराएँ उन्हें मान्य नही और नये रचनात्मक कार्यो मे वे खपने को तैयार नही। इस तरह दोनो ओर का अविश्वास उन्हे मिल रहा है। आवश्यकता यह है कि वे उवलते हुए खून से कोई ऐसा रचनात्मक काय प्रारम्भ करें जो कि उनके लिए तो लाभदायी हो ही, साथ ही दूसरो के दिलो मे नवयुवको की शक्ति और काय-स्फुरण के प्रति जो सन्दिग्धता रही है उसको भी दूर करने वाला हो।

आचायश्री ने इस अवसर पर अपना विशेप प्रवचन देते हुए कहा—"युवक शब्द का तात्पर्य है, एक ऐसी अवस्था जो शक्ति का केन्द्र हो, रचनात्मक प्रवृत्तियो मे जिसका उत्साह स्फूत हो। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि आज के युवक अपनी शक्ति को, अपने उत्तरदायित्व को ठीक से नही समझ रहे हैं। निर्माणात्मक प्रवृत्तियो के लिए जव भी उनसे वात-चीत करने का मौका मिलता है वे कन्नी काटते दिखाई देते हैं। किन्तु इस वहानेवाजी का अर्थ है अपनी शक्ति और विश्वास का अपमान।

वहुत वार युवको के द्वारा ऐसा भी सुनने में आता है कि हम रचनात्मक कार्य करना तो चाहते है लेकिन हमारे वडे-बूढे लोग इसमे सहयोगी वनने को तैयार नही। किन्तु मैं सोचता हूँ कि युवक अपने अदम्य उत्साह और लगन से कार्य करने मे जुट जाएँ तो समूचा समाज स्वय सहयोगी वन जाएगा। प्रारम्भ मे अडचनें आना सफलता का शुभ लक्षण है, यदि कार्य करनेवाला अपनी हिम्मत न खोए। कार्यशक्ति के साथ-साथ युवको को चाहिए कि वे अपना सन्तुलन वनाए रखें। व्यक्ति यदि अपना सन्तुलन नही रख पाता, इसका तात्पर्य है कि उसकी कार्य-प्रणालियाँ

विकेन्द्रित हो जाएँगी और वह पगडंडियो मे ही उलझ जाएगा, फिर मजिल की तो बात करना भी व्यर्थ होगा।

इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे सम्मेलनो से युवक प्रेरणा लें, निर्माणात्मक प्रवृत्तियो की ओर अधिक से अधिक झुके। और उसके साथ ही जिस उत्साह से कार्य प्रारम्भ किया जाए, उसकी सम्पन्नता तक वैसा ही उत्साह बना रहे, यह अत्यन्त अपेक्षित है। प्राय प्रवृत्ति के प्रारभ मे जो उत्साह दिखाई देता है, थोडे ही समय के बाद उतना ही निरुत्साह नजर आता है। अत कार्य करनेवाले अपने उत्साह व धैर्य को न खोएँ।" उपसहार करते हुए आपने फरमाया कि सगठन-सचालको का भी कर्तव्य है कि वे अपने स्वार्थो का त्याग करके क्रियाशीलता का उदाहरण दें। दूसरे, सगठन को सम्प्रदाय-भावना से सर्वथा विलग रखें। लोगो की उत्कण्ठा को देखते हुए फिर साधु और साध्वियो की कविताएँ भी हुई।

दोपहर मे युवक-सम्मेलन की दूसरी बैठक रखी गई जिसमे जिलास्तरीय भीलवाडा अणुव्रत-विकास परिषद की रूपरेखा रखी गई। इसके अनुसार भीलवाडा जिले के विभिन्न क्षेत्रो के नवयुवक कार्यकर्त्ताओ का एक व्यवस्थित सगठन हो जो कि भीलवाडा जिले मे घूम-घूमकर अणुव्रत की भावना फैलाए। युवक साथी श्री डालचन्द बोरदिया वैसे आसीन्द से इस सगठन की भावना के अनुकूल वातावरण बनाते आ रहे है। अत इस सगठन को काफी नवयुवक कार्यकर्त्ता मिले है। रायपुर क्षेत्र से नवयुवको ने जिनमे कि स्कूल के अध्यापक-प्राध्यापक भी शामिल हैं, सगठन का विशेष उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। वर्ष भर मे सगठन की ओर से होनेवाली विशेष प्रवृत्ति की जिम्मेवारी इनके ऊपर रहेगी। इस प्रकार युवक-सम्मेलन भविष्य के लिए एक पाथेय लेकर सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

२२ ६ ६२ प्रात काल का विहार रायपुर से छ मील दूर नाथडियास की ओर हुआ। मार्ग मे 'सगरेवा' गाँव मे स्थानीय जैन तथा अन्य किसान भाइयो के आग्रह से थोडी देर रुकना पडा। नाथडियास मे

प्रवचन का कार्यक्रम दोपहर मे रखा गया। प्रवचन के बाद वैरागी सम्प्रदाय के एक सन्यासी ने खडे होकर पूछा—"महाराज! मनुष्य की मुक्ति जीते-जी होती है या मरने के बाद? यदि मरने के बाद हो तो फिर वह मुक्ति आदमी के किस काम की? दूसरे मे राम नाम का जाप करते मेरी तो इतनी उम्र बीत गई। क्या इसकी कोई निश्चित अवधि भी होती होगी या अनिश्चित काल के लिए रहना होगा? अनेक साधु-सन्तो से पूछ लिया लेकिन किसी ने भी सन्तोषजनक उत्तर नही दिया, अब इसका ठीक-ठीक उत्तर बता दीजिये।" आचार्यश्री ने मुसकराते हुए कहा—"रामनाम रटते-रटते तुम्हारी काफी उम्र बीत गई लेकिन पहले यह तो बताओ कि अभी तक खार (क्रोध) और अहकार आता है या नही?" उसने कहा—"महाराज! खार और अहकार तो आता है।" "तो जब तक खार और अहकार का आना समूल से नष्ट नही होता है तब तक तो तुम्हें राम का नाम रटना ही होगा। जिस दिन वह छूट जाए, फिर राम-नाम की आवश्यकता नही।" हमने देखा कि उसका दिल अपनी जिज्ञासा का सन्तोषप्रद समाधान पाकर आश्वस्त था। इसके साथ ही यह भी अनुभव कर रहे थे कि आत्मा, परमात्मा आदि दार्शनिक विषयो को जन-साधारण के दिमाग मे बिठाना भी बहुत बडा कौशल है जिसको हस्तगत करना एक नेता के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

दोपहर मे नाथडियास से आचार्यश्री चादरास पधारे। रात को प्रवचन मे स्थानीय व आसपास के गाँवो से आए हुए सैकडो की सख्या म किसान भाइयो ने लाभ उठाया। अनेक ने शराब, माँस के त्याग लिए। कुछ ने तमाखू पीना भी छोडा।

बिना किसी भेदभाव के हर जाति की उपस्थिति व दिनभर और रास्ते मे आवागमन केवल आचार्यश्री की सार्वजनीनता ही सिद्ध कर रही है लेकिन इसके साथ-साथ यह भी स्वत प्रमाणित होता है कि भारतीय जनता का मानस आज भी अपने नेता के प्रति उसी श्रद्धा से ओत-प्रोत है, यदि वह नि:स्वार्थ और आत्मबलिदानपूर्वक कार्य करे। आचार्यश्री

का कार्यक्रम और चिन्तन तो इस सम्बन्ध मे इतना उदार बन गया है कि उन्होने अपनी सुविधा तो बहुत दूर, अपनी आवश्यकताओ को भी गौण कर दिया है। खाने-पीने और सोने का विचार यदि आता है तो हम को देखकर ही आता है।

२३ ६ ६२ आचार्यश्री का चादरास से चाखेट पधारना हुआ। दोपहर के प्रवचन के बाद शाम को तीन मील दूर लुहारिया पदार्पण हुआ। लुहारिया गाँव छोटा-सा है लेकिन पता नही आज इतनी सख्या कहाँ से आ गई। प्रवचन मे हिन्दू, मुस्लिम—सब समान रूप से उपस्थित थे। आचार्यश्री की प्रेरणा या प्रवचन के बाद एक मौलवी आया और बोला—"महाराज! मैं आपके प्रवचन से बडा प्रभावित हूँ। वैसे तो मेरे जीवन मे और कोई व्यसन नही है पर मुझे झूठ बोलने की आदत अवश्य है। मुझे आप झूठ न बोलने की प्रतिज्ञा करवा दीजिए।" आचार्यश्री ने फरमाया—"अच्छा, आप हाथ जोडकर प्रतिज्ञा कर लीजिए।" यह सुनकर वह उछल पडा और बोला—"हाथ तो खुदा के आगे ही जोडते हैं। दूसरे के आगे हाथ जोडना यह हमारे धर्म के खिलाफ है।" आचार्यश्री ने उसे समझाते हुए फरमाया—"मैं कब कह रहा हूँ कि आप मेरे आगे हाथ जोड-कर प्रतिज्ञा लें, खुदा के आगे हाथ जोडकर प्रतिज्ञा ले लीजिए।" पर वह नही माना। शायद वह ऐसा सोच रहा हो कि आचार्यजी अपने आगे हाथ जुडवाकर अपने धर्म की दीक्षा देना चाहते है। तब आचार्यश्री ने फरमाया—"खैर, कोई बात नही, आप योंही प्रतिज्ञा ले लीजिए कि 'मैं कभी भी असत्य नही बोलूगा।" तब कही मौलवीजी ने प्रतिज्ञा ली।

रात को फिर आचार्यश्री के प्रवचन के बाद वह मौलवी उठा और बोला कि "आचार्यजी! यहाँ हमारी कौम के लोगो मे और कोई नुक्स नही है, केवल चोरी करने की एक आदत है। आप सामने बैठे हुए सभी भाइयो को चोरी न करने की प्रतिज्ञा दिलवाइए।" यह सुनते ही वहाँ पर बैठे हुए सभी लोगो की आँखें जमीन मे गड गई। आचार्यश्री ने यह देखा तो स्थिति को भाँपते देर न लगी। आपने उनके दिलो मे झाँकते हुए

कहा—"मुसलमान भाइयो ! यदि आपको मेरे साथ थोडी भी मोहब्बत है तो मुझे विश्वास है कि आप मुझे अपनी शक्लें दिखा देंगे।" केवल एक वाक्य उनके दिलो मे तीर की तरह चुभ गया। सामने बैठे हुए सभी मुस्लिम खडे हो गए और बोले—"आचार्यजी ! हम सब कोई चोर थोडे ही हैं। केवल दो-चार व्यक्तियो के कारण सारे लोगो को बदनाम किया जा रहा है। हम सब आपके सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि हम कभी भी चोरी नहीं करेंगे।" देखनेवाली जनता स्तब्ध थी और इस बात का एक अमिट असर उनके मानस पर था कि समय पर प्रयुक्त एक शब्द भी कितना मूल्य रखता है।

२४ ६ ६२ आचार्यश्री भादु होते हुए घोडास पधारे। उदयपुर से श्री धाकडजी, तखतमलजी, सोहनलालजी (राजनगर) आदि ने आचार्यश्री के दर्शन किए। उदयपुर चातुर्मास की अवस्थिति और अन्यान्य व्यवस्था के बारे मे आचार्यश्री के साथ बातचीत हुई। दोपहर मे प्रवचन हुआ। फिर आचार्यश्री का विहार पितास की ओर हुआ।

रात को प्रवचन हुआ। अनेक किसान भाइयो ने शराब, मास और तम्बाकू सेवन न करने का व्रत लिया।

२५ ६ ६२ पितास से सात मील दूर आचार्यश्री बागोर पधारे। बागोर के आसपास अभ्रक की काफी समृद्ध खानें हैं। कहा जाता है कि इन खानो की बडी अच्छी व्यवस्था है। मजदूरो की चिकित्सा के लिए, उनके बच्चो की शिक्षा के लिए और आमोद-प्रमोद के लिए अस्पताल, स्कूल, छविगृह की कम्पनी की ओर से व्यवस्था की गई है। इनके व्यय में मजदूरो की धन-राशि का ही उपयोग किया गया है। प्रत्येक की मजदूरी से दस प्रतिशत, वह भी उनकी इच्छापूर्वक, धन लेकर लाखो की लागत के मकान खडे कर दिये गये हैं जो कि उनके उपयोग के लिए ही विशेष रूप से हैं।

आचार्यश्री का ठहरना छविगृह मे हुआ। स्थानीय लोगो ने बडे उत्साह से आचार्यश्री का स्वागत किया। प्रवचन मे भी लोग बहुत बडी

सख्या मे उपस्थित थे। आचार्यश्री का प्रवचन बहुत प्रभावक रहा।

दिन मे थोडा स्वास्थ्य ठीक नही रहा। दस्त और उल्टियाँ भी हुई। मानसिक और शारीरिक थकान भी रही। हमने सोचा, सम्भवत आचार्यश्री आज तो विश्राम करेंगे। लेकिन कालिदास ने ठीक कहा है—'अविश्रमोऽय लोक तन्त्राधिकार'। रात को हजारो की उपस्थिति आचार्यश्री का प्रवचन सुनने को लालायित थी। अत हमेशा की अपेक्षा आज प्रवचन भी लम्बे समय तक करना पडा।

२६ ६ ६२ आचार्यदेव का स्वास्थ्य आज सामान्य स्थिति पर था, यद्यपि शारीरिक कमजोरी अवश्य थी। पर गाँवो को ध्यान मे रखते हुए आपने यहाँ से दो मील दूर अडसीपुरा की ओर प्रस्थान किया। वहाँ से साँझ को बावलास पधारना हुआ। रात को गढ के मकान मे प्रवचन हुआ। अनेक भाइयो ने शराब, माम, तमाखू, कन्या-विक्रय, वर-विक्रय आदि के त्याग किए। लोगो ने मृत्यु-भोज का भी सामूहिक रूप से परित्याग कर दिया।

२७ ६ ६२ आचार्यप्रवर बोरियापुरा पधारे। बोरियापुरा के लोगो के अधिक आग्रह से आज रात को यही ठहरना पडा। रात को प्रवचन हुआ। अनेक किसान भाइयो ने दारू, मास और तमाखू का परित्याग किया। मृत्यु-भोज को भी छोड दिया एव नए मोड को सभी ने स्वीकार कर लिया।

२८ ६ ६२ आचार्यश्री यहाँ मे तीन मील दूर आमलो पधारे। प्रात-कालीन प्रवचन के अलावा दोपहर मे फिर प्रवचन हुआ। दिन मे आचार्यश्री को तीन बार तो प्रवचन कम से कम प्राय करने ही पडते है। कई बार सतो का आग्रह रहता है कि दोपहर मे आचार्यश्री व्याख्यान आदि से उपरत रहे पर सैकडो की मख्या मे किसानो व अन्य सभी जातियो की उपस्थिति देखकर आचार्यश्री को व्याख्यान के लिए मच पर आना ही होता है। जनता जिसके लिए आए और जो जनता मे रम जाए, फिर ऊपर की परिस्थितियाँ कभी अडचन पैदा कैमे कर सकती है ?

दोपहर मे ग्रामवासी अपना आपसी विवाद मिटाने आए। विवाद बहुत छोटी-सी बात को लेकर था और प्राय छोटी बात को लेकर ही विवाद हुआ करता है। लेकिन आपस की खीचातान कई बार छोटी-सी बात को भी इतना बडा रूप दे देती है कि एक छोटा-मोटा दूसरा महाभारत-सा बन जाता है। जीवन का सहज भाव उससे बडा दुख पाता है, फिर भी पता नहीं कि आदमी खीचातान लिए ही क्यों चलता है। यहाँ के लोग आए और आचार्यश्री से अपना विवाद और अपनी-अपनी समस्याए कही। आचार्यश्री ने उन्हे समाधान का मार्ग सुझाया और साथ ही यह भी फरमाया कि विवाद तब तक नही सुलझेगा, जब तक कि आप पीछे की बातो के लिए एक-दूसरे से क्षमा-याचना न कर लें और पुरानी बातो को वापस न उखाडें। लोगो ने अपने-अपने मनो को टटोला और अपने-अपने आग्रह को छोड सरलता के पथ पर आए और विवाद स्वय सुलझ गया।

साँझ को वहाँ से करीब चार मील दूर आसावली पधारे। कहते हैं कि यहाँ पर कन्या-विक्रय और वर-विक्रय का कार्य काफी गति पर है। रात को प्रवचन मे आचार्यश्री ने नया मोड, मृत्यु-भोज, कन्या विक्रय और वर-विक्रय आदि कुरूढियो को त्यागने की प्रेरणा दी।

२९ ६ ६२ आचार्यश्री कोशीथल होते हुए नौ मील दूर देवरिया पधारे। कोशीथल के लोग अपरिचितता और गलतफहमियो के कारण पहले तो निकट नही आए, पर प्रवचन मे आचार्यश्री के उदार और स्पष्ट विचार सुनकर बिलकुल पिघल गए। फिर उन्होने आचार्यश्री से कोशीथल मे ठहरने का बहुत-बहुत आग्रह किया। आचार्यश्री ने फरमाया कि मैं यहाँ नही ठहर रहा हू इसका अर्थ यह नही कि मैं आपसे नाराज हू। पर देव-रिया पहुचने का निणय पहले से ही हो चुका है अत मुझे वहीं जाना होगा।

दोपहर मे प्रवचन का कार्यक्रम रखा गया। प्रवचन से पहले श्री हरख-चदजी बावेल बागोर-निवासी (उम्र पैंतालिस वर्ष) ने आचार्यश्री से दीक्षा के लिए काफी अर्ज की। उनकी पत्नी का देहान्त गत वर्ष हो गया

था। उस घटना से ससार की नश्वरता को जानते हुए उनका मन विरक्त हो गया। इस अवसर पर सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने तेरापथ साधु-जीवन की कठोरता और महत्ता वतलाते हुए फरमाया कि दीक्षा से पहले तीन वातो का दृढता से सकल्प कर लेना चाहिए। पहली वात तो है गुरु-दृष्टि की आराधना। गुरुदेव का जिस ओर इगित हो वस अपने को उसी ओर झोक देना चाहिए। दूसरे मे अपनी आत्म-साधना और तीसरे मे सघ के लिए यदि प्राणो की भी जरूरत हो तो हँसी-खुशी से उत्सर्ग कर देना चाहिए। 'उभो आवै औ सुतो जावै'—यह वात प्रतिपल ध्यान मे रखना चाहिए। यदि ये तीन वातें जीवन मे अच्छी तरह से रम जाए तो साधु-जीवन नन्दन-वन है। पर उसके लिए पहले अपने मन को खूव तोल लेना चाहिए। दीक्षार्थी हरखलालजी ने कहा कि आचार्यश्री! मैंने अपने आपको खूव तोल लिया है और ससार से भी मैं अपरिचित नही हू। मुझे आप दीक्षा का हुक्म फरमाइए। आखिर आचार्यश्री ने उसकी योग्यता और भावना को समझते हुए प्रतिक्रमण सीखने की आज्ञा प्रदान की।

प्रवचन के प्रसग मे आपने लोगो को सहज रूप से फरमाया कि क्या कोई भी व्यक्ति इस दीक्षार्थी भाई के सहयोगी रूप वनने को तैयार है? आह्वान को झेलते हुए श्री सोहनलालजी पीतलिया, देवरिया-निवासी उठे, जिनकी उम्र अभी तैतीस वर्ष की है और वे वोले—"महाराज! मैं इसके लिए तैयार हू।" जनता आश्चर्यचकित थी। वहुतो को अपनी आँखो पर भी विश्वास नही हो रहा था लेकिन घटना सामने थी। अत अविश्वास भी कैसे कोई कर सकता था। आचार्यश्री ने उसे समझाया कि ठीक है, तुम्हारी अर्ज सुन ली, अवसर आने पर देखा जाएगा। फिर त्याग प्रत्याख्यान के वातावरण मे प्रवचन सम्पन्न हुआ।

रात को फिर प्रवचन हुआ। किसान लोगो की वहुत अच्छी उप-स्थिति रही। अनेक ने शराव, मास और तमाखू के त्याग लिए।

३० ६ ६२ देवरिया से चार मील दूर मोखुन्दा पदार्पण हुआ। शासन की दृष्टि से मोखुन्दा वैसे काफी पुराना क्षेत्र है लेकिन इन दिनो कुछ सुन्न-

सा रहा। आचायश्री के आगमन से वह सुस्ती भी आज जाती रही। लोगो में उत्साह नजर आ रहा था। आमेड, सरदारगढ आदि क्षेत्र भी यहाँ से विलकुल सन्निकट हैं। अत तत्रस्थ जन-समुदाय भी काफी सख्या मे उपस्थित था। आचायश्री ने प्रवचन मे शासन की एकसूत्रता, नियमानुर्वतिता आदि वातो पर जोर देकर फरमाया।

दोपहर मे मोखुन्दावासियो को विशेष रूप से समय दिया गया। नया मोड, मृत्युभोज आदि की प्रतिज्ञाओ के वारे मे चर्चा चली। रात को फिर प्रवचन हुआ।

१ ७ ६२ मोखुन्दा से आचायश्री वागड होते हुए साकरडा पधारे। मोखुन्दा से साकरडा सीधे रास्ते से करीव पाँच मील पडता है और वागड होकर आने से तीन मील का चक्कर अधिक पडता है। किन्तु यह प्रसिद्ध ही है—

सत सरसरि परशराम, चलै भुजगी चाल।
जिह-जिह सेरी सचरै, तिह-तिह करत निहाल॥

आचार्यश्री जव साकरडा पधारे तव तक इतनी घूप चढ गई थी कि हरेक व्यक्ति तो घर से वाहर निकलने का भी साहस नही कर सकता, फिर भी आचायश्री उसी प्रसन्न मुद्रा से 'रघुवश' में राजा दिलीप के लिए प्रयुक्त 'आफलोदय कर्मणा' की पक्ति को मूर्त रूप देते हुए आ रहे थे, साथ मे सैंकडो की सख्या मे मेद पाट के श्रद्धालु लोग उन घाटियो मे भी पीछे-पीछे आ रहे थे। तभी मन में आया कि हजारो और लाखो व्यक्तियो को भी एक सूत्र वनाने की क्षमता जो आस्था मे है वह बुद्धि से कभी भी प्रसूत नही हो सकती।

दोपहर मे प्रवचन के वाद जिलोली पधारना हुआ। जिलोली जैसे छोटे से गाँव मे लोगो की इतनी वडी भीड देखकर सचमुच ही वहुत आश्चर्य हो रहा था। जन-समुदाय इतना वढा कि यहाँ का वाजार भी लोगो से खचाखच भर गया। एक वैलगाडी के वैल तो गाडीवान की कोशिश के वाद भी कावू मे नही रह सके जिसके परिणामस्वरूप साध्वी-

श्री सोनाजी को काफी चोट आयी और उनको वही रुकना पडा।

रात को सार्वजनिक प्रवचन हुआ। यहाँ के ठाकुर साहव ने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि "महाराज! यहाँ दो भाइयो के वीच काफी झमेला चला आ रहा है। मामला कोर्ट तक पहुच गया है। इनका अपना तो नुकसान है ही, गाँववालो की प्रतिष्ठा मे भी इससे अन्तर पडता है। आज आपसे मैं चाहूंगा कि आप इनके झगडे को निपटा दें।" आचार्यश्री ने पहले सन्तो को उस सम्वन्ध मे वातचीत करने और समाधान खोजने के लिए फरमाया, पर सन्त सफल नही हो सके। फिर प्रात काल मे आचार्यश्री के थोडे से प्रयत्न ने उनको समाधान दे दिया और उन्होने अपने विवाद को एक व्यक्ति के सिपुर्द कर दिया। वह व्यक्ति जो भी उन्हे निर्णय देगा वह उन्हे मजूर होगा।

२ ७ ६२ जिलोला से एक मील दूर कावरी पधारना हुआ। कावरी तक पहुचने मे रास्ते की वहुत दिक्कत रही। पहले तीन मील तक तो कोई पगडडी या गाडी का रास्ता न होने से चलने का पूरा परीषह रहा। तीखी-तीखी शूलें, ऊवड-खावड रास्ता, ककड-पत्थर और इनके साथ ही साधुत्व के परीषहस्वरूप जगह-जगह पर फूटे हुए अकुरे—सवने मिलकर रास्ते को वहुत दुर्गम वना दिया था। फिर भी 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःख न च सुखम्'। आचार्यश्री के चरण हमने कभी श्लथ नही देखे। पैरो की गति मे मन्दता यदि कही दीख रही थी तो केवल उन मासूम अकुरो के कारण ही अन्यथा पैर अवाधित रूप से आगे से आगे चल रहे थे। कावरी के नीलकठ महादेव के मन्दिर होते हुए आप गाँव मे पधारे। दोपहर मे प्रवचन हुआ। अनेक किसान भाइयो ने शराव, मास, तमाखू आदि का परित्याग कर दिया।

शाम को वहा से चार मील दूर कुवारिया पधारे। रात को प्रार्थना के वाद प्रवचन हुआ। लोगो ने खूव दिलचस्पी से भाग लिया। परन्तु प्रवचन के वीच मे पास ही किसी ने विज्ञापन की दृष्टि से रेकार्ड शुरू कर दिया। यह वात लोगो को वहुत अखरी। एक वार समझाने पर भी वह वन्द करने

को तैयार नहीं हुआ। आचार्यश्री ने विनोद-भाव से कहा—'यह है तो सभ्यता के खिलाफ की चीज, फिर भी यदि न मानें तो न सही। कायक्रम आखिर एक ही निभ सकेगा।' कुछ लोगो ने कहा कि मानेगा क्यो नहीं, उसे बन्द करना ही पडेगा। आचायश्री ने उन्हे समझाते हुए कहा कि—'पडेगा' ऐसी स्थिति पैदा नही होनी चाहिए। अच्छा तो यह रहे कि वह स्वय समझ जाए। इतने मे लोगो ने देखा कि रेकाड की आवाज अव नही आ रही है। ऐसा लगा कि हृदय-परिवर्तन मे शब्दो की अपेक्षा हृदय ही अधिक सफल होता है। फिर अन्त तक प्रवचन निर्बाध गति से चलता रहा।

प्रवचन के वाद यहाँ के सभी जातियो के लोगो ने कल तक ठहरने का वहुत आग्रह किया, किन्तु समयाभाव के कारण ऐसा नही हो सका।

३ ७ ६२, मोही आज राजनगर मे अध्ययन करने वाली शिक्षण शिविर की साध्वियो ने आचार्यश्री का दर्शन किया। आचार्यश्री के मन मे साध्वियो मे शिक्षा-विकास की वडी तडप है। शिक्षा के क्षेत्र मे साधु वर्ग की तरह साध्वियो को भी वे देखना चाहते हैं। अनेक परिस्थितियो को लाघकर भी उन्होंने इस ओर चिन्तन किया। फलत शिक्षण केन्द्र का जन्म हुआ। शिक्षण केन्द्र दो वर्षो से राजसमन्द—काकरोली मे चल रहा है। शेष काल के तीन-चार महीने तक यहाँ अध्ययन चलता है। चातुर्मास के निकट शिक्षार्थिनी साध्वियाँ अपने ग्रुप मे चातुर्मास विताने चली जाती हैं। इस वर्ष केन्द्र मे बाईस साध्विया थी। साध्वीश्री किस्तूराजी, श्री फूलकुमारीजी, श्री जतनकुमारीजी और श्री रतनश्रीजी—ये चार अध्यापिका के रूप मे थी, शेप शिक्षार्थिनी के रूप मे। केन्द्र की सफलता देख आचार्यश्री इस कार्य को अन्य स्थानो मे भी विस्तार देना चाहते हैं।

काकरोली मेवाड मे गाँवो का चक्रव्यूह-सा है। पाँच-दस कोस की परिधि मे कई गाँव बसे है। आचार्यश्री काकरोली पधारे। उस समय प्राय नब्बे-सौ गाँवो के भाई-वहन दशनार्थ आए थे। भाइयो की पगडी

श्री सोनाजी को काफी चोट आयी और उनको वही रुकना पडा।

रात को सार्वजनिक प्रवचन हुआ। यहाँ के ठाकुर साहब ने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि "महाराज! यहाँ दो भाइयो के बीच काफी झमेला चला आ रहा है। मामला कोर्ट तक पहुच गया है। इनका अपना तो नुकसान है ही, गाँववालो की प्रतिष्ठा मे भी इससे अन्तर पडता है। आज आपसे मैं चाहूगा कि आप इनके झगडे को निपटा दें।" आचार्यश्री ने पहले सन्तो को उस सम्बन्ध मे बातचीत करने और समाधान खोजने के लिए फरमाया, पर सन्त सफल नही हो सके। फिर प्रात काल मे आचार्यश्री के थोडे से प्रयत्न ने उनको समाधान दे दिया और उन्होने अपने विवाद को एक व्यक्ति के सिपुर्द कर दिया। वह व्यक्ति जो भी उन्हे निर्णय देगा वह उन्हे मजूर होगा।

२ ७ ६२ जिलोला से एक मील दूर कावरी पधारना हुआ। कावरी तक पहुचने मे रास्ते की बहुत दिक्कत रही। पहले तीन मील तक तो कोई पगडडी या गाडी का रास्ता न होने से चलने का पूरा परीषह रहा। तीखी-तीखी शूलें, ऊबड-खाबड रास्ता, ककड-पत्थर और इनके साथ ही साधुत्व के परीषहस्वरूप जगह-जगह पर फूटे हुए अकुरे—सबने मिलकर रास्ते को बहुत दुर्गम बना दिया था। फिर भी 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु ख न च सुखम्'। आचार्यश्री के चरण हमने कभी श्लथ नही देखे। पैरो की गति मे मन्दता यदि कही दीख रही थी तो केवल उन मासूम अकुरो के कारण ही अन्यथा पैर अबाधित रूप से आगे से आगे चल रहे थे। कावरी के नीलकठ महादेव के मन्दिर होते हुए आप गाँव मे पधारे। दोपहर मे प्रवचन हुआ। अनेक किसान भाइयो ने शराब, मास, तमाखू आदि का परित्याग कर दिया।

शाम को वहा से चार मील दूर कुवारिया पधारे। रात को प्रार्थना के बाद प्रवचन हुआ। लोगो ने खूब दिलचस्पी से भाग लिया। परन्तु प्रवचन के बीच मे पास ही किसी ने विज्ञापन की दृष्टि से रेकार्ड शुरू कर दिया। यह बात लोगो को बहुत अखरी। एक बार समझाने पर भी वह बन्द करने

को तैयार नहीं हुआ। आचार्यश्री ने विनोद-भाव से कहा—'यह है तो सभ्यता के खिलाफ की चीज़, फिर भी यदि न मानें तो न सही। कायक्रम आखिर एक ही निभ सकेगा।' कुछ लोगो ने कहा कि मानेगा क्यो नही, उसे वन्द करना ही पडेगा। आचार्यश्री ने उन्हे समझाते हुए कहा कि—'पडेगा' ऐसी स्थिति पैदा नही होनी चाहिए। अच्छा तो यह रहे कि वह स्वय समझ जाए। इतने मे लोगो ने देखा कि रेकार्ड की आवाज अब नही आ रही है। ऐसा लगा कि हृदय-परिवर्तन मे शब्दो की अपेक्षा हृदय ही अधिक सफल होता है। फिर अन्त तक प्रवचन निर्बाध गति से चलता रहा।

प्रवचन के बाद यहाँ के सभी जातियो के लोगो ने कल तक ठहरने का वहुत आग्रह किया, किन्तु समयाभाव के कारण ऐसा नही हो सका।

३ ७ ६२, मोही आज राजनगर मे अध्ययन करने वाली शिक्षण शिविर की साध्वियो ने आचार्यश्री का दर्शन किया। आचार्यश्री के मन मे साध्वियो मे शिक्षा-विकास की बडी तडप है। शिक्षा के क्षेत्र मे साधु वर्ग की तरह साध्वियो को भी वे देखना चाहते हैं। अनेक परिस्थितियो को लाघकर भी उन्होने इस ओर चिन्तन किया। फलत शिक्षण केन्द्र का जन्म हुआ। शिक्षण केन्द्र दो वर्षो से राजसमन्द—काकरोली मे चल रहा है। शेष काल के तीन-चार महीने तक यहाँ अध्ययन चलता है। चातुर्मास के निकट शिक्षार्थिनी साध्वियाँ अपने ग्रुप मे चातुर्मास विताने चली जाती हैं। इस वर्ष केन्द्र मे वाईस साध्विया थी। साध्वीश्री किस्तूराजी, श्री फूलकुमारीजी, श्री जतनकुमारीजी और श्री रतनश्रीजी—ये चार अध्यापिका के रूप मे थी, शेष शिक्षार्थिनी के रूप मे। केन्द्र की सफलना देख आचार्यश्री इस काय को अन्य स्थानो मे भी विस्तार देना चाहते हैं।

काकरोली मेवाड मे गाँवो का चक्रव्यूह-सा है। पाँच-दस कोस की परिधि मे कई गाँव वसे हैं। आचार्यश्री काकरोली पधारे। उस समय प्राय नब्बे-सौ गाँवो के भाई-वहन दर्शनार्थ आए थे। भाइयो की पगडी

और बहनो की ओढनी के अनेक रगो से धरती मुसकराती हुई-सी लग रही थी। किसी गाँव से पाँच व्यक्ति आए और किसी से पन्द्रह-बीस। आगन्तुक शाम तक हजारो की सख्या मे पहुच गए थे। शहर के बाहर सडक के दोनो ओर वयस्को की टोली बैठी थी। वृद्धजन गाँव के बाहर ही बैठ गए थे और युवा व्यक्ति कुछ आगे चले जा रहे थे। कई व्यक्ति तो दो-तीन मील तक आचार्यश्री के सम्मुख पहुच गये थे। शहर मे प्रवेश करते समय जुलूस कल्पना से अधिक लम्बा बन गया था। स्वागत का कार्यक्रम बालकृष्ण विद्याभवन मे सम्पन्न हुआ। मोहनप्रकाशजी ने सयोजकीय भाषण मे दो शब्द कहे। अन्य वक्ताओ का भाषण स्थगित कर दिया गया, क्योकि समयाभाव था। अन्त मे आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। रात को प्रार्थना के बाद मुनिश्री दुलहराजजी ने भाषण दिया। मुनिश्री सागरमल जी, माँगीलालजी मधुकर के सगीत-स्वरो के अनन्तर आचार्यश्री का हृदय-स्पर्शी वक्तव्य हुआ। उपस्थिति तीन-चार हजार की थी।

काकरोली से राजनगर पधारते समय आचार्यश्री ने तुलसी पुस्तकालय का अवलोकन किया। बालचन्द नलेसरा के प्रयास से इसकी स्थापना हुई है। एक-डेढ साल की अल्पावधि मे काफी उपयोगी सग्रह हो गया है। प्राचीन सस्कृत साहित्य और आधुनिक हिन्दी साहित्य की दो हजार पुस्तको का उपयोग व्यवस्थित रूप मे हो रहा है।

४.७.६२, राजसमन्द आचार्य भिक्षु के ज्ञान-नेत्र यही खुले थे। बोधिस्थल होने से यह तीर्थस्थल और तेरापथ की जन्मभूमि भी बन गया है। आचार्यश्री ने अन्य सुविधा को ठुकराकर तेरापथ द्विशताब्दी समारोह इसी पावन धूलि मे मनाया। अणुव्रत के नये मोड की एक किरण यही से निकली थी, जिसका प्रकाश मेवाड के सभी गाँवो ने लिया था। स्कूल का वही प्रागण एक-एक कर मधु स्मृतियो को जोड रहा था। साढे सात बजे आचार्यश्री महाराणा हाईस्कूल के प्रागण मे प्रवचन के लिए पधारे। स्वागत के कार्यक्रम मे केन्द्र की शिक्षार्थिनी साध्वियो ने मगलगान गाया। शिक्षण-केन्द्र की व्यवस्थापिका साध्वीश्री कस्तूराजी ने शिक्षण-केन्द्र के

अनुभवो को पत्र का रूप देकर श्रीचरणो मे समर्पित किया। सर्वश्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट ने आचार्यश्री तुलसी और राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन के सस्मरणो का उल्लेख किया। श्री चन्द्रेशजी चपलोत व राजेन्द्रजी ने कविता-पाठ किया। एस० डी० ओ० विष्णुदत्तजी शर्मा, हेडमास्टर श्री तुलसीराम श्रीमाली, उत्साही कार्यकर्त्ता वकील सागरमलजी कावडिया और वकील हसनबख्श ने भी स्वागत मे दो शब्द कहे। साध्वी सुखदेवाजी ने अग्रण्या साध्वीश्री ज्ञानाजी के जीवन-वृत्त को शब्दो मे समेट आचार्यश्री को उपहृत किया। अन्त मे आचार्यश्री ने स्वागत का उत्तर देते हुए कहा—"स्वागत के नेगचार (रीति-रस्म) सुनते-सुनते मैं थक गया। इतने लम्बे-चौडे स्वागत को न चाहते हुए भी लोगो की भावना को मान्यता देनी होती है। रस्म के रूप मे स्वागत का कोई महत्त्व नही होता। वही स्वागत स्वागत है जो दूसरो के लिए प्रेरणा का माध्यम बने। राजसमन्द मे आज स्वागत हो रहा है इसमे कोई बडी बात नही है। राजसमन्द ने उस समय आचार्य भिक्षु का स्वागत किया जिस समय देश भर मे उनके प्रति विषैला वातावरण था।"

आगे नए मोड पर बोलते हुए आपने कहा—"सम्पूर्ण मेवाड ने नए मोड को स्वीकृत किया था। एक वर्ष की अवधि के बाद मैंने देखा है उन्होने उसका प्राय पालन किया है। पर कुछ त्रुटियाँ भी हुई हैं। अकेला व्यक्ति भी जीवन मे कितनी गलती कर लेता है, फिर यह तो समाज ठहरा। इसमे यत्र-तत्र त्रुटिया हो जाएँ तो वे क्षम्य हो सकती हैं पर समाज के पथ-दर्शको की गलतियाँ क्षम्य नही हो सकती। मैं उनसे कहना चाहूगा कि वे तुच्छ प्रलोभन मे आकर पथ से च्युत न होए।"

आगे शिक्षण-शिविर की सदस्याओ को शिक्षा देते हुए आपने कहा—"साध्वियो मे ज्ञान की पिपासा है, उसकी मैं कद्र करता हू। उच्छृखलता के कारण कॉलिज की शिक्षा भार बन रही है। देश के वरिष्ठ चिंतक सोचते है कुछ समय के लिए कॉलिजो को बन्द कर देना चाहिए। देश के नेता इस विषय में कदम उठाएँ या न उठाएँ, मैं कहना चाहता हू शिक्षा के साथ-

साथ अगर यहाँ उच्छृंखलता, मर्यादाहीनता पनपी तो मैं अपने अधिकार का पूरा उपयोग कर उसी क्षण बन्द कर सकता हूँ। शिक्षा के प्रोत्साहन का मैं पक्षपाती हूँ पर उसके साथ बाह्य दुर्गुणों की हवा आए, यह मैं सहन नहीं कर सकता। मुझे प्रसन्नता है कि साध्वियों में ठीक रूप से विकास हो रहा है।"

नेमीचन्दजी कावड़िया के मकान में विश्राम कर दोपहर में आचार्यश्री बाल निकेतन पधार गए। मार्ग में देवेन्द्रकुमार कर्णावट के स्थान पर प्रेस का अवलोकन किया। दो बजे बाल निकेतन के दुधमुँहे बच्चों के बीच कार्यक्रम रहा। पाँच-सात वर्ष के बच्चे निर्भयता से अभिनय के साथ कविता के पद्य एक के बाद एक बोलते गए। एक बच्चे ने एक भावभरी कविता को संगीत के स्वर में बाँधकर सुनाया। उसे सुन लगा मानो उसे संगीत का वरदान मिला हो। अन्त में आचार्यश्री का अध्यापक तथा अन्य जनता के बीच प्रवचन हुआ।

तीन बजे विहार हो गया था। दोपहर की कड़ी धूप थी। हवा रुष्ट होकर कहीं बैठ गई थी, धरती पैरों को सेंक रही थी और पसीने का स्रोत बह रहा था। प्रकृति परीक्षा लेने के लिए गत्यावरोध कर रही थी। आचार्यश्री ने कहा—"राजसमन्द आज भी हमारी कसौटी कर रहा है। आचार्य भिक्षु को भी कसौटी पर कसकर इन्होंने स्वीकार किया था। कड़ी धूप में हमारी परीक्षा लेना चाहता है। पर हम उसी वीर की सन्तान हैं, पीछे पैर नहीं देंगे।" हमने देखा, आचार्यश्री अपने गन्तव्य पथ पर साधुओं सहित बढ़े जा रहे थे। अन्ततोगत्वा प्रकृति ने अपनी असफलता मानी। अभिनन्दन के लिए धरती के ताप को मिटाने वाली वर्षा की तीव्र बूँदों में भी वे बढ़े जा रहे थे। विरोध और अभिनन्दन दोनों साधक के साधना-पथ को अवरोध न कर सके। बड़ा रड़ा में रात को मुनिश्री बालचन्दजी ने भाषण किया।

५-७-६२, नाथद्वारा नाथद्वारा वैष्णव सम्प्रदाय का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल है। श्री नाथजी यहाँ के आकर्षण के केन्द्र हैं। चौंतीस वर्षीय

गोविन्दजी गोस्वामी यहाँ के महत (महाराज) है। स्वतन्त्रता के पूर्व यहा दो हज़ार सिपाही रक्षाथ रहते थे पर आजकल दो सौ पचास ही है। चालीस घोडे, एक हाथी और दो हजार गाय-भैंस वर्तमान मे हैं। साढे वाईस मन दूध सुवह और साढे वाईस मन दूध शाम को श्री नाथजी के भोग लगता है। सोने और चाँदी की चक्कियाँ हैं जिनमे केसर और कस्तूरी पीसी जाती है। एक साल मे डेढ लाख रुपयो का साग का भोग करते है। घी और तेल के कुएँ बने हुए हैं। सारी सामग्री विशुद्ध ही व्यवहरा मे लायी जाती है। कुल मिलाकर एक साल मे तीस लाख का वजट वनता है। भोग की सामग्री वृजवासी व्राह्मणो को मिलती है जिनकी चार जातियाँ हैं—गूजर, गोरवा, सनाढ्य और साचोरा। इनकी सख्या एक हज़ार है। ये मन्दिर मे कार्य करते हैं। बदले मे इन्हे भोग की थालियाँ मिलती हैं। पूजा का अधिकार एकमात्र साचोरा जाति को है। दो सौ पचास कर्मचारी वेतनभोगी हैं। एक दिन मे आठ बार मन्दिर खुलता है और दशन का अवसर मिलता है, जिनके नाम हैं—मगला, सिणगार, गवाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, आरती और शयन।

मन्दिर मे करोडो रुपयो की सम्पत्ति है। पर समझ मे नही आता कि रुपए कहा से आते है। कभी-कभी लाखो रुपए दूर-दूर से आते हैं, पर भेजने वाले का नाम नही मिलता। लेनेवाला श्री नाथजी और भेजनेवाला श्रीनाथजी। आश्चर्य होता है विक्री-कर और अन्य करो को न देने वाले श्रद्धा व धम के नाम पर लाखो रुपए गुप्तदान कर देते हैं।

६ ७ ६२ प्रात कालीन प्रवचन मे नाथद्वारा से सम्वन्धित उस समय की ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री ने कहा—"भिक्षु स्वामी नाथद्वारा मे चातुर्मास विता रहे थे। गाँव के कई लोगो ने तात्कालिक गोस्वामीजी से शिकायत की—'गाँववासी वर्षा के विना तडप रहे हैं। चारो ओर वर्षा है, पर यहा एक बूंद भी नही है।' कारण पूछने पर लोगों ने कहा—'यहाँ तेरापथी साधु भीखणजी ठहरे हुए हैं। उनके कारण वर्षा रुकी हुई है।' बात गले के नीचे उतर गई। राजा लोग

कान के कच्चे होते हैं। गोस्वामीजी ने आचार्य भिक्षु को गाँव से निकल जाने का आदेश दे दिया। आचार्य भिक्षु ने शेष आधा चातुर्मास कोठारिया मे बिताया। वस्तुस्थिति समझने के वाद गोस्वामीजी ने वापस आने के लिए आग्रह किया, पर वे नही आए।" व्याख्यान की परि-समाप्ति के बाद एक भाई ने प्रश्न उठाया—"गोस्वामीजी आपके समान अपने सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनको राजा व कान के कच्चे कहकर आपने उनका अपमान किया है।" आचार्यश्री ने फरमाया—"राजा लोग कान के कच्चे होते है यह सामान्योक्ति है। इसमे व्यक्ति विशेष का नाम नही है। गोस्वामीजी आचायत्व के साथ-साथ राज्य-शासन भी चलाते थे। यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि उन्होने गाँव से निकल जाने का आदेश दिया था अन्यथा भिक्षु स्वामी कोठारिया मे आधा चातुर्मास क्यो बिताते ?

दोपहर मे भाइयो के बीच परिचय-सम्मेलन हुआ। आचार्यश्री की प्रेरणा पर कई भाइयो ने प्रतिदिन सामायिक करने की प्रतिज्ञा की। कइयो ने साहित्य स्वाध्याय का नियम लिया। औसर आदि रूढियो का भी कइयो ने त्याग किया। भाइयो के अनन्तर वहनो ने भी सेवा का लाभ लिया। उन्होने भी कई प्रकार के प्रत्याख्यान किए।

दोपहर मे विहार का शब्द-सकेत मिलते ही साधु अपने उपकरणो को समेटकर तैयार हो गए। प्रस्थान से प्राय दो मिनट पहले छोटी-छोटी बूदें गिरने लगी। करीव एक घटा बूदें रुकने की प्रतीक्षा मे लगा। सहसा कल्पना जगी। मर्यादाशील-व्यक्ति के लिए छोटे-छोटे नियम भी गत्यावरोध कर देते हैं। मर्यादा-भग का भय प्रतिपल उन्हे वना रहता है। मर्यादाहीन व्यक्ति को किसी भी कार्य मे सकोच नही होता।

७ ७ ६२, एकलिंग—कैलाशपुरी यह तीर्थस्थल है। दूर से इसके प्रति आकर्षण था पर गाँव मे घुसने से निराशा हाथ लगी। दूर से 'डूगर रलियामणो' लोकोक्ति मुख पर आ गई। आचार्यश्री ने मन्दिर का अव-लोकन किया। पहले महाराणा के महल मे ठहरे पर वह गाँव से एक ओर

था। गाँव के भाइयो की इच्छा थी कि गाँव मे विराजने से प्रवचन का लाभ मिलेगा। सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने गाँव मे जाकर न्याय-पचायत का स्थान निश्चित किया। साधुओ सहित आचार्यश्री गाँव मे पधार गए। रात को बाजार मे प्रवचन हुआ। आचार्यश्री ने बुराइयो का उपहार माँगा। सन्यासी हेमबिहारी ने कहा—"गाली देना मेरी आदत बन गई है। आज से मैं आपनी साक्षी से इसे छोड रहा हू।" सरपच अर्जुनलालजी ने रिश्वत और उपाध्याय चन्द्रशेखर ने सिगरेट का परित्याग किया। कैलाशपुरी से विहार होनेवाला था कि सन्यासी हेमबिहारी आ पहुचे। जिज्ञासा की कि रात को एक भाई ने मुझसे कहा—'जैन, बौद्ध और चार्वाक् ईश्वर को नही मानते, क्या यह सत्य है?' विहार मे विलम्ब हो रहा था, पर आचार्यश्री ने उन्हें जैन दृष्टिकोण समझाया।

८ ७ ६२ आज एक साथ ग्यारह मील चलना था। चीखा की घाटी की चढाई सामने दिखाई दे रही थी। कई साधु अस्वस्थ व वृद्ध थे, वे कुछ भय खा रहे थे। एक मील चले। दाहिनी ओर अद्भुत (जैन) मन्दिर दिखाई दे रहा था। प्रकृति ने सौन्दर्य दिखाया। सारा आकाश बादलो से भर गया। कई बादल पर्वत से नीचे उतर रहे थे, मानो वे महाऋषि तुलसी का अभिनन्दन करने आकाश से धरती पर उतरना चाहते हैं बाद मे घाटी की चढाई प्रारम्भ हुई। चीखा द्वार तक पहुचते-पहुचते समुद्र से ७७७०० किलोमीटर ऊँचाई पर हम लोगो ने अपने को देखा। घाटीमे प्राकृतिक सौन्दर्य देखते-देखते आगे बढ रहे थे क्योकि ऊपर से प्रकृति का सहयोग था। पथ की लम्बाई का भय भूलकर आनन्द लूट रहे थे।

९ ७ ६२ भुवाणो से कुछ दूर चले। सरपच भगवतीलाल पालीवाल की प्रार्थना पर आचार्यश्री ने ग्रामीण भाइयो के बीच सक्षिप्त प्रवचन किया। उदयपुर के भाई स्वागत मे शहर से आ रहे थे तो साइकिल उन्हें लायी थी पर वे अब साइकिल को ले जा रहे थे जुलूस मे। 'कभी गाडी नाव मे, कभी नाव गाडी में'—कहावत याद आ रही थी। चलते-चलते

भारतीय लोककला-मण्डल के भवन मे पहुचे। आज का प्रवास इसी कला-मण्डल मे रहा। मेवाड के महाराणा भगतसिंहजी ने दर्शन का लाभ लिया। उन्होने कहा—'कल मैं वम्वई जा रहा हू, इससे पहले मुझे दर्शन का लाभ मिल गया। पन्द्रह-वीस दिन वाद वम्वई से वापस आऊँगा। आपका चातुर्मास यही है, फिर कभी मैं समय लेकर आऊँगा।" आचार्यश्री ने मेवाड और तेरापथ के सम्वन्धो की चर्चा करते हुए कहा—'तेरापथ का जन्म इसी वीरभूमि मेवाड की रम्यस्थली मे हुआ है। उसका द्विशताब्दी-समारोह भी राजसमन्द केलवा मे हुआ है। मेवाड के राणा फतेहसिंहजी, सज्जनसिंहजी का इस धर्म-सघ के साथ अच्छा सम्वन्ध रहा है।" इसके वाद आचार्यश्री ने अपने मिशन अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवचन देते हुए अपने अनुभव सुनाए। औपचारिक वार्तालाप के वाद राणाजी प्रवचन-सभा मे गए। आचार्यश्री ने उपस्थित लोगो के वीच अपना प्रवचन किया।

भारतीय लोककला-मण्डल के सस्थापक श्री देवीलालजी सामर ने भाषण करते हुए कहा—"यह हमारा सौभाग्य है कि शहर-प्रवेश के पूर्व अपूर्व अवसर हमे यह मिला। मै पहले वोलने वाला था पर राणाजी को जाना था। अच्छा हुआ उन्हे प्रवचन का लाभ मिल गया। मैं वोलता उससे यह अधिक अच्छा रहा कि प्रारम्भ मे आचार्यश्री का मगल प्रवचन हो गया। गागर में सागर वाली वात आपने हमारे सामने रखी। प्रवचन सुन मैं वहुत प्रभावित हुआ हू।"

आगे उन्होंने अपने सस्मरण सुनाते हुए कहा—"उस समय आचार्यश्री का चातुर्मास दिल्ली मे था। मेरे मिलने का वह द्वितीय अवसर था। आचार्यश्री ने मुझे कला पर वोलने के लिए कहा। वचपन मे धार्मिक सस्कार न होने पर मैं कह वैठा—'भला धर्म और कला का क्या सम्वन्ध है? धर्म का क्षेत्र अलग है और कला का अपना अलग वायुमण्डल है। इसलिए आप मुझे वोलने के लिए आह्वान मत कीजिए। कही मैं विरोधी वात कह वैठूगा तो वह अनादर हो जाएगा।' पर आचार्यश्री ने मेरे कठोर वाक्यो को हजम कर अपनी उदारता का परिचय दिया और मुझे वोलने

के लिए प्रेरित किया। मैंने तीन दिन तक तैयारी की। कला मेरा विषय था। इसलिए मैंने अधिकारपूर्ण भाषा मे सवा तीन घटे तक भाषण किया। उसी समारोह मे आचार्यश्री ने भी 'कला और जीवन' विषय पर शास्त्र-उद्धरणों को देते हुए डेढ घटे तक इस विषय को स्पष्ट किया। मैंने अपने मे ही हीनता का अनुभव किया। मैंने सोचा—लोग कला का विद्वान् मुझे मानते है पर आपके सामने मैं कुछ नही हू। बस उसी दिन से मैं प्रभावित हो गया। कला मनोरजन के लिए ही नही, वह अध्यात्म का भी साधन है। इसलिए आप हमे मार्गदर्शन देगे। देश को आपसे बहुत आशा है।"

बारह बजे की कडी धूप मे सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी चातुर्मास-प्रवास के स्थान-निरीक्षण के लिए शहर मे पधारे। अपने-अपने स्थान के लिए कई भाई आग्रह कर रहे थे। इसलिए एक निर्णय होना आवश्यक था। मुनिश्री ने उस आवश्यकता की पूर्ति मे सहयोग दिया।

१० ७ ६२ विहार से पूर्व भारतीय लोककला-मडल के सस्थापक श्री देवीलाल सामर ने अपने कला-मन्दिर का परिचय दिया और सग्रहालय को दिखाया। भवन का आकार भी अपने मे कला को समेटे हुए था। दैत्य आकार के रूप मे बाहरी फुटपाथ जीभ थी, ऊपर का आकार मुख था और शेष शरीर जमीन मे था। पर्वत की सहज ऊँचाई मकान को प्राप्त थी। पर्वत के उतार की तरह इसकी बनावट थी। स्थान की विशालता और स्वच्छता भी एक आकर्षण लिए हुए थी। कला-मन्दिर मे २६ छात्र और छात्राए प्रदर्शन करनेवाले हैं। सगीत-निर्देशक आदि सारे ५२ कार्यकर्त्ता हैं। प्राचीन लोकनृत्य व कठपुतली नृत्य की यह भारत मे एकमात्र सस्था है। कठपुतली नृत्य के अतिरिक्त अगुली नृत्य यहाँ की अपनी विशेषता है। उन्होंने बताया आधुनिक नृत्य विकास (सिनेमा) के नशे में लोग प्राचीन लोक-नृत्यो को भूल रहे हैं। लोकनृत्यो को भूलने का अर्थ है—प्राचीन सभ्यता और सस्कृति को भूलना। प्राचीन नृत्यो मे नृत्य के कला विकास की परपरा तो चलती ही थी, साथ मे जीवन मे

भारतीय लोककला-मण्डल के भवन मे पहुचे। आज का प्रवास इसी कला-मण्डल मे रहा। मेवाड के महाराणा भगतसिंहजी ने दर्शन का लाभ लिया। उन्होने कहा—'कल मैं वम्बई जा रहा हू, इससे पहले मुझे दर्शन का लाभ मिल गया। पन्द्रह-वीस दिन वाद वम्वई से वापस आऊँगा। आपका चातुर्मास यही है, फिर कभी मैं समय लेकर आऊँगा।" आचार्यश्री ने मेवाड और तेरापथ के सम्वन्धो की चर्चा करते हुए कहा—'तेरापथ का जन्म इसी वीरभूमि मेवाड की रम्यस्थली मे हुआ है। उसका द्विशताब्दी-समारोह भी राजसमन्द केलवा मे हुआ है। मेवाड के राणा फतेहसिंहजी, सज्जनसिंहजी का इस धर्म-सघ के साथ अच्छा सम्वन्ध रहा है।" इसके वाद आचार्यश्री ने अपने मिशन अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवचन देते हुए अपने अनुभव सुनाए। औपचारिक वार्तालाप के वाद राणाजी प्रवचन-सभा मे गए। आचार्यश्री ने उपस्थित लोगो के वीच अपना प्रवचन किया।

भारतीय लोककला-मण्डल के सस्थापक श्री देवीलालजी सामर ने भाषण करते हुए कहा—"यह हमारा सौभाग्य है कि शहर-प्रवेश के पूव अपूर्व अवसर हमे यह मिला। मैं पहले वोलने वाला था पर राणाजी को जाना था। अच्छा हुआ उन्हे प्रवचन का लाभ मिल गया। मैं वोलता उससे यह अधिक अच्छा रहा कि प्रारम्भ मे आचार्यश्री का मगल प्रवचन हो गया। गागर मे सागर वाली वात आपने हमारे सामने रखी। प्रवचन सुन मैं वहुत प्रभावित हुआ हू।"

आगे उन्होने अपने सस्मरण सुनाते हुए कहा—"उस समय आचार्यश्री का चातुर्मास दिल्ली मे था। मेरे मिलने का वह द्वितीय अवसर था। आचार्यश्री ने मुझे कला पर वोलने के लिए कहा। वचपन मे धार्मिक सस्कार न होने पर मैं कह बैठा—'भला धर्म और कला का क्या सम्वन्ध है? धर्म का क्षेत्र अलग है और कला का अपना अलग वायुमण्डल है। इसलिए आप मुझे वोलने के लिए आह्वान मत कीजिए। कही मैं विरोधी वात कह वैठूगा तो वह अनादर हो जाएगा।' पर आचार्यश्री ने मेरे कठोर वाक्यो को हज़म कर अपनी उदारता का परिचय दिया और मुझे वोलने

के लिए प्रेरित किया। मैंने तीन दिन तक तैयारी की। कला मेरा विषय था। इसलिए मैंने अधिकारपूर्ण भाषा मे सवा तीन घटे तक भाषण किया। उसी समारोह मे आचार्यश्री ने भी 'कला और जीवन' विषय पर शास्त्र-उद्धरणो को देते हुए डेढ घटे तक इस विषय को स्पष्ट किया। मैंने अपने मे ही हीनता का अनुभव किया। मैंने सोचा—लोग कला का विद्वान् मुझे मानते है पर आपके सामने मैं कुछ नही हू। बस उसी दिन से मैं प्रभावित हो गया। कला मनोरजन के लिए ही नही, वह अध्यात्म का भी साधन है। इसलिए आप हमे मार्गदर्शन देगे। देश को आपसे बहुत आशा है।"

बारह बजे की कडी धूप मे सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी चातुर्मास-प्रवास के स्थान-निरीक्षण के लिए शहर मे पधारे। अपने-अपने स्थान के लिए कई भाई आग्रह कर रहे थे। इसलिए एक निर्णय होना आवश्यक था। मुनिश्री ने उस आवश्यकता की पूर्ति मे सहयोग दिया।

१० ७ ६२ विहार से पूर्व भारतीय लोककला-मडल के सस्थापक श्री देवीलाल सामर ने अपने कला-मन्दिर का परिचय दिया और सग्रहालय को दिखाया। भवन का आकार भी अपने मे कला को समेटे हुए था। दैत्य आकार के रूप मे बाहरी फुटपाथ जीभ थी, ऊपर का आकार मुख था और शेष शरीर जमीन मे था। पर्वत की सहज ऊँचाई मकान को प्राप्त थी। पर्वत के उतार की तरह इसकी बनावट थी। स्थान की विशालता और स्वच्छता भी एक आकर्षण लिए हुए थी। कला-मन्दिर मे २६ छात्र और छात्राए प्रदर्शन करनेवाले है। सगीत-निर्देशक आदि सारे ५२ कार्यकर्ता हैं। प्राचीन लोकनृत्य व कठपुतली नृत्य की यह भारत मे एकमात्र सस्था है। कठपुतली नृत्य के अतिरिक्त अगुली नृत्य यहाँ की अपनी विशेषता है। उन्होने बताया आधुनिक नृत्य विकास (सिनेमा) के नशे मे लोग प्राचीन लोक-नृत्यो को भूल रहे हैं। लोकनृत्यो को भूलने का अर्थ है—प्राचीन सभ्यता और सस्कृति को भूलना। प्राचीन नृत्यो मे नृत्य के कला विकास की परपरा तो चलती ही थी, साथ मे जीवन मे

भारतीय लोककला-मण्डल के भवन मे पहुचे। आज का प्रवास इसी कला-मण्डल मे रहा। मेवाड के महाराणा भगतसिंहजी ने दर्शन का लाभ लिया। उन्होने कहा—'कल मैं वम्वई जा रहा हू, इससे पहले मुझे दर्शन का लाभ मिल गया। पन्द्रह-वीस दिन वाद वम्वई से वापस आऊँगा। आपका चातुर्मास यही है, फिर कभी मैं समय लेकर आऊँगा।" आचार्यश्री ने मेवाड और तेरापथ के सम्वन्धो की चर्चा करते हुए कहा—'तेरापथ का जन्म इसी वीरभूमि मेवाड की रम्यस्थली मे हुआ है। उसका द्विशताब्दी-समारोह भी राजसमन्द केलवा मे हुआ है। मेवाड के राणा फतेहसिंहजी, सज्जनसिंहजी का इस धर्म-सघ के साथ अच्छा सम्वन्ध रहा है।" इसके वाद आचार्यश्री ने अपने मिशन अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवचन देते हुए अपने अनुभव सुनाए। औपचारिक वार्तालाप के वाद राणाजी प्रवचन-सभा मे गए। आचार्यश्री ने उपस्थित लोगो के वीच अपना प्रवचन किया।

भारतीय लोककला-मण्डल के सस्थापक श्री देवीलालजी सामर ने भाषण करते हुए कहा—'यह हमारा सौभाग्य है कि शहर-प्रवेश के पूर्व अपूर्व अवसर हमे यह मिला। मैं पहले वोलने वाला था पर राणाजी को जाना था। अच्छा हुआ उन्हे प्रवचन का लाभ मिल गया। मैं वोलता उससे यह अधिक अच्छा रहा कि प्रारम्भ मे आचार्यश्री का मगल प्रवचन हो गया। गागर मे सागर वाली वात आपने हमारे सामने रखी। प्रवचन सुन मैं वहुत प्रभावित हुआ हू।"

आगे उन्होने अपने सस्मरण सुनाते हुए कहा—"उस समय आचार्यश्री का चातुर्मास दिल्ली मे था। मेरे मिलने का वह द्वितीय अवसर था। आचार्यश्री ने मुझे कला पर वोलने के लिए कहा। वचपन मे धार्मिक सस्कार न होने पर मैं कह वैठा—'भला धर्म और कला का क्या सम्वन्ध है? धर्म का क्षेत्र अलग है और कला का अपना अलग वायुमण्डल है। इसलिए आप मुझे वोलने के लिए आह्वान मत कीजिए। कहीं मैं विरोधी वात कह वैठूगा तो वह अनादर हो जाएगा।' पर आचार्यश्री ने मेरे कठोर वाक्यो को हजम कर अपनी उदारता का परिचय दिया और मुझे वोलने

के लिए प्रेरित किया। मैंने तीन दिन तक तैयारी की। कला मेरा विषय था। इसलिए मैंने अधिकारपूर्ण भाषा मे सवा तीन घटे तक भाषण किया। उसी समारोह मे आचार्यश्री ने भी 'कला और जीवन' विषय पर शास्त्र-उद्धरणो को देते हुए डेढ घटे तक इस विषय को स्पष्ट किया। मैंने अपने मे ही हीनता का अनुभव किया। मैंने सोचा—लोग कला का विद्वान मुझे मानते है पर आपके सामने मैं कुछ नही हू। बस उसी दिन से मैं प्रभावित हो गया। कला मनोरजन के लिए ही नही, वह अध्यात्म का भी साधन है। इसलिए आप हमे मार्गदर्शन देंगे। देश को आपसे बहुत आशा है।"

बारह बजे की कडी धूप मे सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी चातुर्मास-प्रवास के स्थान-निरीक्षण के लिए शहर मे पधारे। अपने-अपने स्थान के लिए कई भाई आग्रह कर रहे थे। इसलिए एक निणय होना आवश्यक था। मुनिश्री ने उस आवश्यकता की पूर्ति मे सहयोग दिया।

१० ७ ६२ विहार से पूर्व भारतीय लोककला-मडल के सस्थापक श्री देवीलाल सामर ने अपने कला-मन्दिर का परिचय दिया और सग्रहालय को दिखाया। भवन का आकार भी अपने मे कला को समेटे हुए था। दैत्य आकार के रूप मे बाहरी फुटपाथ जो भ थी, ऊपर का आकार मुख था और शेष शरीर जमीन मे था। पर्वत की सहज ऊँचाई मकान को प्राप्त थी। पर्वत के उतार की तरह इसकी बनावट थी। स्थान की विशालता और स्वच्छता भी एक आकर्षण लिए हुए थी। कला-मन्दिर मे २६ छात्र और छात्राए प्रदर्शन करनेवाले हैं। सगीत-निर्देशक आदि सारे ५२ कार्यकर्त्ता हैं। प्राचीन लोकनृत्य व कठपुतली नृत्य की यह भारत में एकमात्र सस्था है। कठपुतली नृत्य के अतिरिक्त अगुली नृत्य यहाँ की अपनी विशेषता है। उन्होने बताया आधुनिक नृत्य विकास (सिनेमा) के नशे मे लोग प्राचीन लोक-नृत्यो को भूल रहे है। लोकनृत्यो को भूलने का अर्थ है—प्राचीन सभ्यता और सस्कृति को भूलना। प्राचीन नृत्यो मे नृत्य के कला विकास की परपरा तो चलती ही थी, साथ मे जीवन मे

आनन्द भी मिलता था।

लोकगीतों का परिचय देते हुए वताया—"जिन गीतो मे रचयिता के नाम की मुद्रा नही होती और जो अपने मे जनभावना को लिए चलते है, वे ही आगे चलकर लोकगीत वनते है। प्रत्येक गीत लोगो के मुख पर घिसते-घिसते तीन सौ वर्षो मे लोकगीत वनता है।" आगे उन्होने वताया—"हजारो लोकगीतो का हमारे पास सग्रह है। हर नए सगीत को प्राचीन लोकगीतों मे वाँधने की क्षमता रखते हैं। प्राचीन सस्कृति, नृत्य, गीत कला का शोध कार्य भी यहाँ पर्याप्त रूप मे चल रहा है।"

यहाँ से विहार कर भोपालपुरा मे आए। प्रवचन के वाद आचार्यश्री ने स्थानीय घरो मे गोचरी की। मोहनलालजी धाकड ने अपने घर मे आचार्यश्री को पा, आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया।

दोपहर मे निम्न व्यक्तियो ने आचार्यप्रवर से सम्पर्क साधा—श्री शिवचरणजी माथुर (जिला प्रमुख, भीलवाडा), श्री हीरालालजी देवपुरा (अध्यक्ष, जिला काग्रेस, उदयपुर), श्री माणिकलालजी वर्मा (सदस्य, लोक सभा), श्री तेजसिहजी मेहता राज एडवोकेट, श्री प्यारेलालजी पारिख एडवोकेट आदि।

रात को श्री देवीलाल सामर के मकान 'अपना घर' मे प्रवास किया।

११ ७ ६२, उदयपुर भोपालपुरा से साढे सात वजे प्रस्थान कर आचार्यप्रवर ने चेटक सर्कल, हाथीपोल, वडा वाजार होते हुए शहर मे प्रवेश किया। जिन-जिन मार्गो से निकले, सैंकडो आदमी दुकानो के वाहर प्रतीक्षित नेत्र लिए खडे थे। मकान, दुकान, मन्दिर, धर्म-स्थानो आदि सभी स्थलो पर लोग जमा थे। जिधर भी आँख उठाकर देखते लोगो की आँखो मे श्रद्धा व भक्ति का प्यार मिल रहा था। सैंकडो मुसलमान (वोहरे) आचार्यश्री को अपना सलाम दे रहे थे। वहुत कम व्यक्ति ऐसे देखे जो दुकान मे ही वैठे रहे। दर्शनो की प्रतीक्षा मे वहुत समय से लोग अपने-अपने स्थान पर जम गए थे। हजारो व्यक्ति जुलूस के रूप

मे पीछे-पीछे चल रहे थे। जुलूस मे पोशाको के विविध रूप मिल रहे थे। कई अपनी मेवाड की प्रतीक पुरानी पोशाक निकालकर लाए थे तो, कई युवक आधुनिक युग की सभ्यता के रग मे रँगे हुए कोट-पतलून-टाई पहने हुए थे। कई कुछ तो कई कुछ। बाजार मे स्थान-स्थान पर मोटोज लगे हुए थे जिनमे कई तो अपने-अपने परिवार की ओर से आचार्यश्री का अभिनन्दन लिए हुए थे। कही पर आचार्यश्री की वाणी उद्धृत थी तो कहीं पर उनके नाम से जय की भावना व्यक्त की जा रही थी। हृदय की भक्ति और आँखो का स्नेह लेते हुए आचायश्री स्वागत-स्थल पचायती नोहरे मे पधार गए। जुलूस सभा के रूप मे परिवर्तित हो गया।

पचायती नोहरे मे स्वागत-समारोह का कार्यक्रम सत-परम्परा के अनुकूल रहा। आदि मे श्री पन्नालाल चोरडिया (विष्णुगढ़), मध्य मे सोहनलालजी पोरवाल और अन्त मे तख्तमलजी धर्मावत ने सपत्नीक आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार किया। प्रवेश के प्रथम दिन सयम का सजीव रूप देखने को मिला। ग्रन्थ के आदि वाक्य की तरह इस त्याग-व्रत को देखकर कल्पना होती है कि चातुर्मास सयममय साधना से सम्पूर्ण होगा।

बहनो के मगलाचरण के बाद लेक्चरार श्री भेरूलाल धाकड का सयोजकीय भाषण हुआ। इसके अनन्तर नगरपालिका के अध्यक्ष श्री जगन्नाथजी शर्मा ने नगर की ओर से अभिनन्दन पत्र पढा। इसके बाद राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री सुखाडियाजी ने स्वागत मे भाषण करते हुए कहा—"मुझे आचायश्री के दर्शन का लाभ कई बार मिला है। स्वागत करने और उपदेश सुनने का अवसर राजनगर मे तेरापथी द्वि० समारोह के अतिरिक्त भी कई बार मिला। यह मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। आज हमे अति प्रसन्नता है कि आप चातुर्मास करने यहाँ पधारे हैं।

मैं जानता हूँ आपकी आवश्यकता मेवाड, राजस्थान को ही नही, बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि सारे देश को है। जहाँ भी आप जाते हैं, हजारो की सख्या मे लोग इकट्ठे हो जाते हैं।

भारतवर्ष ने ससार को सदा ही अध्यात्म और मैत्री का पाठ पढाया। आज भी भारत के प्रतिनिधि नि शस्त्रीकरण की आवाज लेकर दूसरे देशो मे गए हैं। आत्म-शक्ति पर विश्वास करना बहुत गहरा चिन्तन है। इस चिन्तन के पीछे भारत मे सदा सन्त परम्परा का हाथ रहा है। उसी सन्त परम्परा मे आचार्यश्री तुलसी का बहुत बडा स्थान है। आचार्यश्री अपने जीवन से लोगो को मूक शिक्षा देते हैं। वे किसी सम्प्रदाय व दल के कठघरे मे सीमित न रहकर व्यापक विचारधारा लेकर चलते है। इस विचारधारा का सर्वत्र स्वागत हुआ है, क्योकि समाज व युग को ऐसे महापुरुषो की आवश्यकता है। सकीर्ण विचार की गली मे चलनेवालो को यह पसन्द नही आया, इसलिये उन्होने विरोध भी किया। विरोध करने मात्र से वस्तु का मूल्य नहीं घटता, विरोध करना एक बात है। तथ्य को समझाना दूसरी बात है। यह होता भी है। गाधीजी ने महिला और हरिजन उद्धार की बात कही, उस समय उनका कितना विरोध हुआ? युगपुरुष हमेशा भविष्य की बात कहता है। वह अपने ज्ञान-चक्षु से दूर तक देख लेता है। साधारण आदमी उस समय उसको समझ नही पाते इसलिए उसका विरोध करते हैं। पर धीरे-धीरे उनको भी वह बात समझ मे आ जाती है और विरोध मिट जाता है। आचार्यश्री की प्रगतिशील विचारधारा ने ही मुझे प्रभावित किया है।

उदयपुर मे आपके स्वागत का जो अवसर मिला मुझे अति प्रसन्नता है। आज मैं उदयपुर के नागरिक के रूप मे आपका स्वागत करता हूँ। यद्यपि मुख्यमन्त्री के नाते सारे राजस्थान की जिम्मेवारी है, पर मैं उस चोगे को अलग रखकर नागरिक की हैसियत से आपका स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ यहाँ के नागरिक आपके उपदेशो को ग्रहण कर अपने जीवन मे स्थायित्व देंगे।"

महाराणा भूपाल कॉलेज के प्रिंसिपल श्री वी० पी० जोन ने अग्रेजी भाषा मे वोलते हुए कहा—"शिक्षक होने के नाते विद्यार्थियो से मेरा सीधा सम्पर्क रहता है। अणुव्रती विद्यार्थियो से भी मेरा परिचय है। उनसे

अणुव्रतो को मैंने जाना है। इस ओर प्रभावित होने का कारण अणुव्रत ही है। विद्यार्थी जगत् पर आपका प्रभाव कैसा है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। विद्यार्थी वर्ग ही नही, सभी वर्गो पर आचायजी के व्यक्तित्व का प्रभाव मैंने देखा है। आचार्यजी का सिद्धान्त भारतीय सस्कृति व सभ्यता के सिद्धान्तों का नवीनीकरण है। सयम—अपरिग्रह, त्याग आदि आध्यात्मिक तत्त्वो को ही जीवन मे स्थान देने को कहता है। मेरे सामने लिखा है—'सयम ही जीवन है'। सयम से जीवन सकीर्ण नही अपितु ऊँचा बनता है। जो जल जितना बँधा होता है वह उतनी ही ऊँचाई को पाता है। उदयपुर-आगमन के अवसर पर मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।"

रेवरेण्ड जी० एच० सिंह ने कहा—"सात वर्ष पहले मैं जयपुर मे था। उस समय मैंने अणुव्रतो की चर्चा सुनी थी। कौल साहब से मैंने कहा था कि जब भी अणुव्रतो की चर्चा चले, मुझे सूचित करें। अणुव्रतों मे मुझे रस मिलता था और मैं उसका साहित्य पढता था। मैं सोचता—इन अणुव्रतो की पूर्णता को जो सामने रखकर चलता है, वास्तव मे वह धन्य है। आज मैं ऐसे महान् व्यक्ति का स्वागत करता हूँ जिनका जीवन आदर्श की उच्चता लेकर चलता है। राजस्थान, दिल्ली और भारत ही नही, सारा ससार यह जानता है कि एक व्यक्ति सत है जो लोगो को पैगाम देता है कि बुरी आदतो को छोड दो, भ्रष्टाचार को मिटा दो। इन्ही विचारधाराओ का मुझ पर प्रभाव पडा। इस अवसर पर मैं आपका हृदय से स्वागत करता हूँ।

दार्शनिक दृष्टिकोण के साथ धार्मिक सस्कार का भी प्रभाव पडता है। आचार्यश्री मे कोई न कोई धम का गूढ सिद्धान्त है जिनसे उनका व्यक्तित्व जागृत है और दूसरो को जागृत करता है।

मैं पादरी हूँ, ईसाई हूँ—महाप्रभु ईशु का प्रभाव मेरे पर पडा है। उनका जीवन मेरे सामने है। जब मैंने सुना कि आचार्यजी का विरोध हुआ है तब मैंने सोचा—जो महान् होते है वे धर्म के कारण सताये जाते हैं। आचार्यजी को भी कष्ट उठाना पडा है, पर मैं कहता हूँ भारत का

राज्य एक प्रकार से आपके हाथ मे है। मेरे गुरु ने जो बातें कही, वे बातें मैं आचार्यजी के जीवन मे देखता हूँ। हमारा आपसे सम्बन्ध रहा तो हम बहुत कुछ आपसे सीखेंगे। हमारा स्वागत करना भी वृथा होगा यदि हम आचार्यजी के द्वारा बताए गये पथ पर नही चलेंगे। चलने का सारा भार आप सब पर और मेरे पर है। उस पथ पर चलकर हम अपना जीवन पवित्र बनाएँ।"

श्री बलवन्तसिंह मेहता ने स्वागत मे कहा—"आज हम आपका स्वागत जैनाचार्य के नाते नही कर रहे हैं, वह इसलिये करते हैं कि आपने देश मे नैतिक क्राति का आन्दोलन चलाया है। क्राति के अग्रदूत के रूप मे हम आपको देखते हैं। राजस्थान के लोग क्रानियो मे अगुए रहे हैं। भारत की ऊची क्राति का बीज इसी भूमि मे बढा है। यहा के लोग आत्मा की बलि देकर भी क्राति को सफल बनाते रहे है। धार्मिक क्राति भी यही हुई—मीरा राजकुल की परम्परा को तोडकर धर्म-क्षेत्र मे आगे आयी। जैन धर्म के इतिहास के उत्कर्ष का श्रेय इसी भूमि को मिला है। हरिभद्र की गुरुणी परम विदुषी याकिनी माता ने इसी धूलि मे जैनत्व के गौरव को बढाया। राजनीति और धार्मिक दृष्टि से यह भूमि क्राति की जननी रही है। क्राति के युगदृष्टा के रूप मे हम आपका स्वागत करते हैं।"

मुस्लिम समाज की ओर से श्री नूर मुहम्मद (एडवोकेट) ने आचार्यश्री का शाति के पैगम्बर रूप मे स्वागत किया। अन्त मे तेरापथ युवक मडल के सदस्यो ने एक गीतिका द्वारा स्वागत किया।

तत्पश्चात् स्वागत के उत्तर मे आचार्यश्री ने कहा—"उदयपुर मे इस रूप मे आने का यह पहला अवसर है। यहाँ आने के लिए उदयपुरवासियो की ही नही, बहुत समय से मेरे मन मे भी भावना थी। मेवाड मे कई बार आया पर यहाँ नही आ सका। कारण, प्रचार-क्षेत्र विस्तृत बन गया। यहाँ के लिए जो मैंने वचन दिया था, उसको आज पूरा कर मैं हल्का और उऋण हो रहा हू।

मैं एक सम्प्रदाय का आचार्य हूँ। विभिन्न जातियो का स्नेह व स्वागत

मुझे मिला, यह भारत की भावात्मक एकता का ही रूप है। भारतीय संस्कृति में विभिन्नता मे भी एकता का सूत्र रहा है, उसको भुलाने के कारण ही भारत की आज यह दशा हुई है। जो धर्म जीवन-व्यवहार मे आना चाहिए था वह पुस्तको और पर्दो पर ग्रारूढ हो गया। जीवन धर्म से रिक्त हो गया। धर्म की रिक्तता मे जीवन का वही स्थान है जो जीव-शून्य शरीर का है।

धर्म एक है, ध्रुव है और अविभाज्य है। ईसाई की अहिंसा, मुस्लिम की अहिंसा, अजैन और बौद्धो की अहिंसा, इस प्रकार अहिंसा के टुकड़े नहीं हो सकते। अहिंसा, सत्य आदि धर्म व्यापक है और सबका है। व्याख्या से विभक्त भले कर लो पर वह एक और अखण्ड है।

धर्म साधन है, साध्य नही। उसका लक्ष्य है—आत्म-विकास और परिणाम है—जीवन-शुद्धि। धर्म का फल तत्काल मिलता है। वर्तमान की उपेक्षा कर परलोक-शुद्धि चाहने वाले धर्म का रहस्य नही समझते। धर्म से लक्षाधीश और कोट्याधीश की आकाक्षा करना उसके साथ अन्याय करना है। धर्म का फल—आत्म-शुद्धि वर्तमान मे ही मिल जाती है, भविष्य की प्रतीक्षा उसके लिए आवश्यक नही। व्यक्ति-व्यक्ति धर्माचरण से अपने व्यवहार को शुद्ध बनाए। व्यवहार-शुद्धि से आत्म-तत्त्व मे निखार आएगा और वह तेजस्वी बनेगा। अध्यात्म तेजस्वी बने बिना इस विज्ञान के युग मे उसको खतरा हो जाएगा। अध्यात्म खतरे मे नही होगा, क्योकि लोग भौतिकता से निराश हो वापस मुड रहे हैं।"

आगे जातिवाद पर बोलते हुए आपने कहा—"कई ईसाई भाइयो से मिलने का अवसर मिला। वे बोले—हिन्दुओं ने हमारा क्या किया ? मनुष्य नहीं मानकर अस्पृश्य माना और हमसे घृणा की। आज हम ईसाई हैं। घृणा करने वाले ही हमसे हाथ मिलाकर प्रसन्न होते है। कितना जादू है। मानव का आकार हमारा वही है, पर उनकी भावना बदल गई। यह क्यो हुआ ? इसलिए कि जातिवाद के कर्दम मे फँसकर उन्होने हमे मनुष्य नहीं माना। ईसाइयो ने मानवता का सत्कार किया।

हिन्दुओ की आज भी आँखें नही खुली है, जातिवाद को पकडे बैठे हैं।"

१७ ७ ६२ तेरापथ स्थापना-दिवस का कार्यक्रम प्रात काल रखा गया था। वर्षा की बूदो के कारण निश्चित समय पर वह प्रारम्भ न हो सका। करीब दस बजे कुछ क्षणो के लिए बूदे रुकी तो आचार्यश्री तत्काल प्रवचन-स्थल पर पधार गए। सतियो ने गीतिका द्वारा कार्यक्रम को शुरू कर दिया था। साध्वीश्री मजुलाजी ने तेरापथ के उद्गम और सविधान पर भाषण दिया। तदनन्तर आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। तेरापथ के जन्म का इतिहास, विकास व मान्यताओ पर क्रमश प्रकाश डालते हुए डेढ घटे तक प्रवचन किया। दान-दया के विवेचन मे आचार्यश्री गहरे उतरते जा रहे थे। शैली, भाषा और दृष्टान्त की सरलता से लोग वहा तक पहुच रहे थे। दान-दया का इतना स्पष्ट विवेचन उदयपुरवासियों ने सम्भवत पहली बार यहाँ आचार्यश्री के मुख से सुना। वह समय लद चुका कि लोग तेरापथियो का परिचय 'दान-दया के विरोधी' और चूहे-बिल्ली के नाम से देते थे। बौद्धिक जगत् के युगस्रष्टा आचार्य भिक्षु का दान-दया का निरूपण आज के बौद्धिक जगत् के लिए खुराक बन रहा है। दो सौ वर्ष पूर्व इस चिन्तन ने आचार्य भिक्षु को भविष्यदृष्टा और युगपुरुष की पक्ति मे ला खडा कर दिया। प्रवचन के बाद भी बूदो का प्रवाह नही रुक रहा था। इसलिए आचार्यश्री वही विराजे रहे। साध्वियो ने सिद्धान्त सम्बन्धी कई जिज्ञासाए की। डेढ बजे वर्षा बन्द हुई, प्रश्न को बन्द कर कोठारी भवन वापस पधार गए।

दोपहर मे बहनो का परिचय-सम्मेलन हुआ और रात को मुनिश्री रूपचन्दजी के भाषण के अनन्तर दान-दया सम्बन्धी प्रश्नोत्तर चले। ख्यालीलालजी तलेसरा ने एक प्रश्न पूछा—"आपने दान-दया पर सुगर कोटेड (चीनी लगाकर) जनता के सामने रखा है। वस्तु-सत्य कुछ और है।" आचार्यश्री ने उत्तर मे कहा—"मैंने कोई परिवर्तन नही किया है। यह कार्य भिक्षु स्वामी ने किया है। कुछ आगे चलें तो भगवान् महावीर ने किया है। दान के दस प्रकारो मे एक धर्मदान है और एक अधर्मदान।

आठ अन्य दान हैं। तर्क बोलता है यदि शेष दान अधर्म ही होते तो भगवान् उनका पृथक् उल्लेख क्यो करते ? पर भगवान् ने ऐसा किया है। मैं उसे न तो 'सुगर कोटेड' ही मानता हूँ और न भाषा का जाल ही। मेरी दृष्टि मे उन्होंने मनोवैज्ञानिक ढग से पाप नही कहा। किस तत्त्व को किस समय कैसे कहा जाय, इसका सत्य ज्ञान मनोवैज्ञानिकता मे मिलता है। भगवान् महावीर ने दान के विषय मे उसी पद्धति को स्वीकार किया। आठ दान पाप थे, पर व्यवहार मे पाप शब्द भारी लगता है। अत उन्होंने दूसरे दो नाम कहे। यह दीर्घदर्शिता भगवान् महावीर की ही है। मैंने इसके बाद तत्त्व की दृष्टि से कुछ परिवतन नही किया है। केवल युग-भाषा मे रखने का थोडा-सा प्रयास किया है।" इसी एक ही प्रश्न पर मुनिश्री नथमलजी ने इतना प्रकाश डाला कि वह भाषण बन गया। प्रश्नोत्तर की सजीवता मे एक जागृति-सी ला दी।

तीसरा रूप

१८ ७ ६२ आचार्यश्री पचमी समिति (शौच) जा रहे थे। एक भाई आया, वन्दन किया। अन्तर हृदय से उठे भावो को मुख से रोक न सका। वह बोला—"महाराज ! आपने जैन धर्म की लाज रख दी।" आचार्यश्री ने हाथ के इशारे से मूक उत्तर दिया, ऐसी क्या बात है ? दो वाक्यों मे दो चिन्तन हैं। भाई के विचारो मे आचार्यश्री युगपुरुष हैं और जैन जगत् के एकमात्र देदीप्यमान नक्षत्र। कृतित्व के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन है। दूसरे वाक्य मे साधक अपनी साधना को न अह के रग मे रजित होने देता है और न साधना को एहसान का चोगा ही देना चाहता है। तीसरा रूप यह है कि जैन धर्म मे ऐसे प्रभावशाली आचार्य कितने हैं, जो जैनत्व के गौरव को मच पर ला सके।

इन्हीं विचारो की पुष्टि दो दिन बाद भूतपूर्व न्यायाधीश श्री प्यारेकृष्ण कौल ने की—'आचार्यश्री ! आप मेरी प्रकृति से सम्भवत परिचित नही होगे। मैं अपने ढग का विचित्र व्यक्ति हूँ। मेरे पास सभी विचारवाले

हिन्दुओ की आज भी आँखें नही खुली है, जातिवाद को पकडे बैंठे हैं।"

१७ ७ ६२ तेरापथ स्थापना-दिवस का कार्यक्रम प्रात काल रखा गया था। वर्षा की बूदो के कारण निश्चित समय पर वह प्रारम्भ न हो सका। करीब दस बजे कुछ क्षणो के लिए बूदे रुकी तो आचार्यश्री तत्काल प्रवचन-स्थल पर पधार गए। सतियो ने गीतिका द्वारा कार्यक्रम को शुरू कर दिया था। साध्वीश्री मजुलाजी ने तेरापथ के उद्गम और सविधान पर भाषण दिया। तदनन्तर आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। तेरापथ के जन्म का इतिहास, विकास व मान्यताओ पर क्रमश प्रकाश डालते हुए डेढ घटे तक प्रवचन किया। दान-दया के विवेचन मे आचार्यश्री गहरे उतरते जा रहे थे। शैली, भाषा और दृष्टान्त की सरलता से लोग वहा तक पहुच रहे थे। दान-दया का इतना स्पष्ट विवेचन उदयपुरवासियों ने सम्भवत पहली बार यहाँ आचार्यश्री के मुख से सुना। वह समय लद चुका कि लोग तेरापथियो का परिचय 'दान-दया के विरोधी' और चूहे-बिल्ली के नाम से देते थे। बौद्धिक जगत् के युगस्रष्टा आचार्य भिक्षु का दान-दया का निरूपण आज के बौद्धिक जगत् के लिए खुराक बन रहा है। दो सौ वर्ष पूर्व इस चिन्तन ने आचार्य भिक्षु को भविष्यदृष्टा और युगपुरुष की पक्ति मे ला खडा कर दिया। प्रवचन के बाद भी बूदो का प्रवाह नही रुक रहा था। इसलिए आचार्यश्री वही विराजे रहे। साध्वियो ने सिद्धान्त सम्बन्धी कई जिज्ञासाए की। डेढ बजे वर्षा बन्द हुई, प्रश्न को बन्द कर कोठारी भवन वापस पधार गए।

दोपहर मे बहनो का परिचय-सम्मेलन हुआ और रात को मुनिश्री रूपचन्दजी के भाषण के अनन्तर दान-दया सम्बन्धी प्रश्नोत्तर चले। ख्यालीलालजी तलेसरा ने एक प्रश्न पूछा—"आपने दान-दया पर सुगर कोटेड (चीनी लगाकर) जनता के सामने रखा है। वस्तु-सत्य कुछ और है।" आचार्यश्री ने उत्तर मे कहा—"मैंने कोई परिवर्तन नही किया है। यह कार्य भिक्षु स्वामी ने किया है। कुछ आगे चले तो भगवान् महावीर ने किया है। दान के दस प्रकारो मे एक धर्मदान है और एक अधर्मदान।

आठ अन्य दान हैं। तर्क बोलता है यदि शेष दान अधर्म ही होते तो भगवान् उनका पृथक् उल्लेख क्यो करते ? पर भगवान ने ऐसा किया है। मैं उसे न तो 'सुगर कोटेड' ही मानता हूँ और न भाषा का जाल ही। मेरी दृष्टि मे उन्होने मनोवैज्ञानिक ढग से पाप नही कहा। किस तत्त्व को किस समय कैसे कहा जाय, इसका सत्य ज्ञान मनोवैज्ञानिकता मे मिलता है। भगवान् महावीर ने दान के विषय मे उसी पद्धति को स्वीकार किया। आठ दान पाप थे, पर व्यवहार में पाप शब्द भारी लगता है। अत उन्होने दूसरे दो नाम कहे। यह दीर्घदर्शिता भगवान् महावीर की ही है। मैंने इसके बाद तत्त्व की दृष्टि से कुछ परिवतन नही किया है। केवल युग-भाषा मे रखने का थोडा-सा प्रयास किया है।" इसी एक ही प्रश्न पर मुनिश्री नथमलजी ने इतना प्रकाश डाला कि वह भाषण बन गया। प्रश्नोत्तर की सजीवता मे एक जागृति-सी ला दी।

तीसरा रूप

१८ ७ ६२ आचार्यश्री पचमी समिति (शौच) जा रहे थे। एक भाई आया, वन्दन किया। अन्तर हृदय से उठे भावो को मुख से रोक न सका। वह बोला—"महाराज! आपने जैन धर्म की लाज रख दी।" आचार्यश्री ने हाथ के इशारे से मूक उत्तर दिया, ऐसी क्या बात है ? दो वाक्यों मे दो चिन्तन हैं। भाई के विचारो मे आचायश्री युगपुरुष हैं और जैन जगत् के एकमात्र देदीप्यमान नक्षत्र। कृतित्व के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन है। दूसरे वाक्य मे साधक अपनी साधना को न अह के रग मे रजित होने देता है और न साधना को एहसान का चोगा ही देना चाहता है। तीसरा रूप यह है कि जैन धम मे ऐसे प्रभावशाली आचार्य कितने हैं, जो जैनत्व के गौरव को मच पर ला सके।

इन्हीं विचारों की पुष्टि दो दिन बाद भूतपूर्व न्यायाधीश श्री प्यारेकृष्ण कौल ने की—'आचार्यश्री! आप मेरी प्रकृति से सम्भवत परिचित नही होगे। मैं अपने ढग का विचित्र व्यक्ति हूँ। मेरे पास सभी विचारवाले

आते है। आपके समर्थक आते है तो विरोधी भी खुलकर बातें करते है। विरोधी साहित्य अधिक पढने को मिलता है। उस दिन बात के प्रसग मे आपके कट्टर-से-कट्टर विरोधी भी कह रहे थे, हम आचार्यश्री तुलसी को स्वीकार करें या न करें, उन्हे सुनें या न सुने, पर यह तो कहना ही होगा कि आचार्यश्री तुलसी ने जैन धर्म के झण्डे को खडा रखा है। किसी तत्त्व को लेकर उनसे हमारा विरोध हो सकता है पर उनका कर्तृत्व स्वीकार करना ही होगा। गुण वही होता है जिसे प्रतिपक्षी स्वीकार करे। इससे स्पष्ट है कि आचार्यश्री ने जैनत्व के सन्देश को जन जन के मानस तक पहुँचाया है।"

मैं बौद्धिक हूँ

१९७६२ एक भाई से आचार्यश्री ने पूछा—"आप कौन हैं?" उसने उत्तर दिया—"मैं जन्म से जैन हूँ।" कुछ देर रुककर बोला—"पर जैन धर्म मे मेरी रुचि नही है।" आचार्यश्री ने पूछा—"क्यो?" उत्तर मिला—"मैं बौद्धिक हूँ।" सुननेवालो के मानस मे आया—क्या जैन सभी अबौद्धिक है? आचार्यश्री ने कहा—"मैं तो जैन धर्म को वैज्ञानिक धर्म मानता हूँ।" वैज्ञानिक नाम सुनते ही वह अपने को देखने लगा। उसकी अपूर्णता उसे मौन रहने को बाध्य करती थी।

वार्तालाप आगे नही चला, पर चिन्तन आगे बढने लगा। भाई ने अपने को बौद्धिक कहकर दूसरो से अपने को भिन्न माना, सभव है बौद्धिकता के अनुकूल उसे साहित्य की खुराक न मिली हो। जैन दर्शन की वैज्ञानिकता यदि युग-भाषा मे नही उतरती है तो वह कुछेक व्यक्तियो मे बधी रह जाएगी। आवश्यकता है जैन दर्शन को अन्य भाषाओ मे अनूदित कर जैन मनीषी साहित्य की कमी को पूरी करने मे अपना योग दें।

धूप-स्नान से शुद्धि

२० ७ ६२ आचार्यश्री साधुओ के बैठने के लिए स्थान की व्यवस्था कर रहे थे। पश्चिमाभिमुख होने से कमरे मे सुबह और दोपहर मे धूप सुगमता से प्रवेश पाती थी। कई साधु ऐसी जगह की उपेक्षा कर रहे थे। आचार्यश्री ने कहा—'धूप-स्नान से कमरे की शुद्धि होती है। वायुमण्डल स्वच्छ रहता है।' पर उस समय वह बात गले नही उतर रही थी। चिन्तन विपरीत दिशा मे चल रहा था—स्थान की कमी है इसलिए व्यवस्था की दृष्टि से कह रहे हैं। आचार्यश्री के तथ्य को उस समय हृदय ने स्वीकार किया, जब धूप के दर्शन से दूर रहने वाले कोठरी मे घुसे। दस मिनट की स्थिति के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि सूर्य के प्रकाश मे जीवन-शक्ति होती है और उससे रोगो का निवारण होता है।

सामाजिक व्यवहार

२१ ७ ६२ एक मूर्तिपूजक भाई थे। समाज मे प्रतिष्ठित थे। आचार्यश्री के पास दो शिकायत लेकर आए। बात को उठाते हुए कहा—"महाराज ! यहाँ पर तेरापथी और मूर्तिपूजको का अच्छा सम्बन्ध है। कही-कही आपके साधु मन्दिर मे ठहरते हैं और भोजन भी वही करते हैं। यह भगवान की आशातना है। उनको वैसा नहीं करना चाहिए। दूसरा प्रश्न श्रावको से है—जिस गाँव में मूर्तिपूजको का घर नही है पर मन्दिर है वहाँ तेरापथी भाई पूजा नहीं कराते। इसके दो विकल्प हो सकते हैं—स्वय पूजा कराएँ या उसकी व्यवस्था हमे सौंप दें।"

प्रश्नो का उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा—"जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, वहाँ हमारी यह विधि है कि हम किसी वर्ग, सम्प्रदाय या व्यक्ति विशेष की मर्यादा या विधि का भग करना अपनी मर्यादा का भग मानते हैं। अत वैसा न करने का प्रयास करते हैं। अगर कहीं किसी के द्वारा अजानकारी या असावधानीवश हो जाए तो आप हमे सूचित करें।

हम उसका उचित प्रतिकार करेंगे। दूसरा प्रश्न श्रावको से सीधा सम्बन्ध रखता है। हमने जहाँ तक सुना है—अनेक जगह जहा मूर्तिपूजक नही हैं, केवल तेरापथी ही है, वहाँ भी वे सामाजिक दृष्टि से उसका उचित प्रवन्ध करते हैं। फिर भी इसका पारस्परिक परामर्श के द्वारा हल निकाला जा सकता है। हमारे कार्यों के द्वारा समाज मे किसी प्रकार का वैमनस्य खडा हो ऐसा हम नही चाहते।"

प्रश्नो को नया मोड देते हुए आचार्यश्री ने कहा—"आप जिम्मेदार व्यक्ति है इसलिये मैं भी आप से दो वातें कहना चाहूँगा। आपने साधुओ के कही मन्दिर मे ठहरने को इतना महत्त्व दिया पर आपके समाज के द्वारा दूसरे समाज के साथ कैसा व्यवहार होता है, क्या कभी सोचा? उन तथ्यो को सुनेंगे तो आप रोमाञ्चित हो उठेंगे।

घटना (वाव) गुजरात की है। वहाँ करीव पचास घर तेरापथियो के हैं। आसपास लगभग दो हज़ार घर मूर्तिपूजको के है। आज पैंतीस वर्ष वीत गए होगे तेरापथियो के साथ मूर्तिपूजको का सामाजिक व्यवहार वन्द है। तेरापथियो के लडके या लडकियाँ अविवाहित रह सकते है किंतु मूर्तिपूजको के साथ विवाह का सम्वन्ध नही हो सकता। वे तेरापथी है, इसके सिवाय उनका कोई अपराध नही है। आज के युग मे ऐसे सामाजिक वहिष्कार के कृत्य कितने घृणित कहे जा सकते हैं, जरा आप सोचें। यह वात मेरे मुह से सुनकर ही नही वहाँ के भाइयो से विश्वस्त रूप से जानकर आप सोचना चाहे तो सोचें।" उन्होने कहा—"यदि ऐसी वात है तो वास्तव मे उचित नही है। मैं इस तथ्य की जानकारी लेकर कस्तूरभाई लालभाई को लिखूँगा।"

गत वर्ष की वात लीजिये। मैं वाडमेर मे था। वहाँ कुछ जानकार मूर्तिपूजक भाइयो ने तेरापथ के तत्त्व को समझकर स्वीकार किया। उस पर वहा भाइयो को समाज से वहिष्कृत करने की वात सामने आयी और भयकर विरोध खडा हुआ किंतु वे भाई समर्थ थे इसलिए उनका कुछ न कर सके। कुछ भी हो, आज के युग मे ऐसी घटना किसी भी समाज मे

होती है तो उस समाज के अग्रगण्यो के लिए सोचने की बात है। ऐसी घटनाएँ जैन समाज की जडों को खोदने वाली है।" भाई ने इन बातो को सहृदयता से सुना और विचार करने का आश्वासन दिया।

२२ ७ ६२ प्रात काल विचार परिषद् मे 'आज का युग और धर्म की आवश्यकता' विषय पर बोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—"वर्तमान का युग विचित्र युग है। जैन दृष्टि से दुषमा युग है। व्यवहार-दृष्टि से आतक का युग है। इसमे चारो ओर मनुष्य को मौत की विभीषिका दिखाई देती है। जन्म के साथ ही मौत जुडी रहती है, पर उसका भय नहीं सताता। अणु-युग मे हजारो मील दूर बैठा हुआ मनुष्य अपने को सुरक्षित नहीं रख पाता है। पल-पल मे उसे मौत का वारट मिल रहा है। इसलिए सास लेता हुआ भी अपने को मौत का मेहमान मानता है। इस युग मे पलने वाला सोचे कि समय हाथ से खाली न चला जाए। मुझे जीवन मे कुछ करना चाहिए।

इस युग को लोग विकास का युग कहते हैं। अनेक क्षेत्रो मे विकास हुआ है पर विकास के साथ ह्रास भी कम नही हुआ है। बुद्धिवाद वढा है तो श्रद्धा घटी है। श्रद्धा के विना जीवन नीरस और रूखा वन गया है। बुद्धिवाद के साथ श्रद्धा भी आवश्यक है। पानी के विना केवल भोजन मे पाचन-क्रिया ठीक नही रहेगी। कोरी वौद्धिकता पर प्रहार करते हुए वर्ट्रेंड रसेल ने कहा है—केवल ज्ञान ही को इतना सम्मान देने का फल है कि आज कालरात्रि भोगनी पड रही है। शास्त्रो ने भी यही कहा था—वह ज्ञान भी अज्ञान है यदि चरित्र-शून्य हो तो। सम्यक्त्व या श्रद्धाहीन व्यक्ति वूढा होने पर भी वाल है। शास्त्रो की वाणी को पुरानी कहकर टाल दिया पर आज के नये चिंतक भी घूमकर इसी पथ पर आ रहे हैं।"

धर्म की सामयिकता

धर्म जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व है। धम के विना मनुष्य सरस

शैक्ष होने के कारण वह पूर्ण अवगत नही था। मेरे पास आया। आचार्यश्री की आज्ञा मेरे कानो तक पहुचाई। मैंने सयमरुचि से पूछा—'तुम कैसे आए?' उसने एक आवश्यक कार्य और बताया। जब वह वापस आचार्यश्री के सान्निध्य मे गया तो आचार्यश्री ने पूछा—'तुम वहाँ कैसे गये?' उसने दोनो कारणो का कथन किया। उपालम्भ-मिश्रित शिक्षा के स्वर मे आचार्यश्री ने कहा— वर्तमान मे दो कारणो मे बुलाने का कार्य प्रमुख था और दूसरा गौण। दूसरे कार्य के लिए जा सकते हो पर वह अभी आवश्यक नही था। इसलिए गौण काय को प्रधानता देकर आगे नही बढना था। तुम्हारे लिए सरल मार्ग यही था कि वापस आकर निवेदन कर देते कि बूदें गिरती है। यह सत्य है, तुमने गुरु आदेश को पालने के लिए ऐसा किया पर सोचना था आदेश के समय बूदें न थी, जब वे आने लगी तो स्थिति बदल गई, तुम्हे भी आदेश को दूसरी बार लेना था।' शैक्ष साधु माध्यम हो सकता है पर शिक्षा सबके लिए थी। किसी भी कार्य को करने के लिए समय-परिवर्तन के साथ आदेश को भी दोहराना चाहिए। जिस कार्य को करने के निर्णय मे अपना ज्ञान साथ न दे, उसके लिए कदम मत बढाओ। सदिग्ध अवस्था मे करना हानि दे सकता है पर न करना कोई हानि नही देता।

मै किसका शिष्य हू?

२५ ७ ६२ राजस्थान के उप-अर्थमन्त्री श्री चन्दनमलजी बैंद दर्शन करने आए। साथ मे श्री हीरालालजी कोठारी थे। ईमानदारी को लेकर आचार्यश्री ने कहा—'चरित्रशील व्यक्ति को जब मैं देखता हू तो मुझे प्रसन्नता का अनुभव होता है। वास्तव मे वही समाज उन्नत है जिसमे चरित्रशील व्यक्ति अधिक हो।' श्री चन्दनमलजी ने कहा—'मैं जो कुछ करता हू उससे पहले एक भावना सहज उठती है—मैं किसका शिष्य हू? स्मृति मे चिपका हुआ आपका नाम उभर उठता है। कही मुझसे ऐसा कार्य न हो जाए जिससे दूसरो को कहने का अवसर मिल जाए कि आचार्यश्री

तुलसी के अमुक शिष्य ने ऐसा कार्य किया। मेरी दृष्टि मे आपका नाम ही परोक्ष मे ईमानदारी की प्रेरणा देता है। वस्तुवृत्या मेरी सच्चाई मे आपका ही हाथ है।'

यदि प्रत्येक व्यक्ति इस सूत्र को लेकर चले कि मेरे क्रियाकलापो से दूसरो पर आरोप न आए तो समाज की उन्नति मे सन्देह की गुंजाइश नही रह जाती।

एकता का प्रतीक

२८ ७ ६२ इस वर्ष की चातुर्मास फडदी 'तालिका पत्र' भाई वसन्तीलाल तलेसरा लेकर आया। आचार्यश्री ने कुछ क्षण उसे देखा और सहसा मुह से निकला—'यह एकता का प्रतीक है।' सूत्र रूप मे इस वाक्य को सुन मैंने मन मे विश्लेषण करना प्रारम्भ किया। यह छोटा-सा वाक्य कितने भावो की अभिव्यजना साथ लिए चलता है। सगठन की सुदृढता, शिष्यो की अनुशासनप्रियता और एक आचार्य के कुशल नेतृत्व का उज्ज्वल प्रतीक है। चातुर्मास के शुरु होते ही गाव-गाव से माग आने लगी कि फडदी भेजो। यह एक ऐसा दर्पण है जिसमे तेरापथ के हर साधु-साध्वियो का चातुर्मास 'हस्त आमलक' की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। न केवल तेरापथी भाई ही अपितु दूसरे जैन भाई भी इसके लिए लालायित रहते है।

जो आया है वह एक दिन

श्री वस्तीमल छाजेड सिरियारी के प्रतिष्ठित श्रावक थे। उनमे गण और गणी के प्रति अगाध श्रद्धा थी। आचार्यश्री की दक्षिण-यात्रा के लिए उनमे बडी उमगें थी। अभी ब्यावर में आचार्यश्री की सेवा का लाभ लेकर गये थे। कुछ ही दिनो पहले वे काल के हाथ चले गये। आज उनका ज्येष्ठ पुत्र ताराचन्द दर्शन करने आया, जिसने दो साल पहले पचीस वर्ष की उम्र मे आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार कर युवको के सामने एक आदर्श खडा किया था। आँखो मे आर्द्रता देख आचार्यश्री ने कहा—'जो आया है वह एक

दिन निश्चित जाएगा। तुम्हारे पिता नही रहे क्या इसीलिए दुख कर रहे हो ? मुझे देखो—मेरे पिता (पूर्व आचार्य कालूगणी) २२ वर्ष का मुझे छोड चले गए। सारा भार सम्भालना पडा। तुम्हारे पिता मे शासन के प्रति कितनी निष्ठा थी, शासन के कार्य मे वे सदा आगे रहते थे। आज उनकी जिम्मेवारी तुम पर आ गई है।'

३० ७ ६२ विचार परिषद् मे वोलते हुए श्री भागीरथजी वैद ने कहा—'भारतीय सस्कृति मे सस्कारो का प्रमुख स्थान है। पहले वालक को माता-पिता के सस्कार मिलते है। विद्यार्थी के रूप मे जव वह शिक्षालय मे प्रवेश करता है उस समय अध्यापको से भी सस्कार मिलते है। विद्या-ग्रहण काल मे धर्म की पुट के विना सस्कार जीवन का निर्माण नही कर पाते। आचार्यश्री तुलसी का जीवन धर्म के सस्कारो से रगा हुआ है, इसीलिए हजारो नर-नारी इनके पास आते है। मैं इनकी प्रशसा करना नही चाहता किन्तु सत्य है इसलिए रोक भी नही सकता। देह सवके है, आपके भी है, हमारे भी है, फिर इनके प्रति इतना आकर्षण क्यो ? सवका उत्तर एक ही है कि इनका जीवन धर्माचरण से सपृक्त है। धर्म के अभाव के कारण ही आज की शिक्षा-पद्धति दोषयुक्त वनी हुई है, जिसमे आमूल परिवर्तन करना आवश्यक है।'

साध्वीश्री स्नेहकुमारीजी ने इसी विषय को स्पर्श करते हुए कहा—'जीवन मे जो प्रकाश विद्युत् सूर्य से नही मिलता, वह शिक्षा से मिलता है। शिक्षा का प्रकाश स्थायी रहता है और उसके आलोक मे मनुष्य जीवन भर चलता है। आज का विद्यार्थी समुद्र की गहराई और एवरेस्ट की ऊचाई जान लेता है, पर अपने जीवन की गहराई नही मापता।

अध्यापक अक्षर-ज्ञान देते हैं पर हृदय नही। इसीलिए विद्यार्थी को अक्षर-ज्ञान मिल जाता है पर सस्कार नही मिलते। जीवन-सस्कार न मिलने से विद्या अभिशाप वन जाती है।' अन्त मे आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे कहा—'शिक्षा का विषय जनसाधारण के लिए भोग्य नही है। इसका सम्वन्ध वौद्धिको से है। इस दृष्टि से उदयपुर क्षेत्र अनुपयुक्त

नही है। कहा जाता है शिक्षा के क्षेत्र मे यह राजस्थान की काशी है।

जहा सुई ससुत्ता पडियादि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते ससारे न विणस्सइ॥

जीवन सूई है और शिक्षा धागा है। सूत्र सहित सूई गुम होने पर भी सुगमता से मिल सकती है वैसे ही सूत्र-ज्ञानयुक्त जीवन कदाचित भटक जाने पर भी सन्मार्ग पर आ जाता है। शिक्षा के साथ आधुनिक शब्द जुडते ही सिर ठनकने लगता है। आधुनिक और अतीत शब्द जुडने मात्र से कोई शिक्षा अच्छी या बुरी नही होती। बुरी है उसकी कमियाँ। आवश्यकता है कमियो को शिक्षा से बाहर निकाल दें। आधुनिक भारत अभिमन्यु है जिसको शिक्षा के क्षेत्र मे प्रवेश करना तो आता है पर कमियो से निकलना नही आता। बाहर निकलने के लिए उसका मन तडपता है पर बधन को तोडकर निकल नही रहा है। देश के नेता व शिक्षाशास्त्री शिक्षा-पद्धति मे परिवर्तन करना चाहते हैं पर कर नही रहे हैं। याद रखिए, परिवर्तन करने के लिए बाहर से कोई ईश्वर नही आएगा। इसका चिन्तन दूसरो पर क्यो छोडें ? दूसरा चिन्तन करेगा भी क्यो ? यह कार्य देशवासियो को ही करना होगा। कुछ आए और कार्य कर गए, कुछ कर रहे हैं और कुछ करेंगे। यह काय एक का नही अनेक शिक्षा-शास्त्रियो का है। समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन अपेक्षित होता है।

गाधीजी अपने युग मे आए और उन्होने शिक्षा-पद्धति मे अपने विचारो की एक कडी और जोड दी। उन्होने कहा—'चालू शिक्षा-पद्धति कोरी ज्ञानात्मक है। इससे ज्ञान मिलता है पर जीवन भारभूत बन जाता है। सुथार के लडके को बी० ए० पास होने पर लकडी का काम करने मे शर्म आती है। किसान का ग्रेजुएट लडका खेत मे हल कैसे चलाये ? उसे ऑफिस चाहिए। प्रत्येक वर्ग की यही स्थिति है। शिक्षित होने पर घर के र्ग मे सम्मान का प्रश्न सामने आता है। बेरोजगारी बढने से दुव्यवस्था जाती है। इस दृष्टि से शिक्षा-पद्धति मे बुनियादी तालीम और देनी

चाहिए।' उनके विचार युग के अनुकूल थे। आवश्यकता का हल था, इस लिए वे स्थिर हो गए।

बुनियादी तालीम के बावजूद भी शिक्षा दोषमुक्त नहीं हो रही है, इसलिए शिक्षा-पद्धति फिर परिवर्तन मागती है। कुछ ही महीनो पहले केन्द्रीय शिक्षामन्त्री श्री कालूलाल श्रीमाली आए थे। शिक्षा की चर्चा चल पडी। उन्होंने कहा—'इस विषय मे जो आपके विचार हैं, उनको श्री श्रीप्रकाशजी आपसे मिलें तो आप उन्हे अवश्य बताएँ। शिक्षा चल रही है बुनियादी शिक्षा के प्रकाश मे आ चुकी है।

मेरा सुझाव है कि शिक्षा-पद्धति मे एक तीसरी कडी और जुडने मे बुनियादी शिक्षा कार्यकरी हो सकती है। वह है—आध्यत्मिकता के बिना जीवन मे सस्कार नहीं आएँगे। तदनुकूल आध्यात्मिक साहित्य सृजन भी आवश्यक अग बन गया है। साहित्य मे समन्वयात्मक नीति द्वारा काम करने से किसी को कहने का अवसर नही मिलेगा कि अमुक तत्त्व हमारे धर्म के विरुद्ध है। मेरी दृष्टि मे जब तक शिक्षा मे धर्म अनिवार्य नहीं बनेगा, सुधार सम्भव नहीं है।

मेरा दृष्टिकोण केवल जैन धर्म या अन्य किसी परम्परा की शिक्षा के लिए नहीं है। जैन, बौद्ध, वैदिक आदि तो परम्पराएँ हैं। मूलत अहिंसा और सत्य की अखड भावना है। धर्म वही होता है, जिसके बिना विकास न हो सके। धर्म जीवन-विकास का अन्तिम कारण है। जो अन्तिम कारण होता है वही मुख्य होता है।

एक समय कान, नाक, आख, जीभ, पैर, मन और प्राण मे विवाद हो गया। सब अपनी-अपनी प्रशसा करने लगे और अपने को बडा बताने लगे। न्याय के लिए प्रजापति के पास पहुचे। उन्होंने कहा—'एक-एक वर्ष के लिए सब चले जाओ। जिसके जाने के बाद भी पीछे काम चलता रहेगा, वह बडा नहीं। बडा वह है जिसके चले जाने के बाद कार्य ठप्प हो जाए।' सब ने एक स्वर मे स्वीकार किया। कान गया तो देखा कि गूंगा आदमी ससार मे अपना काम चलाता है। आँखें जाने से अन्धा और जीभ जाने से

मूक भी अपना काम चलाते देखे गए हैं। लगडा भी ससार मे जीता है। अमनस्क प्राणी भी जीते हैं। अन्त मे प्राण का नम्बर आया। जव वह जाने लगा, सबके काम रुक गये। सवने कहा—'आप मत जाइये, आप ही सब मे वडे है।'

धर्म भी वही वडा है जिसके विना जीवन न चल सके। किसी सम्प्रदाय के न रहने से कोई कार्य नही रुकता। यदि सत्य, अहिंसा आदि धर्म नही रहते हैं तो जीवन दूभर बन जाता है। इसलिए सत्य, अहिंसा की साधना शिक्षा मे अत्यन्त आवश्यक है। मैं जो कहता हूँ धर्म शिक्षा में ही नही, हर प्रवृत्ति मे आवश्यक है।

३१ ७ ६२ हाजरी मे प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने कहा—'साधुओ ! साधना के लिए शरीर को पहला साधन माना है। उसे टिकाए रखने के लिए आहार की अपेक्षा होती है। तुम्हे जो कुछ मिलता है उसका साधन एकमात्र भिक्षा ही है। इसलिए भिक्षा-ग्रहण के समय मर्यादा को न भूलें। गवेषणा और ग्रहणैषणा की उपेक्षा करने वाला मर्यादा से पीछे हटता है। ये दोनो भिक्षा के काल मे प्रति समय स्मृति मे रहने चाहिए। ग्रहणैषणा के बाद भोगैषणा आती है। भोगैषणा का तात्पर्य है—भिक्षा को खाते समय समभाव रखना। गवेषणा और ग्रहणैषणा की अपेक्षा भोगैषणा की साधना कठिन होती है।

तित्तग कटुय व कसाय, अबिल व महुर लवण वा
एय लद्ध मस्तट्ठ पउत्त, महु-घय व भुजेज्ज सजए
॥५।१।२७॥

अरस विरस वावि सूइय वा असूइय

भिक्षा मे कभी खट्टा मिलता है, कभी मीठा, तीखा, कड़ुवा, कषैला। कभी रस-रहित तो कभी नीरस। कभी मनोनुकूल तो कभी मन के प्रतिकूल। साधना कहती है, भिक्षा मे जो भी मिले उसे समभाव से खाए।

मनोनुकूल भोजन की प्रशसा करके खाना सयम को कोयला वनाना

है। अमनोनुकूल भोजन की निन्दा करके खाना, सयम को धूआँ वनाना है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ भोजन को समभाव से खाना सयम को पुष्ट करना है। यही भोगैपणा है।

साधक को अन्वेपणा करते रहना चाहिए कि अमुक पदार्थ का शरीर और मन पर क्या असर पडता है। जिस पदार्थ के खाने से स्वाध्याय और ध्यान मे वाधा आए, उससे वचते रहना चाहिए। मेरा अनुभव है कि शाम को हल्का भोजन करने से शरीर मे स्फूर्ति और मन मे प्रसन्नता वनी रहती है। गरिष्ट भोजन से आलस्य वढता है और स्वाध्याय ध्यान मे मन नही लगता।

कुशल-अनुशासन

दर्शनार्थी यात्रियो की सुविधार्थ नवनिर्मित 'महावीर नगर' (जिसमे दो सौ से अधिक टीनो के घर है) आज कार्यक्रम लेकर पधारना हुआ। प्रवचन-स्थल पर पडी मेज पर आचार्यश्री की दृष्टि गईतो पूछा—'यह मेज यहाँ क्यो रखी ?' दवी आवाज़ से कुछ अस्पष्ट भावो का सकेत मिल रहा था। आचार्यश्री ने साधुओ को दूसरी मेज लाने के लिए कहा—क्योकि यह मेज साधुओ के निमित्त यहाँ आयी थी। पाठक सोचेंगे ऐसी क्या घटना है जो उल्लेखनीय हो। घटना मूल्यवान इसलिए है कि इसकी भूमिका मे साधक की जागरूकता वोल रही है।

नियति का चक्र

प्रयत्न के वाद भी सफलता नही मिलती तव मानना पडता है कि पुरुपार्थ के अलावा भी एक तत्त्व है और वह है नियति। किसने कल्पना की थी कि आसकरणजी चोरडिया (लाडनूवासी) आचार्यश्री के साक्षात् दर्शन न कर सकेंगे! लाडनू से चलकर रात को नौ वजे उदयपुर पहुँचे। महावीरनगर मे ठहरे। शरीर से अस्वस्थ थे। सोचा, कल दर्शन हो जाएगा। रोग वढने लगा। महावीरनगर के कार्यकर्त्ताओ ने डाक्टर की व्यवस्था

की। डाक्टर आया पर विकराल काल डाक्टर के देखते-देखते रात को ग्यारह बजे प्राणो को ले गया। नियति को यही मान्य था, ऐसा मानकर सन्तोष किया।

शहर मे सधार्मिक भाइयो की व्यवस्था और सहयोग ने उनके परिवारवालो को यह अनुभव नही होने दिया कि हम अपने घर से कही बाहर हैं।

श्री हीरालाल कोठारी ने कहा—'यह देखकर हमे आश्चर्य हुआ कि अन्तक्रिया के समय अधिकाश हम उदयपुरवासी थे, अन्य भाइयो ने इस कार्य को या तो आवश्यक नही समझा या वे व्यवहार पर चलना नही चाहते।'

आचार्यप्रवर ने कहा—'दूसरो ने शायद व्यवहार निभाना आवश्यक न समझा होगा किन्तु व्यवहार और आदर्श दोनो का अपना-अपना स्थान है। व्यवहार के स्थान मे आदर्श और आदर्श के स्थान पर व्यवहार का प्रवर्तन होता है वहाँ अनेक उलझने पैदा होती है।'

मध्याह्न मे आचार्यश्री ने अपने प्रवचन के प्रसग मे कहा—'दर्शन की भावना लेकर वह भाई आया था। साक्षात् दर्शन नही हुआ, फिर भी वह उसी पथ पर था। मानना चाहिए भावना से उसको दर्शन हो गए।'

जीवन मे प्रयोग

१८६२ एक व्यक्ति कहने लगा—'मैंने अणुव्रतो के नियमो को स्वीकार कर उसमे 'जातीयता के कारण मैं किसी को अस्पृश्य नही मानूगा' नियम पर चिन्तन किया और सोचा उस नियम का क्या मूल्य है, यदि वह जीवन-व्यवहार मे न आए।' अत सक्रिय रूप देने के लिए मैंने अपनी दुकान मे एक हरिजन के लडके को रख लिया। साथी घबराए, पिताजी नाराज हुए और परिवारवाले मुह बनाने लगे। कोई कुछ कहता, कोई कुछ। मैं अपने चिन्तन पर दृढ था। तनिक भी घबराहट मुझे नही हुई क्योकि मेरा मार्ग सही था। मुझे तो हँसी आती थी, इस युग मे उनके

सस्कारो को देखकर। घर मे विचार-भेद वढने लगा, तव मैं आचार्यश्री के पास गया। मार्गदर्शन मागा। आचार्यश्री ने मेरी परीक्षा लेनी चाही। उन्होने कहा—'व्यर्थ मे किसी से सघर्ष मोल लेने मे क्या फायदा है?' मेरे दिल को यह स्वीकार नही हुआ। मैंने कहा—'मैं अपने विचारो पर दृढ हूँ। सघर्ष मे भी अडिग हूँ।' दूसरे क्षण उन्होने मेरी भावना को वल देते हुए कहा—'व्यक्ति को जाति और वेश से आकना भूल है। मनुष्य का अकन मनुष्यता से होना चाहिए। सघर्ष मनुष्य की परीक्षा लेने के लिए आते हैं, पर घवरानेवाले इसमे कभी सफल नही होते।'

२ ८ ६२ रात को आगम-गोष्ठी की वैठक हुई। इसमे आगम-सम्वन्धी अन्वेषणात्मक एक भाषण होता है, फिर तत्सम्वन्धी प्रश्नोत्तर चलते है। आज की गोष्ठी के वक्ता थे मुनिश्री मीठालालजी 'मधुर'। विपय था 'वनस्पति की सजीवता'। आगम-गोष्ठी प्राय गुरुवार को ही होती है। कभी-कभी इस गोष्ठी को आचार्यश्री के सान्निध्य का लाभ भी मिल जाता है। अधिकाशतया मुनिश्री नथमलजी के सान्निध्य मे चलती है। भाषण करते हुए मुनिश्री ने कहा—'आगम-साहित्य मे वनस्पति-जगत् का विश्लेषण वहुत समृद्ध है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार वनस्पति की परिभापा फूल के विना फलवान वृक्ष है किन्तु आगमो मे हरित्काय मात्र के लिए वनस्पति शब्द व्यवहृत हुआ है। वनस्पति की सजीवता आगम ही नही, आज के वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। विशिष्ट खुराक के भावाभाव मे मनुष्यो की भाति उसमे भी उपचय-अपचय प्रत्यक्ष दिखाई देता है। वनस्पति, पृथ्वी, वृक्ष, अध्यारुह और उदकयोनिक जीव त्वचा-स्पर्श से भोजन करते हैं। पृथ्वीयोनिक पृथ्वी का स्नेह ग्रहण करते है और उसके साथ पानी, तेजस वायु वनस्पति और त्रसजीवो के शरीर का भी भोजन ग्रहण करते है। नर-भक्षी मानव का खून चूसने वाले वृक्ष आज-कल भी क्वचित् उपलब्ध होते है। वृक्ष का घटक जीव समूचे वृक्ष मे व्याप्त होता है। उसके अवयव—मूल-कन्द, स्कन्ध आदि उत्पन्न होने वाले जीव वृक्षयोनिक कहलाते हैं। वृक्ष के ऊपर उत्पन्न होने वाले वृक्ष अध्या-

रुह-योनिक और पानी मे उत्पन्न होने वाली वनस्पति उदकयोनिक कहलाती है। उत्पत्ति की दृष्टि से वनस्पति के अग्रवीज, मूलवीज आदि चार-पाच या छ भेद भी किए गए हैं। इन्हे वीज-काय कहते हैं।

अदृश्य वनस्पति सूक्ष्म और दृश्य वनस्पति वादर कहलाती है। सूक्ष्म समूचे लोक मे व्याप्त है और वादर लोक के एक भाग मे। निवासस्थान की दृष्टि से वादर वनस्पति के दो भेद किए गए हैं—एक शरीर मे एक जीव, वह प्रत्येकशरीरी और एक शरीर मे अनन्त जीव रहे, वह साधारणशरीरी वादर वनस्पति कहलाती है। प्रत्येकशरीरी के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, व्राह्मी, पर्वग, तृण, वलय, हरित, औपधि, जलद और कुहणा—ये वारह प्रकार हैं। एकास्थिक और वहुवीजक, ये दो प्रकार वृक्ष के हैं। जिस वृक्ष के फल मे एक अस्थि गुठली है, वह एकास्थिक और जिसका फल अनेक वीजो वाला हो, वह वहु-वीजक कहलाता है। मूल, कन्द, तना, छाल, शाखा, कोपल, पत्ता, पुप्प, फल और बीज—ये दस वृक्ष के अवयव हैं। प्रत्येक साधारण वनस्पति की पहचान का सरल तरीका प्रज्ञापना मे वर्णित है। जिस वनस्पति के मूल आदि टूटने पर टेढे-मेढे हो वह प्रत्येकशरीरी वनस्पति है और जिसके मूल आदि टूटने पर चक्राकार एक समान हो वह साधारणशरीरी वनस्पति है। साधारणशरीरी वनस्पति मे एक शरीराश्रयी अनन्त जीव होते हैं। उनमे एक जीव जो आहार के पुद्गल समूह ग्रहण करता है वह तत्शरीरस्थ सभी जीवो के उपभोग मे आता है और वहुत सारे जीव जिन पुद्गलो को ग्रहण करते है वह एक जीव के उपभोग वनते है। उनके आहार उच्छ्वास-नि श्वास, शरीर-निर्माण और मृत्यु—ये सभी काम एक साथ होते हैं। इस प्रकार नर दुर्लभ साम्यवाद के सूत्र मे उनका जीवन वधा हुआ होता है। समय की अल्पता के कारण आगामी गोष्ठी इसी विपय पर चलने को निश्चित हुई।

५ ८ ६२ आयुर्वेद कॉलेज के प्रिंसिपल श्री श्यामसुन्दर वैद्य ने विचार-परिपद् मे अभ्यागत वक्ता के रूप मे भाग लिया। साध्वीश्री मजुलाजी के वाद आचायश्री ने कहा—'वर्तमान का वायुमडल शुद्ध नही

है। मनुष्य प्रत्येक वस्तु को सदेह की आखो से देखता है। और क्या, उसे अपने आप पर भी विश्वास नही है। तब भला सत्य मे, आचार मे और धर्म मे सन्देहशील बने, इसमे आश्चर्य ही क्या है ?'

सशयशील सशय मे उलझकर अपना विनाश कर लेता है। सशय शब्द बुरा नही है। जहा वह जिज्ञासा के साथ पलता है वहा वह ज्ञान का जनक बन जाता है। अज्ञ और सर्वज्ञ, इन दो प्रकार के व्यक्तियो को सदेह नही होता। अज्ञो को इसलिए नही होता कि वे कुछ नही समझते, सर्वज्ञो के लिए ज्ञातव्य अवशेष नही रहता, शेप व्यक्तियो मे सशय अवश्य उठता है। सशय निर्णय मागता है। निणय के प्रयत्न से ज्ञान बढता है।

मनुष्य चेतनशील प्राणी है। उसकी चेतना दो धाराओ मे वहती है—श्रद्धा-विश्वास और तर्क-बुद्धि। ज्ञान ग्रहण के लिए बुद्धि भी साधन है और श्रद्धा भी। ज्ञेय दो प्रकार के हैं—हेतुगम्य और श्रद्धागम्य। अधिकाश तत्त्व अहेतुगम्य होते है। जहा तर्क अटक जाती है, वहा श्रद्धा उसको आगे बढाती है। मनुष्य के सीग क्यो नही उगते ? अग्नि मे उष्णता क्यो होती है ? ऐसे अनेक प्रश्न है, जहा तार्किक को भी स्वभाव की शरण लेनी होती है। श्रद्धेय के प्रति तर्क नही हो सकता है। तर्क वही उठता है जहा पूर्ण विश्वास का अभाव हो। डाक्टर निदान कर दवा देता है। रोगी पूछे—'क्या दवा है ? क्यो दी जाती है ? इससे क्या होगा ?' इन प्रश्नो का उत्तर डाक्टर रोगी को नही देगा। वहा विष को भी दवा मानकर डाक्टर के विश्वास पर ली जाती है। हर क्षेत्र मे तर्क ग्राह्य नही है। जहा व्यवहार मे तर्क प्रवेश पा लेता है वहा सम्बन्ध शिथिल हो जाते है। हेतुगम्य को श्रद्धा से और श्रद्धागम्य को हेतु से ग्रहण करने पर वस्तु की यथार्थता हाथ नही आएगी।

धर्म श्रद्धागम्य के साथ हेतुगम्य भी है। धर्म केवल क्रियाकाड उपासना तक ही सीमित नही है। उसका क्षेत्र विशाल है। वह एक क्षेत्र मे रूढ नही है। उसमे अनुसन्धान के लिए अवकाश रहता है।

धर्म का परिणाम

प्राज्य राज्य सुभगदयितानन्दनानन्दनाना
रम्य रूप सरसकविता चातुरी सुस्वरत्वम्।
नीरोगत्व गुणपरिचय सज्जनत्व सुबुद्धि,
किन्तु ब्रूम फलपरिणति धर्मकल्पद्रुमस्य।

राज्य, वैभव, स्त्री, अधिकार इनको धर्म का परिणाम मानते हैं। यदि ये धर्म के फल हैं तो रूस और अमेरिका सबसे बड़े धार्मिक होगे। लोग धम से धन न मिलने पर निराश हो जाते है। उपासना, भक्ति और सेवा को कोसते है। पर मेरा इसमे मतभेद है। मेरी दृष्टि मे ये पुरुषार्थ व कृतकर्म के परिणाम हैं। धर्म के परिणाम हैं—आचार-शुद्धि, चिन्तन की स्वस्थता और जीवन की पवित्रता। अपवित्रता मे भी पवित्रता को ढूढ निकालने वाला धार्मिक होता है। क्रियाकाण्ड मे रचा-पचा मानव यदि अपनी वृत्तियो पर नियत्रण नही पाता है, पाप करने मे उसे सकोच नही होता है, तो मानना चाहिए धर्म के शुद्ध रूप को वह नही समझ सका। धार्मिक व्यक्ति को अधिक आवेश आता है या बार-बार क्लेश करता है, तो समझना चाहिये धम उससे बहुत-बहुत दूर है। सहिष्णुता, समता, सरलता, ये धर्म के साधन हैं। इनसे जीवन पवित्र बनता है और स्वास्थ्य का लाभ भी मिलता है।

चिकित्साशास्त्र पद्धति मे डाक्टरो ने रोग का कारण कीटाणु माना है। पर आजकल नये-नये प्रयोग चलते है। अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धति निकल रही है। उपवास से चिकित्सा करते हैं, कही ध्यान से भी चिकित्सा की जाती है। मानसिक अशुद्धि को रोग का कारण मानते है। दवा-सेवन से न मिलने वाली स्वस्थता जीवन की पवित्रता से मिल जाती है। कलकत्ता मे एक प्रयोग किया गया। ध्यान व एकाग्रता मे स्थित व्यक्ति पर बाह्य वातावरण, धूप-ताप का बहुत कम असर हुआ। फलित निकला—जो जितना अधिक ध्यान करता है वह उतना ही स्वस्थता का

अनुभव करता है। ध्यान, एकाग्रता, मानसिक सतुलन—ये धर्म के आन्तरिक रूप हैं। इनसे आत्मा का शोधन होता है।

धर्म के क्रिया काडो को छोडकर उसका शेष रूप बुद्धिगम्य है। क्रियाकाड भी जो सार्थक होते हैं, जिनसे जीवन उन्नत बनता है। वे बुद्धिगम्य धर्म के ही अग है। शेष क्रियाकाड रूढि की श्रेणी मे चले जाते हैं, सम्भवत वे धर्म न भी हो।

एक विचार आता है—धर्म का युग बदल गया, अध्यात्म का ज़माना आया है। मेरी दृष्टि मे धर्म और अध्यात्म दो नही है। धर्म और सम्प्रदाय अलग-अलग है। सम्प्रदाय ही धर्म नही है। यह तो अपनी-अपनी परम्परा है। सम्प्रदाय धर्म की साधना के साधन हो सकते है पर धर्म को अपने मे वाध नही सकते। आज सम्प्रदाय का मोह जाग उठा है। सब अपने-अपने सम्प्रदायो को आगे लाना चाहते है, सख्या बढाना चाहते है। यह स्वार्थवाद है।

दिल्ली के रोटरी क्लब मे मुझसे एक प्रश्न पूछा गया—'आज जैनो की सख्या बहुत कम है, दस-बीस लाख है। इतनी कम क्यो ?' मैंने उत्तर दिया—'जितनी सख्या है मुझे उसमे भी सन्देह है। क्या वे जैन है जो जैन का अर्थ तक नही जानते ?' बहुत-से नामधारी जैन हो सकते है, पर यथार्थ मे नही। वस्तुत जैन वह है जिसकी आत्म-विजय, मैत्री और अहिंसा के प्रति निष्ठा हो। इस तत्त्व-प्रसार की दृष्टि से जैनो की सख्या कम नही। केवल जैन की छाप मात्र से कोई जैन नही होता। सख्या की पूर्ति अवश्य हो जाती है।

धर्म सबके लिए है। शिक्षित, अनपढ, ग्रामीण, नागरिक आदि भेद उसमे नही हो सकते। आवश्यकता है धर्म के अबुद्धिगम्य तत्त्व को श्रद्धा से और बुद्धिगम्य तत्त्व को बुद्धि से स्वीकार कर जीवन मे उतारें। आयुर्वेद तत्त्व मृतप्राय हैं। दूसरी चिकित्सा आगे आ रही है। इसका कारण यही है कि आयुर्वेद मे अनुसधान के द्वार खुले नहीं रहे, नये उन्मेष नही जगे। धर्म को जीवन मे उतारकर नये-नये प्रयोग करते रहे। नये उन्मेष न

आने से धर्म मृतप्राय हो जायगा, रूढ बन जायगा। धर्म की अमरता चाहने वाले उसको जीवन-प्रयोगो मे उतारकर नये-नये उन्मेप जगाए।

रात को मुनिश्री नथमल का 'जीवन और दर्शन' पर विशेप प्रवचन हुआ। अन्त मे आचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

फिर क्या था, वे चरणो मे लुढक गए

६ ८ ६२ व्याख्यान-समाप्ति के बाद श्री अम्बालाल पगारिया के पुत्र भँवरलाल ने प्रार्थना की—'यहाँ गर्म है, वहाँ पगारिया प्रिंटिग प्रेस पधारें तो ठड रहेगी।' श्री पगारिया की भावना को लक्ष्य करके आज फिर आचार्य-श्री उनके घर पधारे। मुझे भी सेवा का अवसर मिल गया। आचार्यश्री ने आगम कार्य, जो कि उसी मकान मे मुनिश्री नथमलजी व अन्य साधु कर रहे हैं, की जानकारी ली। एक भाई ने कहा—'मैं केवल आपके दर्शन करने के लिए गया था। आते समय वदना की तो आपने ध्यान नही दिया। मागलिक पाठ मे भी अरुचि-सी दिखाई। मैंने सोचा, आपकी दृष्टि नहीं है, तव यहाँ आने से क्या? तभी से मैं दूर होता गया।' आचार्यश्री ने पूछा—'फिर कभी तो नहीं आए?' 'आता कैसे, जवकि मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया था। ऐसा प्रसग भी नही वना कि मैं आपके पास आऊ।' आचार्यश्री ने कहा—'सम्भव है उस समय कार्य की व्यस्तता से वदना न भी स्वीकारी हो, पर श्रावक का कर्तव्य यह नही कि छोटी-सी वात को लेकर दूर हो जाए।'

घटना साधारण है पर वह असाधारण इसलिए वनती है कि उसके पीछे कई भाई-वहनो की मनोवृत्तियाँ पलती है। वदना, गोचरी आदि को लेकर कुछ व्यक्ति नासमझी कर बैठते हैं। लेकिन यह नही सोचते कि हजारो व्यक्ति दर्शनार्थ आते हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति की वदना आचार्यश्री ध्यानपूर्वक लेते रहें तो कितना समय लगेगा? क्या दूसरा कार्य वे कर सकेंगे? फिर भी आचायश्री इन सबका यथार्थ ध्यान रखते हैं। कभी ध्यान न भी जाय तो अपना धैर्य नही खोना चाहिए। किसी को सन्तुष्टि न मिले

अनुभव करता है। ध्यान, एकाग्रता, मानसिक सतुलन—ये धर्म के आन्तरिक रूप है। इनसे आत्मा का शोधन होता है।

धर्म के क्रिया काडो को छोडकर उसका शेष रूप बुद्धिगम्य है। क्रियाकाड भी जो सार्थक होते हैं, जिनसे जीवन उन्नत वनता है। वे बुद्धिगम्य धर्म के ही अग हैं। शेष क्रियाकाड रूढि की श्रेणी मे चले जाते हैं, सम्भवत वे धर्म न भी हो।

एक विचार आता है—धर्म का युग वदल गया, अध्यात्म का ज़माना आया है। मेरी दृष्टि मे धर्म और अध्यात्म दो नही हैं। धर्म और सम्प्रदाय अलग-अलग हैं। सम्प्रदाय ही धर्म नही है। यह तो अपनी-अपनी परम्परा है। सम्प्रदाय धर्म की साधना के साधन हो सकते हैं पर धर्म को अपने मे वाध नही सकते। आज सम्प्रदाय का मोह जाग उठा है। सव अपने-अपने सम्प्रदायो को आगे लाना चाहते है, सख्या वढाना चाहते है। यह स्वार्थवाद है।

दिल्ली के रोटरी क्लव मे मुझसे एक प्रश्न पूछा गया—'आज जैनो की सख्या वहुत कम है, दस-वीस लाख है। इतनी कम क्यो?' मैंने उत्तर दिया—'जितनी सख्या है मुझे उसमे भी सन्देह है। क्या वे जैन है जो जैन का अर्थ तक नही जानते?' वहुत-से नामधारी जैन हो सकते है, पर यथार्थ मे नही। वस्तुत जैन वह है जिसकी आत्म-विजय, मैत्री और अहिंसा के प्रति निष्ठा हो। इस तत्त्व-प्रसार की दृष्टि से जैनो की सख्या कम नही। केवल जैन की छाप मात्र से कोई जैन नही होता। सख्या की पूर्ति अवश्य हो जाती है।

धर्म सवके लिए है। शिक्षित, अनपढ, ग्रामीण, नागरिक आदि भेद उसमे नही हो सकते। आवश्यकता है धर्म के अबुद्धिगम्य तत्त्व को श्रद्धा से और बुद्धिगम्य तत्त्व को वुद्धि से स्वीकार कर जीवन मे उतारें। आयुर्वेद तत्त्व मृतप्राय हैं। दूसरी चिकित्सा आगे आ रही है। इसका कारण यही है कि आयुर्वेद मे अनुसधान के द्वार खुले नही रहे, नये उन्मेष नही जगे। धर्म को जीवन मे उतारकर नये-नये प्रयोग करते रहे। नये उन्मेष न

तो पास न आना चिन्तनपूर्वक कार्य नहीं है। जो सन्देह बन गया है उसको साक्षात् पूछकर दूर कर लें, अन्यथा वह रात की परछाई की तरह बढता ही जाएगा। रोग की सही चिकित्सा वार्तालाप से हो गई, सन्देह मिट गया। फिर क्या था, वे आचार्यश्री के चरणो मे लुढक गये।

बडा धोखा

७ ८ ६२ 'परीक्षा मे नकल नही करूँगा' नियम को सुन एक अध्यापक बोले—'आचार्यश्री! यह नियम देखने मे विद्यार्थियो से सीधा सम्बन्ध रखता है। विद्यार्थी आपके सामने स्वीकार भी कर लेते है। पर इसका पूर्ण पालन नही होता।' जिज्ञासा हुई—'क्यो?' उन्होने कहा—'इसके पीछे अध्यापको का हाथ रहता है। लडके पढने मे मन नही लगाते, परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने पर अध्यापक पर उसकी जिम्मेवारी आती है। अध्यापक उसे अपने सम्मान का प्रश्न मानकर चलते हैं, इसलिए प्रश्नपत्रो को पहले नकल करके दे देते है। नकल करने की प्रेरणा अध्यापको से मिलने पर विद्यार्थी कहाँ तक दूर रह सकते है?' आचार्यश्री ने कहा—'जहाँ से प्रामाणिकता की शिक्षा मिलनी चाहिए वहा यदि अप्रामाणिकता की ओर इशारा होता है तो इससे बडा धोखा और क्या हो सकता है?'

६ ८ ६२ प्यारचन्दजी मेहता आये और अपने पुत्र डा० मदनकुमार मेहता को प्राप्त स्वर्णपदक आचार्यश्री के चरणो मे रख कहने लगे—'बच्चे के लिए इससे बडा सौभाग्य क्या होगा कि वह अपने आराध्य गुरुदेव के चरणो मे अपनी योग्यता का पुरस्कार चढाए।' आचार्यश्री ने उसके पदक को देखा और उन लेखो को भी देखा, जिनके कारण अमेरिका के प्रिन्सटन विश्वविद्यालय के प्रो० डाइसन और रोचेस्टर विश्वविद्यालय के प्रो० मर्शाक ने अपने यहाँ अनुसधान के लिये आमन्त्रित किया था। उसकी योग्यता का अकन करते हुए आचार्यश्री ने कहा—'समाज को ऐसे युवको पर सात्विक गौरव होता है।'

रेलमगरा (मेवाड) के एक होनहार युवक मोहनलाल मेहता ने

अपनी असाधारण प्रतिभा और योग्यता से लोगो को चमत्कृत किया है। उसने १९५४ व ५६ से क्रमश राजस्थान विश्वविद्यालय की बी० एस-सी०, एम० एस-सी० परीक्षाओ मे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। निरन्तर तीन वप तक एम० एस सी० मे सर्वाधिक अक प्राप्न करने के कारण कुलपति का स्वण-पदक भी पाया। इसके वाद दो वर्ष तक इस सफल छात्र ने बम्बई की टाटा अनुसन्धानशाला मे और तीन वप तक पेरिस की साक्लेयुनिवर्सिटी मे अनुसन्धान कार्य किया। इस अनुसन्धान के फल-स्वरूप पेरिस मे उसे डॉक्टर ऑफ साइन्स की उपाधि मिली। उसकी इस सफलता से प्रभावित हो सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रिन्सटन विश्वविद्यालय के प्रो० डाइसन और रोचेष्टर विश्वविद्यालय के प्रो० मर्शाक ने भी उसे अपने यहाँ अनुसन्धान-कार्य के लिये निमत्रित किया।

जप और इन्द्रिह-निग्रह

१० ८ ६२ सीधी-सादी पोशाक मे एक बहन मौन खडी थी। वह अभी आचार्यश्री के प्रवचन को श्रवण कर यहाँ आयी थी और आचायश्री से कुछ वात करना चाहती थी। मौन खोलते हुए उसने कहा—'मैं एक प्रश्न पूछना चाहती हू—अगर आपको समय हो तो ?'

आचार्यश्री—'क्या अभी ?'

वहन—'यदि समय मिल जाये तो।'

आचार्यश्री टहल कर वैठ गये। बहन-भाई भी बैठ गये। प्रश्न वैयक्तिक था और विचारो का उलझन एक सीधा माग माँगता था। वह था—'मैंने इन्द्रिय और मन पर निग्रह का अभ्यास कुछ हद तक कर लिया है पर समय पर जप और उपासना नही कर पाती। यह मेरी उलझन है।' आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि फिर चिंता करने जैसी बात नहीं।

पाठक सोचेंगे, आचायश्री क्रियाकाडो मे उपेक्षा के भाव रखते हैं। वस्तुमत्य यह नहीं है। जप क्यो किया जाता है ? इसलिये कि स्वय का मानस तदनुकूल वन जाये। जीवन मे गुणो का विकास हो। इस दृष्टि से

जप साधन और गुण साध्य है। यदि साधन के विना साध्य की सहज उपलब्धि हो तो वहाँ साधन की क्या अपेक्षा है ? आचार्यश्री ने इसलिये वहन से कहा—'इन्द्रिय-निग्रह का गुण यदि विद्यमान है तो जप का समय पर न होना कोई खास वात नही।' वहन ने प्रश्न का उत्तर ले प्रसन्नता का अनुभव किया। वहन राजस्थान हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री जवान-सिंह राणावत के भाई की पत्नी थी।

मध्याह्न मे कई वकील और वैद्य सम्पर्क मे आये। प्रश्नोत्तर ने एक गोष्ठी का रूप ले लिया। वैद्य एसोसिएशन के डाइरेक्टर ने पूछा—'क्या आप अणुव्रतो के माध्यम से अपने सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहते हैं ?' आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'अणुव्रत-आन्दोलन मे मानव-धर्म की रूपरेखा है, जो सर्वधर्मसम्मत है। सम्प्रदाय मे एक धर्म विशेष का तत्त्व मिलता है। दोनो की दो दिशाएँ है। अणुव्रत के नाम पर सम्प्रदाय का प्रचार वौद्धिक जगत् मे कव तक चल सकता है ? दूसरा तथ्य है अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक के नाते लोगो से सम्पर्क भी होता है। मेरे व्यक्तिगत परिचय मे सम्प्रदाय के आचार्य का दूसरा रूप भी उन्हे मिलता है। इस माध्यम से सम्प्रदाय का सहज प्रचार हो, उसे मैं रोक भी नहीं सकता। वस्तुतः किसी तत्त्व की ओट मे दूसरे तत्वो का प्रचार करना जनता के साथ धोखा करना है।'

एक युगल

१२ ८ ६२ युगलिया काल सतयुग कहा जाता था। एक युगल पैदा होता, सहोदर होने से भाई-वहन कहलाते। आगे चलकर वे ही पति-पत्नी के रूप मे जीवन विताते। वर्तमान कलियुग मे चल रहा है। आश्चर्य तव होता है कि युगल पति-पत्नी वनकर चलता है और आगे वही भाई-वहन वन जाता है। दोनो प्रक्रियाओ मे दो सम्वन्ध है—भाई-वहन और पति-पत्नी का। एक मे भाई-वहन का सम्वन्ध पहले वनता और दूसरी प्रक्रिया मे वाद मे। पहले मे ब्रह्मचर्य से अब्रह्मचर्य की ओर गति है, दूसरे मे अब्रह्म-

चर्य से ब्रह्मचर्य की ओर। वास्तव मे कलियुग मे ऐसे युगलो का होना सतयुग की विस्मृति कराता है। उनमे एक युगल है—राणमलजी जिरा-वाला (कोप्पल) और उनकी पत्नी। इनकी उम्र बयालीस वर्ष की है और पत्नी की चौतीस वर्ष की। राणमलजी बाईस वर्ष की उम्र मे पति बने। तैंतीस वष के और पचीस वर्ष के उभरते यौवन मे दोनो ने भाई-बहन का सम्बन्ध बना लिया। ब्रह्मचर्य की साधना मे शेप जीवन को लगा दिया। अन्तिम पुत्री विमला जब गर्भ मे आयी तो उन्होने अपना मुह भोगो से मोड लिया। उसी वर्ष से लेकर आज तक इस युगल ने समान तपस्या की। सावन और भाद्रव मे एकान्तर तप, वि० स० २०१६ से सावन मे बेले बेले और भाद्रव-आसोज मे एकान्तर किया। इस वर्ष चोले-चोले तप मे चल रहे हैं। उपवास से लेकर नौ दिन तक की तपस्या की। पन्द्रह दिन और इकत्तीस दिन की लगातार तपस्या की। इनका मानस धार्मिक सस्कारो व श्रद्धा से इतना पूरित है कि बारह महीनो मे आठ मास साधुओ की सेवा में बीतता है। स्व तपस्या मे स्वाध्याय, चिंतन, ध्यान सतत चलता है। प्रामाणिकता उनके जीवन की सहचारिणी है। स्वय ही नही, सारा परि-वार अणुव्रती है। गृहस्थ अवस्था मे ऐसे युगल आदर्श बनकर जनसाधारण को प्रेरणा देते है।

आज की विचार परिषद् का विषय था—'भौतिकता और आध्या-त्मिकता'। भाषण को प्रारम्भ करते हुए साध्वी रतनश्रीजी ने कहा—'भौतिकता मे चमक होनी है, बाह्य आकर्षण होता है इसलिये ये चर्म-चक्षु उसकी चकाचौंध मे फस जाते हैं।'

श्री छगनलाल शास्त्री के भाषण के बाद आचार्यप्रवर ने कहा—'आज का विषय प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से सश्लिष्ट है। कोई भी इससे अस्पृष्ट नहीं है।'

मानव भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच जी रहा है। भारतीय सस्कृति मे आध्यात्मिकता को प्रधानता मिली है। अध्यात्म-प्रधान देश होने के कारण यह आवश्यक भी था। यहाँ अनेक ऋषि-मुनि हुए जिन्होंने

पर-दोष की अपेक्षा अपनी कमियों पर विशेष ध्यान दिया। भारत से बाहर अन्य देशों में भी अध्यात्म के उपासक नहीं हुए, ऐसा कौन कह सकता है। अपनी कमजोरी का आत्म-निरीक्षण करते हुए एक आचार्य ने कहा—

वैराग्य रंगो न गुरूदितेषु
न दुर्जनानां वचनेषु शान्ति
नाध्यात्मलेशो मम कोपिदेव
नार्यं कथंकार मयम्भवाब्धि

भगवन्! न तो गुरुजन के कथन पर मेरी पूर्ण अभिरुचि है और न मेरे में इतना मानसिक सन्तुलन ही है कि गाली व निन्दा सुनकर चुप्पी साध बैठ जाऊँ। अध्यात्म का लेश भी नहीं है—आत्म-रमण का अभ्यासी नहीं हूँ। तीनों में से एक भी गुण नहीं है। भगवन्! मेरा भवसागर पार कैसे होगा?

यहाँ के ऋषियों की वाणी में अध्यात्म भरा पड़ा है। उनकी वाणी से प्रभावित पत्थर-पत्थर और कण कण में अध्यात्म का स्वर गूंज रहा है। सन्देह होता है कहीं वह जड़-पदार्थों में ही न रह जाये। जीवन में उनका आचरण होना चाहिए। अध्यात्म तत्त्व की उपलब्धि की आशा लेकर आनेवाले विदेशी दर्शक खाली हाथ लौटते हैं, तब दुख होता है। अध्यात्म को खोना वास्तव में चिन्ता का विषय है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर से विदेशों में पूछा गया—'कहाँ से आये हैं?' 'भारत से।' 'क्या वही भारत जहाँ नैतिकता की गंगा बहती है, जो अध्यात्म का परम उपासक है?' रवीन्द्र की आँखों में आँसू छलछला गये। दुख की साँस लेते हुए कहा—'मेरा भारत अब वैसा नहीं रहा, जैसा तुम्हारे दिल में उसके प्रति सम्मान है।' वस्तु-स्थिति-प्रकाशन में उन्हें कोई सकोच नहीं हुआ। असत्य की भूमिका में पलनेवाली प्रशंसा को न लेकर अपनी कमियों को स्वीकार किया। भारत की भूमि में तपनेवाले साधकों ने अपनी अपूर्णता को सहर्ष स्वीकार किया है। वास्तव में यह अध्यात्म ही है।

सृष्टि क्या है? इस प्रश्न का उत्तर है—मूर्त-अमूर्त पदार्थों का

समिश्रण। मूर्त वह होता है जो वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शवान हो। दूसरे शब्दो मे उसे पौद्गलिक या भौतिक कहते हैं। मूर्त पदार्थ के लिए पुद्गल शब्द जितना उपयुक्त है, उतना न परमाणु और न अणु ही। स्कन्ध शब्द भी अधूरा है। पुद्गल शब्द की व्यापकता मे सारे मूर्त पदार्थो का समावेश हो जाता है। फिर भी न जाने यह शब्द ग्राह्य क्यो नही बना? धर्मशास्त्रों मे आज भी ऐसे कई शब्द छिपे पडे हैं जो अर्थ की यथार्थता की अभिव्यक्ति मे जितने कुशल हैं उतने दूसरे नही।

अमूर्त अर्थात् अपौद्गलिक।

मूर्त और अमूर्त के लिये दृश्य और अदृश्य शब्द भी व्यवहृत होते है। उनकी विवक्षा मे आँखो की अपेक्षा है। अमूर्त आँखो से अदृश्य होने पर भी भारतीय दर्शनो ने उसे स्वीकार किया। भीत से परे हमे आँखो से दिखाई न देनेवाला भी अस्तित्व रूप मे अवश्य है। भौतिकवादी केवल एक मूर्त तत्त्व को मानने से पूर्ण सत्य नही पा सके। अब रूस मे भावना जगी है कि मानव के मस्तिष्क मे अनेक प्रकार के स्रोत हैं जिसको मानव ने अभी तक नही पहचाना है। वे इस ओर अन्वेषण कर रहे हैं।

भारतीय सस्कृति ने अमर्त तत्त्व को स्वीकार किया पर उसका प्रायोगिक रूप सामने नही रखा। अभारतीय सस्कृति के उपासकों ने तत्त्वो का अनुसधान किया पर अमूर्त को स्वीकार नही किया। दोनो मे एक-एक त्रुटि रह गई। यदि दोनो धाराओं का समन्वय हो तो, जो अभाव खटक रहा है वह मिट जाए।

भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनो आवश्यक हैं। दोनो को जीने का पूण अधिकार है। भौतिकता को मिटाने की कल्पना अनधिकार चेष्टा है। आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता की भी आवश्यकता है। उसके विना जीवन नही चल सकता। खाना, पीना, श्वास लेना, सारे कार्य पुद्गल के आश्रित हैं। जीव-उत्पत्ति के प्रथम क्षण में जो शक्ति ग्रहण करता है वह भी पुद्गल है। छ पर्याप्तियों का निर्माण भी पुद्गल से होता है—'भवारभे-पौद्गलिक सामर्थ्योत्पादन पर्याप्ति'।

स्थूल रूप मे सैनिक दस-बीस दिन की यात्रा करते समय जीवन-निर्वाह की सारी सामग्री अपने साथ लेता है। जीव भी उत्पत्ति के प्रथम समय से जीवन तक की सामग्री सग्रह कर लेता है, जिसे 'ओज आहार' कहते है। फिर वह क्रमश शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन पर्याप्तियो का निर्माण करता है।

अपनी दुर्बलता

एक भाई ने मुझसे कहा—'पाश्चात्य सभ्यता ने हमे नष्ट कर दिया।' मैंने कहा—'अपनी दुर्बलता व्यक्ति को नष्ट करती है। बाह्य वस्तु तभी अपना प्रभुत्व जमाती है जब कि उसे अवकाश मिले। स्वस्थ मनुष्य पर बाह्य कीटाणु का कोई असर नही पडता। दुर्बल को अनेक रोग घेर लेते है। बाह्य निमित्त हो सकता है, वस्तुत नष्ट होने मे स्वय की कमजोरी का प्रमुख हाथ है। अत दूसरो को कोसना कहाँ तक सगत है ?

यह सत्य है कि भौतिकता की जीवन मे उपयोगिता है पर वही सब कुछ नही है। हाथी उपयोगी है, पर अकुश के बिना उच्छृखल बन घातक बन जाता है। भौतिकता तभी उपयोगी है जब उस पर आध्यात्मिकता का अकुश रहे। आज वातावरण जो विषाक्त बन रहा है इसका कारण है—आध्यात्मिकता को भुलाना और भौतिकता मे फँसना।

भौतिकता मे स्पर्धा पनपती है, फिर उससे द्वन्द्व का जन्म होता है। रूस और अमेरिका का शीतयुद्ध इसी स्पर्धा का परिणाम है। अपेक्षा है उन बडे राष्ट्रो को सद्बुद्धि आये। बर्ट्रेंडरसेल ने घातक शस्त्रो के विरुद्ध आवाज उठाई है। मैं चाहता हूँ ऐसी आवाज मे बल बढे और वह सफल बने। अध्यात्मवादियो का यही प्रयत्न होना चाहिए कि भौतिकता पर अध्यात्म का अकुश रहे जिससे वह सीमा का उल्लघन न करे।'

कलह का बीज

किसी को नीचा दिखाने की भावना ग्राह्य नही है। बगाल-यात्रा के

बीच जब मैं नालदा गया तो वहाँ विभिन्न देशो के बौद्धो ने मेरा पाली भाषा मे स्वागत किया। उन्होने एक प्रतिमा भी दिखाई, जिसमे महात्मा बुद्ध पैरो से शकर को दाबकर खडे हैं, जो उनके त्रैलोक्य-विजय की प्रतीक थी। मैंने सोचा—कलाकारो ने ऐसी कला का प्रदर्शन कर सस्कृति को कलुषित किया है और कलह का बीज बोया है। शत्रु को भी प्रेम से जीतो, वस्तुवृत्या यही अध्यात्म है।

सुबह का भटका

कलकत्ता से प्रस्थान करनेवाला था, उस समय एक पत्रकार मेरे पास आया। आशीर्वाद माँगा। मैंने कहा—'दुराशीष कब दी थी मैंने ?' वह सहम गया। आँखें गीली करने लगा।

मैंने कहा—'आपने अपने पत्र मे एक पृष्ठ हमारे लिये निश्चित रखा। चार महीनो तक जी भर निन्दा लिखी, न लिखने की बात भी लिखी, उस समय मे भी मैंने आपके प्रति दुर्भावना नही की, क्योकि यह हमारी साधना है। यदि यही बात आप किसी अन्य पर लिखते तो शायद परिणाम दूसरा ही होता। आज भी यदि आपका हृदय पसीजा है तो समझना चाहिए सुबह का भटका मानव शाम को घर आ गया। मैं उस समय भी अपनी साधना मे था, आज भी अपनी साधना मे हूँ। आपके प्रति मुझे कोई रोष नही है। मैं तो मानता हूँ किसी भी समय मनुष्य मे अध्यात्म के भाव जगते हैं तो वह श्रेय का पथ है।

धर्म के नाम पर जहाँ हजारों का खून होता है, क्या यह आध्यात्मिकता है ? किसी को नीचा दिखाना, किसी का अपमान करना, किसी के प्रति घृणा करना, ये अध्यात्म के कलक हैं। मेरा विश्वास है, यदि आप शुद्ध अध्यात्म का एक बार भी स्वाद चख लेंगे तो फिर उससे दूर नही होगे।'

१३ = ६२ सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी आजकल प्राकृतिक चिकित्सा मे चल रहे हैं। इस सप्ताह उन्हें केवल शाक या रस के अतिरिक्त कुछ नहीं लेना है। ऐसा करना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है, फिर

भी वे चल रहे हैं। एक समय उनका वाक्य था—'खाए सो चरे' अर्थात् जो खाता है वही कार्य कर सकता है। पन्द्रह दिनो के प्रयोग ने उनके अनुभवो को बदल दिया। शाक पर रहकर भी वे सुस्त नही हुए। सात दिनो मे पाँच पौंड वजन घटने पर भी स्वस्थता का अनुभव किया। कम खाने से कमज़ोरी आती है, यह धारणा बदल गयी है। आज वे एक साध्वी को कह रहे थे—'दो दिन शाक पर रहकर देखो, तुम्हारा पेट या सिर दर्द मिट जायेगा।'

मनुष्य की धारणा है कि वह कम खाने से कमज़ोर हो जायेगा। सच तो यह है कि व्यक्ति अधिक खाकर रोग को आमत्रण देता है। पर यह बात सहसा उसके गले नही उतरती। कारण स्पष्ट है, खाने मे सयम करना होता है। जीभ स्वाद मागती है। पेट इनकार करता है, फिर भी असयम के कारण मनुष्य खा लेता है। खाता है तो उसका परिणाम भी भोगना पडता है। आरभ मे व्यक्ति दूसरो के अनुभवो का लाभ लेकर चले - तो उसे रोग के जाल मे फँसना ही न पडे। रोगी आधा चिकित्सक बन जाता है। अपने ही अनुभवो को साथ लेकर चले, सयम मे जागरूक रहे तो उसे वापस चिकित्सक का द्वार न देखना पडे।

१४ ८ ६२ प्रात काल साधु-सतो की हाज़िरी हुई। सगठन पर बोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—"सगठन मे शक्ति होती है। वह तभी सभव है जब सघ का प्रत्येक सदस्य उसके प्रति आस्थावान रहे। सघ का विकास भी सदस्यो पर निर्भर है, यदि वे सघीय भावना को आगे रख चलें। जहाँ वैयक्तिक भावना को महत्त्व मिलने लग जाता है वहाँ सघीय भावना की उपेक्षा हो जाती है और सगठन की सुदृढता भी शिथिल हो जाती है। प्रत्येक सदस्य चितन के लिये स्वतत्र होता है। वह अपना चितन गण-हित के लिये खुले दिमाग से करे और उसका निष्कर्ष सामने रखे। स्वीकृत न होने पर वैयक्तिक चितन को प्रश्रय न दे। जहाँ वैयक्तिक चितन के प्रति आग्रह घुस जायेगा वहाँ सगठन की नीव खोखली हो जायेगी। गण की अखडता के लिये आचार्य भिक्षु ने कहा—

१ कोई साधु-साध्वी आपस मे दलबन्दी न करे।

२ एक दूसरे के प्रति सदेह उत्पन्न न करे।

३ गण की तथा सदस्य की निन्दात्मक उतरती बात न करे और न सुने।

४ सदस्य की गलती सदस्य को तथा आचार्य को सुझावे, अन्यत्र प्रचार न करे।

५ परस्पर मे सौहार्द रखे।

६ किसी भी सदस्य के दोषो का सग्रह न करे। तत्काल समय देख उसको तथा आचार्य को सूचित करे।

७ जाति को लेकर किसी के प्रति कडवी भाषा का प्रयोग न करे।

८ आत्मार्थित्व की भावना से सघ मे रहे, छल-कपटपूर्वक न रहे।

९ सघ के प्रत्येक सदस्य मे शुद्ध साधुत्व मानकर चले, अपने मे भी शुद्ध साधुत्व समझे।

१० किसी भी सदस्य की पुरानी बात को न उखाडे, जिससे गण मे भेद बढे, परस्पर वैमनस्य बढे।

११ गणी के प्रति निष्ठावान् रहे।

१२. सघ के प्रति आत्मसमर्पण का भाव रखे।

१३. गणी की आज्ञा की अवहेलना न करे।

१४ गण की नीति के प्रतिकूल आचरण न करे।

सघ की सुव्यवस्था के लिए ये नियम प्रत्येक सदस्य के लिये पालने जरूरी है। जहाँ मर्यादा के प्रति उपेक्षा के भाव जगते हैं वहाँ वह सदस्य अपनी आस्था को खोकर खोखला बन जाता है। इसलिये प्रत्येक सदस्य आत्म-श्रद्धा से नियमो का पालन करता हुआ गण और गणी के प्रति श्रद्धावान रहे।

साधना और मूल खाद्य-सयम

आचार्यश्री ने प्रवचन में फरमाया—

"खाद्य सयम के बिना अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह

भी वे चल रहे है। एक समय उनका वाक्य था—'खाए सो चरे' अर्थात् जो खाता है वही कार्य कर सकता है। पन्द्रह दिनो के प्रयोग ने उनके अनुभवों को वदल दिया। शाक पर रहकर भी वे सुम्त नही हुए। सात दिनो मे पाँच पौड वजन घटने पर भी स्वस्थता का अनुभव किया। कम खाने से कमजोरी आती है, यह धारणा वदल गयी है। आज वे एक साध्वी को कह रहे थे—'दो दिन शाक पर रहकर देखो, तुम्हारा पेट या सिर दर्द मिट जायेगा।'

मनुष्य की धारणा है कि वह कम खाने से कमजोर हो जायेगा। सच तो यह है कि व्यक्ति अधिक खाकर रोग को आमत्रण देता है। पर यह वात सहसा उसके गले नही उतरती। कारण स्पष्ट है, खाने मे सयम करना होता है। जीभ स्वाद मागती है। पेट इनकार करता है, फिर भी असयम के कारण मनुष्य खा लेता है। खाता है तो उसका परिणाम भी भोगना पडता है। आरभ मे व्यक्ति दूसरो के अनुभवो का लाभ लेकर चले - तो उसे रोग के जाल मे फँसना ही न पडे। रोगी आधा चिकित्सक वन जाता है। अपने ही अनुभवो को साथ लेकर चले, सयम मे जागरूक रहे तो उसे वापस चिकित्सक का द्वार न देखना पडे।

१४ ८ ६२ प्रात काल साधु-सतो की हाजिरी हुई। सगठन पर वोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—"सगठन मे शक्ति होती है। वह तभी सभव है जव सघ का प्रत्येक सदस्य उसके प्रति आस्थावान रहे। सघ का विकास भी सदस्यो पर निर्भर है, यदि वे सघीय भावना को आगे रख चलें। जहाँ वैयक्तिक भावना को महत्त्व मिलने लग जाता है वहाँ सघीय भावना की उपेक्षा हो जाती है और सगठन की सुदृढता भी शिथिल हो जाती है। प्रत्येक सदस्य चिंतन के लिये स्वतत्र होता है। वह अपना चिंतन गण-हित के लिये खुले दिमाग से करे और उसका निष्कर्ष सामने रखे। स्वीकृत न होने पर वैयक्तिक चिंतन को प्रश्रय न दे। जहाँ वैयक्तिक चिंतन के प्रति आग्रह घुस जायेगा वहाँ सगठन की नीव खोखली हो जायेगी। गण की अखडता के लिये आचार्य भिक्षु ने कहा—

१ कोई साधु-साध्वी आपस मे दलवन्दी न करे।

२ एक दूसरे के प्रति सदेह उत्पन्न न करे।

३ गण की तथा सदस्य की निन्दात्मक उतरती बात न करे और न सुने।

४ सदस्य की गलती सदस्य को तथा आचार्य को सुझावे, अन्यत्र प्रचार न करे।

५ परस्पर मे सौहार्द रखे।

६ किसी भी सदस्य के दोषो का सग्रह न करे। तत्काल समय देख उसको तथा आचार्य को सूचित करे।

७ जाति को लेकर किसी के प्रति कडवी भाषा का प्रयोग न करे।

८ आत्माथित्व की भावना से सघ मे रहे, छल-कपटपूर्वक न रहे।

९ सघ के प्रत्येक सदस्य मे शुद्ध साधुत्व मानकर चले, अपने मे भी शुद्ध साधुत्व समझे।

१० किसी भी सदस्य की पुरानी बात को न उखाडे, जिससे गण मे भेद बढे, परस्पर वैमनस्य बढे।

११ गणी के प्रति निष्ठावान् रहे।

१२ सघ के प्रति आत्मसमपण का भाव रखे।

१३ गणी की आज्ञा की अवहेलना न करे।

१४ गण की नीति के प्रतिकूल आचरण न करे।

सघ की सुव्यवस्था के लिए ये नियम प्रत्येक सदस्य के लिये पालने जरूरी हैं। जहाँ मर्यादा के प्रति उपेक्षा के भाव जगते हैं वहाँ वह सदस्य अपनी आस्था को खोकर खोखला बन जाता है। इसलिये प्रत्येक सदस्य आत्म-श्रद्धा से नियमो को पालन करता हुआ गण और गणी के प्रति श्रद्धावान रहे।

साधना और मूल खाद्य-सयम

आचार्यश्री ने प्रवचन मे फरमाया—

"खाद्य सयम के बिना अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह

वाची शब्दों में भी अर्थ की भिन्नता व यथार्थ उपयोगिता की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

खरी जिज्ञासा वृत्ति

१७-८-६२ जया बहन बम्बई में रहती है। इला बहन के साथ आचार्यश्री के दर्शन करने आयी हैं। कलकत्ता में प्रवीण भाई, हरकिशन भाई और हंसा बहन सम्पर्क में आये थे। प्रवीण भाई के पत्रों के समाचारों से प्रभावित जया बहन आचार्यश्री के दर्शन करने यहाँ चली आयी। मुनिश्री जसकरणजी व बम्बई में मुनिश्री चन्दनमलजी के सम्पर्क व सेवा का लाभ भी मिला है। संगीत-प्रिय होने के कारण कई भजन अनेक प्राचीन रागों के कण्ठस्थ हैं। श्रोता सुनकर तन्मय बन जाते हैं। स्वरों की मधुरता उन्हें सहज प्राप्त है। आप विधवा हैं। दो लड़के और एक लड़की है। इन पाँच वर्षों से धर्म के प्रति आस्था बढ़ी है। तत्त्व के प्रति बड़ी जिज्ञासा है। जिज्ञासा की उत्कटता देख आचार्यश्री ने छः दिन तक प्रतिदिन अपना तीन-चार घंटे का समय उन्हें दिया।

आचार्यश्री की स्वर-लहरी और देवीलालजी के उद्गार

१८-८-६२ : रात को लोक-कला मंडल के संस्थापक श्री देवीलाल सामर आये। उन्होंने आचार्यश्री से कहा—'मैंने आपके तीन प्रवचन सुने हैं, एक दिल्ली में और दो यहाँ। मैंने अनुभव किया कि जो प्रभाव आपकी वाणी का सीधा पड़ता है वह लाउडस्पीकर से नहीं। यद्यपि मैं नये विचारों का समर्थक हूँ, पर आपके लिये यह आवश्यक नहीं है। लाउडस्पीकर आपके शब्दों को श्रोताओं तक पहुँचा देगा, भाव भी कह देगा, पर वह उतनी सरसता नहीं देगा। रेडियो के गीत और व्यक्ति के प्रतिबिम्ब की तरह वह कृत्रिम होता है। जो आनन्द मूल वस्तु से सीधा मिलता है वह माध्यम से सम्भव नहीं है। आपकी वाणी सीधी हृदय को स्पर्श करती है और प्रभाव छोड़ जाती है। उसमें ओज है, मधुरता है।

मेरा निवेदन है कि लाउडस्पीकर के युग मे भी आपको उसका सहारा नही लेना चाहिए।"

स्वरो की उच्चता, वाणी की मधुरता और दीर्घ ध्वनिता, सगीत के वरद-पुत्र आचार्यश्री की वाणी की अपनी विशेषता है। यत्र-सहयोग के विना बीस-तीस हजार व्यक्तियो के वीच प्रवचन कर सुनाने वाला विरला ही मिलेगा।

गत रविवार को डेढ घटे प्रवचन देने के बाद जब आपने सगीत स्वर छेडा तो लोग मन्त्रमुग्ध बन गये। मालकोश की राग इतनी ऊँची चली जा रही थी कि हम बीस-तीस साधु मिलकर भी आपके स्वरों का साथ करने मे असफल रहे। ऐसा लग रहा था कि एक ओर खजूर की ऊँचाई थी और दूसरी ओर अमरूद के वृक्षो की ऊँचाई।

स्वतन्त्रता का उन्माद

स्वतन्त्रता का उन्माद किसे नही सताता ! प्रत्येक व्यक्ति बोलने मे स्वतन्त्र है, किसका मुह पकडा जा सकता है ? इसका नग्न रूप आज सडक पर देखने को मिला। पत्र के बिक्री के प्रलोभन मे आ एक व्यक्ति खुले-आम आचार्यश्री का नाम लेकर बुरा बोल रहा था। श्री देवीलाल सामर ने आचायश्री से कहा—"पैसो के लालच मे ये पत्रकारिता को कलकित कर रहे हैं। ऐसे पत्रो का कोई स्तर नही है। स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर रहे हैं। निन्दा का आश्रय लेकर ये पैसे माँगना चाहते है। घाटे की पूर्ति करना चाहते हैं। इनके चक्रव्यूह मे कोई न फँसे। जो क्राति-कारी युगपुरुष होते हैं उन्हे अपने जीवन मे विरोध और आलोचना को ऐसे ही सहना होता है। गाधी, कवीर आदि किन महापुरुषो को सहना नही पडा ? युगपुरुष का जितना वर्तमान साथ नहीं देता उससे अधिक भविष्य साथ देता है। भविष्य ही उसे पुजाता है। वर्तमान तो महापुरुषो के तपने का काल होता है।"

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—"हमे इनसे भय भी नही है। प्रारम्भ से

ही मैं पैसा देकर प्रशसा लिखाने, निन्दा व आलोचना को वन्द कराने का विरोध करता रहा हू। इसलिए विरोध को सहते-सहते इतनी परिपक्वता आ गई है कि कभी नीद भी नही उडती। निम्नस्तरीय विरोध की ओर ध्यान भी नही जाता कि उत्तर देना चाहिए। उच्चस्तरीय आलोचना का प्रत्युत्तर दिया है, कही यदि उसमे ग्राह्य तत्त्व मिला तो उसे लेने मे सकीर्णता भी नही की। विरोध से भय खाकर कभी अपनी प्रवृत्ति को वन्द करने की भावना भी नही जगी। जो कुछ किया चिन्तनपूर्वक किया। भविष्य की सम्भावनाओ को देखकर कदम वढाया। उस पर भी यदि विरोध आता है, तो उसका प्रत्यावरोध करने की क्षमता भी है। मेरा विश्वास है कि व्यक्ति को कार्य करते रहना चाहिए। जितना फल मिलता है वह अच्छा ही है। कोई भी महापुरुष यह कल्पना नही कर सका कि वह ससार भर को सुधार देगा। यदि कोई करता है, तो असत्य अह के अतिरिक्त और क्या है? अपने जीवन मे पुरुषार्थ करते रहना चाहिए, उससे जी नहीं चुराना चाहिए। ससार स्वय उसका मूल्याकन करेगा।"

१६ अगस्त को प्रात काल विचार परिषद् मे 'जैन दर्शन और अनेकान्तवाद' विषय पर वोलते हुए साध्वीश्री कस्तूराजी ने कहा—"जैन दर्शन का अनेकान्त के साथ तादात्म्य सम्वन्ध है। अन्य दर्शनो ने भी उसका व्यवहार मे प्रयोग अवश्य किया है पर सिद्धान्त रूप मे स्वीकार नहीं किया। वस्तुत अनेकान्त के विना व्यवहार चल ही नहीं सकता, क्योकि वस्तु अपने मे अनेक धर्म लिए चलती है। अनेक धर्मो को एक दृष्टि मे पकडने का प्रयास कैसे सफल हो सकता है? प्रत्येक धर्म के लिये स्वतन्त्र दृष्टि चाहिए। वाणी की असमर्थता है कि वह एक साथ दो धर्मो को नहीं कह सकती। एक वस्तु मे परस्पर-विरोधी धर्मों का भी सहवास मिलता है। पर एक आधार मे रहने पर भी उनमे विवाद नहीं चलता। एक देश मे रहकर जाति, भाषा और प्रान्तवाद को लेकर परस्पर विवाद करने वाले अनेकान्तवाद की मूक शिक्षा को लेकर चलें तो विवादो का अन्त हो जाए।

"वस्तु-सत्य तक पहुचने के लिये अपेक्षावाद का सहारा अत्यन्त जरूरी है, अन्यथा एक कदम भी नही चल सकते। एक व्यक्ति है—वह साधु है, तपस्वी है, ध्यानी है, वक्ता है, कवि है, लेखक भी है। उसे किस विशेषण से सम्बोधित किया जाय ? कोई भी एक विशेपण उसकी पूर्णता व्यक्त नही करता। एक समय वाणी एक धर्म की ही अभिव्यक्ति करने मे समर्थ है। इसलिये सत्य को पकडने के लिये स्याद्‌वाद की शरण लेनी पडती है। स्याद् शब्द मे एक धर्म की प्रधानता के साथ शेष सभी धर्मो की गौणता जुडी हुई है। इसलिए स्याद्‌वाद अथवा अनेकान्त के विना सत्य हाथ नही आता है। आइन्स्टीन का सापेक्षवाद और क्या था ? स्याद्‌वाद का ही प्रतिरूप था। कालिदास के इस श्लोक मे—

"यज्ञोपवीत परम पवित्र, करे गृहीत्वा शपथ करोमि।
योगे वियोगे दिवसो ऽङ्गनाया, अणोरणीयान् महतो महीयान्।

स्याद्‌वाद की ही छाया मिलती है। शब्दशास्त्रों मे शब्दो की सिद्धि अनेकान्त से मानी है—'सिद्धिरनेकान्तात्'। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र मे अनेकान्त का व्यक्त या अव्यक्त प्रभाव है। कोई भी क्षेत्र इससे अस्पृष्ट नही है।"

उपर्युक्त सारगर्भित भाषण के वाद अध्यापक लालशकर पाडया ने कवितापाठ किया। अन्त मे आचार्यश्री ने फरमाया—

"विषय प्रवेश हो चुका है। जमीन तैयार हो गई है। वीज डाल दिया गया है। अब केवल वीज-वपन होना शेप रहा है। आज का मानव रोटी-कपडे के पीछे इस तरह से पड गया है कि दर्शन मे वह उलझना ही नही चाहता। एक कवि ने कहा है—'वह मजहबी वहसो मे पडता नही क्योकि उसमे उतनी अक्ल ही नही है।' अक्ल नही है, ऐसी वात नही है, वह उलझना ही नही चाहता है। हम भी आपको उलझाना नही चाहते हमारा सिद्धान्त है इच्छापूर्वक ग्रहण करना। किसी विचार को किसी पर थोपना नही चाहिए। जहाँ पर कोई विचार-दर्शन थोपा जाता है वही पर उलझनें वढ जाती हैं और जहाँ पर इच्छापूर्वक ग्रहण

करने के सिद्धान्त को अपनाया जाता है, वही पर सब उलझनें समाप्त हो जाती है। हमने इस सिद्धान्त को अपनाया है और इसमे मुझे काफी सफलता भी मिली है। आपके सामने अपने विचार प्रस्तुत करता हू, यदि आप उसे ग्रहण करते हैं तो साधुवाद, नही ग्रहण करते है तो हम मध्यस्थ वृत्ति मे सोचते है कि ये विचार मेरे हैं, दूसरो के नही। जैन धर्म और दर्शन की वात ठीक ऐसी ही है।

"आज जैन दर्शन का व्यवस्थित विस्तार वहुत कम है। जैनो की सख्या वैसे कम है परन्तु जो जैनी लोग है वे भी जैन दर्शन के तत्त्व को बहुत कम जानते है। यदि किसी जैन कहलाने वाले व्यक्ति के पास आज कोई जैनेतर जाता है और उससे जैन तत्त्व के बारे मे कुछ पूछता है तो वह कह देता है कि मैं तो इस विषय मे कुछ नही जानता। हमारे महाराज आए हैं, उनसे चलकर पूछ लीजिए। वास्तव मे यह बहुत चिन्ता और लज्जा की वात है।

"मैं चाहता हू कि आप लोगो के सामने जैन दर्शन के बारे मे कुछ विचार रखूं, परन्तु इतने अल्प समय मे एक दिन के एक प्रहर के भाग मे पूर्ण रूप से कैसे कह सकता हू? कहूगा तो उसके साथ न्याय नही होगा। जैन दर्शन पर कुछ प्रकाश अवश्य डालना चाहूगा।

"जैन कहलानेवाले लोगो से अधिक जैनेतर लोग जैन दर्शन के बारे मे जानने के अधिक इच्छुक रहते हैं, मेरा यह निज का अनुभव है। एक बार पूना मे सात दिन तक रहने का अवसर बना। वहा सस्कृत भाषा के अच्छे से अच्छे विद्वान् है। मैं समझता हू कि सैकडो विद्वान् नित्य हमारे कार्यक्रमो मे आते थे। एक आदमी ने वहाँ पहुचने पर मेरे कान मे डाला कि मेरे भाषण सार्वजनिक विषयो पर हो क्योकि वहाँ के विद्वान् लोग जैन धर्म के विषय मे सुनना नही चाहेगे। प्रारम्भ मे मैंने उसी ढग से कार्यक्रम रखे।

"मानव धर्म की वातें चलती रही। जैन धर्म भी उसके अन्दर आ गया, वह कोई बाहर तो है नही। एक दिन सस्कृत-पडितो की गोष्ठी हुई।

विद्वानो ने एक स्वर से कहा—"इदानी तु वय भवद्-मुखात् जैन तत्त्व श्रोतुकामा "—आज तो हम आपके मुख से जैन तत्त्व के वारे मे ही कुछ जानना चाहते हैं। मुझे बहुत आश्चय हुआ। मैं तो विभीपिका लिए वैठा था। मैं जैन धम पर बोला। लोगो ने वहुत ही प्रसन्नतापूवक विचारो को सुना। समस्त कार्यक्रम सस्कृत मे वहुत ही सुन्दर ढग से सम्पन्न हुआ। उसी समय मैंने कहा—'ते हि नो दिवसा गता '—आज पुन कहता हू कि अव वह युग बीत चुका है। तव दो सम्प्रदायो मे मल्लयुद्ध होता था। कोई कहता था—'हस्तिना ताडयमानोपि न गच्छेत् जैन मन्दिर'—हाथी के नीचे दवकर मरना अच्छा पर जैन मन्दिर मे नही जाना, तो कोई कहता 'शिव मन्दिर मे नही जाना चाहिए।' परन्तु अब स्वर्णिम प्रभात उदय हो गया है। जैन-दर्शन को जैनेतर जिज्ञासु वनकर सुनना चाहते हैं और जैन वेदान्त का अध्ययन करना चाहते हैं। मुझे जैनो की अपेक्षा जैनेतर मे जैन दर्शन पर वोलने मे अधिक आनन्द आता है।

"अव मैं जैन दर्शन पर अपने कुछ विचार रखता हू। जैन नाम से किसी को उलझन नही होनी चाहिए। मुझे तो जैन शब्द अत्यन्त प्रिय लगता है। कितना अच्छा होता यदि जैन शब्द से दो मात्राएँ हटकर वह 'जन'-धर्म ही वन जाता। जैन शब्द की उत्पत्ति जिन शब्द से हुई है। जिन अर्थात् वीतराग। उनके द्वारा वताया गया माग ही जैन धर्म है। उसके अनुयायी जैन कहलाए। जैन धर्म मे साम्प्रदायिकता, सकीर्णता आदि सकुचित विचारो का कोई महत्त्व नही है। परन्तु जैनो मे है। जैनों ने जैन धर्म को साम्प्रदायिकता, सकीर्णता मे जकड दिया। जिस प्रकार से एक स्वच्छन्द विचरण करनेवाले पक्षी को किसी पिंजरे मे डाल दिया जाय तो वह वाहर जाने के लिये सदैव तडपता है, उसी प्रकार जैन धर्म भी सकीर्णता मे जकडा रहना नही चाहता। आजकल लोग कहते हैं कि जैन धर्म तो वनियो का धर्म है, परन्तु मैं कहता हू कि जैन धर्म कायरो का नही है, वहादुरो का है, वीरो का है। यह दूसरों से लडकर खून-खरावी नहीं चाहता है वल्कि अपनी आत्मा मे बैठे हुए शत्रुओं को

मार भगाना चाहता है, जो आत्मा को नुकसान पहुचाते हैं। दो आदमियो मे लडाई क्यो होती है ? इसीलिए कि वे एक-दूसरे का अनुशासन नही मानते। मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि क्या आपका मन-वाणी आपके आदेश मानते हैं ? हाँ, तो बाहर मे लडिये, अन्यथा पहले अपनी आत्मा से। महावीर ने कहा हैं—अप्पणा चेव जुज्झाहि किंते जुज्झेण-वज्झओ।

"दस लाख योद्धाओको एक व्यक्ति जीतता है और एक अपने-आपको जीतता है। अपने आपको जीतने वाला परम विजेता है। आप लोग किसी सुन्दर चीज़ को देखकर उसकी ओर झुक जाते हैं। किसी अश्लील फिल्मी गाने को सुनने के लिए लालायित हो जाते हैं। यदि आप अपनी परिस्थितियो पर काबू नही पाते हैं तो दुनिया से लडने मे लानत है। यदि आपको लडना है तो अपने आपसे लडें। अपने हाथ, पाव, नाक से लडें, जिनके द्वारा आपका बहुत बडा अहित हो रहा है।

एक गुरु ने अपने शिष्य से कहा—'शिष्य, पतली कर।' शिष्य ने तीन दिनो की तपस्या की। गुरु ने फिर कहा—'पतली कर।' शिष्य ने पुन बडी तपस्या की। इसी प्रकार गुरु कहता गया और शिष्य तपस्या करके अपने शरीर को कृश बनाता गया। अन्त मे शिष्य बिलकुल सूख गया। गुरु ने फिर वही कहा—'पतली कर।' शिष्य आगबबूला होकर अपनी अगुली को मोडता हुआ बोला—'महाराज ! तपस्या करते-करते तो मैं इतना पतला हो गया, अब और कितना पतला होऊँ ?' गुरु ने कहा—"मूर्ख, मैं कब कहता हूँ कि तुम शरीर को सुखाओ ? मैं तो कहता हूँ कि तुम इसी कषाय को कम करो।' शिष्य नतमस्तक होकर बोला—'महाराज ! मुझसे भूल हुई। मैं नही समझ सका।'

"आप ईमानदारी से थोडा सोचिये। आप दूसरो की आलोचना कर सकते हैं परन्तु क्या आपने कभी अपनी आलोचना की ? कहा जाता है कि महात्मा गांधी ने जिस समय अपनी जीवनी लिखनी शुरू की उस समय वे कुछ सोच मे पड गये। उन्होने सोचा, यदि मैं अपने जीवन की समस्त घटनाओ को लिखता हू तो अपनी प्रशसा और कमजोरी भी उसमे

आ जाती है और यदि नहीं लिखता हू तो जीवनी अधूरी रह जाती है। अपनी कमजोरी लिखने मे शर्म आती है इसलिए वस्तुस्थिति ही लिखनी चाहिए। आप अपनी बुराइयो को अपने से निकालकर महान् व्यक्ति वन सकते हैं, वीतरागी वन सकते हैं। आप कहेगे कि जव सभी लोग वीतरागी वन जायेंगे तो सृष्टि ही समाप्त हो जाएगी। परन्तु मैं कहता हूँ कि हमारे कहने से सभी वीतरागी बन ही कहाँ जाते है ? मैं ही क्या, हमारे जैसे हज़ारो, लाखो भी बीतरागी बनने का उपदेश दें तो भी सृष्टि समाप्त नही हो सकती।

"कई कहते हैं जैन धर्म अव्यावहारिक है, क्योंकि उसमे शरीर को कष्ट देने पर बल दिया जाता है। वास्तव मे जैन धर्म साधना-प्रधान धम है। साधना मे जो कष्ट आए उसको दृढतापूर्वक सहन करना चाहिए, उससे विचलित नही होना चाहिए। परन्तु भगवान् ने स्वग कहा है कि जैन धम व्यावहारिक है। उन्होने बताया कि आदमी दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे आदमी होते है जो अपना घर-परिवार छोडकर पूर्ण रूप से साधना मे लग जाते हैं। दूसरे प्रकार के आदमी वे है जिनमे इतनी शक्ति नही होती है। ऐसे लोगो को अपनी शक्ति के अनुसार ही काम करना चाहिए। अठाई न हो सके तो पचोला ही करे, पचोला न हो सके तो तेला या वेला ही करे। यदि यह भी न हो सके तो एक दिन का उपवास या एकाशन ही करे। यदि यह भी नही हो सके तो जितना भोजन किया जाता है उससे दो ग्रास कम खाए और यह भी नही होता है तो कम से कम अच्छे आदमी की अच्छाई देखकर प्रशसा करे। गुणी के गुण को देखकर प्रसन्न होना चाहिए, न कि उसकी बुराई करना चाहिए। जिसमे यह सहज वृत्ति आ जाए तो वह भी वहुत वडा आदमी वन सकता है। अब आप सोच सकते हैं कि धर्म की इससे अधिक और क्या व्यावहारिकता हो सकती है।

गृहस्थ शोषण तथा अन्याय से पैसा न कमाए। क्या यह व्यावहारिक नही है ? कुछ लोग कहते हैं कि जैन लोग तो अच्छे-अच्छे व्यापारी हैं

मार भगाना चाहता है, जो आत्मा को नुकसान पहुचाते हैं। दो आदमियो मे लडाई क्यो होती है? इसीलिए कि वे एक-दूसरे का अनुशासन नही मानते। मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि क्या आपका मन-वाणी आपके आदेश मानते हैं? हाँ, तो बाहर से लडिये, अन्यथा पहले अपनी आत्मा से। महावीर ने कहा है—अप्पणा चेव जुज्झाहि किते जुज्झेण-वज्झओ।

"दस लाख योद्धाओको एक व्यक्ति जीतता है और एक अपने-आपको जीतता है। अपने आपको जीतने वाला परम विजेता है। आप लोग किसी सुन्दर चीज़ को देखकर उमकी ओर झुक जाते हैं। किसी अश्लील फिल्मी गाने को सुनने के लिए लालायित हो जाते हैं। यदि आप अपनी परिस्थितियो पर काबू नही पाते है तो दुनिया से लडने मे लानत है। यदि आपको लडना है तो अपने आपसे लडें। अपने हाथ, पाव, नाक से लडें, जिनके द्वारा आपका वहुत वडा अहित हो रहा है।

एक गुरु ने अपने शिप्य से कहा—'शिप्य, पतली कर।' शिप्य ने तीन दिनो की तपस्या की। गुरु ने फिर कहा—'पतली कर।' शिप्य ने पुन वडी तपस्या की। इमी प्रकार गुरु कहता गया और शिष्य तपस्या करके अपने शरीर को कृश वनाता गया। अन्त मे शिष्य विलकुल सूख गया। गुरु ने फिर वही कहा—'पतली कर।' शिष्य आगववूला होकर अपनी अगुली को मोडता हुआ वोला—'महाराज! तपस्या करते-करते तो मैं इतना पतला हो गया, अव और कितना पतला होऊँ?' गुरु ने कहा—"मूर्ख, मैं कव कहता हूँ कि तुम शरीर को सुखाओ? मैं तो कहता हूँ कि तुम इसी कपाय को कम करो।' शिप्य नतमम्तक होकर वोला—'महाराज! मुझसे भूल हुई। मैं नही समझ सका।'

"आप ईमानदारी से थोडा सोचिये। आप दूसरो की आलोचना कर सकते हैं परन्तु क्या आपने कभी अपनी आलोचना की? कहा जाता है कि महात्मा गाधी ने जिस समय अपनी जीवनी लिखनी शुरू की उस समय वे कुछ सोच मे पड गये। उन्होने मोचा, यदि मैं अपने जीवन की समस्त घटनाओ को लिखता हू तो अपनी प्रशसा और कमजोरी भी उसमे

परन्तु कितना शोषण एव अन्याय करते हैं, वे लोग ध्यान नही देते। मैं कहता हूँ कि यदि कोई जैनी शोषण करता है, अन्याय करता है तो भगवान् महावीर आकर उसका क्या करे।

"गृहस्थ जीवन परिग्रह तथा अपरिग्रह का सम्मिश्रण है। गृहस्थ सर्वथा परिग्रह से वचित नही होता। यदि आप मर्यादापूर्वक आवश्यकता मे अधिक सग्रह नही करेंगे तो साम्यवाद को पाव फैलाने का अवसर ही नही मिलेगा। मुझमे दिल्ली की कान्स्टीट्यूशन क्लब मे प्रश्न पूछा गया—'क्या भारत मे साम्यवाद आएगा ?' मेरे मुख मे सहजतया निकल पडा—'यदि आप लोग लाएँगे तो।' वह क्या साम्यवाद है जहाँ व्यक्ति स्वेच्छा से साँस भी न ले सके। जैन धर्मग्रन्थो मे भी साम्यवाद की रूपरेखा मिलती है। ऊपर के देवलोक मे सब अह इन्द्र होते हैं। वहाँ स्वामी और प्रेष्य भाव नही होता। ऋद्धि-सम्पदा मे भी वे समान होते है।

'जैनो का प्रमुख सिद्धान्त स्याद्वाद है। परन्तु अब तो यह स्वादवाद बन गया है। पर इसे समझने की ओर ध्यान ही कौन देता है ? जैन कहलाने वाले लोगो ने, जैनी साधुओ तथा आचार्यों ने जैन सिद्धान्तो की ओर ध्यान बहुत कम दिया। उनका अधिक ध्यान एक-दूसरे पर छीटा-कशी करने मे ही रहा। आधुनिक जनता को सही खुराक नही मिली। जैनो के आगम प्राकृत मे हैं। आज के लोग बहुत कम प्राकृत जानते हैं। हिन्दी मे तो बहुत कम ग्रन्थ हैं, अग्रेजी मे और भी कम है। यह जैन आचार्यो एव मुनियो की कमजोरी है और आज भी वे इस कमजोरी को नही समझते है।

"भारतीय दर्शन मे जैन दशन का विशिष्ट स्थान है। विदेशो मे जैन दर्शन के अच्छे विद्वान् मिल सकते है। जर्मनी का एक विशिष्ट विद्वान् मुझसे मिला। उसका नाम डा० रोथ था, जो मल्लीकुमारी पर रिसर्च करता था कि मल्लीकुमारी थी कि मल्लीकुमार था। उसने मुझसे कहा—'यदि आप जैन दर्शन के बारे मे कुछ जानना चाहते हैं तो अपने शिष्यो

को जर्मन भाषा पढाइए।' जैन दर्शन के बारे मे जितना हम जैनो ने नही जाना उससे अधिक अन्य लोगो ने उसका मूल्याकन किया है।

"अनेकान्तवाद का अर्थ है—अपेक्षा दृष्टि। वस्तु को एक ही दृष्टि मे नही पकड सकते। शकर के तीन नेत्र थे। न्यायाधीश के चार नेत्र होने चाहिए—दो ज्ञान-चक्षु और दो चम-चक्षु। वस्तु के अनन्त धर्म को जानने के लिए सहस्राक्ष से भी काम नही चलेगा। उसके लिए अनन्त चक्षु चाहिए। इसलिए यथार्थ ज्ञान की दिशा मे तीर्थंकरो को अनन्त चक्षु कहा गया है।

"एक व्यक्ति खडा है। सौ व्यक्तियो को उसके विपय मे लिखने के लिए कहा गया। सबने अपने-अपने दृष्टिकोण से उसको लिखा। उस व्यक्ति के सौ रूप सामने आ गए। वैसे ही अनन्त व्यक्ति उस पर लिखें तो उसके अनन्त रूप मिलेंगे। वस्तु की अनन्त अपेक्षाओ को हम दो आँखो से आँकने का प्रयास करते हैं, कितना सत्य मिलेगा।

"गौतम बुद्ध के हाथ मे कुछ पत्तियाँ थी। पूछा—'क्या इसमे सभी वृक्ष समा गए?' उत्तर मिला—'नही।' फिर पूछा—'एक जाति के वृक्ष समा गए?' वही नकारात्मक उत्तर मिला। फिर पूछा—'क्या एक वृक्ष समा गया?—'नही।' तब गौतम ने कहा—'सत्य समूचे वृक्षो के समान अनन्त है। जितनी हाथ मे पत्तिया हैं उतना-सा ही सत्य हाथ मे आता है। शेष अवशिष्ट रह जाता है।'

"ससार मे जितने भी सम्प्रदाय हैं उनमे तथ्य नहीं है यह मानना भूल है। तथ्य है इसलिए वे चले है। ससार के सभी तथ्य रूपो को मैं अपने सम्प्रदाय का अग मानता हूँ। आप कहेगे—आप तो जैन धर्म को मानने वाले हैं। मैं कहता हूँ जैन वही है जो अनन्त दृष्टियो को पकडकर चले।

उदधाविव सर्व सिन्धव समुदीण स्त्वयि नाथ! दृष्टय।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विनोदधि॥

"सब नदियाँ समुद्र मे आकर गिरती है, समुद्र नदियों मे नहीं जाता। प्रत्येक वस्तु मे अनन्त धर्म हैं, उसको समझने के लिए अनन्त दृष्टिकोण

भी होने चाहिए—यही है अनेकान्तवाद। यह सभी के लिए है। एक माता के दस बच्चे होते हैं। वे दस प्रकार की शिकायत करते हैं। माता न्यायाधीश नही होने पर भी उनके झगडे मिटा देती है। इसका कारण है माता उनकी अपेक्षाओ को समझ जाती है। अपेक्षा के बिना हर क्षेत्र मे काम नही चलता। डाक्टर के पास एक रोग के पाँच रोगी आते हैं, वह रोगियो को भिन्न-भिन्न दवाइयाँ देता है। किसी के साथ कब्ज की, किसी के साथ कमजोरी की, किसी के साथ वायु की, इस प्रकार एक ही रोग के साथ भिन्न-भिन्न कारण जुडे रहते हैं। वही डाक्टर सफल होता है जो द्रव्य, क्षेत्र और काल को देखकर दवा देता है। एक ही मामले मे कई दोषी आ सकते हैं परन्तु समझदार न्यायाधीश सबको भिन्न-भिन्न सजाएँ देगा। एक राजा ने एक केस मे चार व्यक्तियो को चार प्रकार का दण्ड दिया। एक को कहा—'तुमने यह क्या किया ?' दूसरे से कहा—'धिक्कार है!' तीसरे को कहा—'पाच कोडे की सजा।' और चौथे को गधे पर चढाकर शहर के चारो ओर घुमाने की सजा दी। एक आदमी से यह न्याय देखा नही गया। उसने कहा—'महाराज! यह तो बहुत बडा अन्याय है। इससे तो प्रजा बिगड सकती है। चारो ने एक ही प्रकार का अपराध किया तो इनको समान सजा भी होनी चाहिए।' राजा ने कहा—'अभी तुम चुप रहो और इन चारो को देखो।' प्रश्न पूछनेवाले ने देखा—पहला सजा पाने वाला व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए तैयारी कर रहा है। दूसरा सजा पाने वाला घर छोडकर भाग जाने की तैयारी कर रहा है। तीसरा घर से ही नही निकलता है, सोचता है कैसे मुह दिखाऊँ। चौथा प्रसन्नता से शहर मे घूम रहा है। अन्त मे वही कहने लगा—फैसला वैसा ही होना चाहिए।

"कानून मे लिखे अनुसार चलना पडता है। वह माध्यम अवश्य है पर साथ मे अनुभव चाहिए। किस समय कौन किस परिस्थिति मे क्या करता है इसे अनुभव ही देख सकता है। डाक्टर या वैद्यो के लिए भी पुस्तक से कही अधिक उपयोगी उनका अनुभव होता है। अनुभवी जितना सफल होता है उतना केवल पुस्तको के आधार पर चलने वाला नही।

"अपेक्षावाद का प्रतिपक्षी एकान्तवाद है। एकान्तवासी सब अपने-अपने सस्थान व सम्प्रदाय मे आने को आह्वान करते है और उसी को कल्याण का पथ बतलाते हैं। इसीलिए गाधीजी ने कहा—'सम्प्रदायवाद ठीक नही है। अति व्यापकता भी आगे चलकर अपना लक्ष्य भूल जाती है।' किसी से पूछो—'आप किस धर्म को मानते हैं?' उत्तर मिलता है—"सम्प्रदायवाद से दूर मैं मानव धर्म को मानता हूँ।' आगे चलकर मानव धर्म को मानने वालो का भी सम्प्रदाय बन जाता है। भगवान् महावीर ने कहा—"मनुष्य को सत्पथ पर चलना चाहिए। सत्पथ का निर्णय कर स्वीकार करना चाहिए। एक को आधार स्वीकार किए बिना जीवन चल नही सकता। जिस पर श्रद्धा व विश्वास है उसको स्थिर मान फिर दूसरे तत्त्व को देखो। देखते समय आग्रह को साथ न रखो। यदि वह दिमाग मे भरा है तो उसको खाली कर लो। कषाय-मुक्ति के बिना न तो दूसरो के विचार सुन ही सकोगे और न उसकी अच्छाई ग्रहण ही कर सकोगे।

"अनेकान्त दृष्टि है और स्याद्वाद उसके निरूपण की पद्धति। स्याद् का अर्थ है किसी अपेक्षा से और वाद का अर्थ है बोलना। एक वस्तु मे परस्पर-विरोधी युगल अनन्त है। एक ही वस्तु नित्य है और अनित्य भी। सामान्य है और विशेष भी। अस्तित्व धर्म उसमे है तो नास्तित्व भी। यह पुस्तक है, इसमे अस्तित्व धर्म है। 'वह पुस्तक नही है।" इसमें नास्तित्व धर्म का सकेत है। कल्पना करो वह साहित्य की पुस्तक है। साहित्य विषय की दृष्टि से उसमे अस्तित्व धर्म विद्यमान है। वह दर्शन, व्याकरण, सिद्धान्त और गणित की नही है, इस दृष्टि से नास्तित्व धर्म है। जितना अस्तित्व धर्म है उतना ही नास्तित्व धर्म है। पुस्तक और पेंसिल समान नही है। पर एक अपेक्षा से समान भी हैं। दोनो लेखन की सामग्री हैं और दोनो पुद्गल हैं। इस प्रकार अपेक्षा-दृष्टि से उपयोग करने पर वस्तु का सही रूप हाथ आता है। अनेकान्तवाद और अपेक्षावाद का ही फलित सह-अस्तित्व है, जहाँ राजनीतिक क्षेत्र में परस्पर-विरोधी दल भी साथ बैठकर बात करते हैं।

देश के बहुत बड़े संत हैं। वे साधुओं के सिवाय किसी से डाइरेक्ट बात नहीं करते, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो। उन तक पहुचने के लिए तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि प्रिंसिपल जौन साहब भी आचार्यश्री से सीधी बात नहीं कर पा रहे हैं।'

कल्पना के पैर नहीं होते, फिर भी न जाने उसको टिकने के लिए कहा से आधार मिल जाता है। असत्य कल्पना को भी आधार मिल गया।

प्रवचन-सभा मे सबसे पहले जौन साहब ने स्वागत किया। फिर श्री छगनलाल शास्त्री ने प्राकृत भाषा की उपयोगिता पर दो शब्द कहे। मुनिश्री दुलहराजजी ने अग्रेजी भाषा मे आचार्यश्री का परिचय दिया। अन्त मे आचार्यश्री ने अपना प्रवचन किया।

प्रवचन के बाद अवधान होने वाला था, परन्तु समयाभाव के कारण आगे के लिए स्थगित हो गया। चार बजने मे दस-पन्द्रह मिनट शेष रहे थे, उसका उपयोग प्रश्नोत्तरो मे हुआ। प्रश्नोत्तरो मे छात्र इतना रस लेते थे कि मानो वे सारी शकाओं को आज ही समाधान देना चाहते हो। समय अपनी गति से चल रहा था। चार बजे प्रश्नों की परम्परा को रोकना पडा।

अन्त मे प्रो० डा० गोपीनाथ शर्मा ने कहा—'कॉलिज मे अनेक प्रकार की प्रवृत्तिया चलती हैं पर धर्म की बात सोचने का अवसर ही नहीं मिलता। आचार्यश्री ने सत्पथ दिखाकर ऊपर चलने का संकेत किया है, वह कॉलिज के इतिहास मे अपूर्व है।'

आज के कार्यक्रम का आकर्षण आचार्यश्री का प्रवचन था। भाषण का प्रवाह अपने मे सबको बहा ले जा रहा था, जिसमे स्नान कर विद्यार्थियों ने शकाओ से भरे अपने दिमाग को साफ किया। वर्तमान जीवन के साथ-साथ भावी जीवन की भी दीक्षा ली।

रात को आगम गोष्ठी मे मुनिश्री ताराचन्दजी ने 'लब्धि' विषय पर बोलते हुए कहा—'आज वैज्ञानिक युग मे जो नये-नये आविष्कार निकल रहे हैं, स्पूतनिक से चन्द्रलोक तक पहुचने की तैयारी हो रही है,

इस प्रकार इसे विकास का युग कहा जाता है। पर इससे भी अधिक विकास हमे प्राचीन साहित्य मे पढने को मिलता है। लब्धियो का वर्णन हमे विकास का प्रकाश देता है। लब्धियो के बल पर आकाश मे उडना, पानी पर चलना, सूक्ष्म रूप बनना, अदृश्य होना आदि अनेक चमत्कार-पूर्ण कार्य सरल थे। उनकी प्रक्रिया अनुपलब्ध होने से आज वह कल्पना की वस्तु बन गई है। साहित्य के अन्वेषण मे सम्भव है प्रक्रिया हाथ लग जाए। आवश्यकता है प्राचीन साहित्य का सूक्ष्मता से अध्ययन करें।'

२६ ८ ६२ हरिशकर शर्मा 'हरीश' आचार्यश्री के सम्पर्क मे आये। प्राकृत भाषा के प्रति इनकी अभिरुचि है। इन्होने आदि जैन साहित्य (रास) पर थीसिस की है। प्राकृत मे डी०लिट्० करना चाहते हैं। उन्होने कहा—'जब मैंने इस विषय को चुना तो मेरे सामने कई प्रश्न उपस्थित हुए। मुख्य यह था कि 'रास' साहित्य ही नही है क्योकि वह उपदेशात्मक है। मैंने तर्क दिया—उपदेश होने से वह यदि साहित्य नही है तो गीता साहित्य नही है और तुलसीदासजी की रामायण भी साहित्य नहीं। वे और क्या हैं, उपदेशात्मक होते हैं। तर्क वापस उत्तर लेकर नही लौटा।

'अनुभव-चिन्तन-मनन' आदि दो-तीन पुस्तकों का परायण कर जब दो-तीन दिन बाद आए तो कहने लगे—"आचार्यश्री ! आपका और मुनिश्री नथमलजी का साहित्य देखकर चोरी की भावना जगती है। गद्य ऐसे हैं मानो 'गागर में सागर' भरा है। थोडे शब्दो मे अधिक वाच्य स्पष्ट हुए हैं। मेरी भावना है इन सूत्रों को लेकर इन पर गीत लिखू। यह चोर वृत्ति मेरे मे जगी है।"

"आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ' को पढकर कहा—'यदि कोई मुझे पहले अवगत कराते तो एक लेख की श्रद्धाजलि समर्पित करने का मुझे भी सौभाग्य मिल जाता।"

आज की विचार परिषद् का विषय था—'दान और दया'। लोगो की माग थी कि यह विषय स्पष्ट होना चाहिए। अधिकाश लोगो के दिमाग

गलतफहमियो से भरे है। शका दूर होने से आगे का मार्ग सरल हो जायगा। आचार्यश्री ने स्वीकृति देते हुए कहा—'मुझे इसमे क्या आपत्ति है। यदि जनता मुझे सुनना चाहती है तो मैं अपना विचार जनता को दे सकता हू।' विषय निश्चित हुआ और दिन भी निश्चित हो गया। किसी ओर से एक चिन्तन सामने आया कि ऐसा उलझनभरा विषय क्यो रखा जाता है? आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'मेरे लिए यह उलझन नही है, मैं तो चाहता हू उलझन को हम सुलझाने का प्रयास करें। विषय का प्रतिपादन करना मेरा कार्य है। लोगो की माग थी इसलिये यह विषय रखा गया। किसी को उकसाना मैं हिंसा मानता हू।'

साध्वीश्री सरोजकुमारीजी और सुमनश्रीजी के बाद आचार्यश्री ने प्रदत्त विषय पर प्रवचन करते हुए कहा—"दान और दया प्राचीन है और आधुनिकतम भी। समय के साथ मूल्य बदलते रहते हैं। अपने-अपने युग के अपने-अपने मूल्य होते हैं। जो एक युग के मूल्य को पकडे बैठा रहता है वह युग से पिछड जाता है क्योंकि वातावरण उसे चारो ओर प्रतिकूल मिलता है। महाकवि कालिदास ने कहा है—

क्षणे-क्षणे यत् नवतामुपैति तदेव रूपम् रमणीयताया ।

"उन्मेष के बिना अच्छी वस्तु भी जड बन जाती है, नई नही रहती। नये-नये उन्मेषो मे सतुलन न खोकर उसको ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। गेहू, मक्का की रोटी आप प्रतिदिन खाते है पर पाककला मे निपुण व्यक्ति उसी गेहू के अनेक रूप सामने लाकर उसमे नवीनता भर देता है, जिससे आकर्षण बढ जाता है।

"सस्कृत देवभाषा थी और आज वह मूर्च्छित-सी क्यो है? इसका दोष सस्कृत के उपासको व सस्कृत-सेवियो को है। नाटक, पहेलिया, जीवन-चरित्र, कथा, इतिहास, प्रबन्ध व खण्ड-काव्य के प्राचीन हजारो ग्रन्थ मिलेंगे पर वर्तमान मे उत्तमोत्तम रचना का अभाव-सा लगता है। उन्मेष के द्वार बन्द हो गए। इसीलिए वह पुरानी बनती-बनती मृतप्राय हो गई।

"दान और दया के चिंतन मे भी स्फुरणा आनी चाहिए। एक युग मे हमारा परिचय था—दान-दया के विरोधी। हम लोगो ने अपने विचार जनता को दिए, पर वे उतने फलवान न हो सके, जितने होने चाहिए। स० २००६ मे जयपुर मे मैंने एक गीतिका वनाई थी—

दान दया के जो सिद्धान्त, दुनिया है जिसमे उद्भ्रान्त
शीघ्र हो सब शात, ऐसा शात रस बरसाएगे
क्राति भी फैलाएगे
वीर के अनुगामी भिक्षु स्वामी के गुण गाएगे।

"हृदय की भावना अनायास शब्दों मे उतर आयी। इसके पीछे चिंतन था कि हम अणुव्रत आन्दोलन का कार्य करना चाहते हैं, पर लोगो के दिमाग ऐसी आधारहीन शका व गलतफहमियों से भरे हैं कि वे हमे सही रूप मे नही देखते। इसलिए एक मोड देना चाहता था।

"अणुव्रत आन्दोलन चला तब दो वर्ष तक वाधाओ के पर्वत सामने आ खडे हुए। मैंने दान-दया के विषय का स्पर्श नहीं किया। विरोध को गरल मान पीता गया।

"वम्बई मे भी मुझे विरोध के अखाडे मे उतारने का प्रयत्न किया गया। वहाँ के प्रमुख पत्र 'वम्बई समाचार' ने विरोध में कलम चलाई। सवाददाता मेरे पास आया और कहा—'आपके प्रति जो कुछ प्रकाशित हो रहा है क्या उसके विषय मे स्पष्टीकरण देंगे?'

मैंने कहा—कुछ नही।

सवाददाता—तव आप काम कैसे करेंगे?

आचार्यश्री—मैं अपने ढग से कार्य करूगा।

सवाददाता—विरोध वहुत आ रहा है और आएगा भी।

आचार्यश्री—आयेगा तो पढेंगे।

सवाददाता—फिर उसका उत्तर तो देंगे?

आचार्यश्री—मैं नहीं देना चाहता।

"भावना असफल देख वह चला गया। चौथी वार चेलैंज आया—

आइये खुले मैदान मे।

"मैंने उत्तर दिया—'मैं पहलवान नही हू।' पहलवान शब्द को लेकर फिर वातावरण गदा किया गया पर जनता ने हमारा साथ दिया। बम्बई बौद्धिक क्षेत्र है। इसलिए लोगो को तथ्य समझने के लिए समय नही लगा। दूसरे व्यक्तियो ने हमारे विरोध का उत्तर दे दिया जो हमसे सर्वथा अपरिचित थे।

"धीरे-धीरे अणुव्रत-आन्दोलन ने लोगो का ध्यान अपनी ओर खीच लिया। जनता चूहे-बिल्ली को भूल गई। भूमिका तैयार होने से फिर हमने दान-दया का प्रश्न उठाया। साहित्य की रचना की। 'उन्नीसवी शती नया आविष्कार' नामक पुस्तिका सामने आयी। कइयो ने लेखक को साम्यवादी ठहराया। पर हमे घबराहट नही हुई। अहिंसा तत्त्वदर्शन, अहिंसा विवेक, भिक्षु विचार दर्शन, दान-दया विचारको की दृष्टि मे, अहिंसा और उसके विचारक आदि कई पुस्तकें जनता को पढने के लिए मिली। उच्चस्तरीय आलोचना होने लगी। उसका हमने स्वागत किया और उसके उत्तर मे कलम उठाई। उत्तर देख आलोचना करने वालो ने कहा—'प्रत्युत्तर हमे पुन चिन्तन करने के लिए बाध्य कर रहा है। जिसका हम उपहास करते थे, वास्तव मे वह वैसा नही है।'

"अब मैं दान और दया पर अपने विचार व्यक्त कर रहा हू—दया से दान भिन्न नही है। एक ही भूमिका मे रहनेवाले दो शब्द हैं। दान जब तक नही दिया जाता, अन्तर मे दया की भावना न जगे। इसलिए दोनो शब्द परस्पर-सम्बन्धित हैं। इस प्रश्न के उत्तर मे भिक्षु स्वामी ने कहा—

दया-दया सहुको कहे, ते दया धर्म छै ठीक।
दया ओलख ने पालसी, त्यारे मुगत नजीक॥

"दया से मुक्ति मिलती है, ऐसा विधान है, पर क्रिया से पहले उसका तत्त्व समझना आवश्यक है। दृष्टान्त की भाषा मे आपने बताया—

गाय भैंस आक थोर नो, ए च्यारुई दूध।
तिम अनुकम्पा जाणजो, राखे मन मे सूध॥

"दूध मे श्वेतता होने से समानता नही आती। व्यक्ति-भेद से गुणो मे दिन-रात का अन्तर पड जाता है। गाय के दूध के स्थान पर आक के दूध का प्रयोग करनेवाला परिणाम से वचित नही रह सकता। दूध की तरह दया मे भी भेद चलता है। केवल भिक्षु स्वामी ने ही नही, आचार्य अमित-गति ने भी दया के भेद किए हैं—

त शब्दमात्रेण वदन्ति धर्म, विश्वेपि लोका न विचारयति।
सशब्दसाम्येपि विचित्र भेदै, विभिद्यते क्षीर मेवार्जुनीम् ॥

"दया क्या है ? इस प्रश्न को दो दृष्टियो से सोचना है—आध्यात्मिक दृष्टि से और व्यावहारिक दृष्टि से।

व्यवहार दृष्टि मे अहिसा और दया दो हैं। वहा उपयोगी तत्त्वो का महत्त्व है। मनुष्य अधिक उपयोगी है, इसलिए उसकी आवश्यकता व सुरक्षा के लिए छोटे जीवो की हिंसा की जाती है।

"आध्यात्मिक दृष्टि से—दया और अहिसा एक ही है। जहा दया है वहाँ अहिसा है। हिंसा है वहा दया नही। दया है वहा हिंसा नही। अहिसा है वहा दया है। ये चारो विकल्प दया और अहिसा के एकत्व को व्यक्त करते हैं।

"दया वहा रहती है जहा सबकी सुरक्षा होती है। कतिपय जीवो की सुरक्षा और कतिपय जीवो की हिंसा हो वहा दया के दर्शन नही होते। क्योकि सब प्राणी समान हैं और जीने के इच्छुक है। बडे या उपयोगी जीवो के लिए छोटे प्राणियो के प्राण लूटना और उसे हिंसा भी न मानना, क्या दुहरी भूल नही है ? यदि आवश्यकता है तो उसे उस रूप मे समझो, पर अपनी कमजोरी को सिद्धान्त के आवरण मे ढाकना चिन्तन की स्वस्थता नही है।

"गाधीजी के सामने प्रश्न आया कि बन्दर खेती को नष्ट करते हैं, उन्हें मारें या नही ? उसके उत्तर मे उन्होने कहा—'खेती की सुरक्षा करें, पर मारने का आदेश देने के लिए मेरी आत्मा नही कहती।

"व्यवहार की भूमिका मे आततायी को मारना क्षम्य मान लिया गया है। मनु ने लिखा है—

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।

"मेरा विचार है—आततायी को भी मारने के बजाय उसे सुधारने का प्रयत्न होना चाहिए। सेना, शस्त्र का प्रयोग सुरक्षा के लिए उपयोगी हो सकता है पर आध्यात्मिक भूमिका मे वह ग्राह्य नही है। आध्यात्मिकता का मूल है सयम और व्यवहार की भूमिका का आधार करुणा है। सयम की प्रवृत्ति मे चलनेवाला पाप का बन्धन नही करता। भगवान् महावीर ने कहा है —

जय चर जय चिट्ठे, जय भासे जय सये।
जय भुजतो भासतो, पावकम्म न बन्धइ ॥

"आध्यात्मिक दृष्टि और व्यावहारिक दृष्टि का समिश्रण मत करो। उनको अपनी-अपनी दृष्टि से देखो। वास्तव मे दया का सम्बन्ध हृदय-परिवर्तन से है। कसाई को रुपये देकर बकरे छुडाना उसके व्यापार को बढाना है। हृदय-वृत्ति से उसकी वृत्ति को छुडाना दया है, चाहे वह एक दिन ही क्यो न छोडे। पैसे के बल पर हिंसा छुडानेवाले अपनी सारी सम्पत्ति देकर भी अन्त मे सफल नही होगे।

"दान के दो भेद है—लौकिक और लोकोत्तर। अगुत्तर निकाय मे लौकिक और लोकोत्तर दो भेद है, जिनमे लोकोत्तर प्रशस्त है। समाज का निर्माण परस्पर सापेक्षता को लेकर हुआ है। जहा सापेक्षता होती है वहा परस्पर सहयोग व लेन-देन भी चलता है। दान शब्द भी इसी में से निकला है। आज के चिन्तक कहते है—दान शब्द नही चाहिए। सहयोग, अधिकार या सेवा शब्द हो तो उपयुक्त होगा, क्योकि दान शब्द विकृत हो गया है। शोषण व अन्यायपूर्ण पद्धति से लाखो रुपये कमाते हैं। समाज के भाइयो को भिखारी ठहराकर दान के नाम पर थोडा देकर स्वर्ग की सीट चाहते हैं। यद्यपि दान के साथ दाता का शब्द जुडा रहता है पर नाम की जो आसक्ति बढ गई है वह ठीक नही है।

"आज के विचारक कहते हैं—समाज का सदस्य जब आवश्यकतावश सेवा लेता है तो उसे देने मे सकोच क्यो होता है? बच्चा मा की सेवा

लेकर बडा होता है। माता-पिता के बूढे होने पर जब सेवा देने का समय आए उस समय वह पूछे —'मा-बाप की सेवा करना पाप है या धर्म ?' कितना हास्यास्पद है। बच्चे की तरह माता-पिता यदि उसके जन्म के समय ऐसा सोचते तो बच्चे का क्या होता ?

"व्यवहार-दृष्टि से समाज से सेवा लेकर वापस सेवा न देना न्याय नही है। शोपण के द्वारा सग्रह कर लेते हैं और जहाँ कही देने का प्रसग आता है वहा धर्म की ओट मे अपनी कजूस वृत्ति को पालने का प्रयत्न करते हैं। 'देना धम नही है' वे कुछ सोचने का कष्ट नही करते, क्या सग्रह करना धर्म है ? सग्रह करते समय क्या धर्म और अधम की भावना पैदा हुई ? अधिकाश सग्रह कर जो आवश्यकतावश नही देता है वह व्यवहार मे कर्तव्य से भी च्युत हो जाता है। धर्म की भूमिका कर्तव्य से भी ऊची है। कतव्य पर न चलने वाले धर्म को कैसे पाएगे ?

धर्म और कर्तव्य

"धर्म और कर्तव्य दो है। दोनो की भूमिका अलग-अलग है। कर्तव्य परिवर्तनशील होता है और धर्म अपरिवर्तनीय। कर्तव्य वर्तमानकालिक होता है और धर्म चिरकालिक। एक कतव्य किसी के लिए करणीय होता है और किसी के लिए नही भी। परन्तु धर्म सबके लिए करणीय होता है। कतव्य के नाते मनुष्य झूठ भी बोल लेता है, सग्राम भी कर लेता है, लाखो का खून-खच्चर भी कर लेता है। पर धर्म को वह स्वीकार नही होता। वहा एक व्यक्ति को मारना भी स्वीकृत नही है।

"धूम्रपान का व्यसनी धम के नाम पर अग्नि माँगता है। कोई राम के नाम पर पैसा मागता है, ऐसे अनेक कार्य धर्म के नाम पर चलते हैं। वास्तव मे ये धर्म नहीं हैं। किसी सीमा तक कर्तव्य हो सकते हैं।"

२७ ८ ६२ 'जैन जगत मे 'पर्युपण पर्व' का महत्त्व है। वह सर्वविदित है ही। अन्य प्रान्तो की अपेक्षा मेवाड मे इसका विशेप मूर्त रूप देखने को मिलता है। आस-पास के क्षेत्र मे भाई-बहन चले जाते है, जहा साधु-

साध्वियो का चातुर्मास होता है। इस वर्ष काफी सख्या मे लोग यहा पहुँचे। शायद यात्रियो की सख्या लगभग छ -सात हजार की है। विशाल जनसमुदाय को आचार्यश्री ने पर्युषण के प्रथम दिन सूर्योदय के समय मार्ग-दिशा देते हुए कहा—"भाइयो! ऐसे सुनहले अवसर पर मैं आपको चार बातें कहना चाहता हूँ

१ अधिक-से-अधिक सामायिक करें। मैं नही देखना चाहता कि आप सामायिक न करके बाबू बने बैठे रहे। आवश्यक कार्य के लिए बाहर जाना ही पडता है पर प्रकृति का दृश्य—बाग-बगीचे तथा दर्शनीय स्थलो को देखने के लिए शहर मे चक्कर काटते ही रहें, यह शोभा नही देता। जिस उद्देश्य को लेकर आप यहा आए हैं, धर्म का आचरण कर उसे सफल बनाएँ।

२ स्वाध्याय सतरगी—सामायिक को स्वाध्याय से सफल करें। अपनी ग्रहण-शक्ति के अनुसार तत्त्वो को समझें। उपवास आदि तपस्या मे किसी को कठिनाई हो सकती है पर स्वाध्याय की तपस्या सबके लिए सरल है और आवश्यक भी है।

३ अखण्ड जाप—कम-से-कम आठ भाई और आठ बहने हो व जप के लिये पद्य है—

ॐ जय शान्ति-शान्ति अभिधान, त्रिशलानन्द वीर भगवान।
जिनवाणी का यह सुविधान, अपने से अपना कल्याण॥'
सवत्सरी तक अहर्निश जाप का स्वर गुजित रहना चाहिए।

४ तपस्या सतरगी या पचरगी—तपस्या से आत्म-शोधन होता है। तपस्या के लिए सावन और भादव मास उपयुक्त समय है। अत अपनी शक्ति को छिपाना नही चाहिए। वर्षाकाल मे होनेवाली तपस्या का स्वास्थ्य पर भी अनुकूल प्रभाव पडता है, क्योकि इस समय मे पाचन-शक्ति मन्द रहती है।"

आचार्यश्री का सकेत फलित हुआ। तपस्या प्रारभ हुई, अखण्ड जाप चलने लगा और सामायिक आदि मे भी वृद्धि हो गई। सामायिक आराधना

मे बैठे भाई-बहनो से भरा पडाल देख ऐसा लगता था मानो धर्म मूर्तिमान हो गया है। कही स्वाध्याय चलता है, कही जाप के स्वर सुनाई देते हैं तो कही धार्मिक गीतो के राग से मण्डप गूँज उठता है। दर्शक का मन अनायास इस ओर आकृष्ट हो जाता है।

प्रात कालीन प्रवचन मे आचार्यश्री ने पर्युपण पर्व पर कतिपय सामूहिक प्रत्याख्यानो की ओर श्रावको का ध्यान खीचा और उपस्थित श्रावको का आह्वान किया। प्राय श्रावको ने सामूहिक रूप से उनको ग्रहण किया। कइयो ने यथाशक्ति स्त्रीकार किया। इस अवसर पर भेंरूलालजी पोरवाल, जिनकी आयु तेतालीस वर्ष की है, सपत्नी आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार किया।

दोपहर मे आचार्यश्री द्वारा नवनिर्मित योग-सम्वन्धी ग्रन्थ 'मनोनुशासनम्' का पारायण प्रारम्भ हुआ। ऐसा निणय हुआ कि पर्युषण काल की अवधि मे एक बार उसका वाचन हो जाए।

२८ ८ ६२ मौन और सामायिक दिवस पर आचार्यश्री का विशेप प्रवचन रहा। प्रत्येक भाई और बहन को तीन घटा मौन और कम-से-कम सात सामायिक के लिए प्रेरणा दी। पर्युपण के दिनो मे व्याख्यान प्रतिदिन से एक-डेढ घटे आगे चलता। श्रोताओ की उपस्थिति को देखते हुए यह आवश्यक भी था।

दोपहर मे 'मनोनुशासनम्' वाचन के लिए 'योग-गोष्ठी' हुई। रात को प्राथना के वाद गीतिकाओ का कायक्रम रहा।

२९ ८ ६२ आचायश्री ने अपने प्रवचन मे कहा—'जैन धम व्यापक है और सकीणताओं से परे है। वह उन सवका है, जो आत्म-विजय के पथ पर चलते हैं। प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्ति के लिए साधना का द्वार खुला है। धर्म मे सकीर्णता नही, सकीर्णता व्यक्तियो के दिमाग मे घुस गई है। जव तक दिमाग से सकीर्णता नही हटेगी तव तक जैन धर्म व्यापक नहीं होगा। सकीर्णता को दूर करने का जहाँ भी कार्य चलता है वह प्रशसनीय है। मैंने देखा, स्थानकवासी मुनिश्री सुमेरमलजी खटिक जाति

को मास-मदिरा आदि व्यसनो से मुक्त कर उनमे जैनत्व का सस्कार डाल रहे हैं। उनका यह प्रयास जैन धर्म की व्यापकता का एक निदर्शन है। वर्तमान मे लोग चाहे उनके कार्मों का मूल्य न आकें पर भविष्य उनका मूल्याकन अवश्य करेगा। धर्म को यदि जाति-विशेष की चहारदीवारी मे जकड रखा तो वह जड वन जाएगा और कुछ व्यक्तियो तक रह जाएगा। जैन धर्म के ह्रास के कतिपय कारणो मे जाति-सकीर्णता भी एक कारण है। आशा है जैन लोग दिमाग को खुला रखकर इस ओर ध्यान दंगे।'

दोपहर मे मुनिश्री सम्पतमलजी ने 'भिक्षु विचार-दर्शन' के नौ अध्यायो का सभा मे वाचन किया। इसके अतिरिक्त सैकडो भाइयो ने अपनी योग्यतानुसार व्यक्तिगत स्वाध्याय किया। इसके वाद 'योग-गोष्ठी' चली जिसमे साधु और साध्वियो के अतिरिक्त भाई और वहन भी थे। रात को गीतिका का आयोजन रहा।

३० ८ ६२ आज खाद्यसयम का दिवस था। खाने मे सात द्रव्यो से अधिक उपयोग न करने की वात कुछ कठिनता का अनुभव करा रही थी। फिर भी हजारो व्यक्तियो ने इसे अपनाया। आचार्यश्री ने तो एक दिन ही नही, पर्युषण के सभी दिनो मे सात द्रव्यो मे भोजन किया। द्रव्यो के अल्पीकरण में उनका गहरा विश्वास है। वे कहते है—'चार द्रव्यों से मुझे पर्याप्त शरीर के आवश्यक तत्त्व मिल जाते है। अधिक द्रव्य जीभ की स्वाद-वृत्ति को भले ही तृप्त कर दें पर वे स्वास्थ्य को गिराते ही हैं। अल्प द्रव्यों के भोजन से मुझे शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति का अनुभव होता है।'

दोपहर मे योग-गोष्ठी चली तथा रात को आगम-गोष्ठी मे प्राकृत-शोध-सस्थान, वैशाली के रिसर्च स्कॉलर श्री छगनलाल शास्त्री का 'प्राकृत-भाषा का इतिहास' विषय पर भाषण हुआ।

३१ ८ ६२ प्रात कालीन प्रवचन-सभा मे वीस मिनट का सामूहिक ध्यान हुआ जिसमे सभी साधु-साध्वियाँ उपस्थित थे।

दोपहर मे नए मोड का कार्यक्रम चला। सयोजकीय वक्तव्य श्री धर्मेश पोरवाल ने किया। मुनिश्री सम्पतमलजी (राजगढ) और मुनिश्री

मोहनलालजी ने नये मोड की उपयोगिता पर प्रकाश डाला और उसे सामाजिक जीवन मे लेकर चलने की प्रेरणा दी।

सयोजक श्री गणेश कूकडा ने दो वर्ष के कार्यकाल मे होने वाली प्रगति का लेखा-जोखा सुनाया। अन्त मे आचार्यश्री ने अपना सक्षिप्त भाषण देकर कार्यक्रम को स्थगित कर दिया।

रात को भजन व गीतिकाओ के श्रवण का लाभ उपस्थित जनता को मिला।

१ ६ ६२ प्रवचन-सभा मे भाषण करते हुए जौन साहब ने कहा—"मुझे आप लोगो के बीच आकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है। मैं आचार्यश्री से अपरिचित नही हूँ। मैं हिन्दी नही जानता और बहुत सारे साधु-साध्वी अग्रेजी नही जानते। अत उनके साथ विशेष आलाप-सलाप नही कर पाता, फिर भी उनका मौन मुझमे प्रेरणा भरता रहता है और मैं उनको भली प्रकार समझ जाता हूँ।

"विश्व के इतिहास मे कुछ विशिष्ट कार्य हुआ है, उनमे ऋषि-मुनियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग रहा है। अजन्ता, एलोरा आदि की गुफाओ मे निबद्ध कला सन्यासियो की ही देन है।

"सन्यास अध्यात्म-साधना का उत्कर्ष है। मेरी बडी लडकी भी इस समय साध्वी रूप मे है। आज से चार वर्ष पूर्व इक्कीस वर्ष की अवस्था मे जब वह बी० ए० पास कर चुकी थी मैंने उसे एम० ए० पढने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने कहा—'मैं सोचकर निर्णय करूँगी।' पूरे एक वर्ष के चिन्तन के पश्चात् उसने साध्वी बनने का अपना निर्णय मुझे कहा तो आश्चर्य हुआ। परन्तु उसकी तीव्र अभिलाषा को जानकर मैंने उसे साध्वी बनने की आज्ञा दे दी। आज वह लन्दन मे पूर्ण साध्वी बनने की पूर्व भूमिका मे कार्य कर रही है। जहाँ वह है उस सगठन मे दो प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से चल रही हैं—वृद्ध-सेवा तथा बाल-शिक्षा। मेरी पुत्री बाल-शिक्षा के लिए शिक्षिका के रूप मे है। अभी तक तो उसके व्रत एक-दो वर्ष के लिए ही है। दो वर्ष बाद वह आजीवन साध्वी बन जाएगी।

आज मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे कार्यों मे जो नैतिक बल और दृढ-निष्ठा रहती है वह उसी की प्रवृत्ति का सुफल है। वह अपने लक्ष्य की ओर बढ रही है। साथ-साथ उसके पारिवारिक जन हम सब भी अध्यात्म की ओर अग्रसर हो रहे है। मैं मानता हूँ कि यदि ससार के प्रत्येक परिवार मे एक-एक व्यक्ति इस प्रकार ससार से विरक्त हो आत्म-साधना मे लगे तो नि सदेह ही सारा विश्व आनन्दमय हो सकता है। यही कारण है कि जब मैं कभी साधु-साध्वियो को देखता हूँ तब मुझे ईश्वरीय रूप की स्मृति हो जाती है। मैं वैराग्य मे डूब जाता हूँ और मेरा आत्म-बल सबल हो जाता है।

"आचार्यप्रवर के कार्यो से मैं सुपरिचित हूँ। अणुव्रत-आन्दोलन के माध्यम से वे जो कुछ कर रहे है वह सबके लिए उपादेय है। इस ओर मेरा जितना सहयोग बन सका मैं देने का प्रयास करूगा।"

आचार्यश्री ने कहा—"शिक्षा विभाग मे चारित्रिक व्यक्तियो का रहना अत्यन्त आवश्यक है। जौन साहब विद्वान् ही नही, नैतिक भी हैं। उनकी चरित्र के प्रति श्रद्धा है। एक ओर आज का बुद्धिवाद धर्म के लिए खतरा-सा प्रतीत होता है वहाँ जब ऐसे बुद्धिशील व्यक्तियो को देखते हैं तब कुछ प्रसन्नता होती है। ऐसे व्यक्ति ही पथ-दर्शन कर सकते हैं। आज पथ पर चलनेवालो की कमी नही है, पथ-दर्शको की कमी है। मैं चाहता हूँ कि शिक्षा के क्षेत्र मे भी चारित्रिक विकास हो। विद्यार्थी भावी जगत् के स्रष्टा हैं, उनमे चारित्रिक मूल्यो का प्रतिष्ठान मूलभूत कार्य है।

सम्पूर्णानन्दजी ने धवल समारोह पर मुझे एक सुझाव दिया था कि मैं अपना अधिक समय शिक्षित और बौद्धिक लोगो मे बिताऊँ, साधारण जन-समाज मे नही। इस सुझाव की भावना बोलती है कि शिक्षित समाज को चारित्रिक बनाने की अनिवार्य आवश्यकता है।

अनैतिक वातावरण के प्रति अणुव्रत-आन्दोलन ने आवाज उठाई और आज वह देश के कोने-कोने मे गूँज रही है। मैं चाहता हूँ वह आवाज शब्दो तक ही सीमित न रहे। प्रत्येक क्षेत्र मे वह प्रतिबिम्बित हो।

अणुव्रत-आन्दोलन ने देश के लाखो विद्यार्थियो को आकृष्ट किया है और आज भी वह इस क्षेत्र मे कार्यरत है। जौन साहब जबकि इसी विभाग मे एक वरिष्ठ अधिकारी के रूप मे जा रहे हैं, तो क्या वे विद्यार्थियो तथा शिक्षा विभाग के छोटे-बडे कर्मचारियो के चारित्रिक उत्थान के लिए कुछ नही करेंगे ? उनमे तडप है। मैं आशा करता हूँ कि वे नैतिक उत्थान मे कुछ सहायक बन सकेंगे।"

व्याख्यान के पश्चात् जौन साहब ने कुछ समय तक आचार्यप्रवर से वार्तालाप किया और अन्तिम विदाई लेते हुए 'मगल-पाठ' सुना।

मध्याह्न मे नए मोड की स्थगित बैठक प्रारम्भ हुई। श्री गणेश कूकडा ने नियमो का वाचन किया और उस पर सुझाव मागे। लिखित सुझावों को पढकर सुनाया गया। अन्त मे आचार्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ।

दोपहर मे 'मनोनुशासनम्' का वाचन हुआ और रात को प्रार्थना के बाद मुनिश्री नथमल का 'जैन-दर्शन की विश्व को देन' विषय पर प्रवचन हुआ।

२ ६ ६२ अणुव्रत प्रेरणा दिवस पर बोलते हुए साध्वीश्री यशोधरा-जी ने कहा—"मनुष्य वाह्य पदार्थों मे शाति खोजता है इसलिए उसे शाति नही मिल रही है। दृष्टि अन्तर्मुखी बनने से व्यक्ति अधिक सग्रह और पर-अधिकारो को हडपने का प्रयत्न नही करेगा। अपनी आवश्यकता को सीमित कर वैयक्तिक समस्याओ का समाधान स्वय पालेगा।

अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री सुगनचन्द आचलिया ने कहा —"अणुव्रत आन्दोलन जीवन को सयमित बनाने की एक सरल और उपयोगी प्रक्रिया है।"

इसके बाद प्रो० भैरूलालजी धाकड ने जैन-दर्शन तत्त्वज्ञान की परीक्षा मे उत्तीर्ण उदयपुर के परीक्षार्थियो के प्रमाण-पत्र वितरित किए। अन्त मे आचार्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ।

चिन्तन चल रहा था कि अणुव्रत अधिवेशन मे रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ की एक बैठक होनी चाहिए। उसी प्रसग मे समाज के कर्मठ सेवी भाई

देवेन्द्र कर्णावट ने सर्वोदयी नेता श्री गोकुलभाई भट्ट से सम्पर्क किया। उन्होने कहा कि आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे बैठकर ही विस्तृत निर्णय लें। दोपहर मे डेढ वजे श्री गोकुलभाई भट्ट, राजस्थान प्रादेशिक समग्र सेवा सघ के मत्री श्री वद्रीप्रसाद और प्राकृतिक चिकित्सक श्री सरदारमल जैन, अणुव्रत अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष श्री हीरालाल कोठारी, अणुव्रत अधिवेशन के सयोजक श्री देवेन्द्र कर्णावट, श्री छगनलाल आदि आचार्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए। औपचारिक वार्तालाप के वाद श्री गोकुलभाई ने कार्यकर्त्ताओ की बैठक की चर्चा चलाई। भावात्मक एकता का एक सप्ताह २ से ६ अक्टूवर तक चल रहा है। यदि उस दिन कार्यकर्त्ताओ का सम्मेलन हो तो उससे सम्वन्धित भी हो जाए।

आचार्यश्री—६, ७, ८ अक्टूवर तक अणुव्रत-अधिवेशन चलने वाला है। उस समय उसके कार्यक्रम मे व्यस्त रहेगे। ६ ता० को होने से अधिवेशन के साथ सम्वन्ध जुड जाएगा।

श्री वद्रीप्रसाद—यह अच्छा ही रहेगा कि हमे आपका सान्निध्य भी मिल जाएगा।

गोकुलभाई ने कहा—अणु-परीक्षण के विरोध मे वर्ट्रेंड रसेल आवाज उठा रहे है। शाति मे विश्वास रखने वालो को उनकी आवाज मे आवाज मिलाकर उसे सवल वनाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शातिसेना का कार्यालय लन्दन मे है। वर्ट्रेंड रसेल, जयप्रकाशजी, सिद्धराजजी डड्ढा भी उसके सदस्य है। उसकी एक शाखा वनारस मे भी है। ६ सितम्वर को एक विश्वव्यापी कार्यक्रम हो रहा है। इस दिन प्रत्येक व्यक्ति आधे दिन भोजन न करके, कुछ आर्थिक सहायता शान्ति सगठन को दे। उस दिन प्रदर्शन और सभाए भी होनी चाहिए। मैं चाहता हू उदयपुर मे भी आपके सान्निध्य मे एक सभा हो जिसमे सभी साधु भाग लें और अहिंसा के विषय मे दो शब्द कहे।

आचार्यश्री—अहिंसक सघ परस्पर मे सगठित होना तो दूर, परस्पर

मिलना भी नही चाहते । उपासना का तत्त्व अपना-अपना रखते हुए भी अहिंसा मे एकमत होना नही चाहते । इसीलिए अणुव्रत आन्दोलन मे अणुव्रत के लिए एक नियम रखा है कि 'मैं सव धर्मो के प्रति तितिक्षा के भाव रखूगा'। इससे एक दूसरे के निकट आता है। अहिंसक सगठन का यह पहला सोपान है। आचार्यश्री ने बताया कि ६,७,८ अक्टूबर को अणुव्रत अधिवेशन हो रहा है। जयप्रकाशजी कुछ महीने पहले धवल समारोह पर आए थे। उनसे वात हुई थी। यदि व्यस्तता न रही तो सम्भव है वे इसमे भाग लेंगे। विचार-विमश से परस्पर विचारो को वल मिलता है। कम से कम एक-दूसरे के विचारो से अवगत तो होते ही है।

वद्रीप्रसादजी ने कहा—विनोवाजी भी यही कहते हैं कि अहिंसा मे आस्था रखने वालो को सर्वोदयी परिवार मान लो।

आचार्यश्री—आस्था की सीमा क्या रहेगी ?

गोकुलभाई—कोई मूर्त रूप होना चाहिए।

आचार्यश्री—अहिंसा मे आस्थावान रहने का मार्ग है—अहिंसा अणुव्रत अपनाना।

१ जातीयता के कारण किसी को अस्पृश्य मान घृणा नहीं करूगा।

२ सव धर्मो के प्रति तितिक्षा के भाव रखूगा।

इससे अहिंसा का मूर्त रूप सामने आ जाएगा।

गोकुलभाई—अव आवश्यकता है अहिंसा के सव पुजारी एक जगह इकट्ठे हो जाए।

आचार्यश्री—मैंने इन दस वर्षो मे वहुत लम्वी यात्रा की है। अपने दिमाग को खुला रखा है। अनेक विचारको से मिलने का अवसर मिला है। अपने विचार दिए है और उनके लिए भी हैं।

गोकुलभाई—जितने आप व्यापक वनेंगे, उतना ही आनन्द मिलेगा। आपका दिमाग खुला है, इसलिए आप खुले मे वैठे हैं और आपकी वात हवा ले जाती है (सव हँसने लगे)।

आचार्यश्री—हमारे दो कार्य प्रमुख है—एक प्रचारात्मक है, दूसरा अनुसधानात्मक है, जिसमे साधु आगमो का अनुवाद, टिप्पण आदि कार्य करते है।

गोकुलभाई—सर्वोदय सघ ने भी साहित्य की वहुत सेवा की है।

आचार्यश्री—आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारा साहित्य भी व्यापक है। जन-भोग्य है। एक सम्प्रदाय मे रहते हुए भी हमने सकुचित दृष्टि को स्थान नही दिया, व्यापकता लेकर चले है।

गोकुलभाई—आपका प्रचार कम नही है।

आचार्यश्री—हमारा प्रचार सहज हो जाता है। साधु-साध्वियो के सौ से अधिक ग्रुप है। वे पैदल घूमते है। हमारे मुख्य कार्यकर्त्ता हैं साधु-साध्वी और विनोबाजी के पास सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं।

गोकुलभाई—साधु और गृहस्थ मिलकर कार्य करें तो अभाव मिट जाएगा और कार्य को वल मिलेगा। इसीलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि ता० ९ को सफल वनाए।

आचार्यश्री—यदि इसकी एक वैठक ८ ता० की शाम को हो और ता० ९ को उसका पूरा कार्यक्रम रहे तो उपयुक्त रहेगा। अन्त मे वैठक इसी निर्णय को लेकर उठी कि उस दिन अणुव्रत-आन्दोलन और सर्वोदय के कार्यकर्त्ता मिलकर एक मार्ग निश्चित करें और अन्य सस्थाओ के कार्यकर्त्ताओ को आमत्रित कर उनका सहयोग भी स्वीकार करें।

रात को आचार्यश्री के सान्निध्य मे चिन्तन-गोष्ठी चली। चिन्तन का विषय था—'सवत्सरी पर्व के कार्यक्रम'। मुनिश्री नथमलजी ने कहा—'अन्य धर्मो मे कम से कम एक दिन ऐसा होता है जो उनकी सस्कृति का प्रतीक हो। मुसलमानो मे सामूहिक नमाज़ पढी जाती है। ईसाई लाग सामूहिक प्रार्थना करते हैं। हमारे यहा भी एक दिन ऐसा कार्यक्रम होना चाहिए जो अनुशासन का परिचायक हो।' अन्त मे अस्थायी रूप मे यही निर्णय हुआ कि सूत्रो की गाथाओ व पद्यो का उच्चारण होना चाहिए। उसकी व्यवस्थित रूपरेखा वाद मे निर्णीत होने की सम्भावना है।

आचार्यश्री ने यह भी चाहा कि व्यारयान वहुत लम्वा चलता है। साधु-सतियो मे व्याख्यान की प्रतियोगिता-सी लग जाती है। सव आगे चलना चाहते हैं। शरीर की भी वहा उपेक्षा हो जाती है। इसलिए आवश्यक है कि पहले केन्द्र मे (यहा पर) व्याख्यान की अवधि को कम करें।

तीसरा निर्णय था कि आज के दिन अन्य प्रकरणो की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्य अधिक सामने आने चाहिए।

३ ९ ६२ 'सम्वत्सरी पर्व' जैन जगत् मे पर्वाधिराज कहलाता है। व्यवहार जगत् मे जैनत्व की पहचान के लिए यह कसौटी है। जैन कहलाकर यदि सम्वत्सरी के दिन धार्मिक क्रिया मे भाग नही लेता तो समझना चाहिए वह नाम मात्र का जैन है।

आचायश्री लगभग नौ वजे प्रवचन-पण्डाल मे पधारे। उससे पूव मुनिश्री सम्पतमलजी ने आधा घटा भापण दिया। सर्वप्रथम सास्कृतिक कार्यक्रम रहा। पहले आचार्यश्री ने सूत्रपाठो का उच्चारण किया, फिर उपस्थित भाई-वहनो ने उसे दोहराया—

नवकार मन्त्र, लोगस्स, नमोत्थुण, खामेमि सव्वजीवे

मन्त्रोच्चारण से नीरवता छा गई थी। तदनन्तर आचार्यश्री ने पर्युपण पर्व का इतिहास वताते हुए कहा—'आज का दिन मानव मर्यादा का दिन है। इससे पहले मनुष्य मासभोगी थे। उस समय का वातावरण ही ऐसा था। समय के परिवतन के साथ ही मानव के विचारो मे परिवर्तन आता है और वह मास को अभक्ष्य मानकर छोडता है और अपनी खाद्य-सामग्री का चुनाव करता है। उसके खान-पान, रहन-सहन और विचारो मे उच्चता आती है। मानव की सम्कृति प्रकाश मे आती है। इसलिए आज का दिन मानव सस्कृति का आदि-दिन है और महत्त्वपूर्ण है। कोई इसे सम्वत्सरी कहते हैं और कोई इसे ऋपि-पचमी कहते है।

पर्युपण से प्रेरणा मिलती है कि वहिर्मुखता से अन्तर्मुखी वनें। जैन लोगो के लिए आवश्यक है कि वे प्रतिक्रमण करें। इससे मन मे स्थिरता

आचार्यश्री—हमारे दो कार्य प्रमुख है—एक प्रचारात्मक है, दूसरा अनुसधानात्मक है, जिसमे साधु आगमो का अनुवाद, टिप्पण आदि काय करते है।

गोकुलभाई—सर्वोदय सघ ने भी साहित्य की वहुत सेवा की है।

आचार्यश्री—आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारा साहित्य भी व्यापक है। जन-भोग्य है। एक सम्प्रदाय मे रहते हुए भी हमने सकुचित दृष्टि को स्थान नही दिया, व्यापकता लेकर चले हैं।

गोकुलभाई—आपका प्रचार कम नही है।

आचार्यश्री—हमारा प्रचार सहज हो जाता है। साधु-साध्वियो के सौ से अधिक ग्रुप है। वे पैदल घूमते है। हमारे मुख्य कार्यकर्त्ता हैं साधु-साध्वी और विनोवाजी के पास सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं।

गोकुलभाई—साधु और गृहस्थ मिलकर कार्य करें तो अभाव मिट जाएगा और कार्य को वल मिलेगा। इसीलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि ता० ९ को सफल वनाए।

आचार्यश्री—यदि इसकी एक वैठक ८ ता० की शाम को हो और ता० ९ को उसका पूरा कार्यक्रम रहे तो उपयुक्त रहेगा। अन्त मे वैठक इसी निर्णय को लेकर उठी कि उस दिन अणुव्रत-आन्दोलन और सर्वोदय के कार्यकर्त्ता मिलकर एक मार्ग निश्चित करें और अन्य सस्थाओ के कार्यकर्त्ताओ को आमन्त्रित कर उनका सहयोग भी स्वीकार करें।

रात को आचार्यश्री के सान्निध्य मे चिन्तन-गोष्ठी चली। चिन्तन का विषय था—'सवत्सरी पर्व के कार्यक्रम'। मुनिश्री नथमलजी ने कहा—'अन्य धर्मो मे कम से कम एक दिन ऐसा होता है जो उनकी सस्कृति का प्रतीक हो। मुसलमानो मे सामूहिक नमाज पढी जाती है। ईसाई लाग सामूहिक प्रार्थना करते हैं। हमारे यहा भी एक दिन ऐसा कार्यक्रम होना चाहिए जो अनुशासन का परिचायक हो।' अन्त मे अस्थायी रूप से यही निर्णय हुआ कि सूत्रो की गाथाओ व पद्यो का उच्चारण होना चाहिए। उसकी व्यवस्थित रूपरेखा वाद मे निर्णीत होने की सम्भावना है।

आचार्यश्री ने यह भी चाहा कि व्याख्यान बहुत लम्बा चलता है। साधु-सतियो मे व्याख्यान की प्रतियोगिता-सी लग जाती है। सब आगे चलना चाहते है। शरीर की भी वहा उपेक्षा हो जाती है। इसलिए आवश्यक है कि पहले केन्द्र मे (यहा पर) व्याख्यान की अवधि को कम करें।

तीसरा निर्णय था कि आज के दिन अन्य प्रकरणो की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्य अधिक सामने आने चाहिए।

३ ६ ६२ 'सम्वत्सरी पर्व' जैन जगत मे पर्वाधिराज कहलाता है। व्यवहार जगत मे जैनत्व की पहचान के लिए यह कसौटी है। जैन कहलाकर यदि सम्वत्सरी के दिन धार्मिक क्रिया मे भाग नही लेता तो समझना चाहिए वह नाम मात्र का जैन है।

आचार्यश्री लगभग नौ बजे प्रवचन-पण्डाल मे पधारे। उससे पूर्व मुनिश्री सम्पतमलजी ने आधा घटा भाषण दिया। सर्वप्रथम सास्कृतिक कार्यक्रम रहा। पहले आचार्यश्री ने सूत्रपाठो का उच्चारण किया, फिर उपस्थित भाई-बहनो ने उसे दोहराया—

नवकार मन्त्र, लोगस्स, नमोत्थुण, खामेमि सव्वजीवे

मन्त्रोच्चारण से नीरवता छा गई थी। तदनन्तर आचार्यश्री ने पर्युषण पर्व का इतिहास बताते हुए कहा—'आज का दिन मानव-मर्यादा का दिन है। इससे पहले मनुष्य मासभोगी थे। उस समय का वातावरण ही ऐसा था। समय के परिवर्तन के साथ ही मानव के विचारो मे परिवर्तन आता है और वह मास को अभक्ष्य मानकर छोडता है और अपनी खाद्य-सामग्री का चुनाव करता है। उसके खान-पान, रहन-सहन और विचारो मे उच्चता आती है। मानव की सस्कृति प्रकाश मे आती है। इसलिए आज का दिन मानव सस्कृति का आदि-दिन है और महत्त्वपूर्ण है। कोई इसे सम्वत्सरी कहते हैं और कोई इसे ऋषि-पचमी कहते हैं।

पर्युषण से प्रेरणा मिलती है कि बहिर्मुखता से अन्तर्मुखी बनें। जैन लोगो के लिए आवश्यक है कि वे प्रतिक्रमण करें। इससे मन मे स्थिरता

आती है। प्रतिक्रमण मे सभी जीवो से क्षमत-क्षमापना करें। किसी के साथ दुर्व्यवहार या वोलचाल हुई हो तो उससे क्षमा मागकर नदीस्नात की तरह हल्के हो जाए। यह मानना कि मुझमे भूल नही होती, निरा अह है। वडे-वडे साधको से भी भूलें हो सकती है, वहा साधारण व्यक्ति की कौन-सी गणना है ? अपनी भूलो को जानकर स्वीकार न करना और उसमे सशोधन न करना झूठा आग्रह है।

आगे 'सन्त परम्परा' पर वोलते हुए आपने कहा—जैनो मे अनेक परम्पराए व सघ हैं। सवका अपना-अपना स्थान है। इतने विशाल इतिहास को मैं अल्प समय मे कैसे कह सकता हू।

तेरापथ जैन धर्म का अन्तिम सम्प्रदाय है। आचार्य भिक्षु ने सघ-व्यवस्था मे अपना-अपना शिष्य न वनाने का जो विधान किया, सचमुच मे वह उसे दीर्घजीवी वनाता है। उसकी गहरी नीव का आधार कतिपय वे धाराए ही हैं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय मे लाखो श्रावक व साधु हैं। अपेक्षा है वे सगठन को दृढ करें।

मूर्तिपूजक सम्प्रदाय की साहित्य-सेवा उल्लेखनीय है। कहना चाहिए, उन्होंने जैन साहित्य को जीवित रखा है। यतियो के प्रयत्न के विना आज साहित्य देखने को शायद ही मिलता। यति परम्परा मे अनेक विद्वान हुए है। हेमचन्द्राचार्य की ८४ लेखनी चालती थी, उन्होंने करोडो पद्यो की रचना की, कई राजाओ को धार्मिक वनाया। हरिभद्र ने १४४४ ग्रन्थ रचकर साहित्य जगत् को अमूल्य देन दी है। वादिदेव सूरि, मानतुग आचार्य आदि जैनाचार्यो ने जो साहित्य की सेवा की है वह भुलाई नही जा सकती। जिस प्रान्त मे वे गए उसी भाषा मे साहित्य की वृद्धि की। कन्नड भाषा के आदियुग मे जैन साहित्य इतना समृद्ध है कि उसे अलग करने पर उस भाषा का आकर्षण ही समाप्त हो जाता है।

मन्दिर और मूर्तिया भी किसी-न-किसी रूप मे सस्कृति की सुरक्षा के निमित्त बने हैं। प्राचीन स्तूप, प्राचीन मन्दिर और प्राचीन स्थानो मे

सस्कृति को वल मिलता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय ने भी अनेक विद्वानो को पैदा किया है। हजारो ग्रन्थो का सृजन हुआ है। साहित्य की साधना मे हाथ वटाया है। आज आवश्यकता है कि भेदो को भेद मानते हुए भी उसको विवाद का रूप न दें। विचार-भेदो मे भी समन्वय खोजें और जैनत्व के विकास मे एक लक्ष्य होकर चलें।

पहली बैठक साढे आठ से साढे ग्यारह वजे तक चली। पन्द्रह मिनट तक जाप के पद्यो का घुन किया गया। सव धुन मे एकरस हो रहे थे। दूसरी बैठक फिर दो वजे प्रारम्भ हुई और साढे चार वजे तक चली। सवसे पहले मुनिश्री सुमेरमलजी, मधुकरजी और रूपचन्द्रजी ने आचार्यश्री द्वारा रचित गीतिका गायी। साध्वीश्री स्नेहकुमारीजी ने चन्दनवाला पर विचार व्यक्त किया। तदनन्तर मुनिश्री नथमलजी ने चण्डकौशिक घटना के साथ विचार दिये। नाथद्वारा के भाइयो ने माघ-महोत्सव की प्राथना की। मुनिश्री दुलहराजजी ने आगम साहित्य पर प्रकाश डाला। अन्त मे सघ-गान के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

आचार्यश्री ने कहा—हम जिस विश्वास को लेकर चले थे कि दोपहर के कार्यक्रम मे वच्चो का शोरगुल मिट जाएगा, शाति से उपस्थित जनता साधुओ के विचारों को ले पाएगी, लेकिन वच्चे पीछे नही रहे, शोरगुल से वैसा आनन्द नही आया जैसी कल्पना थी।

४ ९ ६२ आज क्षमापना दिवस था। इसके लिए दो सुझाव आ रहे थे। एक विचार था—इसे दोपहर मे मनाया जाय, दूसरा विचार था—पारणा से पहले यानी सूर्योदय के साथ ही। आचार्यश्री ने निर्णय दिया—क्षमायाचना अन्त करण से यद्यपि रात्रिकालीन प्रतिक्रमण के समय की थी पर उसका व्यावहारिक रूप भी प्रेरणादायी होता है। इसलिए वह यदि खाली पेट रहे तो उपयुक्त ही है।

निर्णय के अनुसार सूर्योदय के वाद कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। श्री छगनलाल शास्त्री, जनप्रिय श्री हीरालाल कोठारी और समाज-सेवी

श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट ने क्षमायाचना पर अपने-अपने विचार दिए।

अन्त मे आचार्यश्री ने क्षमा का अर्थ बताकर उसकी विधि बताई और उसे जीवन-व्यवहारो मे प्रयोग करके भी दिखाया। उदयपुर जैन समाज के कई प्रमुख भाई चाहते थे कि पर्युषण पर्व के बाद 'क्षमा-याचना दिवस' सामूहिक रूप से मनाया जाए। उन्होने प्रयास किया पर विभिन्न साधु समुदाय को स्वीकृत न होने से वह सफल नही बन सका।

दोपहर मे आचार्यश्री की प्रेरणा से लगभग छह सौ भाई अन्य सम्प्रदायो के आचार्य व सन्तो से क्षमायाचना करने चले। सबसे पहले वे स्थानकवासी आचार्यश्री गणेशीलालजी के पास गए। उनसे क्षमत-क्षमापन कर वापस आ गए। फिर मूर्तिपूजक साधु श्री कान्तिसागरजी के पास गए। दोनो स्थानो पर वातावरण बडा सुन्दर रहा, परस्पर प्रेम बढा। शहर मे भी वायुमडल शुद्ध बना।

४ ६ ६२ सम्वत्सरी के उपवास का पारणा कर मैं शौच गया। सुबह क्षमा-याचना का आयोजन होने से देर हो गई थी, धूप चढ गई थी। वापस आते-आते थक गया था। इसलिए गुलाब बाग मे वृक्ष की छाया मे बैठ गया। पाच-दस मिनट बाद आचार्यश्री भी शौच से वापस लौटे। थकान उन्हे भी सता रही थी। उसी वृक्ष के नीचे चबूतरे पर बैठ गए। मुनि मधुकरजी ने मेरे लिए कहा—शौच मे बहुत कम समय लगता है। मैंने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा—'माल से जगात भारी पडती है।' दो मिनट के कार्य के लिए तीन मील आना-जाना पडता है, डेढ घटा समय खा जाता है।

आचार्यश्री ने यथार्थता का प्रकाश देते हुए कहा—वह समय अनावश्यक नही जाता। इतनी दूर जाना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। जो इस प्रकार समय को आवश्यक मान नही घूमते, दिनभर कार्य मे फसे रहते है, वे अपने स्वास्थ्य को खोकर सदा रोग मे बैठे रहते हैं। 'एक हवा सौ रोगो की दवा।' मैंने उसी समय स्वीकार किया। सत्सगति का एक क्षण भी जीवन और विचारो मे परिवर्तन ला देता है। ७ सितम्बर को

आचार्य कालू स्मृति-दिवस पर आचार्यश्री ने अपनी श्रद्धाजलि समर्पित की। अपने गुरुदेव के सस्मरणो को सुनाते-सुनाते उनका अन्तर्हृदय खुल गया। अतीत वर्तमान मे उतर आया था। उस समय ऐसा लग रहा था मानो ये घटनाए साक्षात् घट रही है। सस्मरणो की मधुरता मे मग्न अपने को खो रहे थे। श्रोताओ की आखें आसुओ से छलछला गई। अन्तर्हृदय की आवाज़ मे सहजता होती है, इसलिए श्रोता उसमे एकरस हो सुध-बुध भूल जाते हैं। यह साक्षात् देखने को मिला।

जैन गजट के सम्पादक श्री अजितप्रसाद जैन के परिवार के सदस्य श्री सुमतिप्रसाद (भूतपूर्व जिलाधीश, मथुरा) ने उत्तरप्रदेश से आकर दर्शन किए।

७ ९ ६२ आचार्यश्री तुलसी के नाम एक कार्ड आया। देनेवाली थी उदयपुर की जनता। जनता मे कितने व्यक्ति थे यह कहना कठिन है। पर सम्भव है दो-चार व्यक्ति होंगे। उन्होने लिखा—आप इस वर्ष यहा आए हैं इसलिए वर्षा नही हो रही है। क्या आप वर्षा से नाराज हैं? यदि नही तो आपने वर्षा को क्यो रोका? क्या इसीलिए कि अपने 'पर्युषण' मे बाधा न पड जाए। इधर देखें, जनता मे कितना असन्तोष है। आप जनता का हित चाहते है तो इन्द्रदेव को प्रसन्न करिए, नही तो जनता आलोचना करेगी।

समग्र यही सुनने को मिला कि तेरापथियो ने वर्षा को रोक रखा है। यह जनश्रुति इस वर्ष ही सुनने को नही मिली। इसके पीछे कई वर्षो की परम्परा है। पर रहस्य क्या है समझ मे नही आया। कुछ भी हो यह तो सत्य है कि वे आचार्यश्री मे ऐसी शक्ति का दर्शन करते है जो इन्द्र और प्रकृति पर भी नियन्त्रण कर सकती है।

अखिल भारतीय जनसघ के मन्त्री श्री सूरजसिंह भडारी सम्पर्क मे आए। वकालत को छोड इन्होंने अपना जीवन जनसेवा मे लगा रखा है। वार्तालाप के प्रसग मे उन्होने कहा—जो धर्म दुनिया को आश्रय देता था, आज वही समाज से आश्रय माग रहा है इसलिए धर्म मे उतना वर्चस्व

नही रहा।

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—धर्म मे तेजस्विता है पर उसके उपासकों ने उसके रूप को सामने नही रखा। अगारे पर कजली आ गई है। हमारा प्रयास है उसको हटाकर शुद्ध रूप प्रकाश मे लाए। अणुव्रत आन्दोलन इस ओर प्रयत्नशील है। अध्यात्म की ओर चिंतको का ध्यान मुडा है। इसलिए धर्म और अध्यात्म की चर्चा जन-जन के मुख पर है।

८ ६ ६२ आज आचार्यश्री के आचार्य पट्टारोहण दिवस पर चतुर्विध सघ उन्हे श्रद्धाजलि के रूप मे वधाई देने को उत्सुक है। सघ को प्रसन्नता है कि उसे इस युग मे एक ऐसा युगपुरुष और कुशल अनुशासक मिला है, जिसने तेरापथ को ही नही, जैन समाज को आगे ला दिया। कहना चाहिए कि धर्म और अध्यात्म को प्राणवान बना दिया है। ऐसे आचार्य को श्रद्धा देते किसे प्रसन्नता नही होती? प्रातकाल शिक्षण सस्था की बहनो ने मगलगान के द्वारा सबसे पहले वधाई दी।

साढे आठ बजे श्रद्धाजलि-समर्पण की पहली बैठक प्रारम्भ हुई। श्री छगनलाल शास्त्री ने सयोजकीय भाषण मे श्रद्धा के पुष्प चढाए। उसके बाद चतुर्विध सघ ने पचाग वन्दना की मुद्रा मे बैठकर आर्षवाणी के द्वारा आचार्यश्री को उपमित किया। वे पद्य निम्न है—

जहाहियग्गी जलण नमसे, नाणाहुइ मत पयाभिसित्त।
एवायरिय उवचिट्ठएज्जा, अणतनाणोवगओ वि सतो।
जस्सतिए धम्म-पयाइ सिक्खे, तस्सतिए वेणइय पउजे।
सक्कारए सिरसा पजलीओ, कायग्गिरा भो मणसा य निच्च।
जहा निसते तवणच्चिमाली, पभासइ केवल-भारह तु।
एवायरिओ सुय-सीलबुद्धिए, विरायई सुरमज्झे व इदो।
जहा ससी कोमुइजोगजुत्तो, नक्खत्त-तारागण-परिवुडप्पा।
खे सोहई विमले अब्भ-मुक्के, एव गणी सोहइ भिक्खु-मज्झे।
जे माणिया सयय माणयति, जत्तेण कन्न व निवेसयति।
ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइदिए सच्चरये स पुज्जो।

निद्देस-वत्ती पुण जे गुरुण, सुयत्थ धम्मा विणयम्मि कोविया ।
तरित्तु ते ओहमिण दुरुत्तर रावित्तु कम्म गइमुत्तम गय ।
लज्जा दया सजम बभचेर, कल्लाण-भागिस्स विसोहिठाण ।
जे मे गुरु सययमणुसासयति, ते ह गुरु सयय पूययामि ।

आज साधुओ मे सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी, नथमलजी, मधुकर जी, रूपचन्दजी और विमलकुमारजी, साध्वियो मे मजुलाजी, कमनश्री जी, सरोजकुमारीजी, यशोधराजी, भाइयो मे आयुर्वेद कॉलेज के प्रिंसिपल श्री श्यामसुन्दर व बहनो मे पुष्पलता धाकड ने वक्ता के रूप मे भाग लिया ।

इस अवसर पर साधु-साध्वियो का त्रैमासिक शोधपत्र 'एषणा' (वर्ष २ अक १) मुनिश्री मधुकर ने आचार्यश्री के चरणो मे उपहृत किया। पत्र का जन्म गत वर्ष आचार्यश्री के पट्टारोहण दिवस पर ही हुआ था। इसलिए पत्र ने अपनी वर्षगाँठ के उपलक्ष्य मे युगपुरुष को शोध लेखो का सग्रह समर्पित किया ।

अन्त मे आचार्यश्री ने मौन खोलते हुए कहा—प्रशशा सुनते-सुनते मैं थक जाता हूँ । न चाहने पर भी सुनना पडना है। वह इसलिए कि इसी बहाने मुझे साधु-साध्वियो के वर्ष भर की प्रगति के अकन का अवसर मिल जाता है कि गत वर्ष से कुछ आगे बढे हैं या वही खडे है ।श्रद्धा व प्रशसा लेकर मैं प्रसन्न नही होता अपितु भारी बन जाता हूँ । मेरा चिन्तन चलता है—इतने लोग मुझ पर आस्था व विश्वास को टिकाए हुए हैं तो मुझे भी उनको जीवन-विकास का मार्ग दिखाना चाहिए ।

अन्त मे आपने इस अवसर पर चार कामनाए की

१ आगम कार्य चल रहा है, वह प्रगतिशील बने ।

२ त्रैमासिक शोधपत्र 'एषणा' साधु-साध्वी वर्ग मे नये-नये लेखक-लेखिकाओं को पैदा करे। जो है उनमे परिपक्वता आए और वे नये-नये तथ्यो का उद्घाटन करें ।

३ यात्रा, प्रचार आदि व्यस्तता के कारण शिक्षा की गति मे कुछ

शिथिलता आयी है, वह वेगवती बनकर कमी को पूर्ण करे।

४ मैं एक ऐसा वर्ग चाहता हूँ जो साधु और श्रावक के बीच की कड़ी बन सके। वह संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञाता होना चाहिए, जो प्रतिपाद्य तथ्यों को जनता तक पहुँचा सके।

यात्रा के विषय मे संकेत देते हुए आपने कहा—मैं मानता हूँ कि यात्रा से आगम कार्य की गति मे वेग नही रहता, पर किसी दृष्टि से वह भी आवश्यक है। देश, काल और क्षेत्र की अनुकूलता मे मैंने दक्षिण भारत की यात्रा के लिए पहले कहा था। मैं चाहता हूँ इसके लिए भी निर्णयात्मक चिन्तन करना चाहिए।

दोपहर मे गंगापुरवासियो ने महोत्सव के लिए बलवती प्रार्थना की।

९ ९ ६२ गत दिवस के 'श्रद्धाजलि समारोह' की दूसरी बैठक नौ बजे प्रारम्भ हुई। मुनिश्री चन्द्र, साध्वी प्रमुखा श्री लाडाजी, जयश्रीजी, रत्नश्रीजी, कनकप्रभा आदि ने अपनी हृदय भरी भावना श्रीचरणो मे समर्पित कर चिरजीव बनने की कामना की। संयोजन धर्मेश पोरवाल ने किया।

दोपहर मे 'आचार्यश्री तुलसी' विषय पर विद्यार्थियो मे निबन्ध-प्रतियोगिता का कार्यक्रम रहा, जिसमे आठ-दस लडको ने भाग लिया। निबन्ध-निरीक्षक थे—प्रो० भैरूलालजी धाकड़।

१० ९ ६२ वह साधु वेश मे था। मानस का सरल था। साधना के भाव लेकर चल रहा था। कई वर्ष चलने पर वह थक भी गया था। आचार्यश्री को देखते ही वह प्रसन्न हो गया, क्योंकि वह अनुभवी संत की खोज मे था। अपने संशय का भार उतारकर वह विश्राम लेना चाहता था। पास आकर पूछने लगा—'क्या आप मेरे प्रश्नो का उत्तर देंगे?'

आचार्यश्री—क्यो नही, आप चाहेंगे तो?

सन्यासी—बहुत वर्ष हो गए राम की रट लगाते-लगाते। इनको कब तक जपता रहूँ? किसान खेती करता है, गेहूँ, जौ, मक्का बोता है।

फिर उसको पानी देता है। किसी धान को इतनी वार और किसी को इतनी बार। अन्त मे वे धान्य पक जाते है। पर मेरी खेती अभी तक नही पकी। इतने वष तक जाप किया। अव तो जाप का काल समाप्त होना चाहिए। खेती की तरह इसकी भी तो अवधि होनी चाहिए। क्या जीवन भर ही इसे रटता रहूँगा?

प्रश्न से सहज प्रकट होता है, सन्यासी का मानस कितना सरल था। अपनी कमजोरी कहते उसे तनिक भी सकोच नही हुआ।

आचार्यश्री ने समाधान मे प्रश्न पूछा—साधु का वेश लिया है, भिक्षा मागकर खाते हो, राम नाम का जाप भी करते हो, पर यह तो वताओ कि गुस्से को मारा या नही मारा? कामना मिटी या नही? अभिमान आता है या नही? वचना करते हो या नही?

सन्यासी ने सरलता से उत्तर दिया—ये तो अभी तक नही मिटे।

आचार्यश्री—जव तक ये नही मिटे तव तक साधना के पथ पर चलते रहो, जाप को मत छोडो। जव ये मिट जायँ तव जाप छोड देना। तुम्हे साध्य मिल जाएगा।

सन्यासी को समाधान मिल गया। विना लक्ष्य निश्चित किए व्यक्ति दिन भर भटके तो भी उसे कुछ नही मिलता। सन्यासी को किसी ने पकडा दिया—'जाप करते रहो', पर क्यो और कव तक, यह नही समझाया। इसलिये वह उसमे उलझ गया। आचार्यश्री के समाधान ने उसके सशय को एक लक्ष्य मे बाँध दिया। अब उसे जाप की अवधि दूसरे से पूछने की आवश्यकता नही रही। स्वय का प्रश्न और स्वय का उत्तर।

प्रत्येक व्यक्ति दीक्षित हो

१२ ६ ६२ प्रभात का समय था। श्री देवीलाल सामर की पत्नी दशन करने आयी। उसे देख आचायश्री ने कहा—'कई वहनें श्रद्धा की जीवत प्रतिमा हैं। मीरा की स्मृति करा देती है। अभी यह वहन भोपाल पुरा से पैदल आयी है। सामायिक करके घर जायेगी, वापस साढे आठ वजे

व्याख्यान मे आएगी। इस प्रकार दिन भर मे चार-पाच वार आती है। यह श्रद्धा ही तो है, जो व्यक्ति को इतनी दूर खीच लाती है पर कष्ट की अनुभूति नही कराती। जिस कार्य मे इच्छा का साथ न हो वहाँ व्यक्ति एक कदम भी चलना भार अनुभव करता है। नारी जाति की श्रद्धा ही कही-कही पर पुरुषो को सत्पथ पर ले आती है।' वहनो के गुणो की चर्चा मे से एक वात निकली कि कई वहनें थोकडे (सैद्धान्तिक मौखिक ज्ञान) को कण्ठस्थ करती है पर उसका अर्थ नही जानती है। कई शिक्षा प्राप्त करती है पर धार्मिक ज्ञान उनको नही आता। सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने आचार्यश्री से निवेदन किया—'धार्मिक परीक्षा मे वहनें वैठती हैं, पास होकर निकल भी आती है पर ज्ञान उनके पास टिकता नही, इस लिए आप इस पर चिन्तन कर कोई हल निकालें।'

आचार्यश्री का कुछ समय से इस प्रकार का चिन्तन चल ही रहा था, सयोग फिर मिल गया। आपने कहा—'एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता है जो साधुओ की साधना तक न पहुँच सके तो गृहस्थ मे रहकर ही साधु का-सा जीवन विताए। ज्ञानार्जन स्वय करके दूसरो को भी कुछ दे। साधु और गृहस्थ के मध्य की कडी हो।' विचार चलते-चलते एक कल्पना हुई—वौद्ध दीक्षा की तरह एक ऐसी दीक्षा हो जिसमे कुछ समय तक रहकर शिक्षा प्राप्त करे और उसका प्रचार करे। प्रत्येक परिवार का एक सदस्य अवश्य दीक्षित हो। इससे धार्मिक शिक्षा की अभिवृद्धि होगी और साथ ही अन्य अखरने वाले अभाव भी मिट जायेंगे।

प्रतिक्रमण का समय आ गया था। इसलिए चर्चा स्थगित करनी पडी। अणुवम-विरुद्ध दिवस पर आचार्यश्री का 'अणुशस्त्र और अणुव्रत' विषय पर विशेष प्रवचन हुआ।

१२ ९ ६२ को पारमार्थिक शिक्षण सस्था की वहनो ने मगलगान मे आचार्यश्री भिक्षु को श्रद्धाजलि समर्पित की। इसके पश्चात् आयोजन का श्रीगणेश वन्दना से प्रारम्भ हुआ। समस्त उपस्थित जनता मे 'पञ्चाग मुद्रा' मे अवस्थित होकर दशवैकालिक सूत्र के निम्नलिखित श्लोको द्वारा

अर्चना की

रोइय नायपुत्तवयणे, अत्त-समे मन्नेज्ज छप्पिकाए।
पच य फासे महव्वयाइ, पचासव सवरे जे स भिक्खू ॥
चत्तारि वमे सया कसाए, धुवजोगी य हवेज्ज बुद्ध वयणे।
अहणे निज्जाय-रूव-रयए, गिहि-जोग परिवज्जए जेस भिक्खू
समद्दिट्ठी सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे सजमे य।
तवसा धुणइ पुराण-पावग, मण-वय-काय-सुसवुडे जे स भिक्खू ॥
न य वुग्गहिय कह कहेज्जा, न य कुप्पे निहुइदिए पसते।
सजम-धुव-जोग जुते, उवसते अविहेडए जे स भिक्खू ॥
जो सहइ हु गाम-कटए, अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य।
भय-भेरव-सद्द सप्पहासे, सम सुह-दुक्ख-सहे य जे स भिक्खू
असइ वोसट्ठ-चत्तदेहे, अक्कुट्ठे व हए व लूसिए वा।
पुढवि समे मुणी हवेज्जा, अनियाणे अकोउहल्ले य जे स भिक्खू ॥

साध्वीश्री मजुला ने आचार्य भिक्षु के जीवन की विशेपताओ का विश्लेपण किया। साध्वी कनकप्रभा ने कवितापाठ किया। मुनिश्री रूप-चन्द ने कविता व मुक्तक कहे। मुनि मधुकर ने सरस गीतिका गायी। मुनिश्री नथमल ने आचार्य भिक्षु के जीवन को मापने के लिए कई रेखाए खीची। इसके वाद आचायश्री ने आचाय भिक्षु के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा—'महाराणा प्रताप की भूमि मे यह १६०वा चरमोत्सव मनाया जा रहा है। आचार्य भिक्षु भी अपने क्षेत्र के महाराणा प्रताप थे। महाराणा ने अपने जीवन मे कप्टो को हँसते-हँसते सहकर जाति और मातृ गौरव को खडा रखा, वैसे ही आचाय भिक्षु ने अनेक विरोधो व कप्टो को सहकर सस्कृति की सुरक्षा की। महाराणा प्रताप सेना के अभाव में अकेले रह गए थे। आचार्य भिक्षु भी अपने लक्ष्य पर अकेले ही थे। महाराणा ने भरपेट भोजन नही किया। आचार्य भिक्षु ने भी पाच वर्ष तक भरपेट भोजन नही किया। महाराणा जगल मे घूमते रहे और आचार्य भिक्षु ने फूटी दुकान और श्मशानो को टटोला। वहुत सीमा तक दोनो का जीवन

एक रेखा के आस-पास चला था।

आचार्य भिक्षु उदारचेता, महातपस्वी और महामनीषी थे। चिन्तन का द्वार उनके लिए सदा खुला था। प्रत्येक चिन्तन मे अपने निर्णय को ही प्रधानता नही देते थे। भविष्य के लिए सशोधन का अधिकार स्वय न लेकर बुद्धिमन्तो के हाथ मे सौंप दिया।

अपने जीवन मे कठोर तपस्याए की। किसी की पात्रता देखते तो उसको समझाने के लिए रात भर का जागरण कर देते थे।

जैन सस्कृति को जीवित रखने के लिए जो महान् कार्य किए उसके लिए तेरापथ ही क्या समूचा जैन समाज ऋणी है। तटस्थ वृत्ति से देखने वाला कभी उनसे आँख-मिचौनी नही कर सकता। वे शिक्षाशास्त्री और अर्थशास्त्री नही थे, केवल राजस्थानी भाषा जानते थे। एक भाषा के बल पर सूत्र, चूर्णि और टीका का जो अर्थ-रहस्य खोला आज सस्कृत और प्राकृत के पडित उनका लोहा मानते है। छत्तीस हजार पद्यो की साहित्य जगत् को जो खुराक दी है, राजस्थानी भाषा मे वह अमूल्य देन है। अन्वेषक ही उसका रसास्वादन करेंगे।

सगठन के लिए उन्होंने जो सूत्र दिए वास्तव मे वे उनकी दूरदर्शिता और अनुभूति के जीवन्त रूप है।

सघ के सभी सदस्य परस्पर प्रेम रखें।

कोई भी सदस्य सघपति व सघ के किसी भी सदस्य की निन्दात्मक बात न सुने और न करे।

परस्पर दलबन्दी न करे।

सघ के प्रति वफादार रहे।

अनुशासन का भग न करे।

सघ के हित के लिए चिन्तन की खिडकिया खुली रखे।

सघहित से ऊपर वैयक्तिक स्वार्थ को महत्त्व न दे।

शाश्वत सत्य की तरह सगठन के क्षेत्र मे ये सूत्र आज भी ग्राह्य है। दो सौ वर्ष पूर्व दिए गए मौलिक चिन्तन के लिए आज का जनमानस

आचार्य भिक्षु के प्रति कृतज्ञ है।

दान, दया, लोकोपचार, सहयोग आदि तत्त्वो की बडी सूक्ष्मता के साथ आचार्य भिक्षु ने व्याख्या दी। उन्होने लोकोपचार आदि करने के लिए निषेध नही किया अपितु समाज के सदस्य के लिए उसे आवश्यक भी माना, क्योकि वह गृहस्थ की भूमिका मे समूह के साथ रह रहा है। पर अध्यात्म की दृष्टि से उसमे आत्म-शुद्धि नही देखी। समाज के ग्राह्य तत्त्वो को यदि व्यक्ति नही निभाता है तो वह कतव्य से च्युत होता है और वह समाज मे सम्मान भी नही पाता। इस प्रकार से जो विचार दिए वे आज के युग मे विचारको के लिए मार्गदर्शन का काय करते हैं।

आगे आपने आचाय भिक्षु के जीवन को शब्दचित्र मे बाधते हुए उन्हें इन शब्दो से उपमित किया

समसुह दुक्खसहे।
वोसट्ठ चत्तदेहे।
धुवजोगी।
सज्झायपरए।
अज्झप्परए।
सम्मदिट्ठिसया अमूढे।

आचार्य भिक्षु के जीवन पर प्रकाश डालने के बाद आचार्यश्री ने कहा—आचार्य भिक्षु को ये सर्वाधिक प्रिय थे

१ सयम, अनुशासन, व्यवस्था और विनय।

२ उनके अनुयायियो मे यह अवश्य होने चाहिए, पर जितनी मात्रा मे अपेक्षित है उतनी मात्रा मे नही है, जितनो मे अपेक्षित, उतनो मे नही है।

३ वह प्रशिक्षण के बिना सम्भव नही।

४ साधुओ मे भी प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्थित पद्धति आवश्यक है। किन्तु गृहस्थो के लिए और अधिक, क्योकि उनमे इनका प्रशिक्षण है ही नही।

५ साधु-जीवन हर व्यक्ति के लिए सम्भव नही, इसलिए एक श्रमण भूत या श्रमणोपम (या किसी वैकल्पिक नाम की) श्रेणी की आवश्यकता है।

६ प्रशिक्षण कैसे हो, यह चिन्तनीय है। किन्तु इस भिक्षु-स्मृति के अवसर पर मैं यह कहना चाहूँगा कि ऐसी श्रेणी के लोग अवश्य तैयार हो।

७ प्रारम्भ मे शायद कम ही व्यक्ति होगे, किन्तु इसका विकास इतना हो कि कम-से-कम हर परिवार का एक-एक व्यक्ति इस श्रमण भूत श्रेणी की निश्चितकाल (एक, दो या तीन वर्ष) के लिए दीक्षा ले और वहाँ प्रशिक्षण ले। मुझे लगता है इस पद्धति से ज्ञान वढेगा, आस्था वढेगी, विनय की परम्परा विकसित होगी।

इस अवसर पर आचार्यश्री के व्याख्यान से पूर्व कुछ मिनट पहले वोधिस्थल राजनगर के साठ भाई-वहन दर्शनार्थ आए। उनमे छप्पन भाई व चार वहनें थी। *प्राय सभी भाई केसरिया पगडी मे थे।* उनमे कई ऐसे भाई भी थे जिन्होने विवाह के वाद आज ही पगडी को सम्भाला, जो इतने वर्ष तक मजुषा मे लेटी हुई थी। दृश्य आकर्षक वन गया था। वेश-परिवर्तन से चिरपरिचित भी अपरिचित-से लग रहे थे।

आचायश्री के भाषण के वाद वोधिस्थलो की ओर से भाई देवेन्द्रकुमार कर्णावट ने माघ-महोत्सव वोधिस्थल मे करने के लिए तर्क सपृक्त प्रार्थना की और आचार्यश्री से निवेदन किया कि साधु और श्रावक के वीच का तीसरा वर्ग जो आप चाहते है उसकी दीक्षा का सूत्रपात वोधिस्थल मे माघ-महोत्सव के अवसर पर करें।

इसके वाद अखिल भारतीय तेरापथी महासभा के अध्यक्ष श्री जव्वरमलजी भडारी ने समाज का महासभा की ओर से आह्वान करते हुए कहा—"अभी आचायश्री ने जो माँग की है उस पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक परिवार से एक-एक व्यक्ति को दीक्षा देनी ही है, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए। यह चिन्तन वर्तमान की माग है। अन्य

चिन्तन हम लोग समय-समय पर करते रहेंगे। प्राथमिकता इस भाग को देकर हमे तैयार हो जाना चाहिए।"

उपस्थित जनता मे से सबसे प्रथम सन्त पुरुप श्री मिश्रीमल सुराणा की धर्मपत्नी श्रीमती विजयादेवी ने तीसरे वर्ग की दीक्षा के लिए अपना नाम प्रस्तुत किया। श्री गणेश मे 'विजया' नाम देखकर सबको इस वर्ग की सफलता दीखने लग गई। विजय की मगल-कामना सबके मानस मे जम गई। एक मिनट बाद ही तीन नाम और आए—श्रीमती हुलासी देवी भूतोड़िया (लाडनू), श्रीमती मनोहरी देवी आचलिया (गगाशहर), श्रीमती इन्दुबाला (दोंडाइचा)।

तत्पश्चात् दो बहनो को चातुर्मास मे कार्तिक कृष्णपक्ष मे दीक्षा की स्वीकृति मिली—श्री कमलाकुमारी श्रीमाल (सुजानगढ) और श्री मृदुलाकुमारी दूगड (सरदारशहर)।

अन्त मे आचार्यश्री ने 'श्रद्धा विनय समेतणमो अरिहताण' गीतिका के माध्यम से पच परमेष्ठी को प्रणाम किया। सघगान के साथ कार्यक्रम की पहली गोष्ठी समाप्त हुई।

साध्वीश्री सूर्यप्रभा, मजुला, कनकप्रभा, कनकश्री व यशोधरा आदि ने आचार्य भिक्षु को अपनी भावनाजलि चढाई।

बुद्धि-रोष

१३ ६ ६२ मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी और बुद्धिमान कहा जाता है, पर बुद्धि का वह कितना उपयोग कहाँ करता है, यह देखने की बात है। एक भाई आचार्यश्री के पास आया और साहस कर पूछा—"क्या आपने कृष्ण के बारे मे टीका की?" एक क्षण मे आचार्यश्री ने उसके आशय को समझ लिया। उत्तर दिया—"नही। मैंने तो किसी की आपेक्षात्मक बात नही की।" भाई ने बात को खोलते हुए कहा—"शहर में आपको लेकर काफी चर्चा हो रही है। कोर्ट मे मामला चलाने के लिए गवाह तैयार कर रहे हैं।" आचार्यश्री का मन ही मन हँसी आयी। उससे कहा—

"भाई! मुझे तो याद नही है, मेरी प्रकृति भी नही है कि मैं किसी की आलोचना करके अपना समय खोऊ।" भाई चला गया। न जाने क्या लेकर गया। सदेह को छोडकर गया अथवा जिसे लाया था उसे लेकर गया। पर वह चला गया। चिन्तन के लिए सामग्री अवश्य दे गया। किसी कार्य के लिए एक व्यक्ति आगे आता है तो उसके सहयोगियो की कमी नही है। एक असत्य बात, जिसकी खोज पानी मे है, उसको भी व्यक्ति सत्य की खोज मे ला खडा करता है। झूठ का जन्म कहा से हुआ, इसके पीछे क्या भावना पलती है—कोई खोजने का प्रयास नही करता। विना मागे ही अपना मत मिलाकर घटना को अपने पर ओढ लेता है। समझ मे नही आता, मनुष्य के पास बुद्धि है पर वह उसका उपयोग क्यो नहीं करता? क्या व्यक्ति को इसीलिए रोष है कि उसको विना मागे ही बुद्धि मिल गई?

१६ ६ ६२ आज विचार परिषद् मे किसी को विशेष वक्ता के रूप मे आमन्त्रित नही किया और न साध्वियो मे से किसी ने वक्ता के रूप मे समय लिया। स्वय आचार्यश्री ने व्याख्यान को प्रारभ किया। गीता के अनासक्त योग पर वोलते हुए आपने जैन दर्शन के 'अनियाण' शब्द से साम्य दिखाया। अनासक्ति और अनिदान दोनो शब्द एक अर्थ के साथ-साथ चलते हैं। इसलिए भाव की दृष्टि से दोनो मे साम्य है। क्रिया के साथ फल की आशा मत रखो, ऐहिक सुखो के लिए साधना को मत वेचो। साधना का लक्ष्य आत्म-शुद्धि होने से ऐहिक सुख आनुपगिक के रूप मे स्वय मिलेंगे।

अनासक्त मे कर्म-त्याग का निर्देश नही, पर कर्म-फल के त्याग का सकेत है। विहित कर्म नियत कर्म का त्याग नहीं होता, उसमे तो फल की कामना का त्याग करना चाहिए।

जैन दर्शन मे भी यह तत्त्व है—दुष्कर्म का त्याग करो। सत्कर्म प्रारभ मे छोडा नही जा सकता। सत्कर्म के सहारे आगे चलकर क्रिया मात्र का परित्याग करना होता है। सत् और असत् कोई भी कार्य करते हो, पर

उसमे अलिप्तता के भाव रखो, यह वास्तव मे अनासक्त योग नही है अपितु उसके नाम पर अपनी दुष्प्रवृत्ति के पोषण का साधन है।

हरिजन सम्मेलन

दोपहर मे हरिजन सम्मेलन का कार्यक्रम रहा। हरिजन वस्ती मे सौ से अधिक भाई-वहनो ने भाग लिया। हरिजन सेवक समाज के मत्री रामचन्द्र ननवाणा ने दो शब्द कहते हुए कहा—"आचार्यश्री ने अणुव्रत-आन्दोलन चलाकर भटकती हुई मानव जाति को एक सत्पथ दिखाया है। उसमे अस्पृश्यता को स्थान नहीं है यह देखकर वडी प्रसन्नता होती है। यह जैन धर्म के सिद्धान्तो की उच्चता का ही परिणाम है कि जाति, वर्ण और लिंग के भेद को न रख प्रत्येक व्यक्ति को धर्म करने का अधिकार दिया। मानव जाति को एकता मे बाँधने के लिए अणुव्रत-आन्दोलन ने जो काम किया है उसके लिए वह वधाई का पात्र है।"

आचार्यश्री तुलसी ने अपने भाषण मे कहा—"जाति से मनुष्य अस्पृश्य नही होता, अस्पृश्य वह है जो वुराइयो का घर है। क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार 'चडाल चौकडी' के नाम से कहे गए है। वास्तव मे बुराई अस्पृश्य होती है। उसे घृणा कर अपने को सुरक्षित रखना चाहिए। व्यक्ति से घृणा करना मानवता का अपमान है।"

उपस्थित भाइयो को सबोधित करते हुए आपने आगे कहा—"जो अस्पृश्य नाम से घवराते हैं उन्हें बुराइयो का त्याग कर आगे आना चाहिए। अपने को हीन मानना सवसे वडी कमज़ोरी है। जूठन खाना हीनता का परिचायक है। मद्य-मास, तमाखू आदि अखाद्य वस्तुएँ मनुष्य को पतन की ओर ढकेलती हैं। अत इनसे दूर रहकर जीवन-निर्माण का प्रयास करना चाहिए। साधुओ की वाणी सुनने का सबको अधिकार है, फिर उससे वचित क्यो रहा जाए?"

अन्त मे पटेल मोहनदास ने अपनी दर्द भरी कहानी सुनाते हुए कहा—हम शराव क्या पीते हैं अपना शौक पूरा करते हैं। शराव तो वे पीते है

जो धनी-मानी है, जिन्हे पैसे के लिए हाथ पसारना नही पड़ता। हम लोग दिन भर काम करते है तो प्रति घर के हिसाब से दो आना पैसा मिलता है। घर मे चाहे पाँच-दस-पद्रह कितने ही व्यक्ति क्यो न हो, सबकी सफाई के दो आने ही मिलते है। आखिर हमे मिलता क्या है ? घर का काम ही नही चलता, बच्चो का पोषण करना भी कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति मे हम जूठन न खाएँ तो काम कैसे चले ? साहूकार लोग हमे रोटी भी शुद्ध नही देते। हमारे लिए अलग प्रकार से रोटी बनाई जाती है जिसमे हाथ का सारा मैल साफ कर उसका वजन बढाया जाता है। वह भी मागने पर सरलता से नही मिलती। कई देर तक खड़े-खड़े प्रतीक्षा करते रहते हैं, 'सेठानीजी, रोटी दो' की रट लगाते हैं, तब कही जाकर दुत्कार के साथ रोटी मिलती है। हमे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। हमे मनुष्य नही मानते। न जाने उनकी दृष्टि मे हम किस प्रलय के जीव हैं। इन लोगो के ऐसे व्यवहार के कारण हम ऊपर नही उठ पाए हैं। हमारे लिए अब यही आवश्यक है कि हम बुराइयो को छोड़ ऊचे उठें, जैसा कि अभी तुलसीजी महाराज ने बताया है।" भाई की हृदयद्रावक आत्म-कहानी सुनकर किसका मन नही पिघलता ! मेरी दृष्टि मे आज के सस्कारो मे पलने वाला हरिजन व्यक्ति इसे कैसे सहन करेगा ? सहन तभी तक करता जब तक कुछ शिक्षा व पैसे न मिल जाएँ। शिक्षा और अर्थ की गति को देखते हुए लगता है, कुछ वर्षो मे यह चिन्तनीय प्रश्न बन जाएगा कि सफाई कौन करे ? आज भी कई हरिजन सफाई का कार्य छोड़ अन्य कार्यालयो मे काम करते हैं। वेशभूषा से उन्हे पहचानना कठिन हो गया है। इस युग मे मनुष्य को दूरदर्शिता से सोचना है। जो भविष्य के चरण को देखकर अपना कदम बढाएगा उसे भविष्य मे मुड़कर सोचने की आवश्यकता नही होगी।"

रात को मुनिश्री नथमलजी ने 'एकत्व और ममत्व' विषय पर भाषण करते हुए उन तथ्यों को खोला जो हमारे दैनिक व्यवहार मे उलझन पैदा करते है, जिनमे फसकर मनुष्य अपनी मानसिक शाति खो

देता है।

अन्त मे उसी विषय को छूते हुए आचार्यश्री ने सरल भाषा में विषय को स्पष्ट कर जन-भोग्य बना दिया।

श्रद्धा का चमत्कार

१८ ६ ६२ एक परिवार के तीन सदस्य आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित थे—थामलावासी श्री दीपचन्द बडारमिया, उनकी पत्नी झमकूबाई और पुत्र धर्मेश। वहन का जीवन श्रद्धा व धार्मिक सस्कारो का जीवन्त निदर्शन है। उसका अधिकाश समय साधु-साध्वियो की उपासना मे फलवान बनता है। पुत्र स्थानीय एम० बी० कॉलेज मे पढता है और पति घर का कार्य देखते हैं। परिवार के सदस्यो का विकेन्द्रीकरण आधुनिक युग की देन है। बहन के सस्कारो की छाया सारे परिवार मे प्रतिबिम्बित है। तीनो की अपने आराध्यदेव गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा है। उनकी आस्था के आधार एकमात्र आचार्यश्री तुलसी हैं। ग्यारह मास का इकलौता पुत्र जब रोग के हाथो से सिरकते-सिरकते मौत के द्वार तक चला गया, सास की गति अवरुद्ध होने लगी, तब परिवार के अन्य सदस्यो ने उसके जीवन की आशा छोड दी। एक किनारे जाकर बैठ गये, तब पिता की श्रद्धा सामने आयी। उन्होने उस दिशा की ओर आचार्यश्री तुलसी को वन्दना कर कहा—'यदि यह पुत्र इस समय काल के हाथो से बच जाए तो मैं साधुपन के लिए निषेध नही करूगा।' परिणामत धर्म के प्रति पुत्र को अर्पण कर दिया। माता झमकूबाई से कहा—'इसको छाती से चिपका लो।' बस, फिर क्या था! गुमा हुआ श्वास मिल गया। परिवार मे प्रसन्नता दौड गयी।

एक बार दीपचन्दजी जब मृगी रोग के शिकार हो गये तब उन्होंने अपनी श्रद्धा के केन्द्र की शरण ली। तुलसी का जाप व दर्शन उनके लिए वरदान बन गया। उसके बाद आज तक वे इस बीमारी से मुक्त हैं।

झमकूबाई की घटना बडी विचित्र है। उस समय थामला मे सतो का चातुर्मास था। हरिजन भाई उनके सम्पर्क मे आए और चरण स्पर्श

कर गये। गाव मे ही नही आसपास मे उसकी प्रतिक्रिया हुई। रूढ सस्कारो मे पलने वालो को सह्य नही हुआ। बहन की सास ने कहा—'बहू! जब साधु घर मे आए तो उन्हे रोक देना क्योकि वे हरिजन से छुए हुए हैं।' अपने गुरु के प्रति तिरस्कार सुन बहन का मानस जाग उठा। करीब एक लाख के धन को ठुकराते हुए कहा—'यह लो अपने घर की चाबिया और जेवर, मुझे नही चाहिए। जहा साधुओ का आना ही पाप है ऐसे घर से मुझे क्या लेना है?' उत्तर सुन सास का चेहरा उड गया। मन को मारकर भी बहू के विचारो को स्वीकार करना पडा।

परिवार के तीनो सदस्य श्रद्धा से भरे मानस को लेकर आये थे और याचना कर रहे थे कि बहन को जीवन-लक्ष्य के पथ पर चलने की स्वीकृति दें।

इन घटनाओ मे स्थान-स्थान पर श्रद्धा मुखरित हुई है। श्रद्धा का चमत्कार उनको मिलता है जिनका मानस उससे पूरित हो। जो श्रद्धा को अधविश्वास मानकर स्वय ज्योति से दूर हो जाते हैं उन्हे यथार्थ दर्शन कैसे मिले? चमत्कार देखने वाले अपने जीवन मे श्रद्धा को साथ लेकर चलें, तो वह इतना प्रकाश देगी जितना सहस्राक्ष भी नही दे सकते।

घटना का दूसरा पक्ष है—बहन का साहस। आज के युग मे कुछ चादी के टुकडो के लिए मनुष्य अपनी प्रामाणिकता और धर्म को बेचने मे सकोच अनुभव नही करना। थोटी-सी स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म-परिवर्तन भी कर बैठता है, वहा राजस्थान की एक अशिक्षिता नारी सत-दर्शन के आगे धन को धूल समझकर ठुकरा देती है। धर्म के लिए धन की ममता तोड देती है। क्या यह अबला का साहस प्रशमनीय नही है?

ग्राहकता चाहिए

कुछ देर बाद एक भाई आया। अपना नाम राधारमण बताया। उसके साथ दो सन्यासी थे। ये बद्रीनारायण से आ रहे थे। नाथद्वारा और काकरोली की तीर्थयात्रा करते हुए द्वारकाधीश जायेंगे। उन्होने

बताया—'पत्रो मे आचार्यश्री को पढा। तब से दर्शन की प्यास बन गयी थी। आज सुना कि आप यहा ठहरे हुए हैं तो भावना और प्रबल हो गई, इसलिए दर्शन करने आ गए।' सयोग से प्रवचन का समय आ गया था इसलिए वह अवसर भी मिल गया। उसने कहा—'प्रवचन सुनने का लाभ तभी है जब वह जीवन मे आता है।'

जहाँ मनुष्य की ग्राहकता होती है वहा वह अपने योग्य तत्त्व खीच लेता है। ग्राहकता के बिना सामने पडी वस्तु भी ग्रहण नही होती।

२१ सितम्बर को मध्याह्न का समय था। धूप की वर्षा हो रही थी। आचार्यश्री साधुओ व श्रावको सहित गन्तव्य स्थान पर जा रहे थे। वे आयुर्वेद कॉलेज मे जाना चाहते थे, क्योकि वहा उनकी प्रतीक्षा थी। कॉलेज के बाहर बडे प्रिंसिपल श्री श्यामसुन्दर वैद और प्रोफेसरो ने स्वागत किया। प्रवचन-स्थान पर पहुचने से पूर्व प्रोफेसर ने उगी हुई वनस्पति विशेष को दिखाया। उन्होने बताया कि 'यह सर्पगन्धा ब्लडप्रेशर (रक्तचाप) के लिए विशेष औषधि है। यह भारत से ही अन्य स्थानो मे गई है। वहा वे इसको टेबलेट (गोली) का रूप देकर वापस भारत भेजते हैं' आगे चलकर उन्होने अपनी प्रयोगशाला दिखाई जहा आयुर्वेदिक औषधियो को आधुनिक भौतिक-विज्ञान के साथ समन्वय करके शिक्षा देते हैं। फिर हम दूसरे भवन मे गए जहा शरीरविज्ञान के लिए मानव की अस्थिया विभिन्न रूपो—हृदय, मस्तिष्क, गर्भ, आमाशय आदि—मे पडी थी। भवन मे घुसते ही प्रोफेसर रामचरणजी ने स्वागत किया और कहा—'मैं आपसे पूर्ण परिचित हू। जब आप महाराष्ट्र आए थे उस समय मैंने दो सौ प्रवेशक अणुव्रती बनाए थे।' उन्होने अपने कमरे मे रखी सामग्री को सूक्ष्मता से समझाया। गर्भ-अवस्था मे बच्चे का जो रूप वहा रखा था, वह दर्शनीय था। वहा से सीधे प्रवचन स्थल पर चले आए। एक-दो स्थान वे और दिखाना चाहते थे पर हरियाली से मार्ग भरा था, इसलिए वहा नहीं गये।

कॉलेज के एक विद्यार्थी ने स्वागत मे कहा—"आज का दिन हमारे

जाता है—'हेतु लिङ्गौपध ज्ञान स्वस्थातुरपरायणम्' (चरक-संहिता, श्लोक २४)।

"रोग क्यो आया? इसके लक्षण क्या है और इसकी चिकित्सा क्या है? जीवन के लिए भी ये तीन प्रश्न आवश्यक है—मानवता क्यो नष्ट हुई है? उसके रूप क्या हैं? और उसकी वापस प्राप्ति के साधन क्या-क्या हैं?

"कई लोग मानवता के विनाश मे परिस्थिति को अपराधी बतलाते हैं। परिस्थिति का आधार अर्थ की स्थिति बताते है। पर वास्तव मे यह सत्य नही है। उसके सिर पर सारा भार लादकर स्वय निर्दोष हो जाना सगत नही है। परिस्थिति ही यदि कारण है तो अमरीका जैसे धन-सम्पन्न देश मे ऐसी स्थिति नही होनी चाहिए पर वहा होती है। इससे स्पष्ट है कि दूसरा भी कोई कारण है।

"त्याग और सयम मे चलने वाले ऋषियो को भी जब रोगो ने घेरना प्रारभ किया तब हिमालय की तलहटी मे ऋषियो की एक सभा हुई। रोग के लिए चिन्ता व्यक्त की और उपचार ढूढने लगे। वैसे ही अध्यात्म-प्रधान भारत देश मे जो अनैतिकता फैल रही है उसके लिए भी उपाय ढूंढना होगा। इसका उपचार करने बाहर से कोई नही आयेगा, स्वय को हल निकालना होगा। अच्छा तो यह होगा कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय का परीक्षण करे।

"आयुर्वेद की चिकित्सा के प्रति लोगो की उपेक्षा क्यो है? वह इसी-लिए कि उसमे नए-नए उन्मेषो के द्वार बन्द हो गए। आयुर्वेद पिछड गया, एलोपेथिक आगे आ गया। आज फिर उसमे चेतना जगी है, कुछ अन्वेषण हो रहा है। यदि यह कार्य पहले होता तो ऐसी स्थिति देखनी नही पडती।

"धर्म की भी यही स्थिति है। धर्म जो जीवन-शुद्धि का साधन था, लोगो ने उसको अपने अनुकूल बना लिया। स्वार्थसिद्धि के प्रत्येक कार्य म धर्म को ला बैठाया। इसलिए वह बदनाम हो गया। अब आवश्यकता है

उसका शुद्ध स्वरूप सामने आए। अणुव्रत-आन्दोलन और कुछ नहीं धर्म का एक उन्मेष है। काल के प्रभाव से जो धुंधला पड़ गया था, उसको प्रकाश मे लाने का उपक्रम है। आशा है धर्म के इस नए प्रकाश मे लोग अपने आपको देखकर जीवन का परिमार्जन करेंगे।'

विद्यार्थियो के पाच नियमो की व्याख्या के पश्चात् अन्त म भावात्मक एकता के नियम का उच्चारणपूर्वक उपस्थित छात्रो व अध्यापको ने सकल्प किया।

मधुर मिलन

२२ ६ ६२ आचार्यश्री ने सुना कि स्थानकवासी आचार्यश्री गणेशीलाल रात को बहुत अस्वस्थ हो गए हैं। तब आपने उनसे 'खमत-खामणा' करने का निश्चय किया। प्रात कालीन व्याख्यान के बाद चढते मध्याह्न मे आचार्यश्री साधुओ सहित उनके स्थान पर पधारे। साथ मे कई भाई भी थे। खबर मिलने से उन्होने भी अपनी व्यवस्था कर रखी थी। स्थानक मे प्रवेश करते ही देखा कि नीचे सैकडो भाई-बहन खडे है। आचार्यश्री ऊपर पधारे।

सबसे पहले आचार्यश्री ने कहा—'अतीत के वर्षो मे आपसे बहुत काम पडा है, इसलिए मन और वचन से खमत-खामणा करता हू।' उन्होने भी वापस खमत-खामणा किया। एक क्षण बाद आचार्यश्री ने भगवान् महावीर की वाणी का उच्चारण करते हुए कहा—'शरीर अस्वस्थ है पर चित्त मे मानसिक समाधि रहे, यह आवश्यक है। अपने को जो तत्त्व मिला है सचमुच वह सौभाग्य का परिचायक है।' उन्होने कहा—'जैन धर्म मिला है यह सौभाग्य की बात है।' सेवा भावी मुनिश्री चम्पालालजी बोले—'मैंने रात को आचार्यश्री से निवेदन किया था, उसे स्वीकार कर आप यहा पधारे है।' आचार्यश्री ने साथ गए सन्तो का परिचय दिया और कहा—'स्थानकवासी अन्य सम्प्रदायो की अपेक्षा आचार्यश्री जवाहरलालजी के सम्प्रदाय से हमारा अधिक सम्पर्क, व्यवहार व नैकट्य रहा

है।' वाक्य पूरा होते ही आचार्यश्री गणेशीलालजी ने कहा—'नैकट्य क्या, हम तो एक मूग की दो फाड हैं।'

वार्तालाप मे मधुरता घुल रही थी। उन्होंने कहा—'मैं चाहता हू जो तड पड गई है उसे भी मिटा लें। भेद के जो तत्त्व है उनका भी विचार-विनिमय के द्वारा हल निकाल ले।' मुनिश्री चम्पालालजी ने उसकी पुष्टि करते हुए कहा—'भेदो को भूल जायें, पर परस्पर प्रेम है उसको न भूलें।'

आचार्यश्री ने कहा—'भगवान् महावीर ने हमे स्याद्वाद दिया है। जो स्याद्वाद ससार की समस्या को सुलझा सकता है वहा हमारी समस्या है ही क्या ?'

मुनिश्री नथमलजी ने कहा—'आज तो वायुमडल ऐसा बन रहा है कि जैनेतर लोग जैन साहित्य का अन्वेषण करते हैं, थीसिस लिखते है और उसको प्रकाश मे लाने के प्रयत्न मे हैं। पर उनकी रुचि के अनुसार जैन साहित्य हिन्दी भाषा मे पर्याप्त नहीं है। ऐसे समय मे हमारा कर्तव्य है कि हम इस ओर ध्यान दें। यदि परस्पर मे मैत्री का वातावरण रहे तो कार्य मे सुगमता हो सकती है।' उनके एक सन्त ने कहा—'आचार्यश्री ने भीनासर मे एक योजना बनाई थी कि सम्वत्सरी पर्व को सब एक दिन मनाए।' इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए आचार्यश्री गणेशीलालजी ने कहा—'इसमे क्या है, तिथि का निर्णय तो जीत व्यवहार मे कर सकते है।'

उत्तर देते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—'मैंने अभी क्षमा-दिवस पर कहा था और कलकत्ता मे भी कहा था कि सम्वत्सरी पर्व पर हमे चिन्तन करना चाहिए। यदि चिन्तन करें तो अपने लिए इतनी विशेष कठिनता की बात नहीं है। कुछ सम्प्रदायो को कठिनता हो सकती है। पर मैं सोचता हू चिन्तन करने से कुछ न कुछ अवश्य हल निकल सकता है।'

आचार्यश्री गणेशीलालजी ने कहा—'आप तैयारी रखें तो हम भी तैयार हैं।' तत्काल आचार्यश्री ने स्वीकृति देते हुए कहा—'इस भावना का स्वागत है।'

कुछ देर बाद उनके एक सत ने कहा—'यह मिलन का पहला अवसर

है।' आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'नही, एक वार पहले जयपुर मे मिले थे। पर वह इतना मधुर मिलन नही था। मधुरता की दृष्टि से यह पहला ही है।' चातुर्मास साथ करने का मौका मिल गया—बीकानेर, जोधपुर, जयपुर और उदयपुर। इस वष आप जाना चाहते थे पर श्रावकों ने जाने नही दिया। उन्होने भी इसी तथ्य की स्वीकृति दी। अन्त मे आचायश्री ने आते समय पुन खमत-खामणा किया और कहा—'अपना खमत-खामणा, व्यक्तिगत दृष्टि से व जैन समाज की दृष्टि से तथा शहर के वायुमण्डल की दृष्टि से मैं उपयोगी मानता हू।'

मधुर मिलन से वायुमण्डल वडा शुद्ध रहा। जैन समाज मे अच्छी प्रतिक्रिया हुई और अन्य समाज ने भी इसका मूल्य आंका।

२३ ९ ६२ प्रति रविवार की तरह आज सुवह विचार परिपद् का आयोजन नही रहा। वह शाम के लिए स्थगित कर दिया गया। सुवह प्रवचन हुआ। रविवार होने से उपस्थिति अच्छी थी। श्रोताओ की सुनने की लालसा वक्ता को मुखरित कर रही थी। अनायास विशेप प्रवचन हो गया।

दोपहर मे महिला सम्मेलन का आयोजन रहा। तीन वजे आचार्यश्री जिला कारागृह मे पधारे। सुपरिन्टेंडेंट श्री वीरसिहजी मदनलाल ने स्वागत किया और वताया, "मैं आपसे गुलाव वाग मे मिला था पर आपके मौन होने से वार्तालाप न हो सका।' औपचारिक वार्तालाप के वाद हम लोग भीतर गए। भाई और वहनें भी साथ थी। सवके लिए द्वार खुला था। जेल का प्रागण साफ-सुथरा था और उसमे पडने वाली वृक्षो की छाया मन को आकृष्ट कर रही थी। इसलिए कमरे को स्थानान्तरित कर खुले मैदान को प्रवचन-स्थल वनाया गया। जेल मे ३२९ कैदी थे। वन्दियो की पोशाक तीन रगो मे थी। जो लाल पोशाक मे थे, वे खतरनाक कैदी थे। खतरनाक इसलिए कि पुलिस की आँखो को वचा भागते हुए पकडे गए थे। जो पीली पोशाक वाले थे, वे कैदी होते हुए भी उन पर अफसर थे, विश्वास के पात्र थे। शेप सफेद पोशाक मे थे।

आगे प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने विद्यार्थी अणुव्रत के पाँच नियमो पर प्रकाश डाला। वाद को आपने नियमो का वाचन किया और विद्यार्थियो ने उन्हे सकल्प के रूप मे ग्रहण किया। इसके वाद भावात्मक एकता के नियम को उपस्थित सव लोगो ने स्वीकार किया। तदनन्तर अवधान होने वाला था पर समयाभाव से स्थगित कर दिया गया। दस-पन्द्रह मिनट प्रश्नोत्तर का सरस कार्यक्रम चला।

प्रिंसिपल साहव ने आभार-प्रदर्शन के रूप मे वोलते हुए कहा—'यहाँ के विद्यार्थियो ने कई प्रवचन सुने होगे पर आत्मलाभ की दृष्टि से यह पहला ही प्रवचन है। मैं विश्वास दिलाता हू कि अन्य शिक्षण सस्थाओ की अपेक्षा यहा का चरित्र व व्यवहार वहुत अच्छा है। मुझे यह कहते गर्व होता है कि छात्रो मे यहाँ परस्पर चोरी नही होती। तोडफोडमूलक कोई उद्दण्डता नही है। अध्यापको के प्रति भी नम्र व्यवहार है। आज मैं कॉलेज के परिवार की ओर से आपका स्वागत व कृतज्ञता-ज्ञापन करता हू।'

अन्त मे सस्था के सेक्रेटरी वकील श्री स्वरूपसिह चुडावत ने आभार-प्रदर्शन करते हुए कहा—मुझे तुलसीदासजी याद आ रहे हैं। हरि के दर्शन के विना सन्त-दर्शन नही होते। आचार्यश्री ने जो उपदश दिया वह केवल आदर्श या अव्यावहारिक नही है। जीवन मे उतारने योग्य है। मास के विपय मे आपने वताया। यहा प्राय ९९ प्रतिशत विद्यार्थी शाकाहारी है। मैं चाहता हू शेप एक प्रतिशत भी उनका अनुकरण करें। यह जान-कर हमे अति प्रसन्नता हुई कि जैन धर्म के चौवीसो तीर्थकर ही क्षत्रिय थे। इसलिए जैन धर्म हमसे दूर नही अति निकट है। आपके उपदेशो पर चलकर विद्यार्थी नैतिक मूल्यो की स्थापना करेंगे ऐसा विश्वास है।'

समय वढ रहा था, साथ-साथ धूप भी गतिशील थी, फिर भी प्रिंसिपल साहव ने चाहा कि आचार्यश्री का कुछ समय मुझे व्यक्तिगत रूप मे मिले। उनकी भावना से आचार्यश्री उनके कमरे मे पधारे। प्रिंसिपल श्री चतुर्वेदीजी अहिंसक व्यक्ति हैं। मासाहार के प्रति घृणा है, शुद्ध शाकाहारी हैं। इसके लिए प्रयत्नशील भी हैं। उन्होने कहा—'एक ऐसा

प्लाट होना चाहिए जहा पर शुद्ध शाकाहारी बसें। वहां दुकानें भी प्रामाणिकता को लिए हो। छोटी-छोटी कॉलोनी के रूप में यह काय यदि प्रारभ होता है तो बहुत जल्दी गति पकड लेगा। आगरा मे दयाल बाग की कॉलोनी है। इस प्रकार मैं चाहता हू कि विद्यार्थियो मे भी ऐसा हॉस्टल होना चाहिए जहा केवल शुद्ध शाकाहारी ही रह। शिक्षा के अधिकारियों के सामने मैंने अपनी भावना व्यक्त की थी, यदि आप भी इस पर चिन्तन लगाए तो कार्य शीघ्रता से हो सकता है। मासाहारी और अमासाहारी मे भेदरेखा किए विना अमासाहारी को प्रोत्साहन नही मिलता।'

उन्होंने अपनी आत्मकथा सुनाते हुए कहा—'मैं पहले डबलरोटी खाता था। कुछ दिन वाद मुझे पता लगा कि उस पर घी के स्थान पर चर्वी से पालिश की जाती है, मैंने उसे छोड दिया। बिस्कुट भी छोड दिया, क्योकि उसमे अडों का रस मिलता है।'

आचायश्री ने वताया—"दस वर्ष पहले कलकत्ता मे ऐसा चिन्तन चला था कि कई दुकानें ऐसी हो जो अणुव्रत के आदश पर चलें, किसी भी वस्तु मे मिश्रण न हो, शुद्ध वस्तुएँ प्रामाणिकता से मिलें। अक्टूबर में अणुव्रत आन्दोलन का अधिवेशन होने वाला है, यहा फिर ऐसा चिन्तन होने वाला है। सम्भवत कोई माग निकल आए।"

इस प्रकार पन्द्रह मिनट तक वार्तालाप हुआ। वे अणुव्रती भी वने। वार्ता व्यक्तिगत थी पर दूसरो के लिए प्रेरणादायी थी। प्रिंसिपल साहब की प्राथना पर आचायश्री ने उनके स्थान से गोचरी भी की।

२५ ६ ६२ विद्याभवन के अन्तर्गत हायर सेकडरी, टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, सोसाइटी और रूरल इन्स्टीट्यूट आदि ये चार सस्थाए चलती है। ऐसा सोचा जा रहा था कि एक समय उन सभी सस्थाओ के कार्य-कर्त्ताओ के बीच प्रवचन हो जाए पर ऐसा नही हो सका। कारण यह था कि उन सस्थाओ का समय अलग-अलग है। एक समय मे वे मिल नही सकते। इसलिए रूरल इन्स्टीट्यूट मे आचार्यश्री का प्रवचन निर्णीत हुआ।

पचमी समिति के लिए प्रतिदिन 'गुलाव-वाग' की ओर वढने वाले पैर फतेहसागर की ओर मुड पडे। शौच से निवृत्त होकर जव आचार्यश्री फतेहसागर की पाल पर पहुचे तो अपने आपको एक नए वायुमडल मे पा रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो नरक मे स्वर्ग मे आ गए। वास्तव मे मध्य स्थिति वाले शहर नरक का चित्र दिखाते है। इन शहरो की गन्दगी से घृणा पैदा होती है। यदि वडे शहरो मे वाग, पार्क, नदी आदि प्राकृतिक स्थान न हो तो स्वच्छ प्राणवायु कहाँ मिले? देहातो की शुद्ध जलवायु मे पलनेवालो को ये शहर नरक-से प्रतीत होते हैं। शहरो की प्रमुख सडको पर भले ही भौतिकता की चकाचौंध मिले, पर गली मे मुडते ही मुह वन्द करना पडता है।

फतेहसागर की पाल पर सडक है और उसकी छाती पर पर्वत सिर ऊचा किए फतेहसागर की फतेह (विजय) के गीत गा रहे हैं। इसे देखते ही वम्वई की मैरीन ड्राइव का दृश्य आखो के सामने आ गया। वहाँ सडक के एक ओर अरब सागर (प्रकृति की कला) थी तो दूसरी ओर अट्टालिकाओ की श्रेणी (मानव की कला) थी। यहाँ भी सडक के एक ओर फतेहसागर (मानव की कला) है और दूसरी ओर पर्वतो की पक्ति (प्रकृति की कला) है।

कला की प्रतियोगिता मे मानव प्रकृति से पीछे नही है। फतेहसागर इसका प्रमाण है। वृक्षो की श्रेणी अपनी छाया से सडक को ढाँकती हुई फतेहसागर के तल तक पहुच गई है, मानो सागर के स्वच्छ दपण मे आत्म-निरीक्षण करने मे उसे कोई नही रोक रहा है। चारो ओर प्रकृति अपना हास्य विखेर रही थी। हास्य की मात्रा इतनी अधिक थी कि शोकाकुल मानव पर भी हास्य अपना रूप दिखाता था। इसे देख आचार्यश्री के मुख मे सहसा निकला—"क्या प्रकृति भी इतनी हँसती-खेलती है? दिल चाहता है कि प्रकृति के आनन्द लूटते रहें।" मन के भावो को भाषा मिल गई और आपने कहा—"ऐसा सोच रहे है कि आसोज शुक्ला त्रयोदशी से शरद पूर्णिमा तक तीन दिन का एकान्तवास फतेहसागर की पाल पर

करें।" इस निर्णय के पीछे मनोहारी प्रकृति का सौंदर्य ही तो है जो पथिक के मन को अपनी ओर खींचता है। भाई विनोदकुमार सरावगी ने बताया—'भारत के स्वर्ग कश्मीर की डल झील को न देखने वाले फतेह-सागर को देख लें। ऐसा लगता है मानो हम कश्मीर में स्वर्ग की सैर कर रहे हैं। एक-सवा मील पाल पर चले, फिर गन्तव्य स्थान के लिए पाल को छोड़ दाहिनी ओर घूमने वाली सड़क पर चले। सामने दीखने वाले मकान पर ही स्थित, 'जन शिक्षण' के सम्पादक श्री प्रतापसिंह सुराणा के बंगले मे विश्राम किया। लगभग एक घटा विश्राम कर वहा से विद्याभवन की ओर चले। कुछ ही कदम सडक पर चलने के बाद नहर की पटरी को हमने अपने पैरो के नीचे पाया। गिरि की गोद मे नहर का पानी दौड रहा था। दूसरी ओर वृक्षो की झुरमुटो मे यत्र तत्र मकान दिखाई दे रहे थे। मकान क्या थे, मानो पर्वत के अशो को मानव अपनी कला मे ढाल प्रकृति से प्रतियोगिता कर रहा हो। हम ऐसे स्थान से गुजर रहे थे, जहा प्रकृति का ही साम्राज्य हो। जिधर दृष्टि दौडाते वहाँ पत्थर, हरियाली और पानी ही नजर आते। इन तीन के अतिरिक्त और कुछ देखने को नही मिला। केवल हम लोग ही पथिक के रूप मे एक-दूसरे से बात कर रहे थे। मुक्त आकाश के नीचे उन्मुक्त विहारी थे। विहार के सस्कार उद्बुद्ध हो रहे थे और उसकी स्मृति ताजी बन रही थी। करीब आधा घटा तक प्राकृतिक दृश्यो मे अपने को खोते विद्या-भवन के 'ग्रामीण सस्थान' मे पहुचे। उसके डायरेक्टर भाई केसरीलाल बोरदिया ने स्वागत किया। फिर हम एक हाल मे गए जहा विद्यार्थी बैठे प्रार्थना कर रहे थे। आचार्यश्री के पधारते ही वह प्रवचन-सभा बन गई।

दादाभाई ने स्वागत करते हुए कहा—'हमारे अन्य अतिथि ... आदि से आते है पर आप पैदल चलकर आए है और उसमे भी साढे तीन मिनट पहले पहुचे है, यह आपकी कृपा का ही फल है। नैतिकता व सयम के सदेश की अत्यन्त आवश्यकता है। स... मानव की निष्ठा हो ऐसी अपेक्षा है। आपने इसकी पूर्ति की है

पचमी समिति के लिए प्रतिदिन 'गुलाव-वाग' की ओर वढने वाले पैर फतेहसागर की ओर मुड पडे। शौच से निवृत्त होकर जब आचार्यश्री फतेहसागर की पाल पर पहुचे तो अपने आपको एक नए वायुमडल मे पा रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो नरक मे स्वर्ग मे आ गए। वास्तव मे मध्य स्थिति वाले शहर नरक का चित्र दिखाते हैं। इन शहरो की गन्दगी से घृणा पैदा होती है। यदि वडे शहरो मे वाग, पार्क, नदी आदि प्राकृतिक स्थान न हो तो स्वच्छ प्राणवायु कहाँ मिले ? देहातो की शुद्ध जलवायु मे पलनेवालो को ये शहर नरक-से प्रतीत होते हैं। शहरो की प्रमुख सडको पर भले ही भौतिकता की चकाचौंध मिले, पर गली मे मुडते ही मुह वन्द करना पडता है।

फतेहसागर की पाल पर सडक है और उसकी छाती पर पर्वत सिर ऊचा किए फतेहसागर की फतेह (विजय) के गीत गा रहे हैं। इसे देखते ही वम्वई की मैरीन ड्राइव का दृश्य आखो के सामने आ गया। वहाँ सडक के एक ओर अरव सागर (प्रकृति की कला) थी तो दूसरी ओर अट्टालिकाओ की श्रेणी (मानव की कला) थी। यहाँ भी सडक के एक ओर फतेहसागर (मानव की कला) है और दूसरी ओर पर्वतो की पक्ति (प्रकृति की कला) है।

कला की प्रतियोगिता मे मानव प्रकृति से पीछे नही है। फतेहसागर इसका प्रमाण है। वृक्षो की श्रेणी अपनी छाया से सडक को ढाँकती हुई फतेहसागर के तल तक पहुच गई है, मानो सागर के स्वच्छ दर्पण मे आत्म-निरीक्षण करने मे उसे कोई नही रोक रहा है। चारो ओर प्रकृति अपना हास्य विखेर रही थी। हास्य की मात्रा इतनी अधिक थी कि शोकाकुल मानव पर भी हास्य अपना रूप दिखाता था। इसे देख आचार्यश्री के मुख से सहसा निकला—"क्या प्रकृति भी इतनी हँसती-खेलती है ? दिल चाहता है कि प्रकृति के आनन्द लूटते रहे।" मन के भावो को भापा मिल गई और आपने कहा—"ऐसा सोच रहे हैं कि आसोज शुक्ला त्रयोदशी से शरद पूर्णिमा तक तीन दिन का एकान्तवास फतेहसागर की पाल पर

करें।" इस निर्णय के पीछे मनोहारी प्रकृति का सौंदर्य ही तो है जो पथिक के मन को अपनी ओर खींचता है। भाई विनोदकुमार नगावगी ने बताया—'भारत के स्वर्ग कश्मीर की डल झील को न देखने वाले फतेह-सागर को देख लें। ऐसा लगता है मानो हम कश्मीर में स्वर्ग की सैर कर रहे हैं। एक-सवा मील पाल पर चले, फिर गन्तव्य स्थान के लिए पाल को छोड़ दाहिनी ओर घूमने वाली सड़क पर चले। सामने दीखने वाले मटक पर ही स्थित, 'जन शिक्षण' के सम्पादक श्री प्रतापसिंह सुराणा के बंगले मे विश्राम किया। लगभग एक घंटा विश्राम कर वहा से विद्याभवन की ओर चले। कुछ ही कदम सड़क पर चलने के बाद नहर की पटरी को हमने अपने पैरो के नीचे पाया। गिरि की गोद मे नहर का पानी दौड रहा था। दूसरी ओर वृक्षों की झुरमुटों मे यत्र तत्र मकान दिखाई दे रहे थे। मकान क्या थे, मानो पर्वत के अशो को मानव अपनी कला मे ढाल प्रकृति से प्रतियोगिता कर रहा हो। हम ऐसे स्थान से गुजर रहे थे, जहा प्रकृति का ही साम्राज्य हो। जिधर दृष्टि दौडाते वहाँ पत्थर, हरियाली और पानी ही नजर आते। इन तीन के अतिरिक्त और कुछ देखने को नही मिला। केवल हम लोग ही पथिक के रूप मे एक-दूसरे से बात कर रहे थे। मुक्त आकाश के नीचे उन्मुक्त विहारी थे। विहार के संस्कार उद्बुद्ध हो रहे थे और उसकी स्मृति ताजी बन रही थी। करीब आधा घंटा तक प्राकृतिक दृश्यो मे अपने को खोते विद्या-भवन के 'ग्रामीण संस्थान' मे पहुचे। इसके डायरेक्टर भाई केसरीलाल बोरदिया ने स्वागत किया। फिर हम एक हॉल में गए जहा विद्यार्थी बैठे प्रार्थना कर रहे थे। आचार्यश्री के पधारते ही वह प्रवचन-सभा बन गई।

दादाभाई ने स्वागत करते हुए कहा—'हमारे अन्य अतिथि मोटर आदि से आते है पर आप पैदल चलकर आए है और उसमें भी समय से साढे तीन मिनट पहले पहुचे है, यह आपकी कृपा का ही फल है। भारत को नैतिकता व संयम के संदेश की अत्यन्त आवश्यकता है। सद्मूल्यो मे मानव की निष्ठा हो ऐसी अपेक्षा है। आपने इसकी पूर्ति की है। अणुव्रत

आन्दोलन और साहित्य के द्वारा भारतीय समाज की सेवा की है—विशेष रूप से युवकों की। अनैतिकता हमारी नींव को खोखली कर रही है, इस समय में आपकी सेवा भुलाई नहीं जा सकती। विश्वयुद्ध के विरुद्ध आपने जो आवाज उठाई है उसका असर सारे देश पर है। निर्भय होकर स्वतंत्र आवाज उठाना सरल नहीं है। अहिंसा के लिए यदि हम कुछ कहें तो उसका असर सीमित होगा, क्योंकि हमारे जीवन में वह पूर्ण नहीं है। असर उनका पड़ता है जिन्होंने निस्वार्थ भाव से उसकी साधना में जीवन खपाया है। वेतन पाने के कारण कई व्यक्तियों का नैतिकता, अहिंसा आदि विषयों पर कुछ न कुछ बोलना कर्तव्य हो जाता है पर उनका असर उतना नहीं पड़ता है। कहने का अधिकार वास्तव में उनको है जो इस पथ पर चलते हैं। इसीलिए देश-विदेशों में भी आपका असर हुआ है। हमारा सद्भाग्य है कि आप उदयपुर पधारे हैं।'

श्री छगनलाल शास्त्री ने आचार्यश्री तुलसी का उपस्थित जनता को परिचय दिया। इसके बाद मुनिश्री नथमलजी ने अपने भाषण में कहा—'कुछ समय पहले हम प्रतापसिंहजी सुराणा के मकान में थे। मैं ऊपर बैठा था। सामने प्रकृति का मनोहारी दृश्य था। सौन्दर्य ही सौन्दर्य दीख रहा था। पहाड़ों पर मन्दिर था, ऊंचा लग रहा था। सोचा, बहिर्जगत में इतनी ऊंचाई है तो क्या अन्तर्जगत् में नहीं है? बाह्य दृश्य देखने के बाद अन्तर्जगत् में गया। ऐसा लगा बाहर से भी अधिक ऊंचाई अन्तर्जगत् में है, पर देखने वाला चाहिए। बहुधा बहिर्जगत् में ही विहार किया करते हैं, अन्तर में जाने का अभ्यास भी नहीं है।'

असावधानी

आचार्यश्री का प्रवचन हो रहा था। उस समय एक विद्यार्थी एल० सी० व्यास साइकिल पर आया। चेहरा दिग्भ्रान्त-सा था। धूप में तीव्र-गति से आने के कारण शरीर में थकान-सी दीख रही थी। आते ही कहा—'आचार्यजी कहां हैं? उन्हें कृषि विश्वविद्यालय में अभी चलना है।'

एक स्थानीय कार्यकर्त्ता भाई ने पूछा—'क्यो, क्या बात है ?' उसने अपनी बात खोलते हुए कहा—'सारे विद्यार्थी हॉल मे बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे है। निश्चित समय से अधिक समय हो गया पर आचार्यश्री तुलसी प्रवचन देने नही आए। प्रिंसिपल ने मुझे कहा है कि आचार्यजी जहाँ कहीं भी हो उन्हे निवेदन कर यहाँ लाओ। मैं पचायती नोहरे मे गया (जहाँ वे ठहरे हुए हैं) तब मुझे बताया गया कि आज वे विद्याभवन गए है। मैं भागा हुआ यहाँ आ रहा हूँ। आप जल्दी से आचार्यजी के पास सन्देश पहुचा दें कि उनको वहाँ चलना है, विद्यार्थी प्रतीक्षा मे बैठे है, नही तो वे शोर मचा देंगे।' उस भाई ने स्थानीय कार्यकर्त्ता मोहनलाल कोठारी से उनको मिलाया। कार्यकर्त्ता ने कहा—'इतनी भूल कैसे हो गई, वहाँ ता० २७ को कार्यक्रम था, आज प्रिंसिपल साहब ने सूचना कैसे निकाली ?' उसने फोन पर बात की, प्रिंसिपल ने अपने कार्यक्रम को सभाला, भूल से २७ के स्थान पर ता० २५ के लिए दुःख व्यक्त किया। आगे के लिए उन्होंने २७ के स्थान पर २८ तारीख का निश्चित किया। एक व्यक्ति की थोडी-सी असावधानी से कितना कार्य बढ जाता है, यह देखने को मिला। जीवन मे ऐसे अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को मिलते है, पर अनुभवो को लेकर कितने चलते हैं ?

आचार्यश्री के प्रवचन के बाद मुनिश्री रूपचन्दजी के कवितापाठ के द्वारा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। दादाभाई ने अपना पुस्तकालय आचार्यश्री को दिखाया। पुस्तको का सचयन अति उपयोगी लगा। फिर दादाभाई ने गोचरी के लिए निवेदन किया। आचार्यश्री उनके तथा प्रिंसिपल श्रीवास्तव के यहाँ गोचरी पधारे। वहाँ से आमेटवासी श्री कन्हैयालाल बाफणा के बगले पर आए जहाँ ठहरना निश्चित था। भोजन के बाद आचार्यश्री ने बहनो को शिक्षा दी।

वर्तमान और भविष्य

प्रेमलता चौदह-पन्द्रह वर्ष मे है और दसवी मे पढ रही है। उसकी

आन्दोलन और साहित्य के द्वारा भारतीय समाज की सेवा की है—विशेष रूप से युवको की। अनैतिकता हमारी नीव को खोखली कर रही है, इस समय मे आपकी सेवा भुलाई नही जा सकती। विश्वयुद्ध के विरुद्ध आपने जो आवाज़ उठाई है उसका असर सारे देश पर है। निर्भय होकर स्वतत्र आवाज़ उठाना सरल नही है। अहिंसा के लिए यदि हम कुछ कहे तो उसका असर सीमित होगा, क्योकि हमारे जीवन मे वह पूर्ण नही है। असर उनका पडता है जिन्होने नि स्वार्थ भाव से उसकी साधना मे जीवन खपाया है। वेतन पाने के कारण कई व्यक्तियो का नैतिकता, अहिंसा आदि विषयो पर कुछ न कुछ बोलना कर्तव्य हो जाता है पर उसका असर उतना नही पडता है। कहने का अधिकार वास्तव मे उनको है जो इस पथ पर चलते है। इसीलिए देश-विदेशो मे भी आपका असर हुआ है। हमारा सद्भाग्य है कि आप उदयपुर पधारे हैं।'

श्री छगनलाल शास्त्री ने आचार्यश्री तुलसी का उपस्थित जनता को परिचय दिया। इसके बाद मुनिश्री नथमलजी ने अपने भाषण मे कहा—'कुछ समय पहले हम प्रतापसिंहजी सुराणा के मकान मे थे। मैं ऊपर बैठा था। सामने प्रकृति का मनोहारी दृश्य था। सौन्दर्य ही सौन्दर्य दीख रहा था। पहाडो पर मन्दिर था, ऊचा लग रहा था। सोचा, बहिर्जगत मे इतनी ऊचाई है तो क्या अन्तर्जगत् मे नही है? बाह्य दृश्य देखने के बाद अन्त-जगत् मे गया। ऐसा लगा बाहर से भी अधिक ऊचाई अन्तर्जगत् मे है, पर देखने वाला चाहिए। बहुधा बहिर्जगत् मे ही विहार किया करते है, अन्तर मे जाने का अभ्यास भी नही है।'

असावधानी

आचार्यश्री का प्रवचन हो रहा था। उस समय एक विद्यार्थी एल० सी० व्यास साइकिल पर आया। चेहरा दिग्भ्रान्त-सा था। धूप मे तीव्र-गति से आने के कारण शरीर मे थकान-सी दीख रही थी। आते ही कहा—'आचार्यजी कहाँ है? उन्हे कृषि विश्वविद्यालय मे अभी चलना है।'

एक स्थानीय कार्यकर्त्ता भाई ने पूछा—'क्यो, क्या बात है ?' उसने अपनी बात खोलते हुए कहा—'सारे विद्यार्थी हॉल मे बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे है। निश्चित समय से अधिक समय हो गया पर आचार्यश्री तुलसी प्रवचन देने नही आए। प्रिंसिपल ने मुझे कहा है कि आचार्यजी जहां कही भी हो उन्हे निवेदन कर यहा लाओ। मैं पचायती नोहरे मे गया (जहा वे ठहरे हुए है) तव मुझे वताया गया कि आज वे विद्याभवन गए हैं। मैं भागा हुआ यहाँ आ रहा हूँ। आप जल्दी से आचार्यजी के पास सन्देश पहुचा दे कि उनको वहाँ चलना है, विद्यार्थी प्रतीक्षा मे बैठे है, नही तो वे शोर मचा देगे।' उस भाई ने स्थानीय कार्यकर्त्ता मोहनलाल कोठारी से उसको मिलाया। कार्यकर्त्ता ने कहा—'इतनी भूल कैसे हो गई, वहाँ ता० २७ को कार्यक्रम था, आज प्रिंसिपल साहव ने सूचना कैसे निकाली ?' उसने फोन पर वात की, प्रिंसिपल ने अपने कार्यक्रम को सभाला, भूल से २७ के स्थान पर ता० २५ के लिए दु ख व्यक्त किया। आगे के लिए उन्होंने २७ के स्थान पर २८ तारीख का निश्चित किया। एक व्यक्ति की थोडी-सी असावधानी से कितना कार्य वढ जाता है, यह देखने को मिला। जीवन मे ऐसे अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को मिलते हैं, पर अनुभवो को लेकर कितने चलते हैं ?

आचार्यश्री के प्रवचन के वाद मुनिश्री रूपचन्दजी के कवितापाठ के द्वारा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। दादाभाई ने अपना पुस्तकालय आचार्यश्री को दिखाया। पुस्तको का सचयन अति उपयोगी लगा। फिर दादाभाई ने गोचरी के लिए निवेदन किया। आचार्यश्री उनके तथा प्रिंसिपल श्रीवास्तव के यहाँ गोचरी पधारे। वहाँ से आमेटवासी श्री कन्हैयालाल वाफणा के वगले पर आए जहाँ ठहरना निश्चित था। भोजन के वाद आचार्यश्री ने वहनो को शिक्षा दी।

वर्तमान और भविष्य

प्रेमलता चौदह-पन्द्रह वर्ष मे है और दसवी मे पढ रही है। उसकी

वाणी मे मधुरता है और बोलने की कला जानती है। अध्ययन के साथ व्यावहारिकज्ञान से वह समृद्ध है। मार्ग मे वह आचार्यश्री के साथ चल रही थी। आचार्यश्री ने पूछा—'तुम कभी सत-दर्शन करती हो?' उसने कहा—'सप्ताह मे एक दिन रविवार को। और तो समय ही नही मिलता।' आचार्यश्री ने पूछा—'धर्म के प्रति रुचि कम है?' वहन ने कहा—'आज आपने धर्म की जो व्याख्या की, उसको सुनकर रुचि पैदा हुई है। आज तक धर्म की आवश्यकता का अनुभव नही हुआ, लेकिन अब लग रहा है कि यह बहुत आवश्यक है। इतने दिनो तक समझने का अवसर ही नही मिला।' आचार्यश्री ने अनुभव अभिव्यक्त किया कि जिन तत्त्वो को दूसरो को समझाने के लिए प्रयास करते हैं वे ही तत्त्व आज तेरापथियो के लिए भी प्रयास माँगते हैं।

इस अनुभूति के पीछे रहस्य यही है कि साधु-सम्पर्क का अभाव। एक नही ऐसे सैकडो भाई-बहन हैं जिन्हे स्कूल व कॉलेजो मे पढने के कारण साधुओ के सम्पर्क से दूर रहना पडता है। कुछ तो उन्हे समय नही मिलता और कुछ उनको प्रेरणा नही मिलती। दस-बारह वर्ष तक तो 'बच्चे खेलते हैं'—ऐसा कहकर माता-पिता टाल देते है। कुछ पढने के बाद वे माता-पिता से अधिक अपने को शिक्षित मानते है, तब उनका आदेश नही मानते। प्रारम्भ से धर्म-सस्कार न मिलने से वे कोरे रह जाते हैं। स्कूलो मे बाहरी ज्ञान मिल सकता है पर धर्म-तत्त्वो का नही। इसलिए धार्मिक ज्ञान हाथ न आने से वे धर्म के प्रति श्रद्धावान नही बन पाते। स्कूली वातावरण भी धर्म के अनुकूल नही मिलता। कुछ सगति का प्रभाव पडता है। कुल मिलाकर वे धर्म से दूर हो जाते हैं। बच्चो मे धर्म के प्रति अरुचि होने का पहला कारण है—अभिभावको की असावधानी। दूसरा कारण है—वातावरण और तीसरा कारण साधुओ की उपेक्षा-वृत्ति भी हो सकती है। वे कार्य मे व्यस्तता के कारण सम्भवत ध्यान नही देते हो, इसीलिए आज यह अनुभव किया जा रहा है कि तेरापथियो को भी सभालने की आवश्यकता है। अब भी यदि यह कमी पूरी होती है तो भविष्य को ऐसा

सोचने का अवसर नही मिलेगा।

ता० २७ को दोपहर मे साढे तीन वजे महिला महाविद्यालय मे आचार्यश्री का प्रवचन था। प्रात काल के प्रवचन के लाभ से जनता भी वचित नही रहना चाहती थी, इसलिए आचायश्री मूल स्थान मे प्रवचन कर सवा दस वजे भोपालपुरा की ओर चले। माग मे कल्याणमलजी वरडिया (जयपुर) को दर्शन देने जनरल हॉस्पिटल मे गए। कल्याणमलजी दो दिन से 'हृदय रोग' के शिकार हो गए थे। एक दिन मे चार वार रोग ने आक्रमण किया। वे सम्हल गए इसलिए उसके हाथो से वच गए। जव वे अचानक वीमारी के पजे मे फस गए तो समाज मे कुछ चिन्ता-सी हुई। वास्तव मे कल्याणमलजी का जीवन आदर्श जीवन है। रहन-सहन सादा है, विचारो मे सादगी है, प्रकृति से शान्त हैं। उन्हें न तो धन का मोह है और न वे किसी अधिकार के लिए लालायित है। समाज के मूक काय-कर्त्ता हैं। प्रारम्भ मे उन्होने पारमार्थिक शिक्षण सस्था मे सरक्षक के रूप मे सेवा दी, आज वे वर्षो से सयोजक के रूप मे है। कहना चाहिए सस्था के वे प्राण हैं। उनके नेतृत्व मे सस्था ने हर क्षेत्र मे विकास किया है। सस्था और परिवार मे उन्होने भेद नही देखा। घर की ममता को सस्था मे ला वैठाया। सारा जीवन सस्था को समर्पित कर दिया। सूक्ष्मता से देखें तो सस्था क्या है? व्यक्ति ही तो है। व्यक्ति है तो सस्था है, व्यक्ति नही तो सस्था निर्जीव ढाचा मात्र रह जाती है। एक व्यक्ति अपने मे सस्था को समेटे हुए रहता है। सस्था उसी की होती है जो उसमे अपनत्व जोडकर चलता है।

वहाँ से चलकर लोक-कला-मण्डल मे विश्राम किया। आचार्यश्री आज तीन-चार घटे का यही विश्राम करना चाहते थे पर मुनिश्री अमोलकचन्दजी ने अवसर का लाभ उठाकर एक कार्यक्रम और वना दिया। राजस्थान स्वास्थ्य विभाग के डायरेक्टर श्री एस० सी० मेहता ने चाहा कि आचार्यश्री हमारे वीच आकर हमे अपने उपदेश से लाभान्वित करें। आठ मास पूर्व जव आचार्यश्री वीकानेर मे थे उस समय मेहताजी वहाँ

पी० एम० ओ० थे। आचार्यश्री मे प्रभावित भी थे। इसलिए उ
निवेदन कराया कि आज विभिन्न प्रान्तो से मलेरिया-उन्मूलन के डायरे
तथा विशेषज्ञ आए हुए हैं। उनके बीच मे आपका भाषण होना चाहि
कुछ असुविधा होने पर भी आचार्यश्री ने उसे स्वीकार कर लिया।

दोपहर मे एक वजे सुलम्वर हाउस मे कार्यक्रम रहा। लगभग
डॉक्टर, कम्पाउडर और परिचारिकाएँ थी। श्री मेहता ने स्वागत
शब्द कहकर श्रद्धा अभिव्यक्त की। इसके वाद आचार्यश्री ने प्रव
करते हुए कहा—"इस वैज्ञानिक युग मे ससार ने सभी क्षेत्रो मे प्र
की है। चिकित्सा का क्षेत्र भी किसी से पीछे नही है। कुछ म
पहले साधारण रोगो से रोगी मर जाते थे, आज उन पर विजय प्र
कर ली है। एक समय था जव निमोनिया से मनुष्य काल के हाथ मे च
जाता था। आज आप लोगो ने टी० वी० पर नियन्त्रण कर लिया। कैं
पर भी सफलता पाने का प्रयास कर रहे हैं। कैन्सर का रोगी यदि प्रार
मे आपके पास आ जाये तो सम्भवत वह इतना असाध्य न भी हो,
वढने के वाद उसका उपचार कठिन हो जाता है।

"आज देश की सवसे वडी वीमारी है—'चरित्र की महामारी।
एक प्रान्त मे ही नही सर्वत्र व्याप्त है। फिर भी इसकी चिकित्सा के लि
कितने लोग तत्पर हैं। जव तक इस वीमारी को मिटाने का प्रयास न
करेंगे तव तव देश सुख की सास नही ले सकता। अनैतिकता का रोग
कम भयकर नही है। कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नही है। ऐसे कित
चिकित्सक हैं जो रोगियो के साथ प्रामाणिकता से पेश आते हैं। थोडे
स्वार्थ मे फसकर रोगियो को अधिक समय तक उलझाकर रखना क
मानवता है?' स्वार्थ का चक्र इस प्रकार चलता है कि व्यक्ति कर्तव्य
भूल जाता है। चिकित्सक का सम्पर्क लाखो व्यक्तियो से होता है। ऐ
स्थिति मे वह यदि चरित्रनिष्ठ, नैतिक और कर्तव्य-परायण होता है तो लाख
व्यक्तियो पर उसका असर पडता है। इसलिए आवश्यकता है कि वे अपन
जीवन को चरित्रवान् वनाए।" अन्त मे भावात्मक एकता की शब्दावली को

सभी डाक्टरो ने सकल्प के रूप मे स्वीकार किया।

कई डाक्टर केवल अग्रेजी भाषा ही जानते थे, इसलिए मुनिश्री दुलहराजजी ने अग्रेज़ी भाषा मे आचायश्री का परिचय दिया और उनके विचार डाक्टरो तक पहुँचाए।

अन्त मे राजस्थान मलेरिया उन्मूलन के डायरेक्टर श्री पटेल ने आभार-प्रदशन किया। फिर वहाँ से लोक-कला-मडल वापस आ गए।

आचार्यश्री सवा तीन बजे महिला महाविद्यालय मे प्रवचन करने पधारे। यहाँ ढाई सौ छात्राए हैं। प्रिंसिपल, प्रोफेसर, अध्यापिकाए वकीलो की तरह काली पोशाक मे थी। सबसे पहले प्रो० कृष्णकुमारी तलेसरा ने आचार्यश्री का बडे सुन्दर ढग से परिचय दिया। तदनन्तर आचायश्री ने प्रवचन किया। विद्यार्थियो के पाँच अणुव्रतो को खोलकर समझाया। अन्त मे सभी ने भावात्मक एकता को स्वीकार किया। इसके बाद साधु-साध्वियो की हस्तकला, पात्र-रगाई, सूक्ष्मपत्र आदि दिखाए। मुनिश्री सागरमल श्रमण ने कवितापाठ किया। अन्त मे प्रिंसिपल इन्दुशेखर ने आभार-प्रदर्शन किया।

२८ ९ ६२ राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय मे ४२८ विद्यार्थी है। विद्यालय की आयु अभी सात वर्ष है। पहले यहाँ कुछ नही था। प्रिंसिपल अमरसिंह राठौर ने इसको खडा किया है और अपना जीवन लगाकर इसको फलवान बनाया है। आज यहाँ पर विदेशी विद्यार्थी भी अध्ययन करते है। तीन दिन पहले जो आचार्यश्री के उपदेश सुनना चाहते थे, उन्हे आज सुनने का अवसर मिला। आचार्यश्री ने अपने प्रेरणा-दायी प्रवचन के द्वारा श्रोताओ को लाभान्वित किया।

इसके बाद प्रश्नोत्तरो का कायक्रम रहा। विद्यार्थियो की उत्कण्ठा का प्रमाण यह था कि ७७ प्रश्न सामने आए। आचायजी ने उनमे से प्राय समाहित कर दिए। प्रश्नो मे विविधता थी, कई धार्मिकता को लिए हुए थे, किसी मे दाशनिकता थी तो किसी मे व्यावहारिकता थी। कई हास्य के थे तो कई माग-दिशा माग रहे थे। यह कायक्रम बडा रोचक

था, पर समय के अभाव मे उसे स्थगित करना पडा। इसके बाद मुनिश्री रूपचन्दजी ने एक कविता रखी जिसमें कबूतर के रूपक मे मध्यम स्थिति वाले मानव की स्थिति का चित्रण था। लोगो ने उसे बहुत पसन्द किया। इसके बाद एक घटा तक अवधान का कार्यक्रम रहा। मुनिश्री दुलहराजजी ने सयोजकीय भाषण मे अवधान का परिचय दिया और उनको खोलकर समझाया। मुनिश्री श्रीचन्दजी ने इस कार्य को सम्पन्न किया। कुल मिलाकर ढाई घटे से अधिक कार्यक्रम रहा। बारह बज गए थे। फिर भी विद्यार्थियो का आकर्षण कम नही हुआ था। यदि घटे भर और भी चलता तो भी वे नही उकताते। वापस आते समय हमने देखा, विद्यार्थियो के चेहरे श्रद्धा से अवनत थे। कार्यक्रम का प्रभाव उनके मुख पर दीख रहा था।

दोपहर मे चालीस-पचास व्यक्ति दक्षिण भारत से आए। वे एक माँग लेकर आए थे कि गुरुदेव दक्षिण भारत पधारें।

२८ ६ ६२ आज से श्रीमोहन कोठारी, केसरीसिह तलेसरा, तेजसिह कावडिया, सौभागसिह तलेसरा, प्रतापसिह तलेसरा आदि तेरह युवको ने घर-घर जाकर अणुव्रत अधिवेशन के लिए जन सम्पर्क प्रारम्भ किया।

२९ ९ ६२ आचार्यश्री ने प्रात कालीन प्रवचन मे 'धर्म और समाज' विषय पर एक नया प्रकाश बिखेरा।

रात को मुनिश्री नथमलजी ने इसी विषय पर भाषण दिया। तदनन्तर आचार्यश्री ने भी उस विषय को अधिक स्पष्ट कर जनता को एक नव-आलोक दिया।

६ १० ६२ अखिल भारतीय अणुव्रत आन्दोलन का तेरहवा वार्षिक अधिवेशन आज प्रारम्भ हो गया। पजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर, आध्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश, बगाल, उत्कल असम आदि प्रान्तो से अणुव्रती भाई-बहन इस अधिवेशन मे भाग लेने आए। अन्य दर्शनार्थी व्यक्तियो की सख्या हजारो मे थी। देश के चिंतक, पत्रकार और समाज-सेवियो ने भी भाग लिया।

सर्वप्रथम पारमार्थिक शिक्षण संस्था की बहनों की प्रार्थना से आयोजन प्रारम्भ हुआ। श्री छगनलाल शास्त्री ने आगम, पिटक व वेद के सूत्रों का पाठ किया। स्वागताध्यक्ष श्री हीरालाल कोठारी ने अपना भाषण पढ़ा। स्वागत-मन्त्री श्री नन्दलाल कछारा ने प्राप्त सन्देशों का वाचन किया। श्री रविशंकर महाराज ने आदि-प्रवचन (उद्घाटन) करते हुए कहा—'मैं देहातो मे अधिक घूमता हू। मै अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि सुनने और पढने को अच्छी बातें मिलती है पर आचार-व्यवहार मे बहुत कम उतर पाती है। इसीलिए हम धर्म से दूर हटते जा रहे है। इसका मूल कारण है तालीम गलत है। तालीम के बिना मनुष्य सुख की ओर दौडता है पर आत्म-शांति की ओर नही। इसीलिए कल्याण नही हो रहा है।

'तालीम पहले कर्मेन्द्रियो को देनी चाहिए, पीछे ज्ञानेन्द्रियो को। बच्चो को प्रारम्भ मे तालीम देने से उनका शरीर मजबूत होगा। उन पर ऋतुओ का असर नही होगा। शरीर की तालीम यदि हमे मिलती तो बाहर से अनाज आदि मगाना नही पडता। अन्त करण की तालीम सन्त पुरुष के पास मिलती है। इसकी तालीम मिलने पर सुनने योग्य सुनेंगे और देखने योग्य देखेंगे। हृदय शुद्ध होने से जो सुनेंगे-देखेंगे वह शुद्ध होगा। अन्त करण शुद्ध न होने से ज्ञान मर जाएगा। वह हमारा नाश करेगा। इसलिए पहले अन्तर की शुद्धि करे।'

अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचन्दलाल दफ्तरी ने प्रगति-विवरण पढकर सुनाया।

केन्द्रीय श्रममन्त्री अणुव्रती श्री जयसुखलाल हाथी ने बोलते हुए कहा—'अणुव्रत आन्दोलन मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए है। नियम व सयम के बिना मानव सामाजिक जीवन भी सुख से नही बिता सकता। पहले मस्तिष्क मे विचार आते है, फिर आचरण मे। मनुष्य का शरीर वृक्ष है जिसका मूल ऊर्ध्व मे है। मूल को जल से सीचने से पत्ते हरे-भरे रहेंगे, नही तो वे सूख जाएंगे। मस्तिष्क मे सत् सस्कारो का जल सिंचन करना

होगा। यह कार्य आचार्यश्री जैसे सन्त पुरुष कर सकते हैं।

'समाज मे भाई-भाई मे प्रेम नही है। इसलिए समाज नीति से च्युत हो रहा है। रिश्वत आदि को पाप नही मानता इसलिए भ्रष्टाचार वढ रहा हैं। समाज को आदर्श वनाने के लिए अणुव्रतो का पालन आवश्यक है। ये तव ही आसान वनेंगे जव मन मे उसका निश्चय करेंगे।

'अणुव्रत जीवन की छोटी-छोटी वात कहता है। पर मिलकर वे ही वडी वन जाती हैं। जैसे विन्दु-विन्दु मिलकर सागर वन जाता है, उसी तरह छोटे-छोटे व्रतो के आचरण से जीवन आदर्श वन जाता है। इसीलिए मैं अणुव्रत आन्दोलन का महत्त्व मानता हू।'

इसके वाद भूतपूर्व राणावास छात्रसघ की ओर से कुशलराज जैन ने 'प्रयास' नामक एक हस्त-पत्रिका आचार्यश्री को समर्पित की।

तदनन्तर आचार्यश्री का प्रवचन प्रारम्भ हुआ।

आपने समाज-रचना के वारे मे कहा

"एक कल्पना आती है कि एक ऐसा समाज होना चाहिए जहाँ हिंसा, व सग्रह न हो। न कानून हो और न दण्ड देनेवाला कोई सत्ताधीश हो सव समान हो। जैन शास्त्रो के अहमिन्द्र के समान जीवन हो। यह कल्पना अवश्य ऊँची है, पर आदर्श है। अणुव्रत आन्दोलन मध्यम कल्पना करता है, जो सवके लिए व्यवहार्य हो।

१ उसकी कल्पना मे—समाज, वर्ण, जाति और रग के भेदो की विपमता न हो, घृणा का लेश भी न हो।

वहाँ सत्य का मूल्य सर्वोपरि हो सम्प्रदाय का नही। सम्प्रदाय-वादियो ने परम सत्य को भुलाकर सम्प्रदाय को सव कुछ मान लिया। सम्प्रदाएँ सत्य की उपलव्धि की साधन थी, वे ही साध्य वन वैठी। इसलिए साम्प्रदायिकता का मोह वढ गया। अणुव्रत सम्प्रदायो को वुरा नही मानता। वह चाहता है भूल का सुधार हो और सम्प्रदाए सत्य तक पहुचने के लिए द्वार वनें।

२ राज्य के कानून अधिक न हो। कानून जव विवशता उत्पन्न

करते हैं तब आन्तरिक दोप अधिक प्रवल होते है।

३ व्यक्ति-स्वतन्त्रता का मूल्य हो—कोई भी अपने हित के लिए दूसरो के स्वार्थों को न कुचले, किसी का दमन व शोपण न हो। अन्याय का प्रतिकार भी अहिंसक भाव से हो।

४ अनर्थ हिंसा न हो। निजी आवश्यक सम्पत्ति का सग्रह भी अनावश्यक न हो।

५ आक्रमण न हो। सबको स्वतन्त्रता से जीने का अधिकार हो। कोई किसी की स्वतन्त्रता को न छीने।

६ परस्पर सौहार्द हो।

ये नियम तो केवल दिशासूचक है। इन्हे समाज की कल्पना तक पहुचने के लिए जो गति है वही चरित्र-विकास है। प्रत्येक अणुव्रती इस ओर गतिशील रहे।

रचनात्मक कार्य

खेती, बुनाई और सिलाई ही रचनात्मक कार्य नही है। व्यक्ति का निर्माण क्या रचनात्मक काय नही है? गाँव के सभी व्यापारी व्यापार मे मिलावट न करें, मनुष्य को मनुष्य मान और किसी भी हरिजन से सेवा न लें, किसी से घृणा न करें। यदि ऐसा होगा तो वास्तव मे ही यह बहुत वडा रचनात्मक काय है। मेरी दृष्टि मे यदि यह काय होता है तो अणुव्रत को समाज-रचना तक सुगमता से पहुचाया जा सकता है।

राष्ट्रभाषा

व्यवस्था की दृष्टि से राज्यो का एकीकरण सम्भव नही लगता पर भाषा के आधार पर मानव-जाति की एकता को तोडना बुद्धिमानी नही है। भारत मे राष्ट्रभाषा का प्रश्न चल रहा है। एक आवाज प्रवल हो उठी है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो, दूसरी आवाज अग्रेजी को कुछ काल तक सहभाषा के रूप मे रखना चाहती है। दोनो ओर चिंतक सोचते है।

होगा। यह कार्य आचार्यश्री जैसे सन्त पुम्प कर सकते हैं।

'समाज मे भाई-भाई मे प्रेम नहीं है। इसलिए समाज नीति से च्युत हो रहा है। रिश्वत आदि को पाप नही मानता इसलिए भ्रष्टाचार वढ रहा है। समाज को आदर्श वनाने के लिए अणुव्रतो का पालन आवश्यक है। ये तव ही आसान वनेगे जव मन से उनका निश्चय करेंगे।

'अणुव्रत जीवन की छोटी-छोटी वात कहता है। पर मिलकर वे ही वडी वन जाती हैं। जैसे विन्दु-विन्दु मिलकर सागर वन जाता है, उसी तरह छोटे-छोटे व्रतो के आचरण से जीवन आदर्श वन जाता है। इसीलिए मैं अणुव्रत आन्दोलन का महत्त्व मानता हू।'

इसके वाद भूतपूर्व राणावास छात्रसघ की ओर से कुशलराज जैन ने 'प्रयास' नामक एक हस्त-पत्रिका आचार्यश्री को समर्पित की।

तदनन्तर आचार्यश्री का प्रवचन प्रारम्भ हुआ।

आपने समाज-रचना के वारे मे कहा

"एक कल्पना आती है कि एक ऐसा समाज होना चाहिए जहाँ हिंसा, व सग्रह न हो। न कानून हो और न दण्ड देनेवाला कोई सत्ताधीश हो सव समान हो। जैन शास्त्रो के अहमिन्द्र के समान जीवन हो। यह कल्पना अवश्य ऊँची है, पर आदर्श है। अणुव्रत आन्दोलन मध्यम कल्पना करता है, जो सवके लिए व्यवहार्य हो।

१ उसकी कल्पना में—समाज, वर्ण, जाति और रग के भेदो की विपमता न हो, घृणा का लेश भी न हो।

वहाँ सत्य का मूल्य सर्वोपरि हो सम्प्रदाय का नही। सम्प्रदाय-वादियो ने परम सत्य को भुलाकर सम्प्रदाय को सव कुछ मान लिया। सम्प्रदाएँ सत्य की उपलब्धि की साधन थी, वे ही साध्य वन वैठी। इसलिए साम्प्रदायिकता का मोह वढ गया। अणुव्रत सम्प्रदायो को बुरा नही मानता। वह चाहता है भूल का सुधार हो और सम्प्रदाए सत्य तक पहुचने के लिए द्वार वनें।

२ राज्य के कानून अधिक न हो। कानून जव विवशता उत्पन्न

करते है तब आन्तरिक दोष अधिक प्रबल होते हैं।

३ व्यक्ति-स्वतन्त्रता का मूल्य हो—कोई भी अपने हित के लिए दूसरों के स्वार्थों को न कुचले, किसी का दमन व शोषण न हो। अन्याय का प्रतिकार भी अहिंसक भाव से हो।

४ अनर्थ हिंसा न हो। निजी आवश्यक सम्पत्ति का सग्रह भी अनावश्यक न हो।

५ आक्रमण न हो। सबको स्वतन्त्रता से जीने का अधिकार हो। कोई किसी की स्वतन्त्रता को न छीने।

६ परस्पर सौहार्द हो।

ये नियम तो केवल दिशासूचक है। इन्हे समाज की कल्पना तक पहुचने के लिए जो गति है वही चरित्र-विकास है। प्रत्येक अणुव्रती इस ओर गतिशील रहे।

रचनात्मक कार्य

खेती, बुनाई और सिलाई ही रचनात्मक कार्य नही है। व्यक्ति का निर्माण क्या रचनात्मक काय नही है? गांव के सभी व्यापारी व्यापार मे मिलावट न करें, मनुष्य को मनुष्य मान और किसी भी हरिजन से सेवा न लें, किसी से घृणा न करें। यदि ऐसा होगा तो वास्तव मे ही यह बहुत बडा रचनात्मक कार्य है। मेरी दृष्टि मे यदि यह काय होता है तो अणुव्रत को समाज-रचना तक सुगमता से पहुचाया जा सकता है।

राष्ट्रभाषा

व्यवस्था की दृष्टि से राज्यो का एकीकरण सम्भव नही लगता पर भाषा के आधार पर मानव-जाति की एकता को तोडना बुद्धिमानी नही है। भारत मे राष्ट्रभाषा का प्रश्न चल रहा है। एक आवाज प्रबल हो उठी है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो, दूसरी आवाज अग्रेजी को कुछ काल तक सहभाषा के रूप मे रखना चाहती है। दोनो ओर चिंतक सोचते है।

मेरी दृष्टि मे भाषा का उद्देश्य है—भावो को सुगमता से दूसरो तक पहुचाना। राष्ट्र की एक भाषा न होने से एकता मे दरारें पड जाएगी। प्रान्तीय भाषा को सुरक्षित रखते हुए यदि देश की एक भाषा होती तो मेरे-जैसे उपदेशको के लिए बहुत उपयोगी होती। दक्षिण मे कन्नड और तमिल भाषा चलती है। वहाँ जाकर उन भाषाओ का अध्ययन कर बोलने मे समय लगता है। यदि देश की एक भाषा होती है तो एक-दूसरे के निकट आ जाते है।"

अणुव्रत सेमिनार

मध्याह्न मे अणुव्रत-सेमिनार का कार्यक्रम रहा। सबसे पहले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्री बाकेबिहारी भटनागर ने अपने निबन्ध का वाचन किया। तत्सम्बन्धी प्रश्न चले। फिर मुनिश्री नथमलजी ने अपने निबन्ध-पत्र मे मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया और आन्दोलन के भावी कदम की रूपरेखा दी। श्री रामचन्द्र जैन एव 'जीवन साहित्य' के सम्पादक श्री यशपाल जैन ने भी अपना निबन्ध वाचन किया। प्रत्येक निबन्ध पर कतिपय प्रश्न चले।

रात को तीसरी बैठक हुई। श्री छगनलाल शास्त्री, उदयपुर जिला समिति के अध्यक्ष श्री तेजसिंह मेहता, अखिल भारतीय अणुव्रत-समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन तथा श्री रामचन्द्र जैन के अणुव्रत आन्दोलन पर विशेष भाषण हुए। भाषण के बाद प्रवक्ताओ से तत्सम्बन्धी प्रश्न पूछे गए। प्रश्नोत्तर से वातावरण मे सजीवता आ गई।

अन्त मे अखिल भारतीय अणुव्रत-समिति के मत्री श्री जयचन्दलाल दफ्तरी ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

दर्शन परिषद

७ १० ६२ दर्शन परिषद मे श्री रामचन्द्र जैन ने अपने विचार व्यक्त किए। इसके बाद जैन दर्शन के विचारक श्री श्रीचन्द रामपुरिया

ने कहा—'परिग्रह का भीषण रूप छाया हुआ है। दूध मे पानी मिश्रण करना आदि व्यापार की अनैतिकता इसी का परिणाम है। अणुव्रत-आन्दोलन ने एक दृष्टि दी कि जीवन मे शुद्धि आवश्यक है। निवृत्ति आन्दोलन भी जीवन मे सुन्दर रचना करता है। रचनात्मक कार्य नव-निर्माण मे ही नही होता, विकृतियो को दूर करने मे भी है। अणुव्रत-आन्दोलन यही करता है। व्यक्ति-निर्माण से समाज और राष्ट्र का भी निर्माण होता है। व्यक्ति आगे चलनेवाले को देखे और अपनी गति मे वेग लाए। सामूहिक परिवर्तन उसी अवस्था में होगा जब एक-एक व्यक्ति ध्यान देकर अपना परिवतन करेगा। अणुव्रत-दर्शन यही है कि अकेला व्यक्ति निर्भय होकर आगे बढे।

अणुव्रत से निवृत्ति मे भी प्रवृत्ति आती है। एक व्यक्ति घट्टी से आटा पीसता है, दूसरा कल की चक्की मे। दोनो मे आरभ है, पर घट्टी कम आरभी है और स्वास्थ्यप्रद है। श्रावक महारभ को दूर कर कम आरभ से जीवन को यापन करे, जो देश व समाज पर बोझिल न बने। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को टटोले, वह स्वय जीवन का शोधन करे और अपनी अनुभूति को दूसरो तक पहुचा दे।

अणुव्रत समन्वयवादी है। जैन दशन निवृत्तिपरक है और वैदिक दशन प्रवृत्तिपरक। जैन दर्शन आध्यात्मिक है और वैदिक दर्शन सामाजिक। अणुव्रत मे दोनो का समन्वय हो जाता है।

प्रथम प्रवतक ऋषभदेव तीर्थङ्कर होने से पहले गृहस्थ थे। उस समय उन्होने असि, मसि और कृषि का प्रवृत्ति-दर्शन दिया। तीथङ्कर जीवन से निवृत्ति और गृहस्थ जीवन से प्रवृत्ति का आधार लेकर उसे अपने जीवन मे जोडकर चले।

इस अवसर पर दिल्ली राज्य के मुख्य सचिव श्री लक्ष्मीनारायण जोशी ने कहा—'शब्दो मे स्वत कोई शक्ति नही होती। व्यक्ति की तपस्या और चिन्तन का योग मिलने से उनमे शक्ति व्यक्त हो जाती है। चिन्तन जितना गभीर होगा शब्दों मे भी उसका प्रतिविम्ब दिखाई देगा। कहना उसी का

सार्थक होता है जो जीवन मे आचरण करते हैं। सुनी-पढी बात का उतना ही असर होता है जितना होना चाहिए। चरित्रशील व्यक्ति का असर अधिक होता है। ऐसे चरित्रमूलक आयोजन मे सम्मिलित होना पर्व जितना महत्त्व रखता है।

जीवन की सफलता के तत्त्व जो पहले थे वे ही आज हैं, केवल प्रयोग का अन्तर है। सस्था या मन्दिर मे जाने मात्र से धार्मिक नही बनता। आचरण के बिना धर्म व्यवहार से दूर रह जाता है। वह क्या धर्म जो जीवन को न उठा सके। अणुव्रत-आन्दोलन धर्माचरण का व्यावहारिक रूप है। वह आपको एक-एक सीढी पर चढने को कहता है। एक ही सीटी को अन्तिम सीटी मान न बैठ जाएँ। दौडकर चढना और नही चढना दोनो ही आवश्यक नही है। सीढियो की ऊँचाई देख घबराए भी नहीं और एक सीटी चढकर निराश भी न बनें। धीरे-धीरे उस पर पाँव बढाते रहें। चाहे आप एक सीढी ही चढें पर चढें अवश्य। प्रश्न होता है एक सीढी चढने से क्या होगा? नही चढने का अर्थ है अवश्यभावी गिरना। चढना अपने मे दूसरे तत्त्व को छिपाए हुए है, वह है नही गिरना। एक सीढी चढने का अर्थ है गिरने के सारे द्वारो का बन्द होना। अगर गिरने के द्वार बन्द नही होते हैं तो चढना व्यर्थ है। धर्म पर चढने का अर्थ है अधर्म का मार्ग बन्द होना।

गीता मे अध्यात्म मार्ग का शिष्य अर्जुन को बनाया है। मन की चचलता को मिटाने का मार्ग सत्प्रवृत्ति कहा है—अभ्यास और वैराग्य। *वैराग्य जीवन को दिशा देता है और अभ्यास गति। दिशा ठीक होने से चींटी की चाल चलने से भी लक्ष्य तक पहुँच जाएगे। लक्ष्य की ओर गति न होने से हवाई जहाज की गति से भी नही पहुँच सकेंगे।* हमारे बीच आचार्यश्री जैसी विभूतियाँ विद्यमान है, उनसे लक्ष्य निश्चित कर उस ओर प्रवृत्ति करें।'

मुनिश्री नथमलजी ने जैन-दर्शन पर बोलते हुए कहा—'एक भक्त भगवान् से क्षमायाचना करता हुआ कहता है—भगवन्! आप निराकार

हैं, मैंने आपको ध्यानावस्था मे साकार बना लिया है। निराकार को साकार बनाकर अपराध किया है। व्रत जो अनाकार है उन्हे आकार देने की जो चर्चा हो रही है क्या वह उसी अपराध की पुनरावृत्ति नही है, पर मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अनाकार को आकार दिये बिना सतोष नही मानता।

किसी भी कल्पना को आकार देने के लिए शब्दो का आलम्बन चाहिए। अणुव्रतियो का जीवन कैसा हो—भगवान् महावीर की वाणी मे देखें

१ अनारभ अपरिग्रह अहिंसा।

२ अल्पारभ अल्पपरिग्रह अथ हिंसा।

३ बहुआरभ बहुपरिग्रह अनथ हिंसा।

वह आदश जीवन होता है जो अपने जीवन मे अनारभ, अपरिग्रह और अहिंसा को लेकर चलते है। इस पर चलनेवाले विरले होते है। जो समाज मे रहकर धार्मिक जीवन विताना चाहते हैं वे प्रवृत्ति बिना चल नहीं सकते। व्यापार के बिना अर्थार्जन नही होता। इसलिए उनके लिए प्रवृत्ति आवश्यक हो जाती है। प्रवृत्ति मे विवेक करना होगा कि दूसरे त्रिक अल्पारभ, अल्पपरिग्रह और अथ हिंसा को अपनाए या तीसरे त्रिक को। कल्पना करो—समाज मे रहनेवाला दिगम्बर जीवन नही बिता सकता। उसे कपडे की आवश्यकता होती है। कपडे मे भी विवेक होना चाहिए कि कौन-कौन अल्पारभी है और कौन बहुआरभी। धार्मिक व्यक्ति बहुआरभ को स्वीकार नही करेगा। हाथ से कपडा बुनने मे पाप लगेगा और सीधा लेने मे पाप से बच जाएगे, यह भ्रम है। प्रवृत्ति मे करना, करवाना और अनुमोदना तीनो समान होते हैं। स्वय न करने पर भी यदि उसमे आपका अश है, समर्थन है तो आप उस हिंसा से कैसे बच पाएगे।

व्रती बन गए। अनर्थ हिंसा छोड दी। एक पक्ष प्रबल हो गया, पर क्या निष्क्रिय बनकर बैठे रहेंगे ? सम्भव नही है। जीवन को धारण करने के लिए प्रवृत्तियाँ करनी ही होगी। अणुव्रत का अर्थ केवल निवृत्ति ही नही है। निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति का परिष्कार है। चलना प्रवृत्ति है। वह

पाप भी है और धर्म भी। असावधानी से चलना पाप है और सावधानी से धर्म। प्रवृत्ति की शोधन-प्रक्रिया का विवेक अणुव्रत देता है।

अहिंसा हमारे समाज-रचना की आधार बन सकती है पर व्याप्त नहीं। व्याप्त और आधार मे अन्तर होना है। घडे और जल मे आधार-आधेय सम्बन्ध है और वृक्ष तथा वृक्षत्व मे व्याप्त सम्बन्ध है। अहिंसा जीवन मे व्याप्त बने। गृहस्थ अल्पारभ, अल्पपरिग्रह और अहिंसा जो जीवन का आदर्श है, उसका प्रयोग करे।

मनुष्य प्रत्येक वस्तु को साकार देखना चाहता है। समय को आकार दिया घडी बन गई, ज्ञान को आकार दिया पुस्तक बन गई। वैसे ही वह व्रत को भी आकार देना चाहता है।'

'जीवन साहित्य' के सम्पादक श्री यशपाल जैन और कांग्रेसी नेता श्री कुम्भाराम आर्य ने भी अपने विचार दिए।

अन्त मे आचार्यप्रवर ने अपना प्रवचन करते हुए कहा—"दर्शन का अर्थ है—दृष्टि। दृष्टि और गति सबके पास है। दृष्टि सही होगी तो गति भी सही होगी। दृष्टि असत्य होने से गति सत्य कैसे होगी? जहाँ दृष्टि और गति मे विपर्यास आ जाता है वहा कार्य विगड जाता है। दृष्टि का विपर्यास न होने से गति होती है और गति का विपर्यास न होने से चरित्र सम्यक् होता है। दृष्टि और गति के सामजस्य मे जीवन की पवित्रता है।"

सामाजिक जीवन-दर्शन

उन्नत समाज के जीवन के लिए मनीषियो ने अर्थ और काम को स्वीकार किया। वे जव आगे चले तो धर्म और मोक्ष को भी मान्यता मिल गई। इस प्रकार चारो की स्वीकृति ही जीवन की पूर्णता है। इनमे दो साध्य और दो साधन हैं। काम और मोक्ष साध्य हैं, अर्थ और धर्म साधन हैं। अर्थ काम का साधन वनता है, पर मोक्ष का नही। काम यानी आवश्यकता की पूर्ति। जहा अर्थ और काम की मात्रा बढ जाती है वहा सामाजिक जीवन भी सरस नही वनता।

जीवन को विभक्त किया नही जाता पर उसमे अनेक विभक्तियो का मिला-जुला रूप रहता है। बाल यौवन और जरा को जीवन से विभक्त नही कर सकते पर जीवन मे तीनो होते हैं। जीवन मे काम की भावना और मोक्ष की भावना दोनो साथ-साथ रहती ह। काम और अथ के नियत्रण के लिए धर्म और मोक्ष है। अपेक्षा है दोनो के द्वारा दोनो का नियत्रण हो। अर्थ से सर्वथा मुक्त सामाजिक जीवन की कल्पना असभव है। अपेक्षा यही है कि अर्थ और काम की सीमा रहे।

प्रश्न उठता है अर्थ के उपार्जन मे अणुव्रती के लिए क्या सीमा है? समाधान है—सीमा की अपेक्षा वह साधन-शुद्धि पर अधिक बल देता है। सौ रुपये भी अशुद्ध साधन से ग्रहण करना अनुचित है। शुद्ध साधन से करोड रुपये भी अग्राह्य नही हैं। अशुद्ध साधन के बिना इतना सग्रह हो सकता है या नही यह प्रश्न दूसरा है। अणुव्रत प्रवृत्ति का शोधन मागता है।

जीवन मे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो चलती है। साधु केवल निवृत्ति मे ही रहते हैं। और गृहस्थ प्रवृत्ति मे ही, ऐसा नही है। अन्तिम लक्ष्य पूर्ण निवृत्ति होने पर भी वर्तमान मे सत्प्रवृत्ति अपेक्षित होती है। साधु-जीवन निवृत्ति के साथ सत्प्रवृत्ति-प्रधान होता है। गृहस्थ जीवन मे भी सत् की प्रवृत्ति और असत् की निवृत्ति आवश्यक है, अन्यथा जीवन का सतुलन नही रहेगा।

अणुव्रत अथ-हिसा और अनर्थ-हिसा का मार्ग दिखाता है। अनर्थ हिसा, अनर्थ असत्य और अनर्थ परिग्रह की निवृत्ति के लिए वह सकेत देता है। सार्थ और अनर्थ की परिभाषा स्वय बनाना समुचित नही है। कानून को स्वय हाथ मे न लेकर उस पर चलना ही श्रेयस्कर होता है।

सर्वथा हिसा से सामाजिक प्राणी नही बच सकता तब अभ्यासकाल मे कम से कम व्यर्थ हिसा से तो बचे, जिससे दूसरो को कष्ट की अनुभूति न हो। इसी प्रकार अनर्थ हिसा और अनथ सत्य और अनर्थ परिग्रह से दूर रहे, यही व्यापक दर्शन है।"

दर्शन परिपद् जमी हुई थी। वक्ता का भापण चल रहा था। सात वर्प का एक वच्चा साहस कर आगे आया और चरण-स्पर्श करने आचार्यश्री के पास गया। ऊचे पट्ट पर आसीन होने के कारण वच्चे का हाथ पहुच नही रहा था। अन्तर की भावना प्रेरित कर रही थी, पर परवशता थी। दिमाग मे एक उपाय सूझा, पट पर चढ गया। स्वयसेवक ने वच्चे को रोका क्योकि वह वहिर्जगत् मे था, व्यवहार को देख रहा था। आचार्यश्री अन्तर्जगत् मे थे। वे उसकी भावना को देख रहे थे। इसीलिए उन्होने वच्चे को नही रोका और स्वयसेवक से कहा—"ऐसी क्या वात है? वच्चा ही तो है।" आशातना वहा होती है जहा गुरु के मन के प्रतिकूल हो, गुरु की दृष्टि को न लाघने वाला कार्य 'आशातना' नही है।

अणुव्रत विचार परिपद्

८ १० ६२ भारत के प्रसिद्ध लेखक श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपने विचार प्रकट किए। तत्पश्चात् नेशनल चर्च के फादर विलियम ने वोलते हुए कहा —"अणुव्रत-आदोलन इन्सान को इन्सान वनाता है। इसमे धर्म और जाति का भेद नही है। इन्सान के दिमाग मे तगदिली है, वही उसे वाहर सभी चीज़ो मे दिखाई देती है। कल की वात है—मैं वैठा था। पास मे चार-पाच वहनें थी। वे पूछ रही थी—'फादर साहव! आप यहा कैसे आए?' उन्हे कितना आश्चर्य हुआ। होटलो मे सव जाते हैं, कोई नही पूछता कि तुम यहा कैसे आए? सिनेमा मे सव जाते हैं, पर किसी को सन्देह नही होता कि यहा क्यो आए? और खेल-तमाशो मे जाने पर भी कोई प्रश्न नहीं पूछता। पर धर्मस्थान मे यह प्रश्न उठता है कि यहा कैसे आए? मुझे सुन आश्चर्य हुआ कि कितनी तगदिली का खयाल मनुष्य अपने पास रखता है। मेरे यहा आने का यदि किसी को श्रेय है तो आचार्यश्री तुलसी को है। उनकी उदारता से खिचा-खिचा मैं यहा आया हू। जव आचार्यश्री के अनुयायी मेरे पास महाप्रभु ईशु का फरमान सुनने आए तो पहले मैं घवराया। सोचा, हमला करने आए हैं। असलियत मालूम हुई कि

आचार्यश्री तुलसी ने दूसरे धर्मों की बातें सुनने भेजा है, तब मे मेरे मन मे आकर्षण हो गया। उनकी उदारता से मैं प्रभावित हो गया। उनके पास गया। बातचीत की तो आकर्षण और बढ गया। मैं अणुव्रती बन गया। मुझे लगा, अणुव्रत की वही शिक्षा है, जो महाप्रभु ईशु की है। जब मैं रूस जाने लगा तो आशीर्वाद लेने आचार्यश्री के पास आया। जाते समय आपने पूछा—'क्या तुम शराब पीते हो?' मैंने उसी समय उसे छोड दिया। रूस, स्विट्जरलैंड आदि कई देशो मे गया पर शराब नही पी। बहुत मनुहारे हुई। भय दिखाया गया कि यदि शराब नही पीओगे तो सुरक्षित नही रह पाओगे। ठण्डे मुल्क मे रहकर भी मैं बीमार नहीं पडा, क्योकि आचार्यश्री का आशीर्वाद मेरे साथ था। मैं अकेला नही था। हर घडी मे आपको साथ पाता था। अणुव्रत आन्दोलन से मेरे दिल मे तबदीली आयी है, दूसरो के भी आ सकती है यदि वे इसे जीवन मे लें। अपने तगदिली खयाल को दूर रखकर जो भी इसके असूलो पर चलेगा वह सच्चा इन्सान बन जाएगा।'

रात को कवि-सम्मेलन हुआ। विचार परिषद् का कार्य अवशिष्ट रह गया था। इसलिए कवि-सम्मेलन की निश्चितता नही थी। इसीलिए स्थानीय कवियो को आमन्त्रित नही किया गया। कवि-सम्मेलन मे भाग लेनेवाले मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री दुलीचन्दजी, मुनिश्री रूपचन्दजी, मुनिश्री सागरमलजी थे एव श्रावको मे कविश्री गगाधर शास्त्री, श्री महेन्द्र भनावत, श्री नरेन्द्र भनावत, श्री ताराचन्द बोथरा, श्री देवेन्द्र हिरण, श्री तरुण ने अपनी-अपनी कविता पढी।

नैतिक शिक्षा परिषद्

८ अक्टूबर को राजस्थान के उप-शिक्षामंत्री श्री निरजननाथ आचार्य ने कहा—'आचार्यश्री समाजसेवक बनाना चाहते हैं और परीक्षा लेना भी जानते हैं। इसके लिए मुझे ही माध्यम बनाया है। जैनेन्द्रजी ने खाली करने का सूत्र दिया था। यदि सारा खाली करता हू तो मूर्ख बन

जाता हू। इसलिए थोडी-सी व्यावहारिकता को रखकर शेष खाली कर वोलूगा। पर आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा है उससे भरपूर होकर निवेदन करूगा।

एक मास पहले आया था, बात समर्पित करने आया था। वह करके चला गया। एक घटे तक आपने उदारता से सुनी और सुझाव भी दिए। आपके व्यक्तित्व ने, आपके दर्शन ने जनमानस मे स्थान वना लिया है। वह फूट रहा है और विस्तार पाता जा रहा है। गगा की तरह वहता हुआ जनमानस को पवित्र करता जा रहा है। अणुव्रत-आन्दोलन वर्ग विशेष मे बधा न रहकर वह भारत की भूमि मे जनमानस को वदलता हुआ वढ रहा है।

मैं एक वात लेकर आया था। वह इससे परे है। विद्यार्थी जगत् से मेरा सम्वन्ध है। मेरा विश्वास है उनको सभालने से अणुव्रत को वल मिलेगा। वर्तमान मे जो कुछ हो रहा है उसको आँख वन्द कर देखते रहें और भविष्य को सभालने के लिए सुझाव मागें।

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'भविष्य को ही नही वर्तमान को भी वाधना चाहिए। अतीत से प्रकाश और आशा लेनी चाहिए। अतीत और भविष्य मे दोनो का विचार एक था पर वर्तमान को लेकर विचार-भेद था।' मैंने कहा—'वर्तमान को छोड देना चाहिए।' आपने कहा—'वर्तमान को वाधना चाहिए।' मैंने तर्क दिया—'आनेवाली खेती को सभाल लेने से कार्य बन जाएगा अन्यथा वर्तमान को भी खो देंगे।'

आचार्यश्री दूरदर्शी हैं। वर्तमान को खोकर भविष्य को वनाने में कठिनाई होगी। इसलिए वर्तमान को हाथ मे रखकर उसकी शुद्धि करते चले जाए। वर्तमान को न छोडकर उसको हथियार वनाकर चलेंगे तो वर्तमान मे शुद्धि आएगी और भविष्य भी अपना हो जायगा।

मैंने कहा—'वर्तमान वह वीमारी है, जिसका कोई इलाज नही। इसलिए भविष्य को पकडना चाहिए।'

आचार्यश्री ने समझाया—'वर्तमान का भी सहयोग लेना चाहिए,

उससे हाथ क्यो खीचा जाय।

अन्त मे मैं नतमस्तक हुआ और उसे स्वीकार किया।

अणुव्रत आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओ का प्रश्न सामने आता है। आन्दोलन का प्रवाह आप से निकलकर जनमत तक पहुँचता है। पर इस गगा के नीर को हरिजन के गन्दे मकान तक ले जाने के लिए भागीरथ दिखाई नही देता। जल मे वेग न होने से ज्यो-ज्यों आगे बढता है वह सूखता जाता है। इसलिए जनमत तक, देश के कोने-कोने तक ले जाने के लिए प्रगतिशील कार्यकर्त्ताओ का समूह चाहिए। राजनीति क्षेत्र मे दस कायकर्त्ता चाहिए तो सौ मिल जाएगे पर समाज-सेवा के कार्य मे दस बनते है तो सौ गायब हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ उनको यश, कीर्ति और ख्याति नही मिलती। उनके पास केवल एक सन्तोष मिलता है। इस क्षेत्र में यदि कार्यकर्त्ताओ का सगठन तैयार होता है तो अणुव्रत आन्दोलन का यह प्रवाह तेजी से आगे बढेगा। अणुव्रत आन्दोलन विद्यार्थियो के पास, जेल के कैदियों के पास, कसाइयो के पास चला गया है इसलिए कार्य-कर्त्ताओ का दल सरलता से तैयार हो सकता है। यदि यह अभाव मिटता है तो आन्दोलन जनमत को जागृत करने मे सफल होगा।

आचार्य गौरीशकरजी ने शिक्षा के माध्यम भाषा पर अपने विचार व्यक्त किए।

बी० बी० जौन (शिक्षा सचालक, राजस्थान) ने कहा—'आज के युग मे मनुष्य सफलता के लिए प्रयत्नशील है पर गति को भूल गया है। अणु-व्रत आन्दोलन ने एक दिशा दी है पर विद्यार्थियो मे अभी तक जागृति नही आयी है। वे बाह्य सुख-सुविधा मे फसकर अपना सुनहला समय खो रहे हैं। विद्यार्थी धनुष के समान हैं जो लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रत्यचा मागते हैं। बच्चे गेंद से खेलते हैं, जो केन्द्र के सहारे घूमता है। शिक्षाप्रेमी विद्यार्थी भी एक लक्ष्य निश्चित करें। उसे केन्द्र मानकर अपनी प्रवृत्तियो को चलाते रहें तो लक्ष्य बीधा जा सकता है। मुझे आशा है युवक विद्यार्थी वर्ग इसमे जागरूक रहेगा।'

साध्वीश्री कस्तूरांजी ने ज्ञान-प्रसार पर अपने विचार व्यक्त किए। गत दिवस के अवशिष्ट कार्यक्रम—अणुव्रतियो के अनुभव एव सस्मरण भी इस अवसर पर हुए। श्री राणमलजी (कोप्पल), श्री गगाविशनजी (आमदपुर मण्डी), श्री राजेन्द्रप्रसाद (राजसमन्द), श्री मगतमलजी सचेती (सरदारशहर), चर्मकार सघ के कार्यकर्त्ता श्री देवीलाल हरिजन और अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री मोहनलालजी कठौतिया ने अपने सस्मरण सुनाए। कई सस्मरण बढे महत्त्वपूर्ण थे।

पूर्णाहुति-समारोह

८ १० ६२ पारमार्थिक शिक्षण सस्था की बहनो के मगलाचरण से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचन्दलाल दफ्तरी ने अपना सयोजकीय भाषण दिया। राजस्थान राज्य के उप-वित्तमन्त्री श्री चन्दनमल वैद ने अणुव्रत आन्दोलन की सफलता पर प्रकाश डाला। इसके बाद आचार्यप्रवर ने अणुव्रती बनने की प्रेरणा देते हुए कहा—"नियमो का वाचन अभी होने वाला है। जो अणुव्रती है वे ध्यान से सुनें और जो नही हैं वे भी समझने का प्रयत्न करें तथा इस दृष्टि से सुनें कि हमे भी अपना कुछ योग देना है। सख्या से मुझे ममत्व नही है। सख्या का महत्त्व राजनीति क्षेत्र मे हो सकता है। अध्यात्म क्षेत्र मे शक्ति का महत्त्व होता है। एक सयमनिष्ठ हजार व्यक्तियो का कार्य कर सकता है और हजार शिक्षित मिलकर भी एक व्यक्ति जितना प्रकाश नही दे पाते। सख्या-वृद्धि से मोह नही है पर उससे नफरत भी नही है। यदि विवेकशील सकल्प के साथ अणुव्रतो को ग्रहण करते हैं तो उनका स्वागत भी है। ऐसे चरित्रशील व्यक्तियो का सगठन आवश्यक भी है क्योकि अनैतिकता बहुत आगे बढ गई है।

प्रारम्भ मे मैंने इक्कीस व्यक्तियो की माग की थी। कइयो ने सलाह दी कि नियमो का वाचन न होकर, योजना के नाम पर व्यक्तियो की माग करनी चाहिए। मेरी आत्मा ने इसे स्वीकार नही किया। मैंने इसे कम-

जोरी माना। योजना को स्पष्ट जनता के सामने रखा और नामो के लिए आह्वान किया। प्रथम आह्वान मे पिचहत्तर व्यक्तियो ने अपने नाम दिए। साहस बढा और योजना की सफलता दीखने लगी। हजारो व्यक्तियो ने पूर्णत अपना योग दिया है। आज भी मैं आह्वान करता हू कि कोई अपना नाम देना चाहे तो वह दे।' अणुव्रतियो के सात नाम और आए। इसके बाद मन्त्री ने नियमो का वाचन किया। अन्त मे आचार्यश्री ने भाई-बहनो को आन्दोलन के नियमो का सकल्प की भाषा मे परित्याग कराया।

अन्त मे दीक्षान्त भाषण मे आचार्यश्री ने बोलते हुए कहा—'आप लोगो ने सकल्प के रूप मे नियमो को ग्रहण किया है। शब्द जड होते हैं, वे केवल दिशासूचक हैं। आप शब्दो मे ही न अटक जाए। उसकी आत्मा को समझकर नियमो का पालन करें। शब्दो की सकरी पगडण्डी पर चलनेवाला व्रतो मे गली खोजने का प्रयत्न करता है, तब शब्द हाथ मे रह जाते हैं और आत्मा छूट जाती है। इसलिए व्रतो की पृष्ठभूमि को समझें और आत्म-साक्षी से उनका पालन करें। दूसरो की आलोचना से घबराकर अपना पथ छोड देना कायरता है। अच्छा तो यह है कि अपने आचरणो से दूसरो को आलोचना करने का अवसर ही न दें। आत्म-निष्ठा से ही व्रतो का पालन करते रहें। कभी भी अपने को अकेला अनुभव न करें। समस्या सामने आए वहाँ पथ-दर्शन ले आगे बढते रहें। भूल हो जाए तो उसे छिपाकर न रखें। प्रायश्चित्त ले उसकी शुद्धि कर लें। धैर्य से आगे बढते रहें और नियमो मे जागरूकता रखें।''

अन्त मे अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारसजी जैन ने आभार-प्रदर्शन किया।

पूर्णाहुति समारोह के बाद अणुव्रती कार्यकर्त्ताओ की बैठक हुई, जिसमे विभिन्न प्रान्तो से आए हुए कार्यकर्त्ताओ ने भाग लिया।

अखिल भारतीय अणुव्रत-समिति के अध्यक्ष श्री पारसजी जैन, कार्यकर्त्ता श्री डालचन्द बोरदिया (भीलवाडा), श्री गगाधर शास्त्री (बीकानेर), श्री पन्नालाल बाठिया (जयपुर), श्री मोहनीदेवी (दिल्ली) ने अपने-अपने

स्थान पर होने वाले प्रचार की गतिविधि दी और सुझाव भी दिए। परस्पर कार्यकर्त्ताओ का परिचय हुआ । अन्त मे आचार्यश्री ने कार्यकर्त्ताओ को मार्ग-दिशा दी ।

१० १० ६२ अध्यापक कालिकाप्रसाद पाठक अस्सी वर्ष मे है, अभी आप अवसरप्राप्त है । श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी विद्यालय (कलकत्ता) के साथ इनका प्राय प्रारम्भ से ही विशिष्ट सम्पर्क रहा है। समाचारपत्रो एव 'जैन भारती' पत्रिका मे आचार्यश्री के सम्बन्ध मे पढने से साक्षात् दर्शन की प्यास बन गई थी। सयोग माग रही थी। अभी वे अपने शिष्य श्री रायचन्द बोथरा के साथ आचार्यश्री के दर्शनार्थ आए हुए थे। बीस दिन तक रहकर जब वे जाने लगे तो हृदय भर गया। आँखें डबडवा गयी और निवेदन करने लगे—'हम जा रहे हैं, शरीर से दूर हो रहे है पर भाव रूप से आपका सम्बन्ध नही छूट रहा है। आत्मा का मिलन नही होता तो इतना दु ख नही होता।'

आचार्यश्री से वे पूर्व-परिचित नही होने पर भी दर्शनार्थी इतनी घनिष्ठता अपने मे देखते है, इसके पीछे आचार्यश्री का व्यक्तित्व व आत्मीयता ही है, आचार्यश्री प्रत्येक व्यक्ति की बात को ध्यान से सुनते हैं, ज्ञात बात को भी सुनते हैं। कहने वाले की उपेक्षा न करने से वह अपना सम्मान मानता है। वार्तालाप मे परस्पर इतने घुल-मिल जाते है कि दूसरा आचार्यश्री को अपने से भिन्न नही मानता। परिणामत हृदय खुल जाता है और आत्मीयता जुड जाती है। बालक, बूढे, शिक्षित और अशिक्षित सभी सम्पर्क मे आने वाले आचार्यश्री को अपने से दूर मानकर नही जाते। उनका व्यवहार ही दूसरो को अपनी ओर खीच लेता है। यही कारण है कि जीवन मे पहली बार मिलने वाले एक नही अनेक व्यक्ति अपने साथ आत्मीयता के भाव लेकर जाते है ।

१४ १० ६२ आचार्यश्री समाज का तत्त्वशिक्षा स्तर ऊचा उठा हुआ देखना चाहते हैं। अन्तर हृदय मे एक तडप है और इस ओर वे सजग भी है। समय-समय पर अनेक प्रकार की प्रवृत्तिया चलाते रहे है। अध्यात्म

शिक्षा की कक्षा, महिला-सम्मेलन, युवक-सम्मेलन, प्रौढ-सम्मेलन, प्रश्नोत्तर आदि कार्य रखे जाते है। कभी उनके सकोच को खोलने के लिए भाषण व प्रतियोगिता पक्ष-प्रतिपक्ष आदि साधनो को लिया जाता है, कभी एक विषय पर व्याख्या देकर उनके प्रश्नो को जगाकर समाहित किया जाता है। इस चातुर्मास मे प्राय प्रति रविवार को यह कार्य चला। आज का विषय था 'जैनधर्म और पुरुषार्थवाद'। इस विषय पर मुनिश्री नथमल ने प्रकाश डाला और एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया। अनेक जिज्ञासाए उभरीं, प्रश्न हुए और समाधान दिया। आयोजन के बाद आचार्यश्री के पास हम लोग कई साधु बैठे हुए थे। नए दृष्टिकोण को समझ रहे थे। आचार्यश्री ने समझाया और निराशा मे प्रसन्नता अभिव्यक्त की। मुख से निकला—'आजकल प्रवचन करने का मन कुछ कम हो रहा है। लोग कहानी-किस्सो मे अधिक रुचि लेते हैं। रामायण सुनाई जाय तो हजारो आ जाएगे और ध्यान से सुनेंगे। तत्त्व की बात सुनाई जाती है तो नीद लेते हैं। बच्चो की-सी रुचि है, समय के साथ यह बचपन भी मिटाना चाहिए। जीवन भर बच्चा ही रहना तो उचित ।ही है, कुछ तो आगे बढना चाहिए।' इन शब्दो ने निराशा को सामने ला दिया और प्रसन्नता इसलिए हुई कि कुछ जागरूकता आयी है, समझने की ओर मन मुडा है।

नेता को निराशा इसलिए आती है कि प्रयत्न करने पर भी अनुयायी उसका मूल्य नही समझते, अपनी-अपनी उदासीनता नही मिटाते। नेता प्रेरणा दे सकते है, पथ दे सकते हैं और प्रक्रिया दे सकते हैं पर चलना पथिक को ही पडता है। यात्रा की सारी सुविधा देने पर भी यदि कोई चलने से जी चुराए तो मार्गदर्शक उसका क्या करे? उसने तो अपना कर्तव्य निभा लिया। परिणाम उनको भोगना पडता है जो कर्तव्य को नही समझते। क्या यह विश्वास किया जाय कि समाज आचार्यश्री की तडप को समझकर अपनी उदासीनता को मिटाएगा और अपनी रुचि को मोडकर ज्ञान की वृद्धि करेगा?

१५ १० ६२ रात को स्थानीय एम० वी० कॉलेज के तीन विद्यार्थियो का एक दल आचार्यश्री के पास आया। उन्होने बताया—'अभी अणुव्रत-अधिवेशन मे तीन दिन तक और तीनो समय हमने भाग लिया। कार्यक्रम को देखा, वक्ताओ के भाषण सुने, नियम सुने और अणुव्रतियो के सस्मरण सुने। कुल मिलाकर अधिवेशन ने हमारे मानस मे आकर्षण पैदा कर दिया। आकर्षण ही नही, सक्रिय बना दिया। हम उसे मूर्त रूप देने के लिए अपने कॉलेज मे अणुव्रत विद्यार्थी सगठन बनाना चाहते है। आपका आशीर्वाद लेने आए हैं। यदि वह हमारे साथ रहा तो हम अपने कार्य मे सफल सिद्ध होगे।'

कॉलेज के विद्यार्थियो मे नैतिकता के प्रति आन्तरिक रुचि होना शुभ सकेत है। आयोजन की सफलता इसी मे है कि वह अपने कार्य के प्रति आकर्षण पैदा कर दे। संख्या की समस्या मे उलझने से यथार्थ चित्र दिखाई नही देता। इस अधिवेशन से अनेक ने प्रेरणा ली। सभव है उनकी प्रेरणा को भाषा का आकार नही मिला हो, मिला भी हो तो यहा तक न पहुचा हो। एक भी व्यक्ति प्रेरणा लेकर जीवन मे सक्रिय बनता है तो अनेक उससे प्रकाश पा सकते हैं। क्या एक दीपक मे हजारो दीपको को ज्योति देने की शक्ति नही होती? आवश्यकता है विद्यार्थी वर्ग के लिए प्रत्येक नगर से कुछ विद्यार्थी सक्रिय बनकर सामने आए। देश की स्वतन्त्रता की तरह अनैतिकता के पजे मे फसे देश का उद्धार करने के लिए वे जीवन लगा दें। क्या विद्यार्थी अपनी कार्य-शक्ति का परिचय नही देंगे?

१७ १० ६२ आज रात को 'रामचरित्र' व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। अन्य वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष कुछ विलम्ब से अवश्य प्रारम्भ हुआ पर नही की अपेक्षा जो होता वह अच्छा है। प्राय भाद्र मास मे प्रारम्भ होता है पर उस समय आचार्यश्री पाचनशक्ति व प्रतिश्याय के कारण स्वस्थ नही थे। इस समय भी वे पूर्ण स्वस्थ नही है, पर नागरिको की माग थी इसलिए आज प्रारम्भ किया गया।

१६ १० ६२ मित्र परिषद (स्वयसेवक) के सदस्य श्री हीरा-लाल दूगड सपत्नीक आचार्यश्री के दर्शनार्थ कलकत्ता से आए हुए है। तीस दिन से वे सेवा मे है। उनकी प्रार्थना पर आचार्यश्री उनके यहा गोचरी पधारे। गुरुदेव को अपने प्रागण मे देखने भक्ति-विभोर हो गए। आवेश मे मनुष्य पागल वनता है, पर भक्ति मे भी वह सुध-बुध खो बैठता है, ऐसा आखें देख रही थी। त्याग से सच्चा स्वागत किया। उन्होने कहा—'मुझे क्रोध वहुत आता है, वात-वात पर आता है। इस दुर्गुण के दुष्परिणाम से अपरिचित भी नही हू। साधना कर रहा हू। आज से वारह मास तक इसका परित्याग करना चाहता हू। जिस दिन क्रोध मुंह से वाहर निकल जाए उस दिन घृत और नमक नही खाऊगा।' उन्होने वताया—"सात वर्षों से मैंने दवा छोड दी। मेरा दौहित्र वीमार हो गया। टाइफाइड (भाव) था। मुझे आप पर श्रद्धा है, इसलिए मैंने उसे दवा नही दी। आपका नाम लेकर केवल पानी पिलाया और वह स्वस्थ हो गया। जुकाम से लेकर भगन्दर तक मैंने अपनी वीमारी 'तुलसी' के जाप से ठीक कर ली। किसी भी डाक्टर या वैद्य का मुँह नही देखा।"

भाई की घटना सुनते ही विस्मय हुआ। क्या यह श्रद्धा का जादू नही? वीमार अवस्था मे श्रद्धा पर श्रद्धा टिकाकर चलना अति कठिन है। उस समय रोगी व अभिभावक सोचते हैं कि येन-केन-प्रकारेण वह ठीक हो जाय। वैद्य व डॉक्टरो, यथाशक्ति सव को टटोल लिया जाता है, पर आत्म-विश्वास पर चलना कल्पना मे नही आता। कुछ ही दिनो मे देखा, एक भाई वीमार हो गया। उसने एक वैद्य की दवा ली, साथ मे डाक्टर की दवा चली। दो दिन वाद दूसरे वैद्य को सभाला। कुल मिलाकर सवकी प्रतिक्रिया का फल उसे रोग की दीर्घायु मे भोगना पड रहा है।

रोगी चाहता है कि मैं जल्दी से जल्दी ठीक हो जाऊ। कोई भी व्यक्ति वैद्य के रूप मे सलाह दे, दवा वताए, उस पर प्राय विश्वास कर चलने को तैयार हो जाता है। इस पथ पर अधिकाश चलते हैं, इसलिए इसमे चमत्कार नही मिलता। जादू वहा मिलता है जहा सवसाधारण से

हटकर आत्मविश्वास पर चला जाता है। तर्कवादी युग मे श्रद्धा पर विश्वास होना कठिन होता है। अगर यत्किंचित् हो जाए तो उस पर चलना अति कठिन है। चलने वाले नि सन्देह चमत्कार देखते हैं।

१९ १० ६२ शौच से निवृत्त होकर आचार्यश्री स्थान पर आ रहे थे। भाई की प्रार्थना पर अस्वस्थ व्यक्ति को दर्शन देने उनके घर पधारे। मार्ग मे 'कुम्हारवाडा' आ गया। प्रजापति सर्जन मे सलग्न थे। उनके चलते चक्र को देखकर आचार्यश्री ने अपने पैर थामे। कुछ मिनट कला को ध्यानपूर्वक देखा। मुँह से निकला—'लोग कहते है कुम्हार वह होता है जो पढना-लिखना नही जाने। पर अनुभव कहता है—कुम्हार मे वह कला होती है जो पढे-लिखो मे नही होती। प्रजापति पैरो मे रुदनेवाली मिट्टी मे अपनी कला उडेल उसे उपयोगी बना देता है। कई पढे-लिखे दूसरो का निर्माण तो दूर, अपना भी नही कर पाते। कितना अच्छा हो पढे-लिखे प्रजापति से कला सीखकर मनुष्यो को उपयोगी बना दें।'

२० १० ६२ कल दीक्षा-समारोह है, दीक्षार्थिनी बहनें व भाई सपरिवार यहाँ आ गए है। यत्र-तत्र परिवार की बहनो के गीत कानो मे पडते है। ब्रह्ममुहूर्त्त मे दीक्षार्थी भाई-बहनें जब गुरुदेव के दर्शनार्थ आते है, तब वे गीत अनायास लोगो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। जिज्ञासा होती है—ये गीत क्यो गाए जाते हैं ? इसकी भूमिका मे कौन-सी भावना क्रियाशील है ?

पहला कारण है—नारी जाति मे सगीत के प्रति सहज रुचि होती है। वे अपनी भावना को गीत के माध्यम से समाज तक पहुचाती हैं। विवाह के समय भी गीत का सहारा लेती हैं। प्रभु-स्मरण मे सगीत साथ-साथ चलता है। यो तो भारत मे सगीत जनजीवन का अग है। सगीत-कलाकार से लेकर अनपढ कृषक तक सारे सगीत मे निमग्न रहते हैं। अकेलेपन मे, दुख मे और थकान मे सगीत मित्र बनता है। नारी जाति की इसमे सहज रुचि होती है।

दूसरा कारण है—अपने आसन का गौरव बढाना। अपरिचित लोगो

को स्थिति से अवगत कराना।

तीसरा कारण है—विरक्त को उसके कर्तव्य का बोध कराना और उस पर स्थिर रहने की प्रेरणा देना।

दोपहर मे दीक्षार्थिनियो का एक जुलूस निकाला गया। सराफा बाजार, धानमडी, मोटी चौकटा, कपडा बाजार, सिंधी बाजार आदि मार्ग मे चलकर वापस आचार्यश्री के दर्शनार्थ पचायती नोहरे मे आ गया। जुलूस मे हजारो भाई-बहन साथ थे और दर्शक के रूप मे हजारो नागरिक मकान व दुकान की छतो पर खडे थे। जयनारो के साथ जुलूस अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ रहा था। जुलूस मे गाजे-बाजे का कोई आडम्बर नही था। स्थानीय भाई बाजे के पक्ष मे थे पर वैरागी भाई-बहनो ने जिस जुलूस में बाजा हो उस मे भाग लेने से इनकार कर दिया। केवल दीक्षार्थियो को मोटर मे बिठाया गया था, वह भी इसलिए कि दर्शको को सुगमता से दिखाई दे सकें।

रात को विदाई समारोह मनाया गया जिसमे दीक्षार्थियो को गृहस्थ जीवन से विदाई देते हुए उनके भावी साधु-जीवन की सफलता की शुभ-कामना की गई। कई बहनो ने वक्ता के रूप मे भाग लिया। इस अवसर पर श्रोताओ को पारमार्थिक शिक्षण सस्था का परिचय भी दिया गया। उसमे होने वाली शिक्षा व साधना से भी अवगत कराया गया।

२१ १० ६२ दीक्षा का अर्थ है—तद्विषयक व्रतो की स्वीकृति। जैन साधुओ के नियम व चर्या को स्वीकार करना जैन दीक्षा कहलाती है। कार्यकर्त्ता की दृष्टि से जैन तत्त्व को स्वीकार करना भी जैन दीक्षा होती है पर रूढ अर्थ मे वह कुछ काल के लिए ही नही होती। जीवन-पर्यन्त उसका पालन अनिवार्य होता है। दीक्षा वह रेखा है जहा पर गृहस्थ समाज की सीमा समाप्त होकर साधु-जीवन मे प्रथम चरण रखा जाता है। यथार्थ मे जैन दीक्षा जीवन मे एक बार ली जाती है। साधारण नियम भी जीवन-पर्यन्त के कालमान मे पककर भारी बन जाते हैं। जो स्वय महान् हो उनकी गुरुता और अधिक हो जाती है। इसलिए जैन-दीक्षा का विशेष महत्त्व है।

जैन मे भी तेराण्थी दीक्षा, एक आचार्य के अनुशासन मे मन को समर्पित करने से विशिष्ट वन जाती है। इस दुर्गम पथ पर चलने वाला मचमुच प्रशसा का पात्र है।

दीक्षा का आयोजन राजमहल के विशाल प्रागण मे सम्पन्न हुआ। उपस्थिति लगभग पन्द्रह-वीस हजार थी। महाराणा भगवतसिंहजी ने भी स्वय दीक्षा के कार्यक्रम मे भाग लिया। कार्यक्रम साढे आठ से ग्यारह वजे तक चला। स्थान की अनुकूलता के कारण स्वयसेवको को व्यवस्था मे सफलता मिली। आयोजन का सयोजन प्रो० श्री भैरूलाल धाकड ने किया। तेरापथी महासभा के मत्री श्री जेठमल भन्साली ने दीक्षा का महत्त्व वताया। महासभा के अध्यक्ष श्री जव्वरमल भडारी ने दीक्षार्थियो का परिचय दिया। दीक्षार्थिनी वहनो ने भी अपने विचार व्यक्त किए। आज्ञा-पत्र पढा गया।

अन्त मे आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे कहा—"अभी आपके सामने भारतीय सस्कृति का ऊचा आदर्श उपस्थित होनेवाला है। यह केवल देखने का ही नही अपितु समझने व मनन करने का है। दीक्षा को लेकर कई बौद्धिक भाई मेरे मे वेमेल देखते हैं। वे कहते हैं—'एक ओर आचार्य जी अणुव्रत-आन्दोलन के माध्यम से लाखो का कल्याण करना चाहते हैं, युगद्रष्टा के रूप मे सामने आते हैं। दूसरी ओर वे दीक्षा जैसी सडी-गली रुढियो का मोह नही छोडते।'

"इन मेरी दो प्रवृत्तियो मे वे विरोध देखते हैं। वस्तुतथ्य यह है कि ये दोनो प्रवृत्तियाँ एक ही श्रेणी का क्रमिक विकास हैं। जीवन के चरित्र-निर्माण का मार्ग मेरी दृष्टि मे त्याग है। अणुव्रत-त्याग के अतिरिक्त और क्या है? और महाव्रत उसी त्याग-पथ के आगे का विकास है। मुझे तो इन दोनो प्रवृत्तियो मे असामजस्य नही लगता। वे भाई भी ध्यान से इसका चिन्तन करे। वे मेरी वात को समझ नही पा रहे हैं और मैं भी शायद उनकी भावना को नही समझ रहा हू। दीक्षार्थी दीक्षा को स्वीकार कर कही दूसरे लोक मे नहीं जाते। वे समाज और देश मे ही रहते है। केवल कार्यक्षेत्र का

परिवर्तन करते हैं। गृहस्थ के कार्य से सन्यास ले अध्यात्म-पथ पर चलना चाहते हैं। उनके लिए यही कार्य है कि वे स्वय की साधना करते हुए समाज के जीवन को चरित्रशील बनाएँ।

"व्रत थोपे नही जाते, स्त्रय ग्रहण किए जाते है। जहाँ वहकाव और प्रलोभन मे फसाकर दीक्षा का सस्कार दिया जाता है वहाँ वह दीक्षा दीक्षा नही, उसके नाम पर विडम्बना है, अन्याय है। जहाँ साधना के कठोर पथ पर चार-पाँच वर्ष तक चलकर जीवन को तपा लिया जाता है और उसके बाद व्रत स्वीकार किए जाते है वहा मुझे कोई बाधा दिखाई नही देती। मैं तो सोचता हूं—प्रत्येक व्यक्ति को इस चारित्रिक पथ पर चलने के लिए भावना पैदा करनी चाहिए। चलने का अवसर मिले तव भावना प्रतिपल करनी चाहिए। जीवन-निर्माण का यह आवश्यक पथ है।"

प्रवचन के बाद आचार्यश्री ने दीक्षार्थियो के अभिभावको की मौखिक स्वीकृति जनता के सामने लेकर उन्हे जैन आगमो के वाक्यो के द्वारा मुनि-दीक्षा दी। दीक्षित होने के बाद साधु-जीवन की आवश्यकता, चर्या की शिक्षा दी तथा केश-लुचन किया।

अन्त मे उन्नीस-वर्षीय श्री माणकचन्द वैद ने आगे आकर अपने उभरते यौवन मे जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का स्वय सकल्प कर एक आदर्श उपस्थित किया।

दीक्षा के वायुमण्डल मे वह आर्द्रता थी जो श्रोताओ के मानस को विरक्ति-रस से भिगो रही थी। इसलिए रावजी ने आचार्यश्री से निवेदन किया—'आज प्रत्यक्ष तो सात दीक्षा ही हुई है पर मानसिक दीक्षा तो हजारो की हो गई है।'

श्री मणीराम शर्मा साठवे वर्ष मे प्रवेश पा रहे हैं। वे पोस्टमास्टर हैं। कोटा से छुट्टी मे आए हुए है। अवकाश मागने का एक कारण था—क्षयरोग के पजे मे फस गए। उनकी लडकी (प्रिंसिपल, गाधी विद्यालय, सुजानगढ) ने पिता को सलाह दी कि आप आचार्यश्री की सेवा मे उदयपुर चले जाइए। वहाँ उनका चातुर्मास है। आपका स्वास्थ्य सुधर जाएगा।

मणीरामजी उदयपुर आए। और तीन मास से यहाँ हैं। जब आए थे तब खाट पर पड़े थे। डाक्टर की ओर से चलने-फिरने का भी निषेध था। आचार्यश्री की सेवा मे पाँच दिन रहने के वाद उन्हे अनुभव हुआ कि मेरे मे शाति और शक्ति का सचार हो रहा है। आज वे अपने को रोगी नहीं मानते। तीन मील घूम लेते है, फिर भी थकान का अनुभव नही होता। इसका रहस्य पूछने पर उन्होने कहा—"रहस्य एकमात्र आचार्यश्री का दर्शन है। उनको देखने से मन मे प्रशान्त आह्लाद आता है। वही आह्लाद रोग की दवा वन गया है।"

उन्होने कहा—""एक वार जैन के किसी सम्प्रदाय की यहाँ प्रदर्शनी लगी थी। मेरी पत्नी उसे देखने गई। वहाँ उससे कहा गया—'आचार्यश्री तुलसी के यहाँ जो दीक्षा हो रही है वह ढोग है। वहाँ क्यो जाती हो?' प्रश्न अपने आप मे जिस भाव को लिए चलता है उसका परिणाम स्वय प्रश्नकर्ता पर पडता है। मेरी पत्नी ने कहा—'दीक्षा तो आपके यहाँ भी होती होगी?' उत्तर मिला—'हाँ!' 'वहाँ ढोग है यहाँ नही, यह कैसे? जैन दीक्षा से मैं परिचित नही हूँ, पर मानस कहता है वहाँ ढोग है तो यहाँ भी हो सकता है। यहाँ नही है तो वहाँ भी नही है। पर एक वात मैं अवश्य कहना चाहूँगी, आज तीन मास हो गए आचार्यश्री के पास जाते, कभी भी किसी की उतरती वात नही सुनी। यहाँ पहले ही दिन आक्षेप सुन रही हूँ। कौन कैसे हैं यह प्रश्न मैं आप पर ही छोड रही हूँ। जो तर्क मेरी पत्नी ने दिया वह मैं नही दे पाता।"

इस घटना मे दो तथ्य है—पहला आत्मविश्वास का और दूसरा आक्षेप का। आत्मविश्वास अवश्य फल देता है यदि उसके साथ धैर्य रखा जाए। क्षय जैसे रोग पर सफलता वास्तव मे चमत्कार है। आचार्यश्री के प्रति मणीरामजी अनुयायी से भी अधिक श्रद्धालु वन गए है।

दूसरे पक्ष के लिए हमे जैन धर्म का दुर्भाग्य ही मानना चाहिए कि जैनेतर लोग इस प्रकार की धारणा (इम्प्रेशन) लेकर निकलते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी का अप्रकट भी निन्दा करता है, तो समय पाकर किसी

न किसी रूप मे वह वाहर निकल आती है। सबसे बुरा प्रभाव तो श्रोता पर तत्काल पडता है। वह व्यक्ति का अकन उसी समय कर लेता है। प्रत्यक्ष मे वह कहे या न कहे, पर नि सन्देह वह वुराई लेकर जाता है। जैनत्व की श्रीवृद्धि व प्रतिष्ठा चाहने वाले पारस्परिक निन्दा छोडने पर ध्यान दें।

जीवन मे परिवर्तन

मणीरामजी शर्मा लगभग तीन मास से आचार्यश्री के सम्पर्क मे आ रहे है। वे और उनकी पत्नी ने अणुव्रतो को स्वीकार कर लिया है। अपना अनुभव सुनाते हुए उन्होने कहा—"अणुव्रत धारण करने के पहले मुझे क्रोध वहुत आता था। मैंने क्रोध पर विजय पाने की साधना की है और कर रहा हूँ और अव मैं अपने पर नियन्त्रण पा रहा हूँ। दूसरा लाभ यह मिला कि मुझे स्व-प्रतिष्ठा वहुत सताती है, अव मैं इससे दूर हो रहा हूँ। तीसरा परिवर्तन ,मैंने यह देखा—मैं कभी झूठ वोल लेता था पर वह आदत छुट रही है। इनसे एक वडा लाभ यह मिला कि चिन्तन-शक्ति वढ रही है। अमुक कथन असत्य है या नही इसका निर्णय करने मे मेरी प्रवृत्ति चिन्तनशील वन गई। प्रत्येक कार्य को नियम-भग से तोलकर करता हूँ। यह मेरे अल्पकालीन अनुभव हैं। मेरा विश्वास है कि जीवन मे इनको साथ लेकर सच्चा मानव वनकर आदर्श के पथ पर वढता रहूँगा।"

निर्णय का अधिकार

वह युवक था। साहित्यकारो की पक्ति मे वैठने के लिए आगे वढ रहा था। हाथ मे 'जैन भारती' लेकर पढ रहा था। 'जैन भारती' का पाठक होने के कारण आचार्यश्री के जीवन से और श्रद्धा के चमत्कार से वह परिचित था। श्रद्धा के सस्कार उसके मानस मे प्रवेश कर रहे थे। तर्क और श्रद्धा के मिलन से उसके मन मे कई प्रश्न उठ रहे थे। मेरी ओर दृष्टि उठाते हुए कहा—"आचार्यश्री के दर्शन से रोग मिट गया, जाप से अमुक रोग

मिट गया, पद-रज से अमुक रोग मिट गया। क्या आप इस प्रकार की घटना के प्रकाशन से अन्धविश्वास नही फैला रहे हैं?"

मैंने प्रश्न मे से प्रतिप्रश्न खडा किया, "जो घटना लिखी है वह सत्य है या नही?" उससे उत्तर मिला—"सत्य तो है क्योकि व्यक्ति स्वय कहता है, आसपास का वातावरण उसका समर्थन करता है।" "तव भला हमे क्या डर है! सत्य का उद्‌घाटन करने मे सकोच क्यो हो? किसी का आत्मविश्वास जगता है तो हमे चिन्ता क्यो? हम उसे अन्धकार मे कब तक रखेंगे? फिर यदि किसी का मानस श्रद्धा पर टिकता है तो प्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए।"

श्रद्धा के पथ पर चलने वाले हैं भी तो कितने? इस युग मे तो अत्यन्त अपेक्षित है कि श्रद्धा का प्रकाश पाकर मनुष्य अपनी स्थिति का अनुभव करे। अन्धविश्वास के भूत से भोले मानस को न डराएँ। इसका निर्णय उसे ही करने दें कि श्रद्धा से पहले वह अन्धकार मे था या विश्वास को लेकर अन्धा बना है।

भोजन के वाद स्वास्थ्य की दृष्टि से आचार्यश्री टहल रहे थे। जब वे टहलकर ऊपरीय कमरे मे आए तो उनके मुह से निकला—'मत्री मुनि कहते थे कि तेरापथ के आचार्य को सिद्ध होना चाहिए।' मैंने सुना, पर अर्थ के रहस्य को न छू सका और स्पष्टता माँगी। आचार्यश्री ने उसे खोलते हुए कहा—'अध्ययन, अध्यापन आदि सारे कार्य सिद्ध करके फिर आचार्य बनना चाहिए। इसके वाद एक ही कार्य हो, लोगो को सुनाना, प्रश्नों का उत्तर देना, सेवा कराना आदि। सक्षेप मे सघ के विकास के लिए समर्पित रहना। पर कहने का तात्पर्य है कि व्यक्तिगत कार्यों मे सिद्धता प्राप्त कर लेना। इस चिन्तन के पीछे क्या रहस्य है—वह अस्पृश्य ही है। वाहरी दृष्टि से उसे पकडने का अनुमान भले ही कर लें। सभवत दिन-रात की व्यस्तता ने ही उनको यह चिन्तन दिया हो। जो तथ्य अस्पृश्य ही रहना चाहता है, उस तक पहुँचने का प्रयास क्यो करें! ऐसा सोच विश्राम ले लिया।

अधकार और आग्रह

२३ १० ६२ आचार्यश्री दोपहर ढाई वजे गृहविज्ञान कॉलेज मे प्रवचन देने के लिए चले। लाडनू से आयी हुई महिला सघ की एक वृद्धा सदस्या को दर्शन देने के लिए उनके स्थान पर गए। वह वहन भैंस की चोट से हिलने-चलने मे असमथ थी। आचायश्री ने चोट लगने का कारण पूछा। वहन ने वताया—'भैंस और साइकिल के वीच मे आ गई।' मुसकराते हुए आचार्यश्री ने फिर पूछा—'क्या घूघट था इसलिए वीच से अलग न हो सकी ?' स्वीकृति मौन ने दी। घूघट का फल मिल गया।'

आज के युग मे भी इतना वडा अन्धकार कि नारी अपने पास की वस्तु को देखने मे आँखो का उपयोग करना नही जानती। अन्धकार नही उसे आग्रह कहना चाहिए—जो जानकर भी नही करती। आँख को लेकर चलने वाली यदि अपनी सुरक्षा न कर सके तो उसका दोष परदे को है। देखकर चलने पर भी यदि लग जाए तो वह परवशता है। स्ववशता मे नेत्र के प्रकाश को आवाज से ढाँककर असुरक्षित बने, वहा सारा दोष उस परदे पर पड जाता है। परदे की ओट मे परवशता छिप जाती है। परदे के परिणाम को भोगकर भी उससे लिपटे रहने की भावना आग्रह मे पहुँचा देती है। क्या वहनें आग्रह को छोड अन्धकार को नही मिटाएगी ?

गृहविज्ञान कॉलेज के द्वार पर प्रिंसिपल मिस मेनन ने स्वागत किया। सीधे सभाभवन मे गए, जहाँ चारो ओर दीवार पर गृह-उद्योग के चित्र उत्कीर्ण थे, जो मानव-श्रम के गीत गा रहे थे। एक छात्रा ने प्रार्थना की। प्रो० भैरूलालजी धाकड ने आचार्यश्री का परिचय दिया।

आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—'उदयपुर के लगभग सभी कॉलेज देखने के बाद इस गृहविज्ञान मे आया हूँ। भारत में गृह-विज्ञान न रहने से वाहरी ज्ञान पाकर भी रिक्तता का अनुभव किया जाता है। स्वर्णकार, सुथार आदि अठारह प्रकार की श्रेणियाँ कर्मकारो की हैं।

ग्रेजुएट विद्यार्थी अपने घर कार्य करने मे लज्जा अनुभव करता है। शिक्षित बहनें भी घर के दैनिक कार्य—रसोई आदि करने मे सकोच लाती हैं। इसीलिए दुनिया को पढ लेने के बाद घर को पढ लेने की सोची जाती है। सारे दिन बाहर भटककर शाम को घर मिल जाए तो अच्छा ही है। गृह-उद्योग का शिक्षण दिया जाता है जीविका के लिए, पर इसमे भी भीतर एक गृह है, वह है आत्मा। आत्म-विज्ञान को समझना जीवन के गृह-विज्ञान को समझना है।

'अहिंसा समयचेव एयावत वियाणिया'

भगवान् महावीर की भाषा मे अहिंसा और समता सबसे बडा विज्ञान है। हमारा जीवन हमे प्रिय है, वैसे दूसरो को भी अपना जीवन प्रिय है। एक व्यक्ति का क्या अधिकार है कि वह दूसरो के सुख को लूटे।

प्रवचन के अनन्तर छात्राओ ने साध्वियो की हस्तकला, जो पात्रो का आधार पाकर आकारवती बन गई थी, देखी। छात्राओ ने कई प्रश्न भी पूछे।

प्रश्न—अहिंसा मे केवल सहन करने के भाव हैं या सुरक्षा के भी?

—अहिंसा का अर्थ है अपनी असद् प्रवृत्ति का नियन्त्रण। कोई मारे तो सहना, वापस प्रत्याक्रमण न करना—यह आदर्श अहिंसा है। सर्व-साधारण प्रथम चरण मे वहा तक नही पहुँच पाते। चलने का प्रदर्शन करने वाला अहिंसा की विडम्बना कराता है। आरम्भ दशा मे उसकी साधना का मार्ग है—आक्रान्ता न बनना, अपने पर आक्रमण हो तो उसकी सुरक्षा करना। यह व्यवहार अहिंसा है और उसकी साधना का क्रमिक सोपान है।

दीपावली पर्व पर आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—'आज भगवान् महावीर का निर्वाण-दिवस है। वह अमावस्या को आता है। पर लोगो ने उसे आज ही मान लिया है। भगवान् के निर्वाण के उपलक्ष मे अमावस्या के घोर अन्धकार मे देवो ने रत्नो से उद्योत किया। मनुष्यो ने दीपो की पक्ति से उनका अनुकरण किया। इसीलिए इसका नाम दीपा-

वली पड गया।

महावीर अध्यात्म पुरुष थे। समूचे ससार ने उनको स्वीकार किया। प्राणीमात्र के लिए उन्होने अपना उपदेश दिया। उन्होने कहा —'निभयता अहिंसा है। अभय और अहिंसा दो नही हैं। जहाँ भय है वहाँ हिंसा है। दूसरो को न मारनेवाला अहिंसक है पर मरने से न डरनेवाला भी अहिंसक है। लोगो ने अपनी कमजोरी को अहिंसा पर थोपकर उसे बदनाम कर दिया कि अहिंसा कायरता का प्रतीक है। कायरता मे अहिंसा नही, हिंसा पलती है।'

आपने आगे कहा—'दीपावली को बाहर की शुद्धि करके ही मत मनाओ। घर की शुद्धि के साथ घट की भी शुद्धि करो। तकिए की खोली को साफ न कर उस पर दूसरी खोली चढाने पर एक बार भले ही वह साफ दिखाई दे पर अन्तर मे गन्दगी पलती है। अन्तर की गन्दगी से बाहर की सफाई भी जल्दी गन्दगी मे बदल जाएगी। सफाई चाहनेवाले मूल की सफाई करें। जीवन की उज्ज्वलता चाहनेवाले घर के साथ घट की भी शुद्धि करना न भूलें।'

२८ १० ६२ आचायश्री के उपवास का पारणा होने से प्रति रविवार की तरह आज विशेष प्रवचन नही हुआ। गत् रविवार को जो सात दीक्षाए हुई थीं उनको सामायिक चारित्र से छेदापस्थापनीय चारित्र मे प्रवेश कराया, जो 'बडी दीक्षा' के नाम से प्रसिद्ध है। अन्त मे पाँच महाव्रतो को खोलकर उन्हें समझाया गया।

२९ १० ६२ आचायश्री रात को सोने के लिए पट पर चले गए। नीद आँखो मे घुलने से पहले देवो का आगमन प्रारम्भ हुआ। एक-एक कर उनका दल आ गया। वे आचायश्री को प्रतिवोध देने आये थे कि आज आपका जन्म-दिवस है इसलिए नीद को छोड वर्ष का सिंहावलोकन करें। आचायश्री उनकी मूकवाणी के प्रतिबोध को समझ न सके। देवो ने सक्रिय रूप धारण किया और अपने स्पर्श से आँखें बन्द न होने दी। रात्रि का अधिकाश भाग जागरण मे बीता। दिन मे आचार्यश्री को अवश्य याद

था कि मुझे जल्दी उठकर चिन्तन करना है पर सोते समय वह स्मृति से वाहर हो गया था। भला देव कव भूलनेवाले थे! उन्होने सोने भी नही दिया। साधु सोकर जग गए। पूछा—'आप कव जग गए?' उत्तर मिला—'यह पूछो कव सोये थे?' ठीक भिक्षु स्वामी का दृष्टान्त आचार्यश्री ने अपने जीवन से दुहरा दिया। उस समय जागरण का कारण जिज्ञासु भाई था और इस समय देवो का प्रतिबोध था। देवो का दल कौन था, समझ गए? नही, देवो का दल था—खटमल देव। एक नही, वे अनेक थे। क्रमश अपना कर्तव्य निभा रहे थे।

३० १० ६२ जन्म सूर्य-स्पष्ट के अनुसार इस वर्ष कार्तिक कृष्णा-नवमी को आचार्यश्री ने वर्ष प्रवेश किया। वास्तव मे अग्रेजी तारीख और ज्योतिप गणित के माध्यम से वही जन्म-दिवस है। इस दिन आचार्यश्री ने अपने हाथो से सात व्यक्तियो को दीक्षा मन्त्र देकर अध्यात्म-प्रसन्नता व्यक्त की। व्यवहार-दृष्टि से कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन जन्म-दिवस होने के कारण चतुर्विध सघ ने जन्म-जयन्ती मनाई। सेवाभावी मुनिश्री चम्पालाल, मुनिश्री नथमल, मधुकरजी, रूपचन्दजी, साध्वीश्री स्नेह-कुमारी, रत्नश्रीजी, यशोधराजी ने अपनी श्रद्धा से भरी अजलि समर्पित की।

आशुकवि प० रघुनन्दनजी, पादरी जी० एच० सिंह महावीरप्रसाद मुरडिया और दिगम्बर जैन विद्यालय की ओर से एक छात्रा ने अपनी श्रद्धाजलि श्रीचरणो मे चढाई।

इस अवसर पर मुनिश्री मधुकरजी ने 'अणुव्रत-गीत' शीर्षक एक रचना उपहृत की जिसमे अणुव्रतो के नियमो पर ५१ गीत ग्रन्थित थे।

अन्त मे आचार्यप्रवर ने अपना प्रवचन करते हुए कहा—"जितने वक्ता बोले उससे अधिक शेष है। समय तेजी से बढ रहा है। जो नही बोल सके और जो मूक श्रद्धाजलि देना चाहते थे, सभी की एक ही भावना थी—मैं चिरायु होऊ और सफलता के साथ आगे बढू। आज मैं सभी की भावनाओ का प्रतिनिधित्व कर लेता हूँ और अपने लिए कामना

करता हूँ ।

वर्षारंभ शुभारंभो भूयात् भावाभिशुद्धये ।
ऐकोनपंचाशत्तम समाय प्रशमाय च ।।

पचास वर्ष मे व्यक्ति उम्र से बूढा (स्थविर) वन जाता है । स्थविर के कई अपवाद उसके लिए खुल जाते हैं । मुझे स्थविर वनना नही सुहाता । शरीर-अवस्था की दृष्टि से भले ही बूढा वन जाऊँ पर मानसिक उत्साह से मैं आज भी तरुण हूँ । बीस-तीस वर्षीय साधु मेरी गति का साथ नही कर सकते, मेरी आवाज़ का मुकाविला करने मे भी वे असमर्थ है। मुझे तारुण्य अतिप्रिय है । मेरी भावना है—'मुझे सदा तारुण्य ही देखने को मिले ।'

इन अडतालीस वर्षो मे जो पाया उससे अधिक इस वर्ष मे पाऊँ । तीस दिन की तपस्या के बाद तप के ऊपर का एक-एक दिन भारी वनता जाता है । इसलिए जीवन के अगले वर्षो मे मैं अधिक पाने की कामना करता हूँ और अनुयायी लोगो मे भी मैं इनका विकास देखना चाहता हूँ ।

१ अहिंसा की गभीरता

प्राणी पर दया करने तक ही अहिंसा को सीमित न वनाएँ, उससे आगे वृत्तियों को भी शुद्ध वनाएँ ।

२ सम्प्रदाय से अधिक धर्म को मूल्यवान समझें ।

३ सिद्धान्त-समन्वय

सम्प्रदाय के सत्य को ही एकान्त सत्य मानकर न चलें, उससे वाहर भी सत्य हो सकता है, यह विश्वास लेकर चलें ।

४ मैत्री का प्रसार ।

५ नैतिक वल का विकास ।

यदि इन सभी बातो को जीवन मे उतार लेंगे तो निश्चित भविष्य को उज्ज्वल देखेंगे ।

आयुर्वेदाचार्य आशुकवि पडित श्री रघुनन्दन आजकल दर्शनार्थ आये हुए हैं । आयुर्वेद ग्रन्थो के हजारो श्लोक उनके कण्ठ मे बैठ गए हैं । सम्पूर्ण

नही। मैं तो ऐसे तेरापथी देखना चाहता हूँ जो विरोधी तत्त्वो को सुनकर भी प्रकम्पित न हो। स्वय निर्णय कर अपने नीचे से पथ न छोडे। यदि आप यह धारणा लेकर चलें कि अणुव्रत के मच से अधिक से अधिक तेरापथी बनाए जाएँ तो समझिए आप अन्धकार मे है, असम्भव कल्पना लेकर चलते हैं। दूसरी ओर उसकी ओट मे सम्प्रदाय को बढाते रहे तो क्या यह जनता के साथ धोखा नही? मेरी मान्यता है—अणुव्रत के प्रकाश मे व्यक्ति अपना जीवन देखे और उसे पथ पर ले चले। वह चाहे जैन, बौद्ध, ईसाई कोई भी हो, किसी भी जाति, दल या समाज का क्यो न हो—सब के लिए उसका द्वार खुला है।'

तुम्हारी बात पर सोचेंगे

भाई ने कहा—'शराब पीनेवाला ईसाई मच पर खडा होकर बोले, क्या यह मच का अपमान नही?'

पास बैठे श्री सोहनलाल गाधी ने कहा—'क्या प्रमाण है कि वह शराब पीता है? उसने स्पष्ट हज़ारो व्यक्तियो के समक्ष कहा कि मैं शराब पीता था, पर आचार्यश्री के सम्पर्क से मैंने उसे छोड दिया है। रूस, स्विट्ज़रलैड आदि विशेष यात्रा मे भी मैंने कष्ट सहे पर व्रत का भग नहीं किया। हम उसकी नेकी पर कैसे सन्देह कर सकते हैं! हज़ारो के बीच खुलेआम स्पष्ट कहने वाला सभवत उसको (शराब को) पीते सकुचाएगा और जल्दी से वह साहस भी नही कर सकता। मैं तो अणुव्रतो की सबसे बडी सफलता मानता हूँ कि दूसरे धर्म वाले (धर्म के सत) इस ओर आकृष्ट होते हैं और खुले क्षेत्र मे अणुव्रत की प्रशसा के गीत गाते हैं।'

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'कोई व्यक्ति हमारे सामने प्रशसा कर सकता है पर जो दूसरी सभाओ मे हज़ारो के बीच अणुव्रत का चमत्कार अपने मे देखता है और लोगो को दिखाता है, तो उसकी बात पर कैसे सदेह किया जा सकता है। क्या तेरापथी भाई अणुव्रत को लेकर उसका पूर्णत पालन करते हैं? कही किसी से भी गलती नही होती? पर उसको

लेकर हमे सिद्धान्त ही नही बना लेना चाहिए कि तेरापथी अणुव्रतो का पूरा पालन करते है, दूसरे नही। इस प्रकार यदि सदेह लेकर चलेंगे तो विश्वास को कही स्थान ही नही मिलेगा। मदिरा के बीच पलने वाला यदि सम्पक से उसका मोह छोड जीवन को पवित्र बनाता है तो इससे अधिक क्या चाहिए? आखिर जीवन की पवित्रता ही तो हम चाहते हैं। वह यदि होती है तो अणुव्रत अपने आप मे सफल है। उससे किसी भी तेरापथ को खतरा नहीं है। मैं तो मानकर चलता हूँ कि अणुव्रत से किसी भी सम्प्रदाय को खतरा नही है, प्रत्युत अध्यात्म के निकट ही आते हैं।'

भाई आवेश मे था, इसलिए आग्रह बिना बुलाए ही उसके पास आ गया था। इसलिए उसे समझाया भी नही जा सकता था। आचायश्री ने यह कहकर कि 'तुम्हारी बात पर सोचेंगे,' उससे विश्राम लिया।

सान्निध्य का चमत्कार

इन दिनो मे परिचय-सम्मेलन चल रहा है। आचायश्री व्याख्यान के बाद एक एक परिवार का परिचय लते है और उनको प्रत्याख्यान व धार्मिक प्रेरणा देते है। आज पोरवाल परिवार का क्रम था। परिचय करने के बाद एक भाई ने कहा—'नानालालजी और मोहनलालजी साला-बहनोई मे बोलचाल व आने-जाने का व्यवहार बन्द है।' कारण यह था कि नानालालजी अपने भाइयो से अलग हो रहे थे, उस समय कई मध्यस्थ थे। उनमे उनके बहनोई मोहनलालजी भी एक थे। उस समय मोहनलालजी का व्यवहार उन्हें अखरा इसलिए एक-दो शब्द चुभते निकल गए। उन शब्दो ने बाण से भी अधिक मन को घायल कर दिया। उन्होने अपनी ब को पीहर भेजना बन्द कर दिया। इधर नानालालजी को बहन का न आना खटक रहा था। बात तन गई थी इसलिए हाथ से छूट गई थी। आचायश्री के पास जब मनमुटाव सामने आया, उस समय नानालालजी का मानस ग्लानि से भर गया, वे बहन को अपने से दूर देखना नही चाहते थे, तत्काल

नहीं। मैं तो ऐसे तेरापथी देखना चाहता हूँ जो विरोधी तत्त्वो को सुनकर भी प्रकम्पित न हो। स्वय निर्णय कर अपने नीचे से पथ न छोडे। यदि आप यह धारणा लेकर चले कि अणुव्रत के मच से अधिक से अधिक तेरापथी वनाए जाएँ तो समझिए आप अन्धकार मे है, असम्भव कल्पना लेकर चलते हैं। दूसरी ओर उसकी ओट मे सम्प्रदाय को वढाते रहे तो क्या यह जनता के साथ धोखा नही ? मेरी मान्यता है—अणुव्रत के प्रकाश मे व्यक्ति अपना जीवन देखे और उसे पथ पर ले चले। वह चाहे जैन, वौद्ध, ईसाई कोई भी हो, किसी भी जाति, दल या समाज का क्यो न हो—सव के लिए उसका द्वार खुला है।'

तुम्हारी वात पर सोचेंगे

भाई ने कहा—'शराव पीनेवाला ईसाई मच पर खडा होकर वोले, क्या यह मच का अपमान नही ?'

पास वैठे श्री सोहनलाल गाधी ने कहा—'क्या प्रमाण है कि वह शराव पीता है ? उसने स्पष्ट हज़ारो व्यक्तियो के समक्ष कहा कि मैं शराव पीता था, पर आचार्यश्री के सम्पर्क से मैंने उसे छोड दिया है। रूस, स्विट्जरलैंड आदि विशेप यात्रा मे भी मैंने कष्ट सहे पर व्रत का भग नही किया। हम उसकी नेकी पर कैसे सन्देह कर सकते है ! हजारो के वीच खुलेआम स्पष्ट कहने वाला सभवत उसको (शराव को) पीते सकुचाएगा और जल्दी से वह साहस भी नही कर सकता। मैं तो अणुव्रतो की सवसे वडी सफलता मानता हूँ कि दूसरे धर्म वाले (धर्म के सत) इस ओर आकृष्ट होते हैं और खुले क्षेत्र मे अणुव्रत की प्रशसा के गीत गाते है।'

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'कोई व्यक्ति हमारे सामने प्रशसा कर सकता है पर जो दूसरी सभाओ मे हज़ारो के वीच अणुव्रत का चमत्कार अपने मे देखता है और लोगो को दिखाता है, तो उसकी वात पर कैसे सदेह किया जा सकता है। क्या तेरापथी भाई अणुव्रत को लेकर उसका पूर्णत पालन करते है ? कही किसी से भी गलती नही होती ? पर उसको

लेकर हमे सिद्धान्त ही नही वना लेना चाहिए कि तेरापथी अणुव्रतो का पूरा पालन करते हैं, दूसरे नही। इस प्रकार यदि सदेह लेकर चलेंगे तो विश्वास को कही स्थान ही नही मिलेगा। मदिरा के वीच पलने वाला यदि सम्पक से उसका मोह छोड जीवन को पवित्र वनाता है तो इससे अधिक क्या चाहिए? आखिर जीवन की पवित्रता ही तो हम चाहते हैं। वह यदि होती है तो अणुव्रत अपने आप मे सफल है। उससे किसी भी तेरापथ को खतरा नही है। मैं तो मानकर चलता हूँ कि अणुव्रत से किसी भी सम्प्रदाय को खतरा नही है, प्रत्युत अध्यात्म के निकट ही आते हैं।'

भाई आवेश मे था, इसलिए आग्रह विना वुलाए ही उसके पास आ गया था। इसलिए उसे समझाया भी नही जा सकता था। आचार्यश्री ने यह कहकर कि 'तुम्हारी वात पर सोचेंगे,' उससे विश्राम लिया।

सान्निध्य का चमत्कार

इन दिनो मे परिचय-सम्मेलन चल रहा है। आचार्यश्री व्याख्यान के वाद एक एक परिवार का परिचय लते है और उनको प्रत्याख्यान व धार्मिक प्रेरणा देते है। आज पोरवाल परिवार का क्रम था। परिचय करने के वाद एक भाई ने कहा—'नानालालजी और मोहनलालजी साला-वहनोई मे वोलचाल व आने-जाने का व्यवहार वन्द है।' कारण यह था कि नानालालजी अपने भाइयो से अलग हो रहे थे, उस समय कई मध्यस्थ थे। उनमे उनके वहनोई मोहनलालजी भी एक थे। उस समय मोहनलालजी का व्यवहार उन्हे अखरा इसलिए एक-दो शब्द चुभते निकल गए। उन शब्दो ने वाण से भी अधिक मन को घायल कर दिया। उन्होने अपनी व को पीहर भेजना वन्द कर दिया। इधर नानालालजी को वहन का न आना खटक रहा था। वात तन गई थी इसलिए हाथ से छूट गई थी। आचार्यश्री के पास जव मनमुटाव सामने आया, उस समय नानालालजी का मानस ग्लानि से भर गया, वे वहन को अपने से दूर देखना नहीं चाहते थे, तत्काल

बोले—'गुरुदेव ! उस समय जो कुछ भी हुआ सब को मैं अपनी गलती मानकर क्षमा मागता हूँ।' यह कहते-कहते तत्काल छोटे बहनोई के चरणो मे सिर टेक दिया, 'ये मेरे माईत (माता-पिता) के समान हैं, इनसे हाथ जोडकर माफी मागता हूँ।'

दो मिनट पहले जो विवाद को खोल रहे थे, एक मिनट बाद दृश्य ही बदल गया। मोहनलालजी का चेहरा फीका पड गया। सारे विवाद के शब्दो को समेटकर वे मौन हो गए। उनके सामने एक ही मार्ग था—क्षमायाचना। दोनो ने हृदय खोलकर हृदय से हृदय मिलाया। मैं पास खडा देख रहा था—आचार्यश्री के सान्निध्य का चमत्कार और नानालाल जी की नम्रता।

नम्रता आत्मा का गुण है, उसका वरदान हरेक को नही मिलता। जहाँ बात तन जाती है वहाँ व्यक्ति सूखी लकडी की तरह टूटना पसन्द करता है और झुकना नही। क्योकि यह धारणा व्यक्तियो के मानस मे घर कर चुकी है कि कमजोर पहले झुकता है। वास्तविकता यह है कि जो महान् व विशाल चेता होता है वह पहल करता है। इस तथ्य से भी अपरिचित नही है कि परिणाम में प्रशसा पहल करनेवाला पाता है, फिर भी मनुष्य झुकना नही चाहता। उस दृश्य को देखकर मेरा मानस उनकी नम्रता का स्वागत करने लगा। कई साधना के पथ पर चलनेवाले भी साधना के रग से कोरे रह जाते हैं, झुकना पसन्द नही करते, वहा एक गृहस्थ अपने से छोटे के चरणो मे सिर टिका देता है, वास्तव मे वह साधना का धनी है। उसकी साधु-वृत्ति अनुकरणीय है।

३ ११ ६२ आचार्यश्री आज आहड फिर पधारे। प्रथम बार गत २६ तारीख को पधारे थे। भाइयो ने प्रवचन तथा सेवा का लाभ लिया। रात को पादरी जी० एच० सिंह के बगले मे विराजे। रात को वार्तालाप हुआ तथा प्रश्नोत्तर भी चले।

४ ११ ६२ आहड मे आते समय नूर मुहम्मद ने अपने घर आने के लिए प्रार्थना की। आचार्यश्री उनके घर पधारे। उसने अपने गुरु का फोटो

दिखाते हुए कहा—'आपका चेहरा और मेरे गुरु का चेहरा एक समान है।' गुरु की स्मृति का साक्षात् रूप देख वह प्रसन्नता से नाच उठा और गीत गाने लगा।

चातुर्मास की चिर प्रतीक्षा के लिए कई भाई आचार्यश्री का पाद-स्पर्श अपने घर मे कराना चाहते थे। चातुर्मास समाप्ति के दिन बहुत कम रह गए, इसलिए आचार्यश्री ने घरो मे जाकर उनकी भावना को सफल किया।

रविवार को 'अणुव्रत-परिषद' मे आचार्यश्री ने विशेष प्रवचन किया। दोपहर मे जैन दिगम्बर कन्या विद्यालय मे प्रवचन हुआ। कथा-प्रधान प्रवचन से आचार्यश्री ने सरस भाषा मे बालिकाओ को शिक्षा दी। छोटे बच्चो मे सुसस्कार डालने के लिए कथा का माध्यम जितना उपयुक्त है, दूसरा नही। इसलिए आचार्यश्री ने मनोवैज्ञानिक ढग से उनको उनके जीवनोपयोगी शिक्षाए दी।

कर्तव्यनिष्ठा

८ ११ ६२ आचार्यश्री पचमी-समिति जा रहे थे। एक कुत्ता दौडता हुआ आया और सन्तो के बीच से आगे निकल गया। आचार्यश्री ने उसकी एक लक्ष्यता देखी और कहा—'अभी वह दूर के मकान मे था। अपने परिवार के कुत्ते की आवाज, जो सकट की स्थिति का ज्ञान दे रही थी, सुन भागा जा रहा है। कितनी कर्तव्यनिष्ठा है इसमे? पशु भी कर्तव्य-परायण होते हैं। वे कर्तव्य से जी नही चुराते। कई मनुष्य कर्तव्य से दूर हट जाते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ को आगे रखने से दल, समाज और राष्ट्र का हित नही सधता।

बकरी और गोदा

रात को रामचरित चल रहा था। वे बच्चे जो आगे बैठे थे अपनी चपलता के कारण लड रहे थे। दूसरी ओर बैठी छोटी लडकियाँ भी लडने

बोले—'गुरुदेव ! उस समय जो कुछ भी हुआ सब को मैं अपनी गलती मानकर क्षमा मागता हूँ।' यह कहते-कहते तत्काल छोटे बहनोई के चरणो में सिर टेक दिया, 'ये मेरे भाईत (माता-पिता) के समान हैं, इनसे हाथ जोडकर माफी मागता हूँ।'

दो मिनट पहले जो विवाद को खोल रहे थे, एक मिनट बाद दृश्य ही बदल गया। मोहनलालजी का चेहरा फीका पड गया। सारे विवाद के शब्दो को समेटकर वे मौन हो गए। उनके सामने एक ही मार्ग था—क्षमायाचना। दोनो ने हृदय खोलकर हृदय से हृदय मिलाया। मैं पास खडा देख रहा था—आचार्यश्री के सान्निध्य का चमत्कार और नानालाल जी की नम्रता।

नम्रता आत्मा का गुण है, उसका वरदान हरेक को नही मिलता। जहाँ बात तन जाती है वहाँ व्यक्ति सूखी लकडी की तरह टूटना पसन्द करता है और झुकना नही। क्योकि यह धारणा व्यक्तियो के मानस मे घर कर चुकी है कि कमजोर पहले झुकता है। वास्तविकता यह है कि जो महान् व विशाल चेता होता है वह पहल करता है। इस तथ्य से भी अपरिचित नही है कि परिणाम मे प्रशसा पहल करनेवाला पाता है, फिर भी मनुष्य झुकना नही चाहता। उस दृश्य को देखकर मेरा मानस उनकी नम्रता का स्वागत करने लगा। कई साधना के पथ पर चलनेवाले भी साधना के रग से कोरे रह जाते हैं, झुकना पसन्द नही करते, वहा एक गृहस्थ अपने से छोटे के चरणो मे सिर टिका देता है, वास्तव मे वह साधना का धनी है। उसकी साधु-वृत्ति अनुकरणीय है।

३ ११ ६२ आचार्यश्री आज आहड फिर पधारे। प्रथम बार गत २६ तारीख को पधारे थे। भाइयो ने प्रवचन तथा सेवा का लाभ लिया। रात को पादरी जी० एच० सिह के बगले मे विराजे। रात को वार्तालाप हुआ तथा प्रश्नोत्तर भी चले।

४ ११ ६२ आहड से आते समय नूर मुहम्मद ने अपने घर आने के लिए प्रार्थना की। आचार्यश्री उनके घर पधारे। उसने अपने गुरु का फोटो

(उपनिदेशक शिक्षा-विभाग, राजस्थान) और एक प्रोफेसर भाई थे। कुछ समय के व्यवधान मे भाई ने प्रश्न किया—'मेरे मन मे यह सन्देह पल रहा है कि मैं कौन हू और कहाँ से आया हू ?'

प्रोफेसर ने कहा—'यह प्रश्न कभी समाहित होनेवाला नही है।'

आचार्यश्री ने उत्तर देते हुए कहा—'जहाँ प्रश्न है वहाँ समाधान भी है। यह प्रश्न तुम्हारे तक ही सीमित नही है। दार्शनिक जगत् मे बहुत पुराना है। दर्शन का आधारभूत है। आचाराग सूत्र आदि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो मे इसका उल्लेख है। बाल्य, युवा और वृद्ध अवस्था मे जो कि समान रूप से रहता है वह मैं ही हू। उत्पाद और व्यय के परिवर्तन मे भी जो ध्रुव है वही सत् है और वही मैं हू। जहाँ अहमत्व का बोध होता है—मैंने किया, मैंने जाना, वह मैं ही हू, मैं बौद्ध हू, यह प्रश्न जहाँ से उठता है उसका करने वाला मैं ही हू। मैं एक दुनिया से आया हू और वापस अन्य दुनिया मे जाऊगा।'

भाई ने अनुभव किया कि मुझे समाधान मिला।

'जैन भारती' का स्तर

१० ११ ६२ स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के मन्त्री श्री जवाहर लाल जैन आचार्यश्री के सम्पर्क मे आए। समन्वय की सम्भावना और अपेक्षा की बातचीत के मध्य मे उपाध्याय अमर मुनि के पास भिक्षु दृष्टान्त के विषय मे तेरापथी महासभा और स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के प्रतिनिधियो मे जो समन्वयपूर्ण निर्णय हुआ उसकी जानकारी उनको दी गई। वार्तालाप के प्रसग मे उन्होने कहा—"जैन भारती पत्र का मैं पाठक हू। वह मुझे अच्छा लगता है, क्योकि वह समन्वय को लेकर चलता है। तेरापथ सम्प्रदाय के ही नही अपितु स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु व गृहस्थो के लेख उसमे निकलते है। हर पत्र मे ऐसी उदारता नहीं होती।

"जैन भारती पत्र का स्तर वास्तव मे ऊँचा है। जो पत्र किसी की आलोचना व निंदा को जघन्य मानकर स्थान नही देता वह प्रशसा का

लगी। उन्हे देख आचार्यश्री के मुह मे निकला—'गोदा (साड) लडते है पर इन्हे देख वकरिया भी लडने लगी। स्त्री और पुरुप के स्वभाव के ये दो रूपक वकरी और साड वस्तुत अपनी-अपनी जाति का प्रतिनिधित्व कर रहे है।' वकरी का नाम मुनकर सव हँस पडे।

९ ११ ६२ उदयपुर के सम्भ्रान्त श्री भूरेलाल वया ज्योतिर्विद श्री अमृतलाल को माथ लेकर आए। उनमे कहा—'राम की कथा आपने मुनी होगी। पर जैन दृष्टि से राम की कथा अपना महत्त्व रखती है। आचार्यश्री के मुख से निकलकर वह अति सरस वन जाती है। भाषा और प्रतिपादन के प्रकार मे वक्ता अपनी विशेपता लाकर कथा को अत्यन्त रोचक और हृदयस्पर्शी वना देता है।' उस दिन की उपस्थिति हजारो मे थी, पर आचार्यश्री का उपवास था, इसलिए राम-कथा आगे न चल सकी। अत उस दिन उन्हे सुनने का अवमर नही मिला।

राम-कथा के प्रति वौद्धिक और अवौद्धिक स्त्री, पुरुप और वच्चे सभी मे आकपण है। इसको सुनने के लिए सैकडो वच्चे नीद को भुलाकर प्रवचन मे आगे स्थान रोकते है। प्रति वर्प रामायण का वाचन होता है। कथा परिचित रहती है, फिर भी उमको सुनने की उत्सुकता कम नही होती। जव आचार्यश्री रामकथा को एक किनारे पर लाकर दूसरे दिन के लिए स्थगित करते है उस समय श्रोताओ की दृष्टि उठनी है, जो कथा मे अपने को खो देते है। उन्हे अखरता है कि मिलने वाली अमृत की वूदो मे कौन अवरोधक वन रहा है? पर काल की सीमा के आगे वे परवश वन जाते हैं और दूसरे दिन की आशा मे अपने को टिकाए रखते है।

मैं कौन हूँ

वह भाई पलवल का दिगम्वर जैन था। ग्यारह वप पूर्व आचार्यश्री के सम्पर्क मे आया था। अभी वह कार्यवश उदयपुर मे आया हुआ था। आचार्यश्रीका नाम सुन वह दर्शन करने आया और प्रवचन सुना। मध्याह्न मे जव आया उस समय आचार्यश्री के पाम श्री शम्भूलाल सक्सेना

(उपनिदेशक शिक्षा-विभाग, राजस्थान) और एक प्रोफेसर भाई थे। कुछ समय के व्यवधान मे भाई ने प्रश्न किया—'मेरे मन मे यह सन्देह पल रहा है कि मैं कौन हू और कहाँ से आया हू ?'

प्रोफेसर ने कहा—'यह प्रश्न कभी समाहित होनेवाला नही है।'

आचार्यश्री ने उत्तर देते हुए कहा—'जहाँ प्रश्न है वहाँ समाधान भी है। यह प्रश्न तुम्हारे तक ही सीमित नही है। दार्शनिक जगत् मे बहुत पुराना है। दर्शन का आधारभूत है। आचाराग सूत्र आदि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो मे इसका उल्लेख है। बाल्य, युवा और वृद्ध अवस्था मे जो कि समान रूप से रहता है वह मैं ही हू। उत्पाद और व्यय के परिवर्तन मे भी जो ध्रुव है वही सत् है और वही मैं हू। जहाँ अहमत्व का बोध होता है—मैंने किया, मैंने जाना, वह मैं ही हू, मैं बौद्ध हू, यह प्रश्न जहाँ से उठता है उसका करने वाला मैं ही हू। मैं एक दुनिया से आया हू और वापस अन्य दुनिया मे जाऊगा।'

भाई ने अनुभव किया कि मुझे समाधान मिला।

'जैन भारती' का स्तर

१०.११.६२ स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के मन्त्री श्री जवाहर लाल जैन आचार्यश्री के सम्पर्क मे आए। समन्वय की सम्भावना और अपेक्षा की बातचीत के मध्य मे उपाध्याय अमर मुनि के पास भिक्षु दृष्टान्त के विषय मे तेरापथी महासभा और स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के प्रतिनिधियो मे जो समन्वयपूर्ण निर्णय हुआ उसकी जानकारी उनको दी गई। वार्तालाप के प्रसग मे उन्होने कहा—"जैन भारती पत्र का मैं पाठक हू। वह मुझे अच्छा लगता है, क्योकि वह समन्वय को लेकर चलता है। तेरापथ सम्प्रदाय के ही नहीं अपितु स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु व गृहस्थो के लेख उसमे निकलते हैं। हर पत्र में ऐसी उदारता नही होती।

"जैन भारती पत्र का स्तर वास्तव मे ऊँचा है। जो पत्र किसी की [illegible] जघन्य मानकर स्थान नही देता वह प्रशसा का

पात्र है। ऐसे पत्रो से पाठको को ज्ञानवर्धक सामग्री मिलती है। उनके ज्ञान-तन्तुओ को दूषित होने का अवसर ही नही मिलता।

"जो पत्र अपनी विचारधारा के प्रतिकूल तत्त्वो को भी अपने लेखा की श्रेणी मे स्थान देकर निर्णय का अधिकार पाठको को दे देता है वह वास्तव मे अहिंसा के पथ पर होता है। भय से दूर रहकर अभय के साथ चलता है, इसीलिए 'जैन भारती' का स्तर अन्य पत्रिकाओ की भूमिका से ऊपर है।"

दोपहर मे आचार्यश्री कोठारी भवन (अक्षय-भवन) में पधारे। शय्यातर के परिवार को सेवा का विशेष लाभ मिला। इस अवसर पर चादमलजी कोठारी ने आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार कर अपने प्रागण में सत-पुरुष आचार्यश्री तुलसी का स्वागत किया।

निर्धन मत बनो

जब आचार्यश्री ने भवन के भीतरी भाग में प्रवेश किया तो साध्वियों ने अपने आराध्य गुरुदेव का अभिवन्दन से स्वागत किया, पट पर बैठने की नम्र प्रार्थना की। आचार्यश्री ने लगभग बीस मिनट तक उनको शिक्षा देते हुए कहा—"तुम श्रद्धा के धन से महाधनी हो। तुम्हारी इस समृद्धि से सम्भवत सन्तो को भी ईर्ष्या हो सकती है। अपने धन को खोकर निर्धन होना किसको प्रिय लगता है? मै चाहता हू कि तुम अपने धन की सुरक्षा रखती हुई आगे बढती रहो।"

शिक्षा के विषय मे बोलते हुए आपने कहा—"मैं शिक्षा के क्षेत्र मे साध्वियो की गति से चिन्तित था, पर अब निराशा दूर चली गई है। प्रगति की ओर तुम्हारे बढते चरण देखकर मैं आशावान हू कि तुम शीघ्र ही मेरी कल्पना को साकार करोगी। दूसरी ओर मुझे खेद होता है कि तुम कुछ स्वार्थी हो। अपने से पीछे चलने वाली साध्वियो को प्रेरणा देकर साथ लेने मे प्रयत्न कम करती हो, इस कमी को मैं देखना नही चाहता।

"तुम्हारा कर्तव्य है कि जिस स्थान मे रहो, कम से कम वहा की बहनो

की प्रतिलेखना करती रहो। साहित्य-साधना मे व्यस्त रहकर इस ओर उपेक्षा करती हो, यह उचित नही है। यह काय भी अपनी साधना का एक अग है। इस काय मे समय का अपव्यय मानना भूल है, समय फलवान् बनता है।"

विदाई-समारोह

१० ११ ६२ उदयपुर का चातुर्मास आज पूण हो रहा है। जैन परम्परा के अनुसार आचार्यश्री कल यहा से विहार कर रहे हैं। इसलिए स्थानीय लोग अनमने होकर विदाई दे रहे है। इस अवसर पर पादरी जी०के० सिंह, श्री श्यामसुन्दर वैद्य (प्रिंसिपल आयुर्वेदाचार्य), वैद्य श्री टेकचन्द, प्रो० भगवतीसिंहजी मुरडिया, प्रो० भैरूलालजी धाकट, भूतपूव जज श्री प्यारेकृष्ण कौल, श्री सोहनलाल राजनगरवाला आदि ने अपनी-अपनी भावना व्यक्त की। "आप हमसे शरीर से अलग हो रहे है पर हृदय से नही। आपके विचार सदा हमारे साथ रहेगे। आपकी यात्रा के साथ हमारी शुभकामना है। आप जहाँ भी जाएगे लोगो का कल्याण होगा। आपके लिए किसी स्थान का मोह नही है पर हमे स्थान का मोह सताता है, इसलिए हम चाहते हैं कि आप हमारे बीच अधिक रहें।"

अन्त मे आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—"गमन के साथ आगमन की आशा जुड जाती है। यदि कही से गमन हो ही नही तो दूसरे स्थान के लिए आगमन असम्भव है। यात्रा हमारी जीवनचर्या का एक अग है। यह हमे पूर्वज आचार्यो से मिली है। वह सदा गतिशील रहे, हम स्थिरवासी न बनें—ऐसी कामना है। अभी भाइयो ने अपना दुख-दर्द व्यक्त किया, यह मानव स्वभाव की दुबलता है। सतो की विदाई को गृहस्थ की विदाई के समान मान लिया इसलिए मोह सता रहा है। सतो से क्या मोह ? वे तो निर्मोही होते है, उनसे मोह करना ठीक नही है।

उन्मुक्त आकाश मे उडनेवाला पक्षी एक स्थान मे रहने को कैद मानता है। वैसे ही सतत विहार करने वाले हमारे लिए चातुर्मास की

दीर्घ अवधि कैद ही है।

आज सिंहावलोकन की अपेक्षा है—कहाँ सफलता मिली और कहाँ असफल रहे। यदि असफलता को नही देखेंगे तो सफलता की ओर प्रयास कैसे करेंगे ?

इस चातुर्मास के प्रारभ मे विरोध भी सामने आया। उसके पीछे अर्थ का स्वार्थ पल रहा था, इसलिए दूसरी ओर की उपेक्षा से वह स्वय शान्त हो गया—

'अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति'

सार्वजनिक कार्यक्रम भी उतने नही हो सके जितने अपेक्षित थे। बौद्धिक लोगो से भी अधिक सम्पर्क नहीं हो सका। विद्वन् वर्ग कई गोष्ठियाँ चाहते थे पर न हो सकी। समय की कमी बनी ही रही।

तेरापथ सिद्धान्त के प्रति जो भ्राति थी वह मिट गई। जो सम्पर्क मे न आए उनके मानस से भी मतभेद की दूरी कम हुई है। अन्य सम्प्रदाय के सन्तो मे मधुर मिलन हुआ। वायुमडल भी शुद्ध बना है उसका मूल्य कौन कितना और किस रूप मे आकता है, वह अपनी-अपन योग्यता और दृष्टि पर निर्भर है।

तेरापथ समाज की दृष्टि से भी जितना सफल होना चाहिए उतना न हो सका। समाज को जिस रूप मे ढालना चाहता था, उसके अनुरूप वह नही बन सका। ओसवाल और पोरवाल मे जाति-भेद है। जहाँ राष्ट्र एक बन रहा है वहाँ ये भेद क्या महत्त्व रखते है। इस ओर समन्वय की दिशा मे प्रयास भी नहीं हुआ। युवको का सगठन भी नही हो पाया। आस-पास के अनेक तेरापथी विद्यार्थी यहा शिक्षा प्राप्त करते हैं, उनका परिचय भी नही ले पाया और न वे मेरे विचारो मे ही अवगत हो पाए। पादरी का निमन्त्रण पा मैं वहा गया। धर्म के विचारो मे विभिन्नता होने पर भी एक-दूसरे के निकट आ गए। उदयपुर एक बौद्धिक क्षेत्र है। यदि उनसे सम्पर्क होता तो वे बहुत निकट आ सकते थे। इन असफलताओ के पीछे अन्य कारणो में एक कारण था—साहित्य-साधना। प्राय साधु आगम के

काय मे सलग्न रहे, इसलिए प्रचार का कार्य गौण रहा। फिर भी समाज के कायकर्त्ताओ ने बहुत सेवा की। समाज के अध्यापक, कमचारी और व्यापारी सबने अपन काम मे व्यस्त रहने पर भी अपनी सेवा का योग दिया। नि स्वाथ सेवा करना कम काम नही है। कुछ मिलाकर उदयपुर का चातुर्मास ठीक रहा।

समय और सामग्री की अनुकूलता मे कार्य गति पकड लेता है। काय-कर्त्ताओ के अभाव मे कार्य मे उतनी तीव्रता नही आती। पर इसमे हानि कुछ नही है। जितना होता है उतना ही लाभ है। चातुर्मास मे जो लाभ मिला है उसको मेरे साथ विदा नही करेंगे। सप्ताह मे एक दिन भी यदि इस पर चिन्तन करेंगे तो ग्रहण किया हुआ फलवान बनेगा।"

१२ ११ ६२, उदयपुर चातुर्मास समाप्ति के दूसरे दिन प्रात कालीन प्रवचन नही होता, क्योकि विशेप परिस्थिति के बिना आज अनिवाय रूप से विहार करना होता है। दोपहर में प्रदेशी राजा का आख्यान चलता है। आचार्य कालूगणी आज के दिन प्राय शय्यातर के अतिरिक्त किसी के यहाँ गोचरी नही जाते थे। पर आचायश्री आज कई घरो मे गोचरी पधारे। अस्वस्थता के कारण शहर के मकानो पर चढने-उतरने से थकान भी मुख पर छा गई। आचायश्री का मानस इतना दयार्द्र है कि दूसरो की भावना की पूर्णता के लिए अपने स्वास्थ्य को गौण कर देते हैं।

दोपहर मे प्रदेशी राजा के आख्यान के बाद लगभग दो बजे वहा से प्रस्थान किया। विहार का मार्ग प्राय वही था जो आगमन के समय शहर-प्रवेश का था। दूकान और मकानो मे खडे हजारो व्यक्ति वन्दन से विदाई दे रहे थे। टकटकी लगाए दर्शन कर रहे थे। हर जाति मे प्रीति की भावना थी। ऐसी दूकान देखने को नही मिली जहा दुकानदार दूकान मे ही बैठा रहा हो। स्वागत का वह दृश्य आखो के सामने घूम गया। स्वागत की अपेक्षा विदाई का जुलूस काफी लम्बा था। जुलूस मे भाग लेने वाले स्वय मुड-मुडकर मकान तथा बसो की छतो पर जुलूस के दृश्य को देख रहे थे।

१३ ११ ६२ पचमी समिति से निवृत्त हो आचार्यश्री भूरेलालजी बया के मकान मे विराजे। दोपहर मे वहा से आचार्यश्री नव-निर्माण सघ मे प्रवचन करने पधारे। मार्ग मे सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने विदाई लेकर शहर की ओर प्रस्थान किया। मुनिश्री स्वास्थ्य-लाभ के लिए कुछ दिन और वहा ठहरेंगे। अस्वस्थता के कारण पाच साध्वियो को भी भोपालपुरा मे रुकना पडा। परीक्षार्थिनी कई साध्वियो ने सीधे मार्ग से राजनगर की ओर विहार कर दिया। इस प्रकार एक स्रोत की कई धाराएँ हो गई।

नव-निर्माण सघ के सस्थापक श्री भूरेलाल बया ने स्वागत मे बोलते हुए कहा—"इस सस्था की नीव श्रद्धेय विनोबा भावे ने डाली थी। यह भवन मजदूरो के श्रम से नही बना है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्वय सेवको के श्रम का फल है। ऐसे ऐतिहासिक स्थान पर सम्था की ओर से आचार्यश्री तुलमी का स्वागत करते है। अणुव्रत से मानवता का सदेश जगत् मे फैला है।"

आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—"निर्माण अपने आप मे नया ही होता है। निर्माण बहुत वस्तुओ का होता है पर सबसे अधिक आवश्यक जीवन का निर्माण है। इसके बिना सब निर्माण अधूरे हैं।

जीवननिर्माण के साथ दूसरे निर्माण भी मूल्यवान बन जाते हैं। जैसे एक सख्या पर शून्य हो, यह प्रश्न जटिल है। इसके लिए व्यक्ति को स्वय जागना पडेगा और उसे शान्ति, क्षमा, आर्जव आदि दस धर्मो का विकास करना होगा। निर्माण कौन करे? इसके लिए कार्यकर्त्ताओ का प्रश्न सामने आता है।

१ कार्यकर्त्ता निष्काम-वृत्ति वाला होना चाहिए। सर्वथा निष्काम न हो सके तो अधिक से अधिक निष्काम तो अवश्य होना चाहिए।

२ उसमे कार्य की धुन होनी चाहिए।

३ और कुछ हो या नही पर चरित्र-बल तो अवश्य होना चाहिए।

४, कर्तव्य-भावना हो।

यदि कार्यकर्त्ता मे ये गुण होते है तो वह स्वय के साथ दूसरो का भी मार्गदर्शन करने मे सक्षम होता है।

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन-निर्माण की एक प्रक्रिया देता है। शान्ति परिपद् मे भारत के कई प्रतिनिधि गए थे। जहाँ नैतिक आन्दोलन का प्रसग आया वहा भारतीयों ने अपने देश की ओर से अणुव्रत-आन्दोलन का नाम मुख्य रूप से लिया। इसकी विशेपता यह है कि यह व्यक्ति-सुधार से समाज-सुधार की ओर चलता है, जहाँ दूसरे आन्दोलन समाज-सुधार से व्यक्ति-सुधार तक आते हैं। शान्ति परिपद् के सदस्यो ने, जिनमे र्‌रा्श्चेव भी थे, वडे ध्यान से सुना।"

अन्त मे नव-निर्माण सघ के कायकर्त्ताओ को अणुव्रती वनने की प्रेरणा दी।

वहा से विहार कर प्रतापनगर गए। राजस्थानी रूरल छात्रावास मे रात को विश्राम किया। पहाडी पर खडा यह छात्रावास सवसे ऊचा होने के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य को सवसे पहले भेलता है। रात का समय, चारो ओर पहाडियो का घेरा, तलहटी मे वैठी कपडा-मिलो की फैलती हुई रोशनी, पास मे पर्वत की चोटी के पीछे से निकलता हुआ चन्द्रमा प्रकृति की सुषमा को सहस्र गुणित कर रहा था।

१४ ११ ६२ छात्रावास से सूर्योदय के वाद विहार किया। मार्ग मे पहाडी प्रदेश होने के कारण कई उतार-चढाव आए। पर मन मे प्रसन्नता नही विखेर सके। उदयपुर-प्रवेश के समय आपाढ मास मे जो प्राकृतिक सौन्दय देखने को मिला उसका शताश भी इस समय नही मिला। पहाड अपने वस्त्र को उतार नग्न विद्रूप से खडे थे। उनकी ओर आँखे डालने की भावना भी नही उठती थी। स्याद्वाद का सिद्धान्त फलित हो रहा था। एक समय जो पर्वत सौन्दय को खुले हाथो से विखेर रहे थे, दूसरे समय मे वे ही कान्तिहीन वनकर मुँह छिपा रहे थे। यही स्थिति मनुष्य की होती है। मानो प्रकृति मानव की प्रकृति का अनुवाद कर रही थी।

कुछ दूर आगे चले। सडक के दाहिनी ओर जिक (जस्ते) का एक

बाजार मे तेल लेने गए। सारा बाजार घूम आये, किसी ने पैसे लेकर तेल नही दिया। उनको एक उपाय सूझा। एक लडके को पैसे देकर तेल लाने को कहा। दुकानदार ने उसे तेल दे दिया। पास मे गेहरीलाल खडे थे। उसको सदेह हो गया। उसने जाते समय लडके से पूछा—'किसको दोगे ? गेहरीलालजी ने सोचा कि लडका कही मेरा नाम न ले ले इसलिए बीच मे ही बोले—'तुम्हे क्या मतलब, तुम्हे तुम्हारे पैसे चाहिए, वे मिल गए।' इस पर दुकानदार ने तेल से भरी बोतल लडके से छीनकर पटक दी और पैसे भी ले लिए। लडका बेचारा क्या करता ? पैसे गेहरीलाल के गए। तेल के साथ शीशी भी हाथ से गयी। अपना-सा मुह लेकर सीधे घर आ गये। पैसे माँगे तो किससे ? दुकानदार जैन था और ग्राहक कलाल का लडका। गाँव मे प्रकाश का और साधन न होने से लकडी जलाकर सारी रात बितायी।

दूसरी घटना है—गाँव मे एक बहन तेरापथियो की लडकी थी। उसको सधार्मिक भाई पर स्नेह आ गया। विवाह पर आयी हुई मिठाई गेहरीलालजी को दे दी। गाँववालो को ज्ञात हो गया। वे उसके घर आए और उसे कोसने लगे। वह घबरा गई। उसने कहा—'मैंने किसी को मिठाई नही दी।' भाइयो ने कहा—'लाओ, तुम्हारी मिठाई तोलेंगे।' बहन ने भीतर जाकर मिठाई लाते समय एक ताला मिठाई मे छिपा दिया। तोलने पर वजन पूरा मिला, तब जाकर भाइयो ने पीछा छोडा।

ऐसी अनेक घटनाए है जिनसे इस एक घर के परिवार को भयकर कष्टो को झेलना पडा। फिर भी वे पथ से एक पग भी इधर-उधर नही हटे। जहाँ एक ओर मनुष्य धर्म का आचरण कर स्वार्थ की सिद्धि माँगता है वहाँ दूसरी ओर प्रलोभनो को ठुकराकर धर्म के लिए प्राण देने को तैयार हो जाता है। वास्तव मे उनकी धार्मिक दृढता प्रशसनीय है। सुविधाओ को देखकर फिसलन हो जाती है वहाँ कोई व्यक्ति अपने पैरो को जमाकर रखे, उसे शक्तिशाली कहना चाहिए।

घटना का दूसरा पहलू है—जाति-बहिष्कारता

का उन्माद भी कम नही चढता। एक परिवार म साथ पलने वाले भी अस्पृश्य वन जाते हैं, इससे अधिक घृणा का और क्या रूप होगा ? धम के नाम पर अमानवीय व्यवहार करते व्यक्ति को जरा भी सकोच नही आता। आकार से मानव अवश्य है पर धम का उन्माद मानव को अन्तर मे पागल वना देता है। जो धर्म आत्म-वुद्धि का एकमात्र साधन है उसे लड़ाई का माध्यम वना लें इससे अधिक पागलपन और क्या है ?

घटना का तीसरा पक्ष—गेहरीलालजी हैं। गृहस्थ मे चलने वाले को पत्नी का साथ न हो तो उसे चलने मे कितनी कठिनाई होती है इसे भुक्त-भोगी ही जान सकता है। जीवन-भर अविवाहित रहना स्वीकार कर लिया पर धर्म से पीछे नही हटे। धन-सम्पन्न होने से दूसरे भी अपनत्व दिखाते हैं, वहाँ इतनी कठिनाई अनुभव नही होती। मध्यम स्थिति वाले का कोई सहायक नही होता। जीवन-भर अपने पैरो पर चलना होता है। उनको आगे-पीछे एकमात्र आधार धर्म व गुरुदेव का मिलता है। उसी के सहारे जीवन को टिकाए चलता है। कष्ट-सहिष्णुता का वह उदाहरण सम्भव है किसी के मानस को सहिष्णुता का पाठ दे जाए।

आज सुवह आचायश्री गाँव मे पधारे तो गेहरीलालजी की प्रसन्नता का पार नही रहा। हर्ष-विभोर हो गये। स्वागत मे एक गीतिका गायी और एक रात्रिवास के लिए प्राथना की। यो तो गेहरीलालजी दो साल से सतत आचायश्री की सेवा का लाभ ले रहे हैं, फिर भी गाव का मोह अभी नही छूटा है। उन्होने कहा—'गुरुदेव ! मेरे जीवन मे ऐसे अवसर वार-वार नही आएगे, आपको मेरी प्रार्थना माननी ही पडेगी।' गाँववालो ने भी कहा—'अव हम वे नही रहे। पहले कट्टर थे पर आपका समन्वयपूर्ण व्यवहार देखकर हम प्रभावित हो गए। जब तक आप यहाँ एक रात रहने को नही फरमाएगे, तव तक गद्दी से पैर नीचे नही रखने देंगे।' आचार्यश्री ने एक रात्रि ठहरने का फरमाया। गेहरीलालजी के घर गोचरी भी पधारे।

गेहरीलालजी अकेले थे, फिर भी हिम्मत को नहीं छोडा। सधार्मिक

यात्रियो की व्यवस्था करने मे पीछे पैर नही दिया। किसी को अनुभव नही होने दिया कि यहाँ व्यवस्था का अभाव है। गाँव के लोगो का भी अनुकूल सहयोग रहा।

थामलावासी भाई गुडली से प्रार्थना करते आ रहे थे कि आचार्यश्री थामला पधारें। आज दोपहर को उनकी प्रार्थना स्वीकृत हो गयी।

दोपहर मे आचार्यश्री के प्रवचन से पूर्व मुनिश्री रिद्धकरण ने व्याख्यान दिया। प्रतिलेखन समय के वाद आचार्यश्री ने स्थानीय राजकीय माध्यमिक विद्यालय मे लडको को शिक्षाए दीं।

रात को सत ऐसे मकान मे सोए जहाँ भूत का भय था। हम लोग देखना चाहते थे, भूत किस रूप मे सामने आता है। क्योकि पहले सुन रखा था कि मेवाड मे भूत और डाकिनो का वोलवाला है। इन दो वर्षो मे आचार्यश्री ने सारे मेवाड की यात्रा की पर कही भी उन भूतो का चमत्कार देखने को नही मिला।

उदारता ले

अपर रात्रि का समय था। साधु वन्दन के लिए एक-एक आ रहे थे। एक वात चल पडी। उस प्रसग मे आचार्यश्री ने कहा—"भगवान् महावीर ने जातिवाद पर गहरा प्रहार किया। जितना विशद् सिद्धान्त था उनके अनुयायियो ने उसे व्यवहार मे स्थान नही दिया। ईसाई लोगो ने व्यवहार मे साकार रूप दिया। हरिजन, मुसलमान, हिन्दू कोई भी यदि ईसाई धर्म को स्वीकार कर लेता तो उसके वाद पूर्व जातियो का अस्तित्व एक ईसाई मे समाविष्ट हो जाता है। सव ईसाई कहलाते हैं। ईसाई धर्म ने एक नई जाति का रूप ले लिया। उनकी वृद्धि का यह प्रमुख कारण है कि उन्होंने हर जाति को अपने मे पचाया। आज भी जिनमे ऐसी उदारता नही वे सकीर्ण वनते जा रहे हैं। उनकी वृद्धि देखकर ईर्ष्या सव करते हैं पर उनकी उदारता को कोई नहीं अपनाता।"

हृदय की सरलता

१७ ११ ६२, पलानाकला यहाँ दो किसान थे। एक गाडरी, दूसरा गूजर। अवस्था मे वे साठ से ऊपर चले गए थे। आचार्यश्री को गाव मे आया सुन दशन करने आए। जिस आकाक्षा को लेकर आए थे वह उन्हे दशन से मिल गई। गाँव का जीवन सीधा व सरल होता है इसलिये उनमे वात करने मे आनन्द आता है। जहा भी स्वाभाविकता होती है वहाँ आनन्द उसमे अनायास निकल आता है।

आचार्यश्री ने पूछा—'क्या तुम जानते हो आजकल राज कौन करता है ?'

भाई—ऐसा सुनते है कि आजकल काग्रेस राज करती है ?

आचार्यश्री—काग्रेस मे कौन है ?

भाई—पडितजी, पडितजी कहलाते ह।

—क्या नेहरूजी ?

—हा, हा, वही। इसने धीरे-धीरे सव राजाओ की जमीन छीन ली और खुद राजा वन बैठा।

अन्य प्रश्नो के उत्तर मे उन्होने कहा—'हम देश के लिये सव कुछ दे देंगे।'

पद-यात्रा मे यह सवसे वडा अनुभव मिलता है कि ग्रामीण लोगो का मानस कैसा है, उनके कैसे विचार है और वे क्या चाहते हैं। भारत के मानस का प्रतिविम्ब देहातो मे है। उनको देखने के लिए पद-यात्रा सरल माग है।

१८ ११ ६२, थामला आसपास के (चोखले) क्षेत्र मे थामला ऐसा क्षेत्र है जहाँ प्राय प्रतिवष साधु-साध्वियो के चातुर्मास होते हैं। लगभग चालीस घर है। थामला को आचार्यश्री की पद-रज यद्यपि दो वर्ष पहले मिली थी, फिर भी लोगो की उत्कृष्ट भावना देख आचार्यश्री डेढ मील का घुमाव लेकर भी यहाँ पधारे। रहना चार-पाँच घटा ही हुआ,

पर उनकी मनोभावना पूर्ण हो गई। स्वागत मे श्री सोहनलाल सोनी ने दो शब्द कहे। तदनन्तर आचार्यश्री ने प्रवचन किया। प्रवचन के वाद श्री दीपचन्द वडारमियाँ, प्यारचन्दजी, सोहनलालजी, कजोडीमलजी सोनी आदि गाव के प्रमुख व्यक्तियो ने वहन झमकूबाई की दीक्षा के लिए सामूहिक प्रार्थना की। उन्होने कहा—'आज तक तेरापथ के इतिहास मे साधु-साध्वियो की नामावली मे थामला का नाम नही है। हम चाहते है कि थामला को भी उस पक्ति मे खडा होने का गौरव मिले।'

दो वजे वहा से जावड को विहार हो गया।

जावड छोटा-सा कस्वा है। कुल मिलाकर चालीस-पचास घरो की आवादी है। यहाँ रातभर रहने वाले थे पर गाँव के सभी भाइयो की, विशेषकर थानेदार श्री देवीलाल की प्रार्थना से दूसरे दिन एक बजे तक और रुके। यहाँ का पानी वहुत हल्का लगा। एक दिन मे ही उसने अपना असर दिखाया। साधुओ को कुछ स्वास्थ्य-लाभ मिला।

२१ ११ ६२, नाथद्वारा चातुर्मास समाप्ति के दूसरे दिन प्राय सिघाडे आचार्यश्री के दर्शनार्थ प्रयाण कर देते हैं। चातुर्मास के पूर्व ही दिनो की गणना प्रारम्भ हो जाती है। मन मे उत्साह दौडने लगता है। प्रतीक्षा के क्षण भारी वन जाते है। दर्शन की आशा के सहारे कातिक पूर्णिमा को पारकर विहार के लिए स्वतन्त्र वन जाते हैं। इस वर्ष आचार्यश्री ने राजनगर से आगे इधर आने के लिए निषेध कर दिया। उत्साह को कितना धक्का लगा, यह उनका मानस ही जान सकता है। यहा पहुचने के वाद आचार्यश्री ने उनके लिए दर्शन का द्वार खोल दिया। फिर क्या था? बूटी-बूटी साध्वियाँ भी दूसरे दिन आ गई। गिरा हुआ उत्साह फिर उठ खडा हुआ। तेरापथ सघ मे सघपति के दर्शन के प्रति इतना उत्साह सघ-सगठन का शुभ सूचक है। प्रति वर्ष लम्बी दूरी से आना और कुछ काल के वाद वापस जाना, बहुत कठिन कार्य है। वह एकमात्र श्रद्धा ही है जो उसे कठिनता का अनुभव नही होने देती, अपितु आनन्द की अभिव्यक्ति कराती है।

२२ ११ ६२ आचार्यश्री स्थानीय ह्रायर सेकण्डरी विद्यालय मे प्रवचन करने पधारे। प्रधानाध्यापक ने स्वागत मे आचार्यश्री का परिचय देते हुए उनके आधुनिक विचारो के प्रति आदर प्रकट किया। प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने कहा—"विद्यार्थियो को विद्यार्थी रहने मे जो आनन्द है वह विद्वान् बनने मे नही। विद्यार्थी बनकर चलने से ज्ञान-प्राप्ति का द्वार खुला रहता है। विद्वान् मानने मे प्रगति की इतिश्री हो जाती है। इसलिए ज्ञान-समृद्धि को बढाने के लिए जीवन-भर विद्यार्थी ही रहना चाहिए।

विद्यार्थी जीवन सबसे ऊचा जीवन होता है। इस जीवन से ही समाज के नेता, देश के कर्णधार और धम के सन्त निकलते हैं। भगवान् भी ये ही बनते हैं। सबका स्रोत विद्यार्थी-जीवन है जो आगे चलकर विभिन्न धाराओ मे बहता है। इसलिए इसकी सुरक्षा अत्यन्त अपेक्षित है। सुरक्षा के दो साधन है

१ जीवन मे बुराई आने के द्वार को बन्द करना।

२ जो बुराई घुस गई है उसे बाहर निकालना।

जैन दशन मे इन साधनो को सवर और निर्जरा कहा गया है।

एक युग था, जब अठारह-बीस वर्ष तक के बच्चे बुराइयो से अपरिचित रहते थे। आज आठ-दस वष के बच्चे भी बुराइयो के शिकार बनकर जीवन को गवा देते हैं।

आज के अभिभावक अपनी सतान को अध्यापको के हाथ सौप निश्चिन्त हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि वे केवल माता-पिता बनने के अधिकारी है। उससे आगे नही सोचते। सभवत स्कूल मे प्रवेश भी अपना झझट मिटाने को कराते होगे। क्या कभी अभिभावक अध्यापक से अपने बच्चे के विषय मे जानकारी लेते हैं? जन्म के दाता भी चिन्ता से दूर रहना चाहते हैं तब भला अध्यापक उनकी चिन्ता का भार क्यो उठाएगे? और किस-किस का उठायेंगे? सभी अध्यापक समान नही होते। जिनको विद्यार्थियो की चिन्ता है उन्हें अपना जीवन परिमार्जन करना चाहिए।

स्वय तमाखू पीने वाले का उपदेश भी उतनी ही सीमा तक असर करेगा। इसलिए पहले स्वय का जीवन शोधन कर फिर उसका पाठ पढाना चाहिए। पुस्तको का ज्ञान देने वाले बहुत मिलेंगे, पर जीवन से शिक्षा देने वाले कितने हैं ? प्रत्येक वर्ग यदि अपनी जिम्मेदारी को नही भूले तो ऐसी अवस्था देखने को ही नही मिले।

आगे आपने विद्यार्थी जीवन के लिए चार बातो की ओर ध्यान खीचा—

१ सहजता—धागा सरल होता है तो मोती सुगमता से पिरोये जाते हैं और वे माला का रूप ले लेते है। वैसे जीवन मे सरलता—सहजता होने से अनेक गुणो का प्रवेश सुगमता से हो सकता है।

२. विनय—आत्म-लाभ के लिए विनय आवश्यक है। विनय के माध्यम से ग्रहण किया ज्ञान फलवान बनता है। अविनय से ज्ञान नही आता, जो आता है वह स्थिर और फलप्रद नही बनता। विनय को गुलामी मान उससे दूर रहना अज्ञान है। गुलामी मे स्वार्थ पलता है, वहा विनय मे आत्मा का प्रवेश होता है।

३ क्रोध—क्रोध की अग्नि से क्रोधी भीतर ही भीतर झुलसता रहता है, क्रोधी की वृत्ति बदल जाती है। क्रोध पर नियन्त्रण करने के लिए खाद्य-सयम भी अपेक्षित है। वाणी-सयम और आखो का सयम विद्यार्थी के लिए आवश्यक होते है।

४ धार्मिकता—धर्म से घृणा कर, दूर न हटकर उसकी यथार्थता को समझना चाहिए। मेरा विश्वास है—कैसा भी युग हो, धर्म की सदा आवश्यकता रहेगी। धम के उपासना पक्ष को भले ही न स्वीकारें पर आचरण पक्ष को छोड भी नही सकते।"

अन्त मे विद्यार्थी-अणुव्रत के नियमो की व्याख्या कर उनको जीवन मे लेकर चलने की प्रेरणा दी।

रात को विचार-गोष्ठी मे जिज्ञासा और समाधान चला। चर्चा का प्रमुख विषय रहा—'श्रद्धा का आधार कौन ?'

२३ ११ ६२ रात को गोष्ठी का चर्चनीय विषय था—'श्रद्धा और भक्ति एक है या दो ?'

२४ ११ ६२ आज रात को चिन्तन-गोष्ठी का फिर आयोजन रहा। चर्चा का विषय था—'श्रद्धा अन्धी होती है या सूझती ?'

विषय की स्पष्टता के लिए तीनो दिनो की रात्रिकालीन गोष्ठिया सफल रही।

२५ ११ ६२ दोपहर मे अवधान का कार्यक्रम साहित्य मडल मे निश्चित हुआ। मुनिश्री दुलहराज ने अवधान पर प्रकाश डालते हुए आचार्यश्री के सान्निध्य मे इस विद्या की प्रगति का उल्लेख किया। मुनिश्री श्रीचन्दजी 'कमल' ने अवधान के प्रयोग प्रस्तुत किए। इस समय मुनिश्री नथमलजी ने सस्कृत के आशु काव्य मे कई समस्याओ को पूर्ण किया।

अन्त मे आचार्यश्री ने अपना प्रवचन किया—"प्राचीन ऋषि-मुनि हजारो श्लोक अपने मुख पर रखते थे। आज का मानव यन्त्र-युग मे अपनी मानसिक समृद्धि को धीरे-धीरे खो रहा है। उन मुनियो की स्मृति को अपना विश्वास भी नही दे पा रहा है। अवधान का प्रयोग स्मरण-शक्ति की सत्यता तक ले जाने का एक मार्ग है। इस युग मे भी व्यक्ति अपनी स्मृति को दृढ बना सकता है, यदि वह सयम की साधना करे। सयम की प्रेरणा देने और आत्मिक-शक्ति को जगाने के लिए समय-समय पर इसके प्रयोग किए जाते हैं। अवधान की सफलता के पीछे सयम काम करता है। सयम के अभाव मे अपनी स्मृति को खोकर खाली हाथ हो जाता है। स्मृति का सयम के साथ सीधा सम्बन्ध है। एक बार उस पर विश्वास न जमे पर आखिर मे उसे वही आना पडेगा। इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य सयम की भावना को अधिक विकसित करे।"

रात को विचार-गोष्ठी मे कई प्रश्नोत्तर हुए। एक सनातनी पडित ने कहा—"आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे कहा है कि 'हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेत् जैन मन्दिरम्'। इससे लगता है आचार्यश्री के मानस में उस अतीत की स्थिति का आज भी क्षोभ है। किन्तु आज वह सकुचितता

कहा है ? हम लोग आपके प्रवचन मे हमेशा भाग लेते हैं। किसी युग की, किसी व्यक्ति की भावना को सामान्य क्यो मानना चाहिए ?"

मुनिश्री नथमल ने उत्तर देते हुए कहा—"यह तो स्पष्ट है कि जो कहा गया है वह उस समय का चित्र है। यह भी सत्य है कि उस समय वह सामान्य उक्ति थी। वर्तमान मे उसका वह रूप नही है, फिर भी जो इतिहास है उससे आख-मिचौनी भी कैसे की जा सकती है ? यह तो और अच्छा है कि भूत की अपेक्षा वर्तमान युग समन्वय की ओर आगे वढा है। आचार्यश्री के मन मे क्षोभ का कोई भाव नही है, केवल स्थिति का अवलोकन है। उस युग के प्रतिविम्व को आज के मानस से तोलें, यह कहाँ तक सगत है ? व्यक्ति विशेप की भावना मानकर उस तथ्य से दूर भी नही हो सकते। आज जो समन्वय की दिशा मे विकास हुआ है उसका स्वागत है।"

पडितजी ने कहा—"यदि आपके मानस मे कोई क्षोभ नही है तो हमे कोई आपत्ति नही है।"

विचारो की स्पष्टता से भाई के मन मे जो रोप था वह शात हो गया।

इसके वाद भी श्री गगाधर शास्त्री ने कविता पढी और आचार्यश्री से निवेदन किया कि यदि यहा अणुव्रत-समिति का गठन हो जाए तो वहुत अच्छा रहे।

पानी की उपयोगिता

आचार्यश्री भोजन कर रहे थे। शीत ऋतु के कारण द्रव चिकनाई ठस गई थी। गर्म वस्तु से जिसका अधिकाश भाग पानी था, हाथ की चिकनाई को साफ किया। चिन्तन भी उपयोगिता की ओर मुड गया। आपने कहा—"पानी कितना उपयोगी है, गर्म भी काम मे आता और शीतोष्ण भी। ठण्डा पानी काम मे आता है और उसका घनीभूत वर्फ भी। भोजन पकाने मे, दवा मे इसका प्रयोग किया जाता है तो हर प्रकार की

शुद्धि मे भी यह आगे रहता है। यातायात मे भी पानी का सहयोग कम नहीं है। किसानो के लिए तो यह जीवन है। सब के लिए समान उपयोगी है। इसलिए सर्वप्रियता जितनी इसको प्राप्त है उतनी सम्भवत दूसरो को कम मिलेगी। जाति, लिंग, समाज और देश का कोई भेदभाव नही है। हर क्षेत्र मे, हर देश मे, हर ऋतु मे और हर व्यक्ति मे इसका समान स्थान है। हवा की तरह पानी भी जीवन का आधार है। इसलिए विद्वानो ने भी इसे जीवन नाम से सम्बोधित किया है। क्या ही अच्छा होता यदि पानी की तरह मानव भी अपनी प्रवृत्ति को सर्वोपयोगी बना लेता।"

२७ ११ ६२ 'मोलेला' से विहार कर 'कराई' पहुचे। कराई से मचिद दो मील आगे है। आचार्यश्री मचिद जाकर वापस शाम को कराई जाना चाहते थे। इसलिए अत्यावश्यक उपकरण साथ लिए और शेष कराई मे छोड दिए। कराई मे कुछ साधु व साध्वियाँ भी ठहर गई। मचिद मे आचार्यश्री पाठशाला मे ठहरे। उसके खुले मैदान मे दरवाजे के पास एक जैन-मन्दिर है, जिसके पुनरुद्धार का काय चल रहा है। उसमें करीब पाच फीट ऊची दो प्रतिमाए है—भगवान ऋषभनाथ और भगवान् शान्तिनाथ की। प्रतिमाए पन्द्रहवी सदी की हैं, जो कि शिलालेख से स्पष्ट है। भगवान् शान्तिनाथ की प्रतिमा और एक स्तभ पर शिलालेख है जिसमे स० १४६० माघ सुदी १४ लिखा हुआ है। एक प्रतिमा अभी निकटवर्ती पहाडो से मिली है। वह भूरे रग की है और विशेष सुन्दर है। भाइयों ने बताया, इन पहाडो मे कई मूर्तियाँ समय-समय पर मिली हैं। यहा की प्रतिमाओ मे घुघराले बालो का जूडा है। अधिकाशत ऐसे बालो की रचना बौद्ध प्रतिमाओ की मिलती है, पर यहा भगवान् ऋषभनाथ की प्रतिमा के जूडा है। निकटवर्ती रूपोंजी के मदिर मे भी एक प्रतिमा का ऐसा ही रूप है।

मचिद से डेढ मील की दूरी पर एक ऐतिहासिक स्थल है, जहा पर वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए जगलो मे घूमे थे, जहा उन्हे दुर्दिन देखने को मिले थे, घास की रोटियो

कहा है ? हम लोग आपके प्रवचन मे हमेशा भाग लेते हैं। किसी युग की, किसी व्यक्ति की भावना को सामान्य क्यो मानना चाहिए ?"

मुनिश्री नथमल ने उत्तर देते हुए कहा—"यह तो स्पष्ट है कि जो कहा गया है वह उस समय का चित्र है। यह भी सत्य है कि उस समय वह सामान्य उक्ति थी। वर्तमान मे उसका वह रूप नही है, फिर भी जो इतिहास है उससे आख-मिचौनी भी कैसे की जा सकती है ? यह तो और अच्छा है कि भूत की अपेक्षा वर्तमान युग समन्वय की ओर आगे बढा है। आचार्यश्री के मन मे क्षोभ का कोई भाव नही है, केवल स्थिति का अवलोकन है। उस युग के प्रतिविम्ब को आज के मानस से तोलें, यह कहाँ तक सगत है ? व्यक्ति विशेष की भावना मानकर उस तथ्य से दूर भी नही हो सकते। आज जो समन्वय की दिशा मे विकास हुआ है उसका स्वागत है।"

पडितजी ने कहा—"यदि आपके मानस मे कोई क्षोभ नहीं है तो हमे कोई आपत्ति नही है।"

विचारो की स्पष्टता से भाई के मन मे जो रोष था वह शात हो गया।

इसके बाद भी श्री गगाधर शास्त्री ने कविता पढी और आचार्यश्री से निवेदन किया कि यदि यहा अणुव्रत-समिति का गठन हो जाए तो बहुत अच्छा रहे।

पानी की उपयोगिता

आचार्यश्री भोजन कर रहे थे। शीत ऋतु के कारण द्रव चिकनाई ठस गई थी। गर्म वस्तु से जिसका अधिकाश भाग पानी था, हाथ की चिकनाई को साफ किया। चिन्तन भी उपयोगिता की ओर मुड गया। आपने कहा—"पानी कितना उपयोगी है, गर्म भी काम मे आता और शीतोष्ण भी। ठण्डा पानी काम मे आता है और उसका घनीभूत वर्फ भी। भोजन पकाने मे, दवा मे इसका प्रयोग किया जाता है तो हर प्रकार की

को भी वन-विलाव ले गया था, अकवर के सैनिक जिनका पीछा कर रहे थे। वे अरावली की पहाडियाँ थी, जिन्होने महाराणा प्रताप के स्वाभिमान की सुरक्षा की थी। ज्यो ही आचार्यश्री ने इस स्थल की चर्चा की, देखने को मन ललचा गया। नौ मील पहाडियो मे चलकर आने से थक गए थे, फिर भी इस स्थल को देखने का लोभ सवरण नही कर सके। भोजन करते ही हम पाच साधु (मुनिश्री श्रीचन्दजी, किशनलालजी, रवीन्द्रकुमार जी, विमलकुमारजी,मयमरुचिजी)और कई भाइयो ने उस ओर कदम वढा दिए। मार्ग मे एक जैन मन्दिर देखा जो खण्डहर के रूप मे अपना इतिहास लिए हुए था। शाह रूपोजी के द्वारा निर्मित होने के कारण वह 'रूपोजी का मन्दिर' कहलाता है। मार्ग से हटकर मन्दिर की ओर गए। मन्दिर घास से आच्छादित था। मुख्य द्वार के समक्ष खडे होकर हमने उसको देखा। सामने वह स्थान दिखाई दिया जहा प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। आकार को देखकर लगा यहा कोई वारह-तेरह फीट ऊची प्रतिमा थी, पर अव वह स्थान रिक्त है। वाहर एक प्रतिमा खडी है जो आकार मे छोटी है। मुनिश्री किशनलालजी ने तो शिलालेख की खोज मे मन्दिर के चारो ओर परिक्रमा दे डाली। फिर आगे वढे। मार्ग मे थामलावासी भाई रामलाल खारीवाल चौहान ने अनेक नये वृक्षो से हमे परिचित कराया। चलते-चलते हम धुनी मे चले गए। यहा एक सन्यासी अठारह वर्षो से रह रहा है। खम-नोर के सिसोदिया वश का है। द्वितीय महायुद्ध मे वह सैनिक के रूप मे जर्मनी भी गया था। अव उसने अपना नाम तुरतनाथ कर लिया है। धुनी मचिदनाथजी की तपोभूमि होने के कारण 'मचिद धुनी' कहलाती है। तुरतनाथजी ने हमारा स्वागत किया और ऐतिहासिक स्थलो को दिखाया। वह गुफा दिखाई जिसका दूसरा मुँह कटार नदी के किनारे निकलता है, जिसकी लम्वाई छ मील है। इसी गुफा मे छिपकर महाराणा प्रताप अकवर की सेना को चकमा देते थे। वे स्थल भी देखे जहा महाराणा प्रताप रहते थे। दोमजिला वह मकान 'प्रताप महल' कहलाता है। पास मे दानवीर भामाशाह की हाट भी देखी। महाराणा प्रताप की स्मृति

के साथ भामाशाह की स्मृति भी अपने मे चिपकी देखी। जहा हम खडे थे वहा से छ मील दूर हल्दीघाटी की पहाडी सिर ऊचा किए हमारी ओर देख रही थी और हमे अपने इतिहास की कहानी सुना रही थी। इन पहाडियो और गुफाओ मे कोई दिखाई नही दे रहा था, फिर भी महाराणा की वीरताभरी कहानी वे अपनी भाषा मे सुनाकर हमारे मानस को आन्दोलित कर रही थी। यदि ये दुगम पहाडियाँ और दीघ गुफा नही होती तो समतल मे महाराणा प्रताप का स्वाभिमान सुरक्षित नही रह पाता। अकबर की सेना कभी भी उन्हे घेरे मे वन्दी वना डालती। महाराणा प्रताप के आत्म-गौरव की सुरक्षा मे पहाडियो का सहयोग भी भुलाया नही जा सकता।

वापस आते समय अरावली की गोद मे एक जैन मन्दिर देखा जो जीवोजी के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दिर मे कोई प्रतिमा नही है, फिर भी प्राचीन चित्रकला कलाकार की यशोगाथा गा रही है। मन्दिर को खूब छाना-बीना मगर कही शिलालेख दिखाई नही दिया। समय बहुत आगे बढ गया था, इसलिए सीधे स्थान पर वापस आ गए। ज्यो ही हम पहुचे, आगे विहार के लिए तैयार होने का शब्द कानो मे पडा। आचार्यश्री का दर्शन कर हम लोग कराई जाने के लिए साथ हो गए।

आचायश्री ने गाव के भाई-बहनो के बीच बैठ उनका परिचय लिया और उन्हे सामायिक, प्रत्याख्या, माला आदि की धार्मिक प्रेरणा दी। शाम को कराई वापस आ गए।

२८ ११ ६२, कोसीवाडा नाथद्वारा से कोसीवाडा सीधी सडक नौ मील है पर आचायश्री को कोसीवाडा पहुचते-पहुचते पचीस-छब्बीस मील काटने पडे। नौ मील मोलेला, सात मील कराई, दो मील मचिंद, वापस दो मील कराई, छ मील कोसीवाडा। सत्रह मील का चक्कर अधिक लगा। मार्ग भी सरल नही था। पहाडी प्रदेश होने के कारण ककड-पत्थर और उतार-चढाव थकान को बढा रहे थे। आचार्यश्री के लिए यह माग विकट था। सर्दी का मौसम और उतार-चढाव दोनो ही श्वास की बीमारी के लिए प्रतिकूल थे।

गावो का धूलि-धूसर वायुमडल भी वाधक वन रहा था। फिर भी आचार्यश्री शरीर की उपेक्षा करके गाव-गाव को पदरज से स्पर्श करते हुए इन गावो मे विहरण कर रहे हैं। इसके पीछे एक ही भावना है—जन-कल्याण। स्व-साधना की तरह जन-कल्याण भी उनकी दृष्टि मे साधना का एक अग है।

नारी पुरुषो के हाथ का खिलौना

शाम को पचमी समिति से निवृत्त हो वापस आते समय एक भाई ने आचार्यश्री से निवेदन किया—'एक वहन को दर्शन देने की कृपा करें।' मकान पास मे ही था इसलिए प्रार्थना स्वीकृत हो गई। मकान के प्रागण मे पहुचे तो वह बहन ऊपर की मजिल मे कोने मे बैठी थी। आचार्यश्री ने सहज ही कहा—'ऊपर से दर्शन हो सकते हैं?' भाई ने कहा—'नौ महीने हो गए वह कमरे से वाहर ही नही आती।' तब पूछा गया—'क्यो?' उत्तर मिला—'पति का देहावसान हो गया है।' मकान की सीढियो की ओर बढते हुए आचार्यश्री के चरण रुक गए और कहा—'रूढि के पोषण के लिए मैं नही जाता।' एक भाई ने आकर आचार्यश्री की वाणी उसके कानो तक पहुचा दी। बहुत मुश्किल से कमरे के वाहर तो आ गई पर नीचे नही आयी। अन्य बहनो ने नीचे आकर दर्शन करने की बहुत प्रेरणा दी पर वह अपने विचारो से एक इच भी इधर-उधर नही हुई। इस घटना ने मस्तिष्क को चिन्तन के लिए विवश कर दिया। धार्मिक वृत्ति मे नारी जाति सहज आगे रहती है। पुरुषो की अपेक्षा बहनें गुरु-वचन को सत्य करने के लिए सब कुछ सहने को तैयार रहती है।

इस घटना को देख लगा—अबला वास्तव मे अबला है। उसमे इतना साहस नही कि वह पुरुषो के बन्धन से अपनी सुरक्षा कर सके। क्या कभी पत्नी के देहावसान पर पुरुष कोने मे बैठते है? एक, दो, तीन दिन नही, तीन-तीन सौ दिन होने पर भी बहनो को मकान के कोने से मुक्ति नही मिलती। बैठे-बैठे पैर जुड जाते है, पक्षाघात-सा हो जाता है, फिर भी

वाहर आना तो दूर, कमरे मे घूमना भी एक अपराध वन जाता है। सारा ससार उसके लिए वह एक हाथ जमीन ही है। इससे अधिक परवशता और क्या होगी ? क्या यह पुरुषो का नारी जाति पर अत्याचार नही है ? पुरुषो ने नारी को हाथ का खिलौना वना रखा है। कव तक यह अन्ध-विश्वास चलता रहेगा ? ध्वनि आती है—जव तक शिक्षा का अभाव रहेगा। सारी अन्धरूढियो का मूल शिक्षा की कमी ही है। एक शिक्षा के सहारे अनेक विकासो का द्वार खुल जाता है। शिक्षा से परदा हटेगा और उससे साहस आएगा, चिन्तन-शक्ति वढेगी और अन्ध-रूढियों से मोह हटेगा।

२६ ११ ६२, मदार यहा पर जैनो के पैतीस-चालीस घर है। आठ-नौ तेरापथियो के है। कहते हैं कुछ वर्ष पूर्व सव तेरापथी थे। आचार्यश्री पधारे तो सारा गाव एक रग था। सम्प्रदायो का भेद अदृश्य वन गया था। आचार्यश्री विहार से आते ही सीधे प्रवचन मे वैठ गए। यात्रा का विश्राम प्रवचन देकर ही किया। दोपहर मे मुनिश्री नवरत्नमलजी के वाद आचार्यश्री ने फिर प्रवचन किया। प्रवचन-स्थल से ही गावगुडा की ओर प्रस्थान कर दिया। विहार क्या था ? सज्ञा मात्र था। सबसे छोटा विहार था—आधा मील का।

शाम को गावगुडा पधारे। गाव के वाहर स्थानीय विद्यालय के छात्रो ने पक्तिवद्ध खडे होकर गीतिका के द्वारा स्वागत किया। गीतिका भाव-पूर्ण थी, अध्यापक के द्वारा आचार्यश्री के प्रति नव-निर्मित थी। जुलूस के रूप मे गाव मे पधारे। प्रधानाध्यापक ने स्वागत मे दो शब्द कहे। तदनन्तर आचार्यश्री ने प्रवचन किया। जैनो के साठ घर है। प्राय सभी घरों मे गोचरी की। रात को मुनिश्री किशनलालजी के वाद आचार्यश्री ने फिर प्रवचन किया। अस्वस्थता होने पर भी आज का यह चौथा प्रवचन था।

सिखाने की प्रेरणा

महावीर-प्रार्थना के वाद मैं जाप मे वैठा। आचार्यश्री मकान के भीतरी भाग मे अस्वस्थता के कारण विश्राम कर रहे थे। पास मे मुनिश्री रूपचन्दजी वैठे थे। आचार्यश्री ने मुझे याद किया। मैं उपस्थित हुआ। आचार्यश्री ने पूछा—'क्या नींद ले रहा था?' 'नही, जाप कर रहा था।' 'उत्तराध्ययन सूत्र सीखना प्रारम्भ कर दो,' आचार्यश्री ने प्रेरणा देते हुए कहा। मै मौन था। सिर नमन कर वन्दन की मुद्रा मे था। मेरा मौन स्वीकृति का परिवाहक था। वोल फूट नही रहे थे, उसके पीछे उदासीनता वोल रही थी। मुनिश्री रूपचन्दजी की ओर मुंह करते हुए कहा—'इसने इन दिनो मे कई अध्ययन सीख लिए है।' मधुकरजी की ओर दृष्टि डालते हुए कहा—'उसने अग्नि-परीक्षा सीखनी प्रारम्भ कर दी है।' दोनो का उदाहरण देकर आचार्यश्री मेरी सीखने की भावना जागृत कर रहे थे। फिर भी मैं उसी अवस्था मे वैठा था। दो क्षण वाद आचार्यश्री ने सूत्र की महत्ता व उपयोगिता वताई, 'कितना रस भरा है इस सूत्र मे। कथात्मक होने के कारण सरल भी है और सरस भी है। सव दृष्टि से यह सूत्र उपयोगी है। जैन-दर्शन का यह वाइविल है। सूत्र के स्वाध्याय से वैराग्य भावना को वल मिलता है, इसलिए इसे मुखगत रखना चाहिए।' उपयोगिता वताते-वताते कई अध्ययनो की गाथाए मुख से वाहर निकलने लगी। वीच-वीच मे गाथाओं का अर्थ भी मिलने लगा। सीखने की वृत्ति जग रही थी और धीरे-धीरे वल पकड रही थी।

अन्त मे इसी निर्णय को लेकर उठा कि मुझे उत्तराध्ययन सूत्र कण्ठस्थ करना चाहिए। नि सन्देह उदासीन व्यक्ति के लिए प्रेरणा वरदान वनकर सामने आती है।

शीतता त्याज्य है।

३० ११ ६२ इन दिनो मे आचार्यश्री का स्वास्थ्य कुछ गिर-सा गया

है। कई वर्षों से श्वास का रोग उन्हें घेरे हुए है। शीतकाल का विहार भी अनुकूल नही पडता। या यू कहना चाहिए कि शीतता का आपके साथ विरोध है। आज जब गोचरी मे एक पदार्थ आया जिसका स्वभाव शीतवधक था तो आपने लेने से इनकार कर दिया। जीवन के सहज खाद्य-सयम मे भी आज-कल और सयम चलता है। आपने कहा—'शीतता—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारो अपेक्षा से मेरे लिए त्याज्य है।'

द्रव्य—जिन पदार्थों की प्रकृति —अतिम परिणति शीतकारक हो।
क्षेत्र—रजकरण सपृक्त प्रदेश और ऐसा स्थान जो व्यवहार मे न आने के कारण ठड को पकडे हुए हो।
काल—शीत ऋतु तथा उसमे विहरण।
भाव — अधिक श्रम व चिता।

शरीर की स्वस्थता

आपने अपना अनुभव हमे देते हुए कहा—'जब मैं निश्चित और स्वच्छ वातावरण मे अपने को पाता हू उस समय श्वास शात रहता है। स्वास्थ्य मे भी सुधार पाता हू। किसी कारणवश कुछ चिता मे चला जाता हू तब श्वास का अपने पर आक्रमण पाता हू। इससे लगता है मन पर शरीर का सीधा असर पडता है। शरीर का स्वस्थ लाभ चाहनेवाले मन की स्वस्थता को न भूलें। बाह्य पदार्थों का शरीर पर प्रभाव पडता है। यह तो स्पष्ट है पर मानसिक प्रभाव जो सर्वसाधारण गम्य नही है उसका भी सीधा असर पडता है। मन को सदा चिता, सकल्प-विकल्प तथा आवेश से दूर रखनेवाला शरीर की स्वस्थता को भी पा लेता है।'

गावगुडा से समीचा के मार्ग की चर्चा दो दिन पहले ही सीवाडा से चल पडी थी। मार्ग की विकटता चारो ओर से कानो मे पड रही थी। फिर भी आचार्यश्री ने इस मार्ग को चुन लिया। उस ओर प्रस्थान कर दिया। गाँव से बाहर निकलते ही पहाडियो की पक्ति साथ-साथ चलने लगी। शहरो के मकान की तरह पहाडियाँ एक-दूसरे से सटी हुई थी। कही

कोई ऊँची थी तो कही कोई नीची थी । मानो प्रकृति ने पर्वतो से गाँव बसाना प्रारम्भ किया हो । इतना अन्तर अवश्य था कि यहा इस प्रकृति के गाँव मे भी निर्जनता थी। कही भी खडे हो अपने को देखने से पहाडियो के बीच मे पाते । दृष्टि जहाँ भी दौडकर जाती, पहाडियो से टकराकर वापस आ जाती । बीच-बीच मे नालो व खालो का छत्र सुषमा को बिखेर रहा था । तलहटी मे जहाँ भी थोडी-सी समतल भूमि मिली मानव ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया । बुद्धि का उपयोग कर उसे खेत बना डाला । स्थान-स्थान पर प्रकृति सीताफल से पथिको का स्वागत कर रही थी । पथिक ज्यो ही दृष्टि उठाकर वृक्ष पर हाथ डालता, सीताफल हाथ मे पाता । पगडडी का मार्ग ईर्या-समिति की ओर सजग कर रहा था । नीचे दृष्टि डालते तो पाताल तक चली जाती । थोडी-सी असावधानी से नीचे गिरने का भय था । पत्थरो की नोक की चुभन गति मे मन्दता ला रही थी । कुछ आगे चले तो सडक मिली । नाम सडक था, पर वह पहाडी रास्तो से भी गई-बीती थी । गाँव के लोगो ने श्रमदान से सडक बनाई थी । वर्षा के पानी का एक प्रवाह जो थोडी बहुत रेत थी, उसे भी बहा ले गया । पीछे नुकीले तीखे पत्थरो के रोले पडे थे । पग-पग पर खतरा था । जिसने भी पथ से आँखो को हटाया, तत्काल फल पाया । शैक्षमुनि धर्मरुचि गिर गए । यह आश्चर्य नही था । शरीर के चोट लगी तो पात्र भी फूट गया । कभी चोटी पर चढते तो कभी दरारो मे उतरते । चढाव की अपेक्षा उतार खतरनाक था । मानो प्रकृति मानव-जीवन के विलास और पतन का प्रामाण्य दे रही हो । इस प्रकृति-सौन्दर्य को देखकर आचार्यश्री का कवि मानस बोल उठा—

सीन 'समीचा' री अति सखरो, मगरा री भरमार ।।
खाला बिच-बिच खेत ईख रा, सीताफल सुखकार ।।१।।
दर्रा बडा डरावणा, पग चूक्या पाताल ।
रोर बापडी रडवडै, चलणो धीमी चाल ।।२।।

दो दोहो मे कवि ने कितना सुन्दर व यथार्थ चित्रण किया है, इसका

प्रमाण पथ को पग से मापने वाले ही दे सकने हैं। प्रकृति के सौदय को लूटने का थोडा-थोडा सवरण करते हुए धीमी चाल से पथ को दृष्टि देते हुए देवी का वास 'समीचा' पधारे।

एक-एक मील की दूरी पर चार वास -- देवीकावास, मेणावता का वास, दरजेला का वास, डाग का वास (छोटी वस्ती) वसे हुए है। चारो का एक समीचा है। राजस्थानी भापा मे समीचा सामूहिक अथ का परिचायक है। तीन वासो मे जैनो की वस्ती भी है। देवी के वास मे वीस घर, हाजेला के वास मे दस घर, मेणावतो के वास मे पाँच घर है। लोग कहते हैं समीचा क्षेत्र मे आचार्यश्री से पूर्व चतुर्थ जयाचाय तक किन्ही भी आचार्यो का पदार्पण नही हुआ। पहाडो मे एक कोने मे पडने के कारण यह आचार्यो के पदरज से अस्पृष्ट ही रहा। पर आचायश्री तुलसी ने अपने विहरण क्षेत्र मे इसे ले लिया। राकेट युग मे भी यहाँ मोटर-गाडी तो दूर, वैलगाडी भी नही आती। ऊँट और गधो के द्वारा यातायात होता है। सीमित आवश्यकताओ की अधिकाश पूर्ति वे अपने यहा ही कर लेते हैं। खाद्य-सामग्री शुद्ध व मानस सरल है। मगरा (पहाड) वासियो को कितनी प्रसन्नता हुई जव उन्होने अपने गाँव मे अपने वीच आचार्यश्री को पाया। उनके लिए यह अवसर मगल उत्सव से भी वढकर था। आज यह छोटा-सा गाँव शहर वन रहा था।

मध्याह्न मे स्थानीय स्कूल के पाँच अध्यापको ने आचार्यश्री से सम्पर्क किया। एक अध्यापक ने प्रवेशक अणुव्रती के ग्यारह नियम ग्रहण किए, शेप चारो ने यथाशक्ति नौ-दस। एक अध्यापक ने वीडी का वडल जेव मे से निकालकर फेंक दिया और सदा के लिए तमाखू का त्याग कर दिया। दोपहर मे मुनिश्री किशनलालजी के व्याख्यान के बाद आचार्यश्री ने प्रवचन किया। प्रवचन के अन्तर्गत आचार्यप्रवर ने गाँव के भाई-वहनो का परिचय लिया और उन्हे सत-दर्शन, सामायिक, माला आदि के नियम दिलाए। इसी वीच साध्वीश्री मोहनाजी और सुखदेवाजी भी वाडमेर और जसोल चातुर्मास विताकर दशन करने पहुच गई। आचार्यश्री ने

पूछा—'अभी कहाँ से आ रही हो?' उन्होंने उत्तर दिया—'माया के खेडा से।' ममीचा तीन कोस बताया था पर यह बारह-तेरह मील निकला। सूर्योदय होते ही चले थे। बीच में लगभग एक घंटा ठहरी। दोपहर के चार बजे यहाँ पहुची। मार्ग ककडमय होने के कारण पैर गति नही पकड सके।

आचार्यश्री ने उनकी भाषा का अध्ययन किया। थकान की क्लांति मुख पर देख कहा—"तुमने तो इतिहास बना दिया। नये मार्ग से कोई प्रथम आता है तो वह इतिहास बनाता है। ऐसे भयावह दुर्गम मार्ग में लगातार बारह मील चलना बहुत कठिन कार्य है।' गुरुदेव के मुख से यह सुन वे सारी थकान भूल गई। थकान से भरा मानस एक वाक्य में स्नान कर हल्का हो जाए, सचमुच वह वाक्य अपने में कितनी महत्ता छिपाए हुए है।

रात को गाँव के भाई-बहनो ने मिलकर एक स्वर से दूसरे दिन ठहरने के लिए प्रार्थना की, 'आप हमे छोडकर कैसे जाएगे, कपाट बन्द कर देंगे। ज़मीन पर आडे (मार्ग रोककर) सो जाएगे।' इस प्रकार आधे घटे तक प्रार्थना चलती रही। कुछ व्यवस्था की समस्या सामने आ रही थी। पर आचार्यश्री की इच्छा ने उसका समाधान निकाल लिया। दूसरे दिन रहना निश्चित हो गया। पत्थरो पर चलकर आए थे। एक दिन का विश्राम और मिल गया। सबसे बडी प्रसन्नता गाव के भाई-बहनो को हुई जिनकी भावना फलवती बनकर सामने आयी। गाव के भाइयो ने सधार्मिक यात्रियो की अच्छी व्यवस्था की। साधु-साध्वी व यात्रियो को समीचा क्षेत्र मे प्रसन्नता की अनुभूति हुई। यहा का प्रवास अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा मनमोहक रहा।

१ १२ ६२, देवी का वास प्रथम प्रहर था। अवस्था प्राप्त शैक्ष साधु हेमचन्द्रजी बैठे थे। आचार्यश्री की दृष्टि ने उनकी निष्क्रियता को पकड लिया और कहा—'कुछ सीखा करो। क्या अपने को बूढा मानकर सीखने से सन्यास ले लिया? कुछ न कुछ उद्यम करना चाहिए। सस्कृत न सीखी जाए तो हिन्दी की गीतिकाए व व्याख्यान देना सीखना चाहिए। और कुछ

न हो तो प्रतिलिपि मे लिखना सीखना चाहिए। तुम्हे याद रहना चाहिए कि केवलचन्दजी स्वामी (सरसा) ने वृद्धावस्था मे साधुत्व लेकर लाखो पद्य लिखे थे। लिखने से एकाग्रता बढती है और समय का सदुपयोग होता है। खाली हाथ रहने से दिमाग मे सकल्प-विकल्पो का भूत घुम जाता है। इसलिए उद्यम के द्वारा समय को साथक बनाना चाहिए।

यह सत्य है कि भारतीय मानस मे अपेक्षाकृत हीन भावना अधिक है। पचीस वर्ष की अवस्था के बाद वे अपने को स्कूल मे पढने के अयोग्य पाते हैं। वे मानते है कि अध्ययन काल पचीस वर्ष तक ही है। पाश्चात्य देशो मे पचास वष के पार वाले भी विद्यार्थी बनना पसन्द करते है, पर भारत मे ऐसे उद्धरण विरले मिलते हैं। आचायश्री किसी मे हीनत्व देखना नही चाहते। अवस्था मे वृद्धत्व को वे रोक नही सकते, पर विचारो मे वार्धक्य को देखना पसन्द नही करते है। वे तो मानते है—व्यक्ति को सदा युवा रहना चाहिए—शरीर की स्फूर्ति से और विचारो से।

प्रातःकाल मेणावतो के वास मे आचायश्री पधारे व उनके बीच प्रवचन किया। दोपहर मे मुनिश्री रूपचन्दजी ने स्थानीय स्कूल मे भाषण किया।

२ १२ ६२ एक मील घुमाव से सुबह हरजेला के वास मे पधारे। यहा आचार्यश्री ने सक्षिप्त सा प्रवचन किया। यद्यपि इस वास के भाई दो दिन से सेवा व प्रवचन का लाभ ले रहे थे, फिर भी गाव का उत्साह विशेष होता है। मार्ग मे कई भागल (छोटी बस्ती) आए। नाले के निकटवर्ती भागल मे उदसी बहन एक कटोरी मे दूध लिए खडी थी। उस की उत्कट भावना ने आचार्यश्री के चलते चरण को थाम दिया और छोटी-सी टोकसो में दो-चार घूट दूध लेकर उसकी भावना सफल की। ऐसे अवसर अल्प मिलते हैं। फिर भी जिनको मिलता है उनके लिए स्वर्णिम अवसर बन जाता है और जीवन मे एक स्मृति छोड जाता है।

गावगुडा वापस पधारे। मदार के भाई भी यहा पहुच गए। दोनो गाव के लोग आज भी अपने-अपने गाव के लिए प्रार्थना कर रहे थे।

आचार्यश्री ने दो ही नही, तीनो गावो को राजी किया। गावगुडा मे कुछ घटे ठहरकर मदार पधारे। कुछ समय उनको देकर रात कोसीवाडा मे विताई।

३ १२ ६२ कोसीवाडा से दोपहर मे विहार किया। कुछ दूर तक मार्ग ठीक था। समतल नही तो इतना ऊबड-खावड भी नहीं था। आगे का मार्ग समीचा के मार्ग की याद करा रहा था। किसी प्रकार इस मार्ग को लाघकर सिसोदा पहुचे।

सिसोदा के भाई-वहन स्वागत के लिए कई मील आ गए थे। जय-नारो से शून्य को प्रकम्पित कर रहे थे। अपनी भावना का प्रतिनिधित्व भाटा, ककड, नदी और नालो को भाषा देकर करा रहे थे। 'भाटा ककर करे पुकार, जैनधर्म की जय-जयकार', 'नदी-नाले करे पुकार, तुलसी गणी की जय-जयकार'—अनेक प्रकार के नारो से अपने उत्साह को आकार दे रहे थे।

सिसोदा मे जैनधर्म के अनुयायियो के साठ घर हैं। एकार्णव रूप से सब तेरापथी है और जाति से भी वे सब धाकड है। यहा कॉलेज शिक्षा प्राप्त कोई नही है। कुछ भाइयो का रहन-सहन मेवाडी गावो से भिन्न है। पूछने से ज्ञात हुआ यहा के करीबन सौ भाई बम्बई मे रहते हैं। इसीलिए उनमे शहरीपन सामने आ रहा था। स्वागत के लिए जब वे सामने आए तो उनकी पोशाक 'कहा से आए हो?' इस प्रश्न को पैदा कर रही थी। भाइयो मे आचार्यश्री के प्रति अति श्रद्धा थी। गगनभेदी जय-ध्वनियो के वीच आचार्यश्री को अपने गाव मे लाए। प्रवचन हो इतना समय नहीं था, इसलिए आचार्यश्री ने जुलूस को मगल-पाठ का मगल सूत्र दिया।

इस अवसर पर,बीदासर से आयी हुई नौ साध्वियो ने मातुश्री वदनाजी की वदना गीतिका के माध्यम से श्रीचरणों मे निवेदित की। मातुश्री स्थिरवास के कारण इतनी दूर आने मे असमर्थ थी इसीलिए उन्होने अपना आशीर्वाद साध्वीश्री राजीमतीजी आदि सतियो के साथ भेजा। इससे

अधिक उनके पास कोई साधन भी नही था। मातृ हृदय का प्रतिनिधित्व करने मे जड शब्दो का सहयोग लिया गया पर हृदय की भाषा को पूर्णत समझने वाला एकमात्र हृदय ही होता है।

४ १२ ६२ प्रात कालीन प्रवचन मे मातुश्री द्वारा प्रेषित एक गीतिका फूलकवरजी आदि साध्वियो ने मधुर स्वरो मे बाधकर सबके कानो तक पहुचाई। तदनन्तर आचार्यश्री ने प्रवचन किया। नए मोड पर प्रकाश डाला। सिसोदा के लिए यह आवश्यक भी था। किरियावर (मृत्यु-भोज) से उनका सस्कार दूर नही हट रहा था। कई बार आचार्यश्री ने इसको तर्क दृष्टि से समझाया। अन्त मे सारे गाव ने सामूहिक रूप से इसका परित्याग कर किरियावर का द्वार बद कर दिया। दो बहनो ने अपमानवर्धक काले वस्त्र को उतारकर दूसरे रग के कपडो को ओढ लिया।

५ १२ ६२ पचमी समिति से वापस आते समय आचार्यश्री ने गाव के प्राय सभी घरो का स्पर्शन किया। हर गाव वाले चाहते है कि अपने आराध्यदेव को अपने घर मे देखें, क्योकि गाव मे गुरुदेव के आगमन का अवसर जीवन मे कभी-कभी मिलता है। चिर प्रतीक्षा के बाद जो अवसर हाथ मे आया है उसे वे छोडना भी नही चाहते। इसीलिए वे अपनी सीमा तक निवेदन करते हैं और आचार्यश्री भी यथासम्भव उनकी भावना को पूर्ण करना चाहते है।

घरो मे जाते-जाते जब वे खेमचन्दजी धाकड के मकान तक आए तो उन्हे आगन से ऊपर मजिल पर भी चढना पडा, क्योकि ऊपर श्री देवेन्द्र कर्णावट की मौसी अस्सी वर्षीय वृद्धा अस्वस्थ थी। वह परदे मे लिपटी बैठी थी। आखो की दृष्टि क्षीण होने के कारण सामने खडे आचार्यश्री को भी न देख सकी। एक बहन ने घूंघट को दूर हटाकर कहा—'अब तो दर्शन कर ले।' परदा हटाया अवश्य पर वह सकुचा रही थी। जो भी दो-चार भाई खडे थे वे उसके पौत्र के समान थे, फिर भी वह सस्कारो से मुडना नहीं चाहती थी।

मातृभाषा

दर्शन करने एक कृषिकार आया। दूसरे भाई ने बताया कि यह ऊख की खेती अधिक करता है। व्यावहारिक रूप मे आचार्यश्री ने पूछा—'क्या ऊख की खेती करते हो ?' 'नही।' तब आचार्यश्री ने शब्द परिवर्तन कर पूछा—'क्या ईख बोते हो ?' 'नही।' 'क्या गन्ना बोते हो ?' 'नही।' 'साठा बोते हो ?' 'नही।' तब आचार्यश्री का ध्यान प्रान्तीय भाषा पर चला गया और कहा, 'हाठा बोते हो ?' हाठा नाम सुनते ही वह समझ गया और कहा—'हा।' चार बार मे न समझने वाला पाचवी बार मे समझ पाया। इसका क्या कारण था ? कारण यही था कि वह अपनी मातृभाषा ही जानता था, स्कूल की शिक्षा उसे नही मिली थी। यहा की प्रान्तीय भाषा मे 'स' का उच्चारण 'ह' मे किया जाता है। इससे फलित होता है कि कोई भी जो व्यक्ति अपने मिशन को ग्रामीण जनता तक पहुचाना चाहता है, उसे उनकी बोली का अध्ययन करना होगा। राष्ट्रभाषा व हिन्दी उनके लिए उपयोगी हो सकती है जो स्कूल मे शिक्षा लेते हैं। पर जो केवल अपनी बोली मे व्यवहार करते हैं उनके लिए दूसरी भाषा व बोली उपयोगी नही बनती। साठा और हाठा मे कितना अन्तर है ! पर किसान उसको ही नही पकड सका। इसलिए यह स्पष्ट हो गया कि देशाटन करने वाले उपदेशक को अपनी सफलता के लिए अनेक भाषाओ का ज्ञाता होना चाहिए।

पचती है और पचाती है

मक्की की राब मेवाड का सर्वसाधारण भोज्य पदार्थ है। वह छाछ के सयोग से बनने के कारण पाचक भी होती है। तीन-चार घटे तक उसे अग्नि पर पकाया जाता है। इसलिए कच्ची खटाई का दोष इससे निकल जाता है और प्राय सुबह बनाई हुई राब दूसरे दिन तक गर्म रह जाती है। आचार्यश्री भोजन कर रहे थे। शीत ऋतु के कारण खाद्य पदार्थ की चिक-नाई हाथ और पात्र मे टस गई थी। उसी समय मुनिश्री छोगालालजी राब

लाए। आचार्यश्री ने थोडी-सी राव ली। दो क्षण मे हाथ साफ हो गए, पात्र की चिकनाई राव मे धुल गई। खाने से मुह का चिकनापन भी मिट गया। तत्काल आचार्यश्री ने अपना अनुभव हमे दिया—'राव मे शुद्धि का सबसे बडा गुण है। हाथ, मुह, पेट और पातरी चारो की सफाई की शक्ति राव मे है।

पाचक होने के कारण स्वय शीघ्र पचती है और अन्य पदार्थों के पाचन मे भी सहयोग देती है। साधुओ के लिए यह बहुत उपयोगी है, क्योकि साधारण भोजन होने के कारण हर गाव मे हरेक साधु को सुगमता से मिल जाती है। साधु अपने कल्याण के साथ दूसरो का भी कल्याण करते हैं। वैसे राव भी स्वय पचती है और दूसरे पदार्थों को भी पचाती है। समान-धर्म होने के कारण साधुओ के साथ इसका पूरा टाल-मेल बैठता है।

ठडाई गर्मी से बिगडते हुए को थाम लेती है।

आचार्यश्री इन दिनो राव का प्रयोग अधिक करते हैं। प्रति दिन लेने वाले पेय की मात्रा मे कमी करके उसके स्थान पर राव लेते हैं। एक दिन राव और दूध का प्रयोग किया था। दूध मे राव डालते ही फट गया और छन्ना बन गया। उसी प्रयोग को आज फिर दोहराया तो सफलता हाथ नही लगी। पेय ठडा था, राव गर्म थी। दूसरी बार दूध गर्म था और राव ठडी थी। दोनो प्रयोगो की असफलता देख आचार्यश्री ने मुनिश्री नथमलजी को कहा—'तुम्हारा प्रयोग आज असफल रहा, पर तत्त्व दे गया।' आचार्यश्री ने प्रयोग के परिणाम को पकडते हुए हमे कहा—'गर्म से गर्म फटता है। जहा दोनो पक्षो मे गर्मी होती है वहा दोनो का मन फट जाता है। एक पक्ष मे यदि ठडाई रहती है तो दूसरे को जिसमे गर्मी उबलती है उस बिगडते हुए को थाम लेती है।'

सिसोदा से कुठवा के बीच मे एक पीपल का पेड देखा, जिसे पीपली कहते हैं। पास मे ही भोपोजी का मन्दिर है। जनश्रुति है कि अविवाहित कन्या जो भी उसके नीचे से गुजरती है, उससे भोपोजी 'जात' यानी दस

मातृभाषा

दर्शन करने एक कृपिकार आया। दूसरे भाई ने वताया कि यह ऊख की खेती अधिक करता है। व्यावहारिक रूप मे आचार्यश्री ने पूछा—'क्या ऊख की खेती करते हो ?' 'नही।' तव आचार्यश्री ने शव्द परिवर्तन कर पूछा—'क्या ईख वोते हो ?' 'नही।' 'क्या गन्ना वोते हो ?' 'नही।' 'साठा वोते हो ?' 'नही।' तव आचार्यश्री का ध्यान प्रान्तीय भापा पर चला गया और कहा, 'हाठा वोते हो ?' हाठा नाम सुनते ही वह समझ गया और कहा—'हा।' चार वार मे न समझने वाला पाचवी वार मे समझ पाया। इसका क्या कारण था ? कारण यही था कि वह अपनी मातृभाषा ही जानता था, स्कूल की शिक्षा उसे नही मिली थी। यहा की प्रान्तीय भापा मे 'स' का उच्चारण 'ह' मे किया जाता है। इससे फलित होता है कि कोई भी जो व्यक्ति अपने मिशन को ग्रामीण जनता तक पहुचाना चाहता है, उसे उनकी वोली का अध्ययन करना होगा। राष्ट्रभाषा व हिन्दी उनके लिए उपयोगी हो सकती है जो स्कूल मे शिक्षा लेते हैं। पर जो केवल अपनी वोली मे व्यवहार करते है उनके लिए दूसरी भापा व वोली उपयोगी नही वनती। साठा और हाठा मे कितना अन्तर है ! पर किसान उसको ही नही पकड सका। इसलिए यह स्पष्ट हो गया कि देशाटन करने वाले उपदेशक को अपनी सफलता के लिए अनेक भापाओ का ज्ञाता होना चाहिए।

पचती है और पचाती है

मक्की की राव मेवाड का सर्वसाधारण भोज्य पदार्थ है। वह छाछ के सयोग से वनने के कारण पाचक भी होती है। तीन चार घटे तक उसे अग्नि पर पकाया जाता है। इसलिए कच्ची खटाई का दोप इससे निकल जाता है और प्राय सुवह वनाई हुई राव दूसरे दिन तक गर्म रह जाती है। आचार्यश्री भोजन कर रहे थे। शीत ऋतु के कारण खाद्य पदार्थ की चिक नाई हाथ और पात्र मे टम गई थी। उसी समय मुनिश्री छोगालालजी रा

दोपहर मे मुनिश्री सचियालालजी ने व्याख्यान किया। आचार्यश्री ने गाव के भाइयो से परिचय लिया, फिर प्रवचन किया। रात को फिर प्रवचन हुआ। गाव के भाइयो ने सामूहिक रूप से ओसर का परित्याग किया। दूसरे दिन और ठहरने की विनती की, आचार्यश्री ने स्वीकार कर लिया।

९ १२ ६२, गुडला यहा तेरापथियो के ग्यारह घर हैं। दो-चार वर्ष पहले पाच-छ घर ही थे। भाइयो का परिवार बढने से वे ग्यारह बन गए। कुल मिलाकर करीवन तीन सौ घर की बस्ती है। यहाँ दो जैन मन्दिर है, जिनमे प्रत्येक मे भगवान पार्श्वनाथ की तीन-तीन मूर्तिया हैं। मन्दिर ३५० वर्ष पुराना है। मन्दिर बडा विशाल है। सोलह खम्भे हैं। प्रत्येक खम्भे की चारो दिशाओ मे चार-चार मूर्तिया हैं। सफेद पत्थर का होने के कारण अपनी उज्ज्वलता मे आज भी नवीनता लिए हुए हैं। पूजा की व्यवस्था तो तेरापथियो के हाथ मे है और प्रतिदिन होती है। दूसरा मन्दिर पचीस-तीस गज की दूरी पर है। छोटे से गाव मे दो मन्दिरो का होना अपने समय की समृद्धता बताता है। इस क्षेत्र मे गाव-गाव मे जैन मन्दिर जैन धर्म की व्यापकता का सकेत दे रहे है। एक समय मे मन्दिर गाव की प्रतिष्ठा के परिचायक थे। मन्दिर के पीछे गाव की शोभा थी। समय के साथ प्रतिष्ठा का माप भी वदल गया है। फिर भी मन्दिर के साथ जो ऐतिहासिक तथ्य जुडा हुआ है, वह आज भी सुरक्षित है। जैन धर्म की शृखला को सुरक्षित रखने मे मन्दिर और यतियो का योगदान विस्मृत नही हो सकता। यति परम्परा लुप्त हो रही है पर उस समय मे जैन धर्म की सुरक्षा यति लोगो के हाथ मे थी। यति वर्ग साधु और गृहस्थ के बीच का वर्ग था। त्यागमय जीवन व अपने चमत्कार के कारण वे जनता पर छाए हुए थे। आज भी जैन धर्म के व्यापक प्रसार के लिए तीसरे वर्ग की आवश्यकता अनुभूत होती है। तीसरे वर्ग के लिए यति वर्ग मे समय अपना सशोधन मागता है। यदि आवश्यकता पूर्ण होती है तो बहुत बडा अभाव मिटता है।

गाव मे पधारते ही आचार्यश्री ने प्रवचन किया । इससे पूर्व हीरालाल सियाल ने स्वागत मे दो शब्द कहे । दोपहर मे मुनिश्री किशनलालजी ने व्याख्यान दिया। आचार्यश्री ने गाव के भाइयो का परिचय लिया ।

प्रतिलेखन मे कुछ समय पूर्व आचार्यश्री वापला पधारे, जो गुडला से आधा मील दूर था। वहा जैनो मे केवल स्थानकवासियो के दस-बारह घर थे । आचार्यश्री ने उनके बीच प्रवचन किया। वहा गोचरी भी की। एक घटे बाद वापस गुडला पधार गए।

रात को आचार्यश्री का प्रवचन सरल भाषा मे हृदय को छूता हुआ चल रहा था। कभी-कभी प्रवचन का प्रवाह अनायास श्रोताओ को एक रस मे मग्न करता हुआ चला जाता है । प्रवचन के अन्त मे आचार्यश्री ने बुराइयो का उपहार मागा। सबसे पहले एक भाई आगे आया। उसने जेब मे पडी एक बीडी को बाहर निकालकर कहा—'यह एक बीडी तो मैं पीऊगा। इसके बाद जीवन भर बीडी छोड दूगा।' दर्शको को लगा यह विरोध क्यो ? एक ओर तो एक बीडी मे मन अटका हुआ है, दूसरी ओर सदा के लिए उसके प्रति घृणा कर रहा है। कही हास्य तो नही है ? आचार्यश्री ने त्याग करवाने से पूव उसे सोचने के लिए फिर अवकाश दिया। उसका वही उत्तर था। आचार्यश्री की वाणी से उसने जीवन को त्याग मे बाध लिया। फिर एक-एक कर लोग खडे होने लगे। किसी ने कुछ बुराई छोडी तो किसी ने कुछ। गाव के जैन महाजनो ने तीन त्याग सामूहिक किए—

१ ओसर नही करना ।

२ एक रुपया प्रतिशत से अधिक ब्याज नही लेना ।

३ बिक्री की वस्तु मे मिलावट नही करना ।

सरपच कुवर ओकारसिंहजी ने रिश्वत व दारू का त्याग किया।

१० १२ ६२, फरारा राजनगर के निकट होने से राजनगर और काकरोली के भाई-बहन अधिक सख्या मे दर्शन के लिए आ गए। साधु और

एक सुधरने से सब सुधर गए

विहार से पूर्व आचार्यश्री ने स्थानीय श्रद्धालुओ के घरो मे प्रवेश किया। दोपहर मे प्रवचन किया। त्याग के लिए आह्वान किया। एक भाई ने कहा—'यदि गाँव का सरपच जारसिह राठौर दारू को छोडता है तो वह गाँव से उठ सकती है।' इसके पीछे कारण था। वह दारू की भट्ठी निकालकर उसे वेचता था। आचार्यश्री ने अवसर का लाभ उठाकर उसे अन्त तक समझा दिया। उसने पीने तथा भट्ठी निकालने दोनो कार्यो का त्याग ले लिया। फिर क्या था, गाँव के छप्पन भाइयो ने दारू का त्याग कर दिया। गाँव से दारू का वास उठ गया।

पाठक सोचेंगे—इस प्रकार त्याग करना एक नदी का प्रवाह-सा है। कुछ समय वाद वह त्याग का वैराग्य ठडा हो जाता है। सभी व्यक्ति सव को अपनी दृष्टि से देखते है। शहरी लोगो की अपेक्षा ग्रामीण लोग वहुत कम त्याग लेते है और जो लेते है उसे तोडना महापाप मानते है, इसलिए प्रतिज्ञा मे वे वहुत दृढ रहते है। ग्रामीण लोगो का जीवन अधिकाशतया सरल व बुराइयो से दूर रहता है। जो त्याग गुरु की साक्षी से ले लेते है उसको जीवन भर निभाते हैं। उसमे गलती निकालना उनको कभी नही आता।

शाम को सागट होते हुए साया का खेडा पधारे। साकरोदा से साया का खेडा चार मील सुन रखा था, लेकिन वह सात मील से भी ऊपर चला गया। ऊबड-खाबड और पथरीला मार्ग थकान के साथ क्लाति को वढा रहा था। आचार्यश्री पर उसका अधिक प्रभाव पडा। जव वे पहुँचे तो वहुत कम समय हाथ मे रहा। कल्पना से अधिक समय मार्ग ने खा लिया।

रात को मुनिश्री ताराचन्दजी ने व्याख्यान दिया। आचार्यश्री आज थकान के कारण विश्राम लेना चाहते थे पर ग्रामवासियो की उपस्थिति और भाइयो की प्रार्थना व उत्कठा को देखते हुए यह नहीं हुआ। अल्पकाल के लिए आचार्यश्री सभा मे व्याख्यान करने आए थे, पर समय पहर रात

तक चला गया। गाँववालो ने दूसरे दिन के लिए भी वलवती प्रार्थना की। आधे दिन के लिए स्वीकृति मिलने से उनको एक वार सन्तोष मिला कि सुवह फिर प्रार्थना करेंगे।

हमारी वात रखनी होगी

१२ १२ ६२ प्रात कालीन प्रवचन मे गाँव के भाई-वहन व आसपास के किसानो से परिषद जुड गई थी। व्याख्यान मे आचार्यश्री ने मद्य पर प्रहार किया और उसे छोडने की सलाह दी। भाइयो ने कहा—'हमारे गाँव मे प्रमुख रूप से (दो भाइयो की ओर सकेत करते हुए) ये दो भाई पीते है। यदि ये छोड दें तो दूसरे तो स्वत छोड देंगे। सगत का असर अधिक होता है।' वे दोनो व्यक्ति बूढे थे और किसान थे। सभा मे आगे वैठे थे और आचार्यश्री के पास मे ही थे। जव खडे हुए तो आचार्यश्री ने उनका हाथ पकड लिया और कहा—'क्यो, दारू छोडनी है या नही ?' गुरु-कृपा का हाथ अपने पर देखकर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। भीतर से अनायास भावना जगी। एक ने दूसरे से सलाह की—'छोड दें ?' दूसरे ने उत्तर दिया, 'और क्या ?' दोनो ने एक-दूसरे को समझा और सदा के लिए उसे छोड दिया। फिर तो गाँव के कई भाइयो ने उनका अनुसरण किया।

प्रवचन-समाप्ति के वाद दोनो बूढे आचार्यश्री के पास आए और कहा—'हमने आपकी वात रखी, अव आपको हमारी वात रखनी होगी—आज की रात यही ठहरना होगा।' आचार्यश्री ने भी उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। गाँववालो को वडी प्रसन्नता हुई। इन तीन दिनो से ऐसा क्रम चल रहा है। गाँव के एक-दो व्यक्तियों के त्याग का प्रतिबिम्ब अन्य लोगों पर पडने से वुराई अपने आप मिट जाती है। फरारा मे वलि-प्रथा, साकरोदा मे दारू गाँव से मिट गई। यहा भी इसी परम्परा का अनुसरण हुआ।

वास्तव मे यह वहुत वडा रचनात्मक कार्य है। जीवन-निर्माण से अधिक रचनात्मकता और क्या हो सकती है ? आचार्यश्री का व्यक्तित्व

ग्रामीण जनता के अपनत्व को जोडने मे सफल हुआ है। शरीर मे अस्वस्थ होने पर भी आचार्यश्री दिन मे तीन-चार बार प्रवचन करते है, उनमे बैठकर बातें करते है। जो भी व्यक्ति अपने जीवन को पर-हित के लिए खपाएगा वह निश्चय ही महान् की पंक्ति मे खडा होगा। दूसरो की प्रियता उसे सहज मे ही उपलब्ध होगी।

अरावली का निमन्त्रण

मध्याह्न मे प्रतिलेखन के अनन्तर आचार्यश्री मकान की छत पर पधारे। गाँव का दृश्य आँखो को लुभा रहा था। मकानो के बीच-बीच मे वृक्ष और खेत गाँव को बृहत् बगीचा बना रहे थे। तीन-चार मील पर खडा अरावली अपनी सुषमा से प्रकृति की प्रशसा गा रहा था। अरावली दीवार की तरह दूर तक चला गया था, मानो वह दक्षिण दिशा को उत्तर से जोड रहा था। बीच का तालाब पर्वत के अनुदान और उदार भावना को स्पष्ट कर रहा था। आचार्यश्री ने कहा—'मेवाड प्रकृति के धन से धनी है। दूसरो की उस पर यदि आख लगती है तो कोई अस्वाभाविक नही है।' अरावली का निमन्त्रण पा दूसरे दिन आचार्यश्री ने उस ओर विहार कर दिया।

वृद्ध-हठ

१३ १२ ६२ माया का खेडा मे कोयल दो मील है। गोवल होकर जाने से साढे तीन मील पडते है। दो मील के लिए डेढ मील का चक्कर लेना नही चाहते थे। पहले कई भाइयो ने प्रार्थना की थी पर आचार्यश्री ने स्वीकृति नही दी। अन्त मे वहाँ के सत्तर वर्षीय भाई वृद्धिचन्द मादरेचा ने सत्याग्रह का रूप ले लिया। कोयल के मार्ग को रोककर लेट गया। कई भाइयो ने उसे उठाने का प्रयत्न किया पर वह अपने विचारो मे अटल रहा। बाल-हठ और त्रिया-हठ पहले सुना था पर आज वृद्ध-हठ भी देखने को मिला। उसने दो विकल्प दिए थे। आचार्यश्री गोवल गाँव पधारें

या मेरे ऊपर पैर रखकर कोयल पधारें। दो-चार मिनट के बाद देखा कि आचार्यश्री गोवल की ओर बढे जा रहे थे।

गोवल मे श्रद्धालु भाइयो (वृद्धिचन्दजी मादरेचा) का एक ही घर है। कुल सौ घरो की बस्ती है। आचार्यश्री जब इस गाँव मे पधारे तो उनके दर्शन व प्रवचन सुनने के लिए तीन-चार सौ भाई-बहन एकत्रित हो गए। गाँव के घरो को बन्द कर सब एक स्थान मे जम गए। मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई जाति-वैषम्य नही है, ऐसा व्यावहारिक रूप वहाँ देखने को मिल रहा था। राजपूत, गूजर, किसान, महाजन सभी मनुष्य के रूप मे थे। वेषभूषा मे भी विशेष अन्तर नही था। आचार्यश्री ने उनके बीच मे प्रवचन कर प्रसन्नता की अनुभूति की। पचास भाइयो ने मद्य और तीस भाइयो ने तमाखू का त्याग कर आचार्यश्री का सच्चा स्वागत किया। उनकी प्रार्थना पर आचार्यश्री ने उनके घरो मे गोचरी की।

पुरुषार्थवाद, स्वावलम्बन और सस्कृतता

कोयल पहुचते-पहुँचते ग्यारह से ऊपर बज गये। इसलिए आगमन के समय प्रवचन नही हुआ। गाँव के सभी जाति के लोगो का दर्शन के लिए ताता लग गया। उनमे दो साठ वर्षीय गूजर भाई थे जो पहले आचार्य कालूगणी के दर्शन से लाभान्वित थे। उन्होने अपनी स्मृति से कालूगणी को साक्षात् कर लिया। उनकी वेशभूषा सादी थी और जीवन की चादर भी अधिक मैली नही थी। आचार्यश्री ने उनके जीवन को पढना चाहा इसलिए पूछा—क्या काम करते हो?

—खेती का काम है।

—खेत कितने बीघ मे हैं?

—चार-पाच बीघे मे।

—मक्की कितनी होती है?

—जितना श्रम करते है उसी के अनुसार पैदा होती है। एक बीघे मे चार-पाँच मन भी और चालीस-पचास मन भी।

—गुड कितना होता है ?

—एक बीघे मे अस्सी मन।

उनकी भाषा मे पुरुषार्थवाद बोल रहा था। भाग्य उन्ही का साथ देता है जो पुरुषार्थ पर चलते हैं। कहाँ एक बीघे मे दस मन मक्की और कहाँ पचास मन। व्यक्ति के पुरुषार्थ के आगे दूसरी शक्तियाँ सब हतप्रभ हैं। यदि दूसरी शक्तियो की अनुकूलता होती है तो पुरुषार्थ चमक उठता है। गूजर भाई ने सिद्धान्त को प्रत्यक्ष कर दिखाया।

बात आगे चली। उन्होने कहा—हम किरासनी तेल को काम मे नही लेते, उसके स्थान पर तिल्ली का तेल व्यवहार मे लाते है।

आचार्यश्री ने पूछा—क्यो ?

—वह हमारे खेत मे पैदा होता है, उसको मगाना पडता है।

इस उत्तर मे भी उसका स्वावलम्बन झलक रहा था। अपनी आवश्यकता को सीमित कर उसकी पूर्ति अपने श्रम से ही करते हैं। बात चलती-चलती जब समाज पर आयी तो उन्होने कहा—यहाँ हमारे बीस घर है। कोई भी दारू नही पीता। समाज से दारू का बहिष्कार है। बेटे-बेटियो को नहीं बेचते। अगर वह गरीब से भी गरीब है तो साठ रुपये ले सकता है, पर उससे अधिक एक पैसा भी नही।

अशिक्षित कहलानेवाले भी अपने समाज की व्यवस्था कानून के बिना स्वय कर लेते है। दूसरी ओर अपने को सभ्य मानने वाले कानून की उपेक्षा कर चतुराई से अपने अगज को खुले आम बेच देते हैं। हजारो और लाखो रुपयो से अपनी प्यास नही बुझा पाते। समाज के अन्य गरीब व्यक्तियों के मार्ग मे काटो का जाल बिछा देते हैं। दोनो प्रकार के व्यक्तियो मे कौन सस्कृत और कौन असस्कृत है, इसका निर्णय अपनी बुद्धि से लें।

दोपहर मे आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे ग्रामीण जीवन का शब्द-चित्र दिखलाते हुए कहा—'यहाँ का जीवन शान्ति का जीवन है। अपनी आवश्यकता को अधिक नही बढाते। जो पैदा करते है उसी मे समेट

लेते हैं।

भैंसो का धीना।

साठो का रस पीना।

और सुख का जीना।

इनके कपडे फटे हैं पर इनकी जीवन-चद्दर अधिक मैली नही है। थोडे मे धुल जाती है। दो-चार बुराइया मुख्य रूप से पायी जाती है—दारू, तमाखू, शिकार आदि। जो सरपच होते है वे रिश्वत लेना भी सीख जाते हैं। ओसर की प्रथा व्यापक रूप मे है। थोडे से उपदेश से उनका हृदय-परिवतन हो जाता है। यह उनके सरल मानस का परिणाम है। बुराई सगत से या देखा-देखी से आ जाती है। कई वर्षो तक पालकर उसे मोटी वना लेते हैं। पर थोडा-सा उपदेश का प्रकाश मिलते ही अन्धकार की तरह मिटा भी देते है। उनमे जो बुराई है वे स्लेट पर लिखे अक्षरो के समान हैं जो एक वार मे ही थोडे-से प्रयास से मिट सकते है। शहरी व्यक्तियो की बुराइयाँ अधिकाशत कागज पर लिखे स्याही के अक्षर के समान हैं, जहाँ कागज फट जाता है पर अक्षर नही मिटते।"

आगे प्रवचन मे जीवन निर्माण सम्बन्धी प्रवेशक अणुव्रती के ग्यारह नियमो को समझाया। तमाखू छोडने का उपदेश दिया। एक किसान भाई ने तर्क दिया—यदि तमाखू न पीए तो दिन भर घूमने वाले बैलो को विश्राम कैसे मिले?

आचार्यश्री ने तर्क को काटते हुए कहा—बैल को विश्राम देने के लिए तमाखू पीना ही आवश्यक क्यो, और भी काम हो सकता है। भगवान् का जाप करने मे क्या बाधा आएगी।

तर्क तर्क से प्रतिहत हो गया। फिर वह नही उठा। गाँव के अन्य भाइयों ने तमाखू व मद्य के त्याग किए।

१४ १२ ६२ कोयल से सेवदारा गुडा, थोरिया होते हुए घाटा पधारे। घाटा पहाडो के पैरो में बैठा है इसलिये समतल से ऊँचा है। साया के पेडे से सुन्दर दीखने वाले इन पहाडो ने अपने रूप को न जाने कहाँ

प्रतियोगिता मे भेज दिया। इसी अनुभूति के आधार पर किसी ने ठीक ही कहा था—'दूर से डूगर रलिया मणा'। यह लोकोक्ति स्मृति मे अनावृत हो रही थी।

राजस्थानी भाषा मे दर्रे को घाटा या नाल कहते है। दर्रे के कारण गाँव का नाम भी 'घाटा' पड गया। भाषा के श्लेष से हिन्दी मे घाटा का शब्द हानि का अर्थ देता है पर यह अर्थ यहाँ सगति को नही पकडता। यहाँ से दो मील दूर एक गुफा है जो तीन मील लम्बी है जिसका दूसरा मुँह मूकार मे खुलता है। कहते है यहाँ आज भी साधु-सन्यासी तप-साधना करते है। इधर खुलनेवाला गुफा का मुँह खिडकी के समान है जिससे साधु कभी-कभी बाहर निकलकर घूमते है। ऐसा व्यक्ति एक भी नही मिला जिसने किसी साधु को साक्षात् देखा हो, फिर भी किंवदन्ति है।

घाटा मे पहुँचते-पहुँचते आचायश्री को ग्यारह से ऊपर बज गये। फिर भी स्थानीय व्यक्तियो ने प्रवचन सुनने की उत्सुकता दिखाई। स्वागत मे स्थानीय वैद्यराज व अध्यापक ने अपनी-अपनी रचना से आचायश्री को श्रद्धाजलि अर्पित की। तदनन्तर आचायश्री ने प्रवचन किया। दोपहर मे राजसमन्द से आए हुए भाइयो के एक दल ने माघ-महोत्सव की प्रार्थना की। भाई रोशनलालजी ने अपने भाषण मे आज ही स्वीकृति की माँग की पर वह पूर्ण न हो सकी, क्योकि गगापुर, टाटगढ और नाथद्वारा वाले भी रीछेड मे इसी माग को लेकर आ रहे थे।

रात को गाव के भाइयो ने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि दूसरे दिन का प्रवचन यही होना चाहिए। समय के अभाव मे वैसा नही हो सका।

१५ १२ ६२ घाटा गाँव से बाहर एक कदम रखा कि घाटा (दर्रा) प्रारम्भ हो गया। कुछ दूर तक कच्ची सडक पर चले। सडक क्या थी पहाडो पर चौडा रास्ता था। पत्थर व ककड जगात के रूप मे पथिक के पैरो का खून माँग रहे थे। जिसने सावधानी से अपने को बचाया वह सुरक्षित निकल गया। असावधान रहने वाले को जगात चुकानी पडी।

दो मिनट मे अपने को पर्वत की चोटी पर देखते तो दो मिनट के बाद ही नालो व गहन झाडियो मे पाते। चारो ओर दृष्टि पर्वत से टकराकर मुड आती। एक ओर ककडो की चुभन पैरो की गति मे मथरता ला रही थी, दूसरी ओर प्राकृतिक सौन्दय मन को खीच रहा था। दोनो ओर से गत्यवरोध उपस्थित होने पर भी पैर धीरे-धीरे वढ रहे थे। उसके पीछे एक कारण था—गन्तव्य स्थान। लक्ष्य ही व्यक्ति को अनेक बाधाओ से पार कराकर चलने का मन्त्र सिखाता है।

एक व्यक्ति ने कहा—'यह रास्ता खराब है, अगली मील का रास्ता खराब नही है।' आगे चलकर देखा—वही ककड और वही उतार-चढाव। भाई ने विश्वास दिया पर वह टिक नही सका। गन्तव्य स्थान पर पहुचने के बाद आचार्यश्री ने कहा—'घाटा के रास्ते की कोई भी मील ऐसी नही देखी जिसे ठीक कहा जा सके।' उपमा के स्वर मे बोले—'ऊँट का कौन-सा अग सीधा होता है? घाटा के मार्ग की कौन-सी मील को ठीक कहूं!' एक दूसरे को भुला रहे थे। बीच का विश्राम पाऊला मे किया। पाऊला की छोटी बस्ती का निमत्रण पा आचार्यश्री उसके पाऊने (अतिथि) बन गए। पथरीले मार्ग मे पथिक विश्राम मागता है, उसके लिए यह पाऊना उपयुक्त क्षेत्र है।

पाऊना के मकानो के आगे और पीछे खेत होने से वह उद्यान का रूप ले रहा था, पथिको को अपनी ओर खीच रहा था। पास मे इक्षु के खेत अधिक थे, रस पेला जा रहा था।

दोपहर मे वहा से विहार हुआ। मार्ग की मकरी गली के दोनो ओर लहलहाते खेत थे। ईख की ऊँचाई करीबन तीन मनुष्यो जितनी थी। इतनी ऊँचाई पहले देखने को नही मिली। हाथी भी उसमे छिप सकता था। यही कारण था कि एक बीघे की छोटी-सी भूमि सौ मन से भी ऊपर गुड देती थी। भूमि सोना उगल रही थी। 'मुर्गी सोने का अडा देती थी'—यह लोकोक्ति सभवत इसी का प्रकारान्तर हो। उत्पादन की प्रतियोगिता मे यहाँ के किसान ने भारत सरकार से तृतीय पुरस्कार

प्राप्त किया। कही-कही शून्य मे निर्बाध मार्ग पाकर बढने वाले बेहडा और फलो से लदे आवनो के वृक्ष पर्वत को समृद्धि को वढा रहे थे। कही-कही चार विश्वा भूमि को समतल बनाने के लिए कृपिकार ने वारह-तेरह फीट पत्थरो की ऊँचाई वना रखी है। पुरुपार्थ कभी खाली नही जाता, यह सिद्धान्त विचार की सीमा को लाघ व्यवहार मे आ गया था। पथरीली भूमि को भी उवर भूमि मे देखने वाले किसान का मनोरथ फल ला रहा था। गन्तव्य पथ को लाघकर रीछेड को निकट किया। प्रकृति की विविधता को देख सवेदनशील कवि मानस कव मौन रहने वाला था! आचार्यश्री ने तत्काल चार दोहो मे यथार्थ चित्रण को साक्षात्कार कर दिया।

वण्या पावणे पावणा, विच घाटा रीछेड
लाघी हलवे हालता वा भारी भटभेड ॥१॥
वड वेहडा अरु आवला खरा ईख रा खेत
सो सो मण गुड इक विगै, सोनो वणगी रेत ॥२॥
अठी वठी मगरा विचै, वण्या वगीचा खेत,
पग-पग सीन सुहामणो, निरखत ठरग्या नेत ॥३॥
घाटा स्यू रीछेड री, जो नहि जोइ नाल
तो यात्रा मेवाड री रही अधूरी हाल ॥४॥

मेवाड पहाड-प्रधान देश है। इसका वास्तविक दर्शन पथरीली भूमि मे ही होता है। जहाँ सडक विछ गई है वहाँ उसका यथार्थ रूप नही मिलता। सडक के आवागमन मे पथिको को सुविधा होती है और प्राकृतिक सौन्दर्य मे भी वृद्धि होती है। पथरीली भूमि मे चलने से मेवाड-यात्रा की अनुभूति अविस्मरणीय बन गयी।

शाम को साढे चार वजे रीछेड मे प्रवेश हुआ। स्वागत का आयोजन माध्यमिक शाला के विशाल प्रागण मे हुआ। गाव की ओर से श्री भवरलाल धीग ने दो शब्द कहे।

श्री हीरालाल नागोरी (अध्यक्ष, उदयपुर जिला काग्रेस) ने इस

अवसर पर उपस्थित होकर स्वागत मे भाषण किया। स्कूल की ओर से प्रधानाध्यापक ने स्वागत किया। समय की अल्पता के कारण अवशिष्ट कायक्रम रात के लिए स्थगित हो गया। आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए यात्रा के ताजे अनुभव सुनाये। इस माग से रीछेड-आगमन को मेवाड-यात्रा का महत्त्वपूर्ण अग माना।

१६ १२ ६२, रीछेड रीछेड वोराट क्षेत्र का प्रमुख गाव है। सब तरह से सम्पन्न है। यहाँ के निवासी व्यापारार्थ वम्वई जाने से आधुनिकता मे घुल गये हैं। आचार्यश्री को अपने गाँव मे पुन देखने के लिए उनमे उत्कट भावना थी। उनकी प्रार्थना सिसोदा से चली आ रही थी। समय पाकर वह फलवती वनी। आज उनके उत्साह को मापने के लिए कोई यत्र नही था। दूकान और मकानो की दीवारो पर मोटोज के रूप मे आचायश्री की वाणी को अक्षरो ने आकार दे दिया था, जो मार्ग मे चलने वाले का ध्यान एक वार अपनी ओर मोड लेते थे। पाठक की दृष्टि खाली हाथ नही लौटती। घटे की ध्वनि की तरह स्मृति में चिन्तन गति करता था। गाव का वायुमडल भी शुद्ध था। तेरापथी भाइयो के अलावा मूर्ति-पूजक भाइयो के उत्साह और स्थान की अनुकूलता आचार्यश्री को लम्वे प्रवास के लिए प्रेरित कर रही थी।

प्रथम प्रहर की पावन वेला मे आचायश्री ने साधु-साध्वियो के पाठयक्रम की परीक्षा का उद्घाटन किया। इतनी जल्दी आने का परीक्षा भी एक कारण थी। साध्वियाँ चाहती थी कि हम परीक्षा आचार्यश्री के सान्निध्य मे ही दें। इसी भावना का स्वागत करते हुए आचार्यश्री ने परीक्षा-तिथि आगे वढाकर पोष कृष्णा पचमी के दिन निश्चित की। साध्वियाँ अपने मनोरथ की सिद्धि मे प्रसन्न-चित्त दिखाई दे रही थी।

आज पोप कृष्णा-पचमी आचार्यश्री के दीक्षा-दिवस के रूप मे सामने आयी। श्री भवरलाल धोग के सयोजकीय भाषण के बाद साध्वीश्री राज-मती ने इस अवसर पर गुरु-जननी साध्वीश्री वदनाजी की ओर से दर्शनो की प्रार्थना निवेदित की। मुनिश्री सोहनलाल 'चूरू' ने एक गीतिका गायी।

मुनिश्री नवरत्नमल ने 'भिक्षु शासन-सरिता' नामक एक नव रचित ग्रन्थ श्रीचरणो मे उपहृत किया। अन्त मे आचार्यश्री ने दीक्षा विषय पर विवेचन किया।

दोपहर मे माघ-महोत्सव की प्रार्थना का कार्यक्रम रहा। एक-दो वर्ष पहले माघ महोत्सव के योग्य क्षेत्रो मे दो-तीन गावो के नाम मुख्य थे। इस अवसर पर नौ गाँवो की प्रार्थना सामने आयी जिसकी कल्पना नही थी—गगापुर, टाटगढ, आसीद, नाथद्वारा, राजनगर, केलवा, बोराट, मालवा और खानदेश। प्रार्थना प्रार्थना के लिए नही थी, अन्तर हृदय की माग थी। गगापुरवासी इसके लिए विशेष उम्मीदवार थे। पर वह वरदान राजनगर को मिला।

१७ १२ ६२ आज रीछेड़वासियो ने अपनी तीन मागो को फिर दोहराया—(१) वर्धमान-महोत्सव, (२) दीक्षा-महोत्सव, (३) एक मास का वास।

तीन मागो मे वर्धमान-महोत्सव चल ही रहा है। दीक्षा महोत्सव की स्वीकृति और मिल गई। तीसरी माग का निर्णय अभी नही हुआ है।

अग्रगण्य साध्वीश्री कमलजी (चूरू) अस्वस्थता के कारण कई वर्षों से सुजानगढ स्थिरवास मे थी। सयोग से उनका देहावसान हो गया। आचार्यश्री ने शेप साध्वियो मे मुखिया भीखाजी को बनाया। चातुर्मास समाप्ति के बाद गुरु-दर्शन करते हुए मर्यादा के अनुसार पुस्तक, पन्ने, सहयोगिनी साध्वियां और स्वय को आचार्यश्री के चरणो मे समर्पित करते हुए कहा—'जहा आप आदेश दें वही मैं रहने को तैयार हूँ।'

मर्यादा के अनुसार ये वाक्य अग्रगण्य को कहने होते हैं। शपथ लेने के बाद ही मन्त्री-पद की नियुक्ति मानी जाती है। उसके पूर्व कार्यवाहक के रूप मे रहता है। ठीक ऐसे ही आचायश्री जिस साधु-साध्वी से अग्रगण्य की वन्दना ले लेते है वही अग्रगण्य होता है, उसके बिना वह कुछ समय के लिये अस्थायी मुख्य के रूप मे कार्य करता है।

साध्वीश्री भीखाजी अग्रगण्य नही थी, मुखिया थी। अग्रगण्य साध्वीश्री

कमलूजी थी। इसीलिये ये वाक्य कमलूजी के नाम से आने चाहिए थ पर साध्वीश्री भीखाजी को ध्यान नही रहा। आचार्यश्री की पैनी दृष्टि ने उन वाक्यो को पकड लिया और उनसे उपालभ के रूप मे कहा—'विधान के अनुसार तुम्हारी शब्दावलि उपयुक्त नही थी। मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।'

इस घटना से दो पहलू की ओर ध्यान चला जाता है। अग्रगण्य और मुखिया का भेद स्पष्ट हो जाता है। दूसरा तथ्य है आचार्यश्री की पैनी दृष्टि। स्थूल रूप मे अग्रगण्य की अनुपस्थिति मे यदि मुखिया उसका प्रतिनिधित्व करता है तो कोई अन्तर नही लगता। पर सूक्ष्मता मे जाने से यह स्पष्ट हो जाता है। अग्रगण्य का पद देना आचार्य का अधिकार है। जहाँ मुखिया इस अधिकार को अपने हाथो मे ले लेता है वहाँ व्यवस्था मे गडवड पैदा हो जाती है। फिर अग्रगण्य का महत्त्व उतना नही रह पाता, जितना कि है। आचार्यश्री अपने कर्तव्य मे सजग हैं। वे छोटी-सी मर्यादा का भी लघन देखना नही चाहते।

२४ १२ ६२, चारभुजा मेवाड के तीर्थों मे चारभुजा भी एक वैदिक-तीर्थस्थल है। वोराट क्षेत्र का प्रमुख गाँव है। दूर-दूर के दर्शनार्थी आने से चारो ओर से सडको से जुडा हुआ है। वह अब गाँव से शहर की ओर आगे वढ रहा है।

आचार्यश्री मेवाड-यात्रा में दूसरी बार इस गाव मे आए हैं। आने का एक कारण—'अणुव्रत-शिविर' है। एक ओर नेफा मे हिमालय की वर्फीली भूमि से सैनिकों का शिविर चल रहा है वहाँ दूसरी ओर अरावली शिखर की ककरीली भूमि मे अनैतिकता से लोहा लेने के लिए यह नैतिक शिविर हो रहा है। इसमे गगापुर, दिल्ली, जयपुर, उदयपुर, राजनगर, आदमपुर मडी, भीलवाडा, लावासरदागढ आदि राजस्थान और पजाव के कार्यकर्त्ताओ ने भाग लिया। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री जयसुखलाल हाथी (सुरक्षा विभाग के केन्द्रीय राज्यमन्त्री) भाग लेने वाले थे पर विशेष परिस्थितिवश नही आ सके।

चौक मे वने पडाल मे आचार्यश्री का स्वागत-भाषण हुआ। मुनिश्री जवरीमल और मुनिश्री सुखलाल आदि सन्तो ने आज गुरु-दर्शन किए।

एक भाई ने गाव की ओर से स्वागत किया। स्वागत के उत्तर मे वोलते हुए आचार्यश्री ने हिंसा और अहिंसा की विवेचना करते हुए कहा—"चीन के भारत पर आक्रमण करने से हिंसा और अहिंसा का प्रश्न पुन जागृत हो गया है। कुछ लोग कहते है कि अहिंसा का पुजारी होने के कारण ही भारत को इतनी मार खानी पडी है पर हाल के चीन-आक्रमण ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिंसा वस्तुत समाधान नही है, क्योकि यदि वह आक्रमण कर अपने आप मे आश्वस्त होता तो पीछे नहीं हटता। उसकी हिंसा भावना ने एक वार उसे वहुत कुछ आगे वढा दिया। पर जव विश्व मे भारत की अहिंसा भावना को अच्छी तरह से समझा जाने लगा तो चीन के लिए भारत की भूमि पर टिका रहना भारी पड गया क्योकि वह आक्रमणकारी था।"

आपने आगे कहा—"लोग कहते हैं कि वार-वार नैतिकता का नारा लगाने से कुछ नही हो सकता पर मेरे विचार से हमे उस समय तक अपने कार्य मे शिथिलता नही आने देनी चाहिए जव तक कि भारतीय पूर्ण नैतिक नही हो जाते। सोए हुए आदमी को जगाने के लिए तव तक प्रयत्न करना ही पडता है जव तक कि वह जाग नही जाता। इसलिए हम नैतिकता की वात को पुन -पुन दोहराने को पुनरुक्ति नही मानते। मेरे विचार से यह अत्यन्त आवश्यक कार्य है।"

दोपहर मे अणुव्रत-शिविर की प्रथम वैठक हुई। साध्वियो द्वारा मगलाचरण के वाद श्री रामचन्द्र जैन (मन्त्री, अखिल भारतीय अणुव्रत-समिति) ने भाषण दिया। इसके वाद आचार्यश्री ने मगल प्रवचन करते हुए कहा—'अहिंसा एक धर्म है, एक महाव्रत है, एक अणुव्रत है। दर्शन के सारे भेद-प्रभेद अहिंसा मे सिमट जाते हैं। सारे प्रश्न समाहित हो जाते हैं।

"कौन-सा धर्म अच्छा है ? इसका उत्तर है—अहिंसा धर्म अच्छा है।

वह नित्य है, ध्रुव है और शाश्वत है।

१ किसी प्राणी की हत्या मत करो।

२ किसी के अधिकार मत छीनो।

३ किसी का दिल मत दुखाओ।

४ किसी को दास मत बनाओ।

५ किसी के प्रति बुरा चिन्तन मत करो।

ये सिद्धान्त अहिंसा की ध्रुवता के सकेत हैं। अणुव्रत-आन्दोलन अहिंसा को जीवन मे साक्षात्कार कराने का प्रयोग है। अहिंसा का दर्शन जितना सामने आया उतना उसका साक्षात्कार नही हुआ। जीवन मे आए विना उसका मूल्य भी क्या है? यही अभाव खटक रहा है। अणुव्रत आन्दोलन इस अभाव को मिटाने का प्रयास कर रहा है। आन्दोलन मे कार्यकर्त्ता की कमी है। कार्यकर्त्ता साधु-साध्वी है। गृहस्थ भी हैं पर जितनी अपेक्षा है उतने नही हैं। गृहस्थ अणुव्रती कार्यकर्त्ता का असर अधिक पडेगा क्योकि वे समाज मे रहकर भी त्याग का पाठ सिखाते हैं। ब्रह्मचारी साधु की अपेक्षा दम्पति ब्रह्मचारी को धन्यवाद है जो अनुकूल व उपलब्ध सुविधा को त्यागकर आगे आते हैं। कार्यकर्त्ता अपनी वाणी को अपने कार्य मे देखें तो उसका अधिक प्रभाव पडेगा। कार्यकर्त्ता को सकल्प-वल अधिक लेना चाहिए। मैं यह काम करूँगा—इस दृढ सकल्प के साथ वह चलेगा तो सफलता उससे दूर नही रहेगी।"

रात को मुनिश्री नथमल के सान्निध्य मे अणुव्रत दर्शन की मीमासा पर कार्यकर्त्ताओ के वीच प्रश्नोत्तर चले।

२५ १२ ६२ आज प्रात कालीन प्रवचन 'हाजरी' के रूप मे उपस्थित हुआ। मर्यादा पर वोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—"सघ के लिए मर्यादा आवश्यक होती है। मर्यादा के विना सगठन की दृढता चिरजीव नही रहती। कुछ मर्यादाए सम्प्रदाय की अपनी होती है। सघ के सदस्य के लिए प्रत्येक मर्यादा प्राण है। छोटी और वडी का प्रश्न वहाँ नहीं उठता। साँप का वच्चा क्या छोटा और क्या वडा। सघ के सदस्यो के लिए मर्यादा

शिरोधार्य होनी चाहिए। मर्यादा का पालन प्रामाणिकता से होना चाहिए। सदस्य की निष्ठा ही मर्यादा को मूल्यवान बनाती है। मर्यादा व परम्परा को रूढि के रूप मे सामने रखकर चलने वाला उसके प्रति निष्ठावान नही बन पाता। प्रतिदिन करनेवाले नियमित कार्य को रूढि मानना भूल है। नियमितता और रूढि को एक मानकर चलना अज्ञान है।"

आगे आपने गति का विवेक देते हुए साधु वर्ग से कहा—'देख-देखकर और धीमी गति से चलना चाहिए। बातो के साथ चलने से ईर्या समिति रुष्ट होकर साथ छोड देगी। शैशव की चचलता और यौवन के जोश मे गति पर नियन्त्रण अति आवश्यक है। 'समणोऽहं' इस वाक्य को स्मृति से बाहर नही करना चाहिए। इससे गति मे दिशा मिल जाती है। ध्यान आदि साधना को सब जानें या न जानें पर गति को सब जानते हैं क्योकि वह आखो के सामने होती है। सावधानी रखना अपना कर्तव्य है। गलती हो जाए तो उसका समर्थन नही करना चाहिए। सरल हृदय से उसे स्वीकार करना ही शुद्धि का सरल मार्ग है।"

आगे आपने आलोचना आदि विषय पर प्रकाश डाला। अन्त मे साधुओ ने पक्तिबद्ध खडे होकर लेखपत्र का उच्चारण कर मर्यादाओ की शपथ को याद किया।

दोपहर मे साधु-साध्वियो की गोष्ठी मे मर्यादावली का वाचन हुआ। मर्यादा की एकरूपता के लिए उसका वाचन और समीक्षा आवश्यक होती है, इसीलिये ऐसे अनुष्ठान आयोजित किए जाते है।

प्रात कार्यकर्त्ताओ की मुनिश्री नथमलजी, बुद्धमल्लजी, नगराजजी आदि सन्तो के सान्निध्य मे गोष्ठी हुई, जिसमे कार्यकर्त्ताओ की कठिनाई के विषय मे प्रश्नोत्तर चले। दोपहर मे कार्यकर्त्ता सविभाग प्रवर्तन योजना के सम्बन्ध मे विचार किया।

शाम को प्रार्थना के बाद राजस्थान शिक्षा विभाग के उपसचालक शम्भूदादा ने शिक्षा विषय पर अपने विचार दिए। इसके बाद ऊपर वे कार्यकर्त्ताओ के बीच गए। श्री बलवन्तसिह मेहता और शम्भूदादा ने

विचार-विनिमय किया।

२६ १२ ६२ प्रात अणुव्रती कार्यकर्त्ताओ की एक बैठक हुई जिसमे निर्णय लिया गया कि—

१ कार्यकर्त्ता अपने गाँव मे अणुव्रत समिति न हो तो गठन करें और हो तो उसे सक्रिय बनाए।

२ आसपास मे 'सविभाग-प्रवर्तन योजना' को आगे बढाए। प्रत्येक भाई अपनी आय का कुछ 'सविभाग' दे।

दोपहर मे अणुव्रत कार्यकर्त्ता शिविर का पूर्णाहुति समारोह हुआ। श्री रामचन्द्र जैन (मत्री, अखिल भारतीय अणुव्रत समिति) ने अपने तीन दिवसीय शिविर की गतिविधि से लोगो को परिचित कराया। इसके बाद मुनिश्री मोहनलाल शार्दूल, मुनिश्री सुखलाल और साध्वीश्री स्नेहकुमारी ने कार्यकर्त्ताओ के कर्तव्य पर प्रकाश डाला। तदनन्तर मुनिश्री नगराज ने कार्यकर्त्ताओ को मार्गदर्शन दिया। अन्त मे आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—"अणुव्रत आन्दोलन को जन्म लिए तेरह वर्ष पूरे हो रहे हैं पर कार्यकर्त्ताओ की टोली नही बनी। इसमे जमीन, सम्पत्ति आदि दान देने नही पडते, फिर भी क्यो नही बनी ? इस प्रश्न को जब मुडकर सोचता हू तो यही पाता हू कि इसमे बुराइयो का त्याग करना पडता है, जीवन को कसना होता है। लाखो रुपये देना इतना कठिन नही है जितना कि आत्म-वृत्तियो पर नियन्त्रण करना। यदि समय पाकर भी ऐसे कार्यकर्त्ताओ की टोलियाँ बनेंगी तो मैं समझता हू देश के लिए सौभाग्य का विषय होगा। कार्यकर्त्ताओ को मैं सम्मान की दृष्टि से देखता हू, चाहे वह वेतन-भोगी भी हो। यदि वह चरित्रनिष्ठ भी होता है तो मेरे हृदय मे वह स्थान पा लेता है। शिविर के कार्यकर्त्ता अनुशासन को न भूलें। मिट्टी की पिटाई और कुटाई उस समय तक चलती है जब तक वह 'घट' नहीं बन जाए। उसके बाद भी 'ठोले' से उसकी परीक्षा की जाती है। कार्यकर्त्ता को धैर्य नही खोना चाहिए। चाहे उसके कार्यो का मूल्य समाज आके या न आके, फिर भी उसे अपनी धुन से नही हटना चाहिए। ईमानदार कार्यकर्त्ता

और उसके कार्य के प्रति मैं सदा आश्वस्त रहता हू। मैं चाहता हू त्याग-निष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्त्ता घर-घर से निकले।"

ग्रामीणो की प्रण-निष्ठा

जगजोतसिंह पचास वर्ष को पार कर गया था। साथिया गाव से चलकर यहाँ आचार्यश्री के दर्शन करने आया था। दर्शन करने के बाद उसने अतीत की स्मृति कराते हुए कहा—"आपको याद होगा कि आप साथिया पधारे थे। व्याख्यान भी दिया था। तमाखू छोडने के लिए लोगो से कहा था, पर कोई माई का लाल भी आपकी वाणी को झेलने के लिए तैयार नहीं हुआ। मैंने सोचा कि देवता तुल्य आपकी वाणी खाली क्यो जाए? मैं तमाखू पीता था। तत्काल खडा हुआ और आपने मेरी तमाखू की आदत छुडा दी। मै क्षत्रिय हू। आप द्वारा दी गई प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से पालन कर रहा हू। क्षत्रिय धर्म यही है कि 'प्राण जाएँ पर प्रण न जाए। मैं अपने प्रण पर अडिग हू। कभी भी उसे नही तोडूगा। मैं यह भावना लेकर आया हू कि आप हमारे गाँव फिर एक बार पधारें।"

इस बात को सुनकर विश्वास और दृढ हुआ कि ग्रामीण भाई अपने अपने त्याग को पूण निष्ठा व ईमानदारी से पालते हैं।

२७ १२ ६२ दोपहर मे 'साहित्य-गोष्ठी' का आयोजन हुआ। उसका विषय था तेरापथ का नव्य प्रकाशित साहित्य। आचार्यश्री साहित्यिक साधु-साध्वियो की इस पर टिप्पणी जानना चाहते थे। इसलिए पहले साध्वियो का आह्वान किया। चार-पाँच साध्वियो की आलोचना का सम्मिलित रूप इस प्रकार था

१ भाषा की दुरूहता—एक बार पढने से हृदयगम नहीं होता।

२ विषयो की गहराई।

३ दार्शनिक तत्त्वो का साहित्यीकरण होने से वे सुपाच्य बन गए हैं।

४ जैनदर्शन विषयक हिन्दी साहित्य का अभाव एक सीमा तक

मिट गया है ।

५ प्राचीन साहित्य को पढने के प्रति रुचि जागृत हुई हैं ।

कई साध्वियों ने साहित्य पढा ही नही इसलिये अधिक साध्वियो की आलोचना सामने नही आयी । आचार्यश्री ने साध्वियो को प्रेरणा देते हुए कहा—"मैं सोच रहा था कि साध्वियो का साहित्य मे विकास क्यो नही होता ? आज मुझे एक कारण हाथ लगा है—वह है अध्ययन का अभाव । अध्ययन के विना विकास का द्वार बन्द रहता है । साहित्य पढे विना अपनी ज्ञान-समृद्धि नहीं वढती । जितना लिखा जाए उससे दूना पढना चाहिए। यदि साध्वी वर्ग नव्य साहित्य को पढने मे समय देता तो उनका विकास अवश्य आगे वढता ।"

इसके वाद साधुओ के अनुभव सुनने को मिले—

१ कई स्थलों पर तथ्यो का उद्घाटन हुआ है पर अपना मत निर्णित नही हुआ ।

२ भापा की क्लिष्टता—विद्वत-भोग्य है न कि जन-साधारण-भोग्य ।

३ भापा का स्तर ऊँचा है । इसके योग्य पाठकों की प्रतीक्षा करनी चाहिए न कि स्तर को नीचे लाना चाहिए ।

४ जो तथ्य प्रकाश मे आए वे अवश्य साहित्य जगत् को आलोकित करने वाले हैं ।

कई साहित्यकारो की आलोचना मे लगा— हमारा साहित्य का स्तर किसी से कम नहीं है । उन्होने अपने पैसो से साहित्य की माँग की ।

इसके वाद तेरापथी महासभा के सहायक मत्री श्री चन्दनमल पुगलिया ने कहा—'पहले युवको मे दर्शन साहित्य के प्र'त जो अरुचि थी वह अव मिट गई है ।' एक सुझाव दिया कि साधु-साध्वियो को साधुओ के स्थान पर अध्यात्म-कक्षा चलानी चाहिए, जिससे भाई-वहनो का शिक्षा स्तर कुछ ऊँचा उठे ।

समाज के साहित्य-सेवी श्री श्रीचन्दजी रामपुरिया ने कहा—'भिक्षु

स्वामी राजस्थान के महान् दार्शनिक थे। उन्होंने राजस्थानी भाषा मे जो देन दी है वह अमूल्य है। यद्यपि वे सूत्रो के पीछे-पीछे चले है, फिर भी उनकी मौलिक प्रतिभा ने अपना रूप दिखाया है।'

एक सुझाव दिया कि कोई भी ग्रन्थ पढा जाए उसे क्रम से पढना चाहिए। पाच पृष्ठ कही से और पाच पृष्ठ कही से, अथवा पाच पृष्ठ किसी ग्रन्थ के पढने से क्रमबद्धता नही रहती। समय अधिक लगता है और पल्ले कम पडता है।

रिसर्च स्कॉलर श्री रामचन्द्र जैन ने कहा—'हमे इतिहास को आत्मालोचन की दृष्टि से पढना चाहिए। राष्ट्रीय अनेकता मे एकता कितनी सीमा तक रही। उस समय तेरापथी भाइयो ने योगदान दिया या नही और क्यो ? ऐसे तथ्यो पर अन्वेषण करना चाहिए। दृष्टि पैनी होने से अनेक तथ्य भी हाथ लगेंगे। हिन्दुस्तान के इतिहास मे हमारे धर्म का नाम नही है। क्या उसमे हमारी गलती नही रही ?

हम लोग व्यापार-कुशल हैं। घर की व्यवस्था करना अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी हम समाज मे अयोग्य सिद्ध होते है, यह क्यो ?

साहित्य केवल निरूपणात्मक ही नही होना चाहिए। तुलनात्मक साहित्य और आलोचनात्मक साहित्य लिखना भी हमारा लक्ष्य होना चाहिए। अन्य तथ्यो की रोशनी देकर हम अपने निर्णय को व्यक्त करें, जिससे पाठको का आकर्षण बढे।'

मुनिश्री नथमल ने कहा—'साहित्य की तीन श्रेणी हैं

१ जनसाधारण-पठनीय साहित्य।

२ विद्वत्-भोग्य।

३ शोधपूर्ण साहित्य।

आज युग को तीसरी श्रेणी के साहित्य की आवश्यकता है। हमे इस ओर प्रयत्न करना चाहिए। प्राचीन आचार्यो का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि कुछेक आचार्यो ने ही नयी देन दी है। सिद्धसेन, अकलक और समन्तभद्र मे परस्पर पुनरावर्तन हुआ है। अब आवश्यकता है कि

प्राचीन साहित्य की समीक्षा कर नए विचारो को आगे बढाएँ।'

अन्त मे साहित्यकार साधुओ के पढने की पद्धति का परिचय लिया।

२८ १२ ६२ अपर रात्रि मे साधु परिषद् मे बोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—'यह हमारे पूर्वजो की अनूठी सूझ व दूरदर्शिता है कि उन्होने मर्यादा महोत्सव की परम्परा डाली। यह भी सत्य है कि आने-जाने मे साधु-साध्वियों को श्रम होता है, यात्रा सम्बन्धी कष्ट भी पडते है, सैकडो साधु-साध्वियो के एक साथ गाँव मे रहने से आहार आदि की कठिनाई भी होती है, फिर भी सभी आनन्दानुभूति करते है। गुरुकुल के आकर्षण से स्वय खिचे आते हैं। परस्पर मिलन, एक-दूसरे की प्रगति और गुरुवास का वातावरण मूक भाषा मे प्रेरणा देता है। समय-समय पर शिक्षाएँ भी मिलती हैं जो वर्ष-भर की खुराक बन जाती हैं।' आगे आपने श्रद्धा पर बोलते हुए कहा—'ज्ञान और श्रद्धा मे विरोध नही है। ज्ञान का घनीभूत रूप ही श्रद्धा है। ज्ञान की अपूर्णता ही अह को जन्म देती है और उससे वह श्रद्धा से दूर हो जाता है। श्रद्धावान् ज्यो-ज्यो आगे बढता है वह अपने को श्रद्धेय मे लीन कर देता है। भिन्नता की अनुभूति नही होती। श्रद्धा जहाँ स्वार्थ से जुडी रहती है वहाँ वह श्रद्धा का रूप दिखाती है पर वास्तव मे वह श्रद्धा नही होती।'

२६ १२ ६२ दोपहर मे सस्कृत सम्भाषण का आयोजन हुआ। आदि से अन्त तक सारा कार्यक्रम सस्कृत भाषा मे चला। मुनिश्री सुमेरमल व रूपचन्दजी ने मगलाचरण किया। सयोजकीय भाषण करते हुए मुनिश्री सुखलाल ने इसकी उपयोगिता दिखाई। मुनिश्री मीठालाल, नवरत्नमलजी, नगराजजी (सरदारशहर), वच्छराजजी, रूपचन्दजी, महेन्द्रकुमारजी (बम्बई), साध्वीश्री फूलकुमारीजी, स्नेहकुमारीजी, कमलश्रीजी, यशोधराजी, कनकश्रीजी, कनकप्रभाजी ने वक्ता के रूप मे भाग लिया। मुनिश्री नथमल ने उपसहारात्मक भाषण करते हुए आगम के तथ्यो का रहस्य खोला।

अन्त मे प्रेरणा देते हुए आचार्यश्री ने कहा—'आज कई साधु साध्वियो ने इसमे वक्ता के रूप मे भाग नही लिया। उनका सकोच उनके ही विकास

के लिए अवरोधक है। युवा होने पर भी वे अपने को पुराने मान बैठे हैं। मैं नही चाहता कि वे अपने विकास के मार्ग को खुला नही रखें। उन्हे अपनी उदासीनता को मिटाकर आगे आना चाहिए। साधु-साध्विया संस्कृत मे स्फुट रचना अधिक करते हैं। काव्य की ओर उनका ध्यान कम गया है। तुलसी महाकाव्य, भिक्षु महाकाव्य, अभिनिष्क्रमण, सम्बोधि, अश्रुवीणा, मुकुल और उत्तिष्ठत-जाग्रत आदि ग्रन्थ मुख पर आते हैं। इस ओर भी प्रयत्न करना चाहिए।'

रात को अणुव्रत-गोष्ठी मे आचार्यश्री ने प्रवचन किया। प्रवचन के बाद आचार्यश्री ऊपर साधुओ की गोष्ठी मे चले गए। गोष्ठी मुनिश्री सुखलाल ने चलाई।

३० १२ ६२ आज शिक्षा 'हाजरी' का कार्यक्रम रहा। जयाचार्य रचित ३१ हाजरी हैं, जिनके द्वारा साधु-साध्वियो को अपने कर्तव्य के प्रति शिक्षा दी गई है। आचार्यश्री की अभिलाषा थी कि शीतकाल मे, जब कि साधु-साध्विया अधिक सख्या मे उपस्थित रहते हैं, उन्हे शिक्षा दी जाए। इसी दृष्टि को ध्यान मे लेकर आज शिक्षा हाजरी का कार्यक्रम रहा। दूसरी भाषा मे साधु-साध्वियो के लिए शिक्षात्मक प्रवचन हुआ।

आचार्यश्री ने हाजरी के माध्यम से गुरु-शिष्य के सम्बन्ध मे प्रकाश देते हुए कहा—

१ सुविनीत शिष्य वह होता है जो गुरु की आज्ञा की आराधना करे।
२ आज्ञा को स्वीकार कर अविलम्ब उसे पूर्ण करने लग जाए।
३ गुरु की अग-चेष्टा व इगित को भी समझने की योग्यता को बढाए।
४ भाषा का विवेक—कटु बात को भी नम्रता से करे। गुरु की शिक्षा को बहुमान दे।
५ आभ्यन्तर और बाह्य रूप मे प्रशान्त रहे।
६ अविनय का व्यवहार न करे क्योकि विनय की समृद्धि उसके

पास है।

७ तन-मन से गुरु की सेवा करे।

गुरु-सेवा से गुरु-शिष्य का सम्बन्ध व्यवहार मे उतर आता है। धर्म-मार्ग मे गुरु का स्थान ऊँचा है। अगर किसी को कुछ पाना है तो वह श्रद्धालु बने। मैं अपने अनुभव के आधार पर तुम्हे कहता हूँ, आचार्यश्री कालूगणी के प्रति उस समय जितना श्रद्धावान् था उससे सौगुना आज हूँ। उस समय मैं इतना सजग नही था। एक भाई ने मुझे एकान्त मे सुझाया कि आप होनहार है, शासन का भार सभालने वाले है, फिर भी मेरा एक नम्र निवेदन है कि आपको कालूगणी जब कुछ शिक्षा दें उस समय हाथ जोडकर स्वीकार करें। मैंने तत्काल उसे स्वीकार किया।

मैं गुरुदेव की उतनी सेवा नहीं कर सका जितनी मुझे करनी चाहिए थी। गौतम की महावीर के प्रति, भारीमालजी की आचार्य भिक्षु के प्रति जो श्रद्धा थी उसकी शताश भी उस समय मेरे मे नही थी। आज यदि कोई मेरी डायरी के पन्ने उलटकर देखे तो उसे स्थान-स्थान पर श्रद्धा का दर्शन होगा। 'गुरुदेव शरण मस्तु'—यह वाक्य वार-वार पढने को मिलेगा। मैं चाहता हूँ साधु-साध्विया मेरे अनुभव से लाभ उठाएगे। मेरी अनुभूति है श्रद्धा के विना गति या प्रगति का मार्ग दूसरा नही है। भगवान् महावीर ने आज्ञा को लेकर एक पद्य कहा है। मैं 'आणए' के स्थान पर श्रद्धा रखकर कहता हूँ—

सद्धाए तवो, सद्धाए सजमो, वहदाण मणाइओ।
सद्धारहिओ धम्मो, पलाल पूल परिभव्वो॥

श्रद्धा ही सयम है और तप है। उसके विना जीवन पलास का पूला है। आज भी साक्षात् है कि श्रद्धावान् आगे बढते है।

आचार्य का शिष्य के प्रति कर्तव्य

१ शिक्षित वनाकर आचार्य पद के योग्य वना देते हैं।

२ ज्ञान-दर्शन और चारित्र की विविध आराधना कराकर उसे मोक्ष तक पहुँचा देते हैं।

३ ज्ञान का सूक्ष्म रहस्य देते है।

४ सम्मानित कर चार तीर्थों मे आगे ला देते हैं।

५ उदास नही होने देते।

कालूगणी इस विषय मे जागरूक थे। सब कुछ सहन करके भी उन्होंने मुझे कभी उदास होने का अवसर नही दिया। मैं चाहता हूँ कि समुद्र मे नदी की तरह शिष्य आचार्य मे अपने को लीन कर दे। प्रत्येक साधु-साध्वी इसकी गहराई को सोचकर तदनुरूप बने।'

दोपहर मे अणुव्रत-सलाप का आयोजन प्रारम्भ हुआ। सयोजनीय भाषण मुनिश्री महेन्द्रकुमार प्रथम ने किया। तदनन्तर मुनिश्री नगराज ने अणुव्रत की गतिविधि का परिचय देते हुए तत्सम्बन्धी जिज्ञासा व प्रश्न के लिए साधु-साध्वियो को आह्वान किया। कई प्रश्न सामने आए। समय के साथ उनको समाहित किया। शेष प्रश्नो की सूची बनाकर उत्तर की प्रतीक्षा भविष्य के हाथो मे दे दी।

३१ १२ ६२ स्थानीय स्कूल मे आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—'अभय का पाठ सबके लिए आवश्यक है। कोई किसी से न डरे और न डराए। डरना कमजोरी है और डराना क्रूरता है। डर क्यो आता है? इसलिए कि मुझे कोई मार देगा। उस समय ऐसा सोचना चाहिए, लाठी के प्रहार व हाथ-पैर काटने पर भी मैं नही मरूँगा। अमर हूँ, मुझे कोई नही मार सकता। भय से मनुष्य अपने को परिषद् मे रहकर भी अकेला अनुभव करता है। बच्चे रात मे ही नही, दिन मे भी अकेले डरते हैं। प्रारम्भ अवस्था मे माता बच्चे को 'हौआ' के नाम से भय का सस्कार देती है, जो आगे चलकर उसे अभय बनने मे बाधक होता है। भगवान् महावीर वीर थे, इसलिए उनका महावीर नाम पडा। बाल्यकाल मे खेलते समय साँप आ गया था। उन्होने हाथ से दूर फेंक दिया था। डरनेवाले को डर अधिक डराते हैं। 'भीतो भूतेहिं घिप्पई'।

अभय का अर्थ उच्छृखलता नही है। विद्यार्थी अभय के नाम से अध्यापक से न डरकर उच्छृखलता को अपने मे ले लें, यह उनके लिए

हितकर नही है। पाठ याद के अभाव मे डरकर झूठ बोलना भी पाप है। अध्यापक भी विद्यार्थी से भय न खाए। व्यापारी अफसर से न डरें। डर वहाँ होता है जहाँ झूठ पलता है। सत्यवादी को कही भी भयभीत नही होना चाहिए।

११६३ चारभुजा से वापस रीछेड पधारे। रीछेड बोराट क्षेत्र का प्रमुख गाँव है। बोराट का इतिहास भी विचित्र है। जनश्रुति है कि यह पहले विराटगढ था। ब्राह्मणो का आधिपत्य था। एक समय ब्राह्मणी कुए से खेतो को पानी दे रही थी। सयोग से नाली की मिट्टी गिर गई। उस समय उसने अपने लडके का सिर काटकर न लो पर लगा दिया। शाम तक काम करके वापस सिर धड पर लगा दिया। इस दृश्य को मार्ग चलते हुए पाडवो ने देखा और उन्हे आश्चर्य हुआ। दिमाग मे यह घटना टकराई और उन्होने सोचा कि यहाँ की भूमि मे अवश्य कोई न कोई विशेपता है। उन्होंने इसे खरीदने का निश्चय किया। अन्त मे पाडवो ने ज़मीन को खरीद लिया। जितनी दूर तक पाडवो ने रुपये बिछाए उतनी भूमि उनको मिल गई। यहा पाडवो और कौरवों का युद्ध हुआ। इसीलिए यह युद्धभूमि कहलाती है। प्रति वर्ष दीपावली के दूसरे दिन आज भी यहा युद्ध होता हैं। करीबन दो हज़ार सदस्य पाडव परम्परा के हैं और दो हज़ार ही कौरव परम्परा के हैं। पहले ये मुड से लडते थे। आजकल नारियल से खेलते हैं। हज़ारो आदमी इनके युद्ध को देखते हैं। दोनो दलो की सीमा निर्धारित है। कोई भी उसका उल्लघन नहीं करता। यह युद्धस्थल चाउड-माता के मन्दिर के सामने का चौक है, जो वर्तमान मे गाव के बीच मे आ गया है। विराटगढ के खडहर यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं, इसीलिए इस क्षेत्र का नाम बोराट क्षेत्र है।

आज साहित्य-समर्पण दिवस था। साहित्यकार साधु अपना नव-निर्मित साहित्य आचायश्री के चरणो मे समर्पित करने वाले थे, पर श्री सुगनचन्द आचलिया के देहावसान के समाचार से साहित्य-समर्पण-दिवस 'स्मृति-सभा' मे परिवर्तित हो गया।

श्री हरभजनलाल शास्त्री ने आँचलियाजी के साथ अपने सस्मरणों को याद करते हुए कहा—'कलकत्ता से मेवाड की यात्रा करने मे पन्द्रह दिन साथ रहने का अवसर मिला। उनके जीवन को निकटता से देखा, तब पाया— 'सादा जीवन उच्च विचार' यह नारा मानो उनके जीवन मे ही निकलता है। प्रशसा और नाम की भावना मानो उनके जीवन मे मर चुकी थी। अखिल भारतीय अणुव्रत-समिति के अध्यक्ष होने पर भी कभी वे मच के आसन पर नही बैठे। कार्यकर्त्ताओ के प्रति भी उनके हृदय मे सम्मान था। व्यवस्था की दृष्टि मे वे अत्यन्त कठोर थे पर व्यवहार मे उतने ही नम्र थे। मैंने साक्षात् देखा जब उन्होंने कार्यकर्त्ता सिद्धनाथ को व्यवस्था को लेकर कुछ कह दिया था। पर कुछ ही समय बाद देखा तो वे उसे गले लगाकर क्षमायाचना कर रहे थे। उनके सम्पर्क मे कार्यकर्त्ताओ को अनेक प्रकार की प्रेरणा मिलती थी। यात्रा की सेवा मे वे सफल कलाकार थे। जिस गाव मे ठहरने का निर्णय लेते वहा मकान को स्वय जाकर देखते। जितने मार्ग होते सबको दृष्टि मे रखते। छोटे रास्ते को भी समय और कदमो से नापते। वे चाहते थे कि आचार्यश्री का एक क्षण भी अधिक न लगे। समय का उपयोग कार्य मे देखना चाहते थे। साधु-साध्वियो की सुविधा का विशेष ध्यान रखते थे। हर क्षेत्र मे वे हमारे लिए आदर्श थे। उनका व्यक्तित्व युग-युग तक एक प्रेरणा प्रस्तुत करता रहेगा।"

मुनिश्री नथमलजी ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा—

"अधोऽधो पश्यत कस्य, महिमा नो गरीयसी।
उपर्युपरि पश्यन्त सर्व एव दरिद्रति॥

नीचे से नीचा देखता चला जाता है तब व्यक्ति अपने को बडा अनुभव करता है। ऊपर देखता है तो पाता है महिमाशाली कोई नही है, सब दरिद्र है। कई ऐसे व्यक्ति हैं जो नीचे ही नही ऊपर देखकर भी गौरव अनुभव करते हैं। सुगनचन्दजी उसी श्रेणी के व्यक्ति थे।

वि० स० २००० मे आचार्यश्री का चातुर्मास गगाशहर मे था। वह

वे सम्पर्क में आए। इससे पहले उनसे विशेष परिचय नही था। बम्बईवासी कातीभाई ने कहा—'समाज मे एक ऐसा व्यक्ति है जो महत्त्वपूर्ण है, पर अन्धकार मे है। वह आगे आए तो बहुत काम दे सकता है।' वे उनको लाए। बातचीत हुई। परम्परा से श्रद्धा के सस्कार उनमे थे। बी० ए० थे और चतुर थे। सकोचशील होने के कारण बाहर क्षेत्र मे आना पसन्द नहीं करते थे। स० २००० से वे निकट आ गए। चातुर्मास मे एक मास की सेवा का सकल्प लिया।

आदर्श साहित्य सघ के दो-तीन प्रमुखो मे एक थे। दूसरे उन्हें सघ के द्रष्टा या पिता भी कहते थे। पन्द्रह वर्ष के काल मे सारे समाज का प्यार उन्होने पा लिया। प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी ने आचार्यश्री से कहा—"अगर सुगनचन्दजी जैसे पाँच आदमी आपको मिल जाए तो आन्दोलन कार्य तेजी से आगे बढ सकता है।"

उनमे सहज वैराग्य था। उन्होने ब्रह्मचर्य के विषय मे अनेक प्रयोग किए। भगवान् महावीर ने अपने तुगिया नगरी के श्रावक कामदेव आदि की प्रशसा की। आगे बढाया। कामदेव के भगवान् जितने उदार थे उतने आचलियाजी के भगवान्—आचार्यश्री तुलसी उदार नही रहे। उनके जीवन-प्रसग श्रावक-श्राविका तो दूर कई साधु-साध्वी भी नहीं जानते। जीवित अवस्था मे उनको आगे लाया जाता तो दूसरों को प्रेरणा मिलती। विजय और विजया की कथा ग्रन्थो मे मिलती है पर उन्होने अपने जीवन में दिखा दी। गाधीजी के प्रयोग भी पीछे रह जाते हैं। अहिंसा, सत्य और प्रामाणिकता के उपासक थे। गृहस्थ वेश मे महान् आत्मा थी। निस्पृहता उनके लिए बहुत छोटी बात थी। कलकत्ता मे अणुव्रत-समिति के अध्यक्ष के लिए सभी सदस्यों ने एक स्वर से उनको चुना, पर वे सहमत नही हुए। श्री गोपीनाथ 'अमन' (अध्यक्ष, जन सम्पर्क समिति, दिल्ली राज्य) ने कहा—'काग्रेस मे काम किया है, अन्य सस्थाओं मे भी काम किया है पर ऐसा व्यक्ति कहीं नही देखा। दो दिन के बाद अनिच्छा से उन्हें स्वीकार कराया गया।

जीवन मे सस्कार थे और साधना भी थी। अध्ययन के प्रति भी अनुराग था। उनके व्यक्तिगत पुस्तकालय को देखने गये तो कल्पना से अधिक सग्रह मिला। विदेशो मे जितना भी जैन साहित्य मे मिला उसे मगवाया। अप्राप्य पुस्तको को भी मगाने का प्रयास करते। अभी चातुर्मास मे अध्यात्म विपयक नई पुस्तको को विदेशो से मगवाने के लिए सूची वना ली थी। पत्र-व्यवहार चल रहा था। पर आज उनका पुस्तकालय शून्यता मे वैठा है।

उनके जीवन मे सवसे वडी विशेपता थी—समर्पण-भाव। उनके मेरे सम्पर्क मे आने के चार-पाच वर्ष तक मुझे अग्रेजी पढाते थे। वहुत वातें होती थी। फिर ऐसा लगा कही सम्पर्क मे आए थे या नही। इसका एक ही कारण था कि वे आचार्यश्री मे समर्पित थे। वे श्रद्धाशील व्यक्ति थे। उनका अणु-अणु श्रद्धा के अतिरिक्त कुछ नही था। कृष्ण के लिए मीरा, महावीर के लिए गौतम, आचार्य भिक्षु के लिए भारीमल ने जो स्थान पाया आचार्य तुलसी के लिए सुगनचन्दजी ने भी वही स्थान पाया। उनके प्रति मोह नही यथार्थता है। एक जाज्वल्यमान नक्षत्र हमारे हाथ से छुट गया, आशा है समाज उसकी पूर्ति करेगा।

मुनिश्री वुद्धमलजी ने कहा—"भक्त के जाने पर यदि उसके भगवान् उसे याद करते रहे तो स्पष्ट हो जाता है कि उनका व्यक्तित्व कितना अपेक्षित था। वे अपने आपको निस्पृह रखते थे। वे निर्दलीय होकर काम करना जानते थे। जहाँ दो दलो मे झगडा होता वहाँ वे सुगनचन्दजी को वीच मे लाते। वे परिवार से भी निस्पृह थे। आचार्यश्री की यात्रा को सफल वनाने का वहुत श्रेय उनको मिल जाता है। व्यक्ति अपनी विशेषता को स्वय के साथ ले जाता है। समाज वाले उससे शिक्षा ही लेते हैं। उसकी विशेपता को पुनर्जीवित करना समाज का कार्य है।"

मुनिश्री नगराजजी ने कहा—"एक अनन्य अणुव्रती व कर्मठ कार्यकर्त्ता समाज से उठ गया। उनके हृदय मे एक ही भगवान् थे। वे थे आचार्यश्री। उनका हृदय आचार्यश्री से भरा-पूरा था। जो वात्सल्य और विश्वास

आचार्यश्री से उन्होने पाया वह अद्वितीय नही तो अतृतीय तो अवश्य था। छोटे से जीवन मे उन्होने बहुत बडे काम किये। आदर्श साहित्य सघ की समृद्धि मे आचलियाजी का नाम मुख्य है।

धवल समारोह के कार्य को छ मास तक उन्होने उठाये रखा। उनकी प्रकृति थी कार्य को प्रारम्भ कर देना। दूसरे कार्यकर्त्ताओ के सभालने पर स्वय अलग हो जाते। धवल-समारोह के श्रीमन्नारायणजी सयोजक थे। सह-सयोजक के रूप मे जब उनका नाम कार्ड पर जाना निर्णीत हुआ तो उन्होने उसे अपनी बेचैनी माना। मैंने सोचा—शिष्ट लोग ऐसा कहते ही हैं। उनको भी वैसे ही आका। उस समय उनकी आखें लाल हो गई, हृदय भर आया और कहा—'ऐसा नही हो सकता।'

उनके हाथ भी शकुन थे। जिस कार्य मे हाथ डालते सफलता मिलती। आन्दोलन के आदिकाल से वे अणुव्रती थे। परीक्षाकाल मे वे उत्तीर्ण हुए। प्लास्टिक का कोटा उन्हें मिला था। ब्लैक से तीन लाख रुपये आ रहे थे। उनसे मुह मोड कोटे को काट दिया। समाज यदि ऐसे व्यक्तियो के प्रति कृतज्ञ होता है तो दूसरो को भी प्रेरणा मिलती है। उनके लिए स्मृति-दिवस ही पर्याप्त नही, स्मृति-ग्रन्थ भी अपर्याप्त हो सकता है।

मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'प्रथम' ने उनकी स्मृति-स्वरूप दो पद्य कहे—

तुलसी चरण सरोज मे अपना जीवन सत्व।
कर समर्पित 'सुगन' ने पाया परम महत्त्व॥
दृढ व्रती दृढ निश्चयी दृढतर थी गुरु-भक्ति।
निस्पृह सेवा भावना मे था पहला व्यक्ति॥

मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल' ने उनकी स्मृति स्वरूप सस्कृत मे एक पद्य कहा।

आचार्यश्री ने अतीत और वर्तमान का सगम करते हुए कहा—"सुगनचन्दजी आचलिया की मृत्यु का समाचार श्री शुभकरण दसाणी के तार द्वारा कल सुना तो ऐसा लगा मानो मेरे निकट का अन्तेवासी साधु चल बसा हो। कई कामो मे वे भुजा के समान सहयोगी थे। डालगणी कहा

करते थे—कई बाते साधुओ के सामने कहने मे सकोच होता है पर श्रावक रूपचन्दजी की विद्यमानता मे वह नहीं रहता है। मेरे लिए सुगनचन्दजी के विषय मे यही बात थी। सम्वत् २००४ मे वे निकट आए और एकीभूत हो गए। ऐसा स्थान उन्होने अपनी विशेषता से पाया। उनका एक-एक गुण मेरे स्मृति मे उभर रहा है—

१ गृहस्थ वेश मे भी उनका जीवन साधु का-सा था—एक धोती और ऊपर एक उत्तरीय। खुले सिर और आकृति से वे बगाली जैसे लगते थे। वे अपने उच्च आचरण व सद्व्यवहार से साधु का-सा जीवन जीते थे।

२ सत्य के अनन्य उपासक—सत्य के प्रति अटूट श्रद्धा थी। परिवार का बच्चा भी झूठ बोलता तो चाटा लगा देते, वह इसलिए कि आदत न पड जाए।

३ शील के अपूर्व साधक—लगभग बारह वर्षो से ब्रह्मचर्य व्रत मे चल रहे थे। पर उनका अधिकाश जीवन इसी साधना मे बीता था। उन्होने अपने जीवन मे अनेक प्रयोग किए, पत्नी के साथ एक शैया पर रहकर रात बिताई तथा अन्य प्रकार के प्रयोग भी किये। विशेषता तो यह रही कि खड्ग की धार पर चलकर भी न डिगे। प्रयोग शत-प्रतिशत सफल रहे। विजय सेठ और विजया का आदर्श अपने जीवन से साक्षात् कर दिखाया। तन के साथ मन भी विचलित नही हुआ क्योकि वह उनके हाथ मे था। साधु ब्रह्मचारी रहे तो बडी बात नही क्योकि नववाड उनके साथ है। भगवान् महावीर ने साधुओ को आमन्त्रित कर कुछ श्रावको की प्रशसा की, अमुक काम कोई साधु नही कर सकते वैसा अमुक ने किया है। सुगनचन्दजी भी ऐसे गुणो के पात्र थे।

४ साहित्य के सजीव सेवक—एक रात मे ५०० पृष्ठ पढ जाते। अग्रेजी भाषा की पुस्तकें विशेष पढते थे। आदर्श साहित्य सघ के प्राण थे। उनका कहना था कि किसी को अमूल्य साहित्य देना पडे तो मेरे नाम से दे दो। हज़ारो रुपयो का साहित्य उनके नाम मे गया।

५ सादगी के अप्रतिम पुजारी—जीवन सादा व निस्पृह था। बाह्य आडम्बर मे उनका विश्वास नही था। पर्दा-बहिष्कार मे पत्नी को ही नही सारे परिवार को तैयार कर दिया। समाज की रूढियो को मिटाकर नये मोड मे आनेवाला उनका परिवार पहला था।

६ प्रथम अणुव्रती—अणुव्रतो की प्रथम प्रतिज्ञा मे उनका युगल (पति-पत्नी) पहला था।

७ दूसरे बजाज—प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमारजी ने कहा था—'गाधीजी की तरह आपको एक जमुनालाल बजाज चाहिए।' मैंने पूछा—'कौन हो सकता है?' उन्होने सुझाया—'आचलियाजी बने-बनाये बजाज है।'

८ सविभाग की प्रकृति उनके वर्षो से चलती है। लाख रुपयो की बिक्री होने पर यदि लाभ नही हुआ तो भी समाज को देते। वे कहते कि समाज हमारा घर है। घाटा लगने पर क्या हम विवाह आदि मे खर्चा नही करते? फिर समाज के लिए ऐसा प्रश्न क्यो उठे?

९ मूक सेवी—कोई साधु अपनी बात मेरे तक पहुचाने को कहता तो जिम्मेदारी अपने पर नही ओढते पर मेरे तक उसकी भावना पहुचा देते। उन्होने किसी भी कार्य के लिए मुझे बाध्य नहीं किया।

ऐसे अनेक गुण थे जिनके कारण आज उनका अभाव अखरता है। ऐसा व्यक्ति मिलना बहुत कठिन है। किसी व्यक्ति मे कोई विशेषता मिल सकती है पर उनमे अनेक विशेषताओ का सगम था।

३ १ ६३ 'साहित्य-समर्पण दिवस' पहली बार बीदासर मे सम्पन्न हुआ था। आज का यह द्वितीय अवसर था। आचार्यश्री चाहते हैं, यह दिवस प्रतिवर्ष मनाया जाए। इसमे सघ के साहित्यकार साधु-साध्वियो की रचना का लेखा-जोखा सघ के सदस्यो को मिल जाता है। परस्पर लिखने की प्रेरणा मिलती है, न लिखने वालो की भावना जागृत होती है। समर्पित साहित्य को आचार्यश्री अपनी दृष्टि मे ले लेते है और साहित्यकार साधु-साध्वियों को भविष्य के लिए मार्गदर्शन देते है।

एक गलती दण्ड अलग-अलग

आचार्यश्री मकान के निचले तले पर भोजन कर रहे थे। सामने एक नाली से पानी की बूंदें गिरने लगीं। आचायश्री की दृष्टि वहाँ जाकर रुक गई। कहाँ मे आयी ? यह प्रश्न जगा। आचार्यश्री ने जिज्ञासा की। तत्काल एक साधु नीचे आया। उसने कहा—'अमुक साधु ने हाथ धोए थे, वह पानी सरकता-सरकता नाली मे से नीचे आने लग गया।' आचार्यश्री ने उनकी असावधानी का उन्हे पाच बार परठने का दड दिया। वह साधु उसे स्वीकार कर अपने स्थान पर चला गया। अनुभव मुझे मिला। आचार्यश्री ने कहा—'यदि नाली से पानी नीचे गिरता है तो उसके दो परठने दिये जाते हैं। मेरे सामने पडने से पाच दिये गये। यही यदि व्याख्यान परिषद् मे गिर जाए तो उसे नौ से तेरह परठने तक दिये जाते।'

एक ही गलती का दण्ड विभिन्न प्रकार से सामने आया व क्षेत्र की अपेक्षा से वह भारी बनता गया। इसलिए नियम शब्द मे रहकर पूरा भाव नहीं देता। अनुभव ही उस तक पहुचाता है।

• दोपहर मे आचार्यश्री के सान्निध्य मे साधु-साध्वियों की गोष्ठी हुई।

४ १ ६३ रात को प्रार्थना के पश्चात् आज से आचार्यश्री के सान्निध्य मे मनोनुशासनम्' का परायण प्रारम्भ हुआ। मुनीश्री नथमलजी ने व्याख्या करके समझाया।

५ १ ६३ मध्याह्न मे साध्वियों के वीच आचार्यश्री ने 'मनोनुशासनम्' का वाचन प्रारम्भ कराया।

८ १ ६३ उदयपुर से स्वास्थ्य-लाभ लेकर सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी दर्शनार्थ आ रहे थे। पचमी समिति से निवृत्त हो आचार्यश्री उन्हे लाने के लिए पधारे। प्राय साधु आगे-पीछे चलकर साथ हो गये थे। मिलन के समय आचार्यश्री ने एक दोहा कहा—

"उदियापुर से आप हम चले, मिले रीछेड।
सरल सडक ली आपने हमने ली भटभेड॥"

स्थान पर आये उस समय तक साध्वियाँ भी प्राय स्वागत के लिये उपस्थित हो गई थी। परिषद् मे फिर एक वार वदन कर आचार्यश्री ने उनका स्वागत किया। दो दोहे वनाकर कहा—

"उदियापुर से आप हम चले, मिले रीछेड।
सरल सडक ली आपने हमने ली भटभेड॥
ली हमने भटभेड मोज माणी मगरारी।
पग-पग दृश्य निहाल चाल धीमी डगरारी
क्षेत्र-क्षेत्र सम्भाल मे लागी लम्बी गेड
उदियापुर से आप हम चले, मिले रीछेड।"

सेवाभावी मुनिश्री ने कहा—"करीवन दो मास तक मुझे आपकी सेवा से दूर रहना पडा। लाडाजी ने हिम्मत की, उनकी सेवा हो गई। मेरा मन तो आपकी सेवा मे ही लगता है। शरीर वहाँ था, मन आपके चरणो मे था। प्रतिदिन आपकी याद आती थी। आपके सहयोग से सयम यात्रा पर चल रहा हू। आज आपके दर्शन पाकर प्रसन्नचित्त हो गया हू। रीछेड की रगरली देखकर मुझे वह लोकोक्ति याद आ रही है 'जहाँ राम वहाँ अयोध्या'। आपकी सेवा मे उपस्थितहोकर धन्य-धन्य हो गया हू।"

रात्रिकालीन प्रार्थना के वाद एक अणुव्रत विचार परिषद् का आयोजन हुआ। मुनिश्री मीठालालजी 'मधुर' व उदयपुर मे आये हुए वैद्य माधव-प्रसादजी ने वक्ता के रूप मे भाग लिया। मुनिश्री ने अणुव्रतो के विभिन्न व्यावहारिक पहलुओ पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला।

स्वास्थ्य और अणुव्रत विषय पर बोलते हुए वैद्यजी ने कहा—"मन का स्वास्थ्य पर गहरा असर पडता है। मन की प्रसन्नता व सकल्प से कई रोग स्वत मिट जाते है, वहाँ मन की कलुषता से कई रोगो के शिकार भी हो जाते हैं। ईर्ष्या से उदरशूल रोग होते मैंने देखा है। एक भाई रेलगाडी मे सीट पर वैठा था। कार्यवश नीचे गया। उसका स्थान दूसरे ने ले लिया। परस्पर विवाद व ईर्ष्या से पहलेवाले के उदरशूल हो गया। मनोवैज्ञानिक पद्धति के चिकित्सको ने उसका कारण ईर्ष्या ही वतलाया। मैं चाहता

हू प्रत्येक व्यक्ति को अणुव्रतो के आदर्श पर चलना चाहिए। आज से मैं भी अणुव्रती बनने के लिए अपने को प्रस्तुत करता हू।"

अन्त मे आचार्यश्री तुलसी का मगल-प्रवचन सुसम्पन्न हुआ।

सस्मरण जीवन की निधि होती है। सस्मरणात्मक साहित्य जितना मधुर व आकर्षक होता है उतना दूसरा नही। भविष्यकाल मे पककर वह मधुर से मधुरतम बन जाता है। अनुभूतियो मे अलकार नहीं होते, फिर भी वह साहित्य सजीव और आनन्दप्रद होता है। क्योकि उसमे कल्पना नही जीवन की घटित घटना बोलती है। कटु अनुभव भी अतीत मे जाकर मधुर बन जाते है। वह साहित्य भी अपूर्ण है जहा केवल प्रशसा के ही गीत गाए जाते है, गलतियो को सामने नही लाया जाता। सत्य की पूर्णता के लिए अपनी कमजोरी को व्यक्त करने का साहस होना चाहिए। कुल मिलाकर सस्मरण मूल्यवान होते है। दूसरो को सहज प्रेरणा मिलती है। सघ के सदस्य के नाते प्रत्येक साधु-साध्वी के सस्मरणो मे व्यक्ति के साथ सघ का भी इतिहास जुडा रहता है। इसीलिए आचार्यश्री ने उस ओर (साहित्य निर्माण) के लिए साधु-साध्वियो को प्रेरणा दी और उन्हे परिषद् मे सुनाने का अवसर दिया। यह आयोजन अपने आप मे प्रथम था।

मुनिश्री पानमलजी और रूपचन्दजी के मगल-गीत से आयोजन प्रारम्भ हुआ। मुनिश्री सुखलालजी ने सयोजकीय भाषण मे सस्मरणो का महत्त्व बताया। मुनिश्री शुभकरणजी, नगराजजी द्वितीय, मोहनलालजी शार्दूल, कानमलजी, नथमलजी बागोर, सोहनलालजी (चूरू) ने अपने-अपने अनुभव सुनाए।

अन्त मे आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे साधु-साध्वियो को अपने जीवन के सस्मरण व अनुभवो को शब्दो के आकार मे सुरक्षित रखने की प्रेरणा दी।

९ १ ६३ कल की अवशिष्ट गोष्ठी मे मुनिश्री विजयराजजी, सोहनलालजी (डूगरगढ), जवरीमलजी, नगराजजी (सरदार शहर) ने वक्ता के रूप मे भाग लिया। मुनिश्री नथमलजी ने सस्कृतभाषीय सस्मरण आज

उपस्थित किए, प्राकृतभाषीय सस्मरण कल के लिए छोड दिए।

तत्पश्चात् हाजरी का कार्यक्रम हुआ। मर्यादावलि पत्र का वाचन हुआ। तदनन्तर साधु-साध्वियो ने पक्तिबद्ध खडे होकर नियमो को दोहराया। प्रवचन के बाद आचार्यश्री ने स्थानीय भाइयो से कहा—'नए मोड मे रीछेडवासी पहले से थे ही। चिन्तन चलने से और लाभ मिल गया। यह तुम्हारी कसौटी का समय है। निकट भविष्य मे विवाह होनेवाले है। कोई विचलित करना चाहे तो उस समय दृढ रहना चाहिए। कोई डिगे तो समाज का मुखिया अपनी जिम्मेदारी समझ उसे गिरते को रोके, अन्यथा सगठन सुरक्षित नही होगा।'

१० १ ६३ सस्मरण-गोष्ठी की तीसरी बैठक प्रात काल हुई। दो दिनो से समय की सीमा न रहनेसे वक्ता अधिक समय लेते रहे। अवशिष्ट वक्ता अधिक होने से समय का विभाग कर दिया गया। प्रत्येक वक्ता के लिए सात मिनट का समय हाथ मे आया। मुनिश्री नथमलजी, महेन्द्रकुमारजी (बम्बई), बुद्धमलजी, नवरत्नमलजी, दुलीचन्दजी, कन्हैयालालजी, छत्र-मलजी ने अपने अनुभव सस्कृत व प्राकृत भाषा मे सुनाए।

दोपहर मे दीक्षा-सामारोह होने के कारण कार्यक्रम को जल्दी पूर्ण कर दिया।

स्थानीय स्कूल के विशाल प्रागण मे दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ। वैरागण के भाई विजयसिंह ने बहन का परिचय दिया। परिवार की ओर से बहनों ने विदाई मे एक गीतिका गायी। दीक्षार्थी बहन कमला ने अपना भाषण दिया। केलवा के कवि मदनलालजी ने कवितापाठ किया। अन्त मे आचार्यश्री ने प्रवचन किया।

सयोजन श्री भवरलालजी धीग ने किया।

स्कूल के बरामदे मे साध्वियाँ बैठी थी। थोडे नीचे के चबूतरे पर आचार्यश्री पट पर आसीन थे। पास मे साधु बैठे थे। उससे नीचे भाई-बहन थे। भूमि की रचना के कारण प्रागण सिनेमा की तरह चढाव पर था। जो पचरगी पगडियो और ओढनी से बगीचे का-सा रूप ले रहा था। किसान

भाई वडी सख्या मे आए थे। कई दिनो से उनमे देखने की उत्सुक्ता थी। समय भी उपयुक्त था। वहनें प्रात काल ही भोजन से निवृत्त हो गई थीं, और शाम अभी दूर थी।

दीक्षार्थी वहन शान्त मुद्रा मे व अचचल वृत्ति की होने के कारण सहज योगिनी-सी लग रही थी। ध्वनि भी यही आ रही थी कि यह सम्कार से ही योगिनी है।

आचार्यश्री ने दीक्षा मन्त्र देने से पहले साधुत्व का कठोर मार्ग दिखाया। वहन कमला ने उम मार्ग पर चलने मे अपने को समर्थ देख व सयम-पथ पर चलने की उत्सुकता दिखाई। आचार्यश्री ने वहन के माता-पिता व परिवारवालो की मौखिक तथा लिखित स्वीकृति ले जनता के समक्ष गृहस्थ से साधुत्व मे प्रवेश करा दिया। सघ मे कमला नाम की कई साध्विया होने से उसका नाम कुसुमप्रभा दे दिया।

११ १ ६३ गोष्ठी की चौथी वैठक मे साधुओ के साथ साध्वियो ने भी वक्ता के रूप मे भाग लिया। मुनिश्री किशनलालजी, ताराचन्दजी, मीठालालजी, श्रीचन्द्रजी, वच्छराजजी, रूपचदजी, साध्वीश्री मजुला-जी, जयश्रीजी, यशोधराजी, कनकप्रभाजी, कनकश्रीजी, फूलकुमारीजी, अशोकश्रीजी ने भाग लिया। यदि यह क्रम प्रारम्भ मे रहता तो कई वक्ताओ को दूर भविष्य की प्रतीक्षा नही करनी होती।

दोपहर मे साधु-साध्वियो की अन्तरग गोष्ठी हुई। परस्पर सौहार्द की वृद्धि पर चिन्तन चला। प्रसगवश आचार्यश्री ने कहा—'अपनी वर्षगाठ के समय भावी जीवन के लिए निर्णय लेने चाहिए। साधना-सूत्रो को चुन-कर उनका अभ्यास व सकल्प-शक्ति को वढाने का प्रयत्न करना चाहिए। अपनी डायरी के पन्ने खोलते हुए इम वर्ष के कतिपय सकल्प सुनाए—

१ सूत्रो के पद्यो का सार्थ चिन्तन करना।

२ ध्यान अनिवार्य रूप मे करना।

३ शाम के अतिरिक्त सुवह भी मौन करना।

४ मितभाषिता।

५ वहम की वृत्ति अधिक न हो।

६ दूध सर्वं साधु-सुलभ न हो तो महीने मे अमुक दिनो तक न लेना।

७ शाम के भोजन मे उणोदरी अवश्य हो।

८ दो बार से अधिक न खाना, उसमे भी मिठाई व तेल की वस्तुओ से यथासम्भव दूर रहना।

यह पहला ही अवसर था कि आचार्यश्री ने अपने सकल्पो को परिपद् मे कहा। प्रसगवश वे सम्मुख आ गए। इससे वहुतो को प्रेरणा मिलती है। वाणी तभी जादू वनती है जब वह आचरण के साथ बाहर निकलती है।

१२ १ ६३ चार दिनो से सतत चलने वाली गोष्ठी की पाचवी वैठक, आज फिर हुई। मुनिश्री पानमलजी, गणेशमलजी, महेन्द्रकुमारजी (प्रथम), साध्वीश्री रत्नश्रीजी, किस्तूराजी, फूलकुमारीजी (वडा), स्नेहकुमारीजी आदि ने अपने जीवन के सस्मरण उपस्थित किए। अन्त मे आचार्यश्री ने अपना प्रवचन किया। वोराट क्षेत्रवासियो को शिक्षा देते हुए कहा—

१ शासन के कार्य मे सजग रहे।

२ धार्मिक ज्ञान का विकास करें।

३ आसपास मे नए मोड मे कमजोरी देखें, वहा प्रेरणा देना अपनी जिम्मेदारी समझें।

१२ १ ६३ रीछेड से मजेरा की ओर विहार हुआ।

१४ १ ६३ मजेरा से केलवाडा पधारे। यहा भी दूसरी वार आगमन हुआ है। यहा मूर्तिपूजको के वीस घर, पोरवालो के पन्द्रह घर तथा महेश्वरियो के ७०-७५ घर हैं। तेरापथियो का एक भी घर नही है, पर सर्विस के कारण दो-चार व्यक्ति रहते हैं। लोगो की उत्कट भावना देख आचार्यश्री नौ बजे पधारे तथा शाम को चार बजे यहा से विहार हो गया। इस समय आचार्यश्री के सान्निध्य मे अणुव्रत आन्दोलन तथा कवि सम्मेलन का सयुक्त कार्यक्रम हुआ। मुनिश्री बुद्धमलजी, मोहनलालजी (सुजानगढ), साध्वीश्री जयश्रीजी और कवि माधवप्रसादजी की कविताए हुईं। समय

आगे चले जाने के कारण गोष्ठी को वही ममाप्त कर दिया गया।

गत रात को मुनिश्री नथमलजी के सान्निध्य मे विचार-गोष्ठी हुई। अणुव्रत दर्शन पक्ष पर मुनिश्री का भाषण हुआ और प्रश्नोत्तर चले। मुनिश्री कानमलजी, सोहनलालजी, नथमलजी आदि सोलह ठाणा ऐतिहासिक स्थल कुभलगढ किले पर पधारे। तीन साधु मुनिश्री सुखलालजी, मोहनलालजी और रूपचन्दजी मजेरा से सीधा मार्ग लेकर वहा पहुच गए। वहा पर दोपहर मे कवि-गोष्ठी हुई। मुनिश्री कानमलजी, नथमलजी, नवरत्नमलजी, सुखलालजी, मोहनलालजी, दुलहराजजी, रूपचन्दजी, किशनलालजी आदि ने कवितापाठ किया। कवि श्री कमलेश चतुर्वेदी ने भी अपनी कविता सुनाई। ढाई बजे वहा से विहार कर मजेरा मे आचार्यश्री के दर्शन किए। शाम तक आचार्यश्री मजेरा से केलवाडा पधार गए थे। कुभलगढ से मजेरा का मार्ग प्राकृतिक सौन्दर्य से भरापूरा था। मार्ग इतना दुर्गम था कि मार्ग चूकते ही पाताल दीखे। पर्वत से सीधे नाले मे उतर रहे थे। जवान साधु भी चलते-चलते घबरा रहे थे। चढाव-उतार के साथ मार्ग की भयानकता, सकरापन प्रतिपल सजग कर रहा था।

रीछेड मे ३ १ ६३ को साहित्य-समर्पण-दिवस के उपलक्ष मे समर्पित किए गए साहित्य की तालिका व विशिष्ट कार्यक्रम

साहित्यकारो के नाम	पुस्तकों के नाम
१ मुनिश्री कानमलजी	(१) मधुसचय
२ मुनिश्री गणेशमलजी	(१) शिक्षा शतक (राधेश्याम तर्ज मे १०० दोहे)
-	(२) शून्यवाद।
३ मुनिश्री छत्रमलजी	(१) सौ सयाने एक मत (तुलनात्मक सात प्रकरण)
	(२) महावीर की सूक्तिया और मेरी अनुभूतिया।

४ मुनिश्री बुद्धमलजी	(१) तेरापथ का इतिहास (प्रथम भाग)
	(२) आचार्यश्री तुलसी जीवन-दर्शन
	(३) आखो ने कहा (७५ हिन्दी गद्य)
५ मुनिश्री जवरीमलजी	(१) स्वयभू चारित्र (उपमिति भव प्रपच के आधार पर ३६८ पद्य)
	(२) मदन रेखा (२३१ पद्यात्मक आख्यान)
	(३) सुभद्रा सौरभ (आख्यान)
६ मुनिश्री नगराजजी	(१) महावीर और बुद्ध की सम-सामयिकता
	(२) जैनधर्म और बौद्धधर्म (५०० पृष्ठ)
७ मुनिश्री मीठालालजी	(१) साफल्य (सस्कृत के ५० लघु निवन्ध— हिन्दी अनुवादक मुनिश्री ताराचन्दजी)
८ मुनिश्री नवरत्नमलजी	(१) भिक्षु शासन सरिता (तेरापथ के आदि से लेकर वतमान तक के ६७४ साधुओ का पद्यात्मक परिचय)
	(२) व्याख्यान सुमनमाला (२० आख्यान)
	(३) गीतिगुच्छ (१६५ गीतिकाएँ)
	(४) मनोहर छदावलि (१०० छद)

९ मुनिश्री कन्हैयालालजी	(१) जीवनरेखा (१८ कहानियाँ)
	(२) प्रकृति रमण (५० पद्य)
	(३) प्रेरणा
	(४) लघु आख्यान (९ गीतिकात्मक)
१० मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी	(१) जनपद विहार—भाग २ (यात्रा-वर्णन)
	(२) जैन कहानियाँ (भाग ११,१२)
११ मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल'	(१) बहता निर्झर (४१ कविताएँ)
	(२) साधना पथ (५१ गीतिकाएँ)
१२ मुनिश्री शुभकरणजी	(१) चिन्तन के क्षणो मे (५१ निबन्ध—आगम के आधार पर)
१३ मुनिश्री मोहनलालजी 'सुजान'	(१) मजिल की ओर (४१ गीतिकाएँ)
	(२) ज्योतिपथ (६५ लघु कथाएँ)
१४ मुनिश्री बच्छराजजी	(१) उभरता अकुर (७१ कविताएँ)
	(२) उडता सौरभ (गद्य)
	(३) कल्पना-स्रोत
	(४) दिव्यमणी (१६ कथाएँ)
१५ मुनिश्री श्रीचन्द्रजी	(१) त्रिकोण (५१ गद्यगीत)
	(२) पदयात्रा का प्रतिबिम्ब
१६ मुनिश्री मधुकरजी	(१) अणुव्रत-सन्देश (५१ गीतिकाएँ)
१७ मुनिश्री विनयवर्द्धनजी	(१) मुकुल (२१ कहानियाँ—आगम के आलोक मे)

१८ मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी (द्वितीय)	(१) विश्व प्रहेलिका
१६ मुनिश्री किशनलालजी	(१) कांच और कोहिनूर (१५ कहानिया) (२) कृष्ण वासुरी (५१ भजन) (३) हरिश्चन्द्र और तरगवती का व्याख्यान (४) बिखरे कुसुम (निवन्ध, गद्य, कविताएँ, कहानियाँ)
२० मुनिश्री सुखलालजी	(१) आचार्यश्री तुलसी अपनी ही छाया मे (सस्मरण) (२) अणुव्रतियो के अनुभव (३) उलझे तार (गद्यगीत) (४) खिलते फूल (१०० कविताएँ) (५) आचार्य भिक्षु (भिक्षु दृष्टान्त का अनुवाद, २०० पृष्ठ)
२१ साध्वीश्री सुरजकुमारीजी (ठेलासर)	(१) 'मुकुलम्' का अनुवाद (२४ गद्यो का अग्रेजी मे)
२२ साध्वीश्री सुन्दरजी	(१) विद्या-विलास आदि (५ व्याख्यान)
२२ साध्वीश्री मजुलाजी	(१) सम्वेदना (४० कविताएँ) (२) दस पद्य, पाँच एकाकी, पन्द्रह लेख, ३०० पृष्ठ। (३) 'अभिज्ञान शाकुन्तल' पर शोध-पूण लेख—सस्कृत मे। (४) 'अन्वेषणा' पत्रिका—शोध पत्रिका।

२४	साध्वीश्री स्नेहकुमारीजी	(१) सूक्तसहस्री—आगमो के सूक्तों का सग्रह।
		(२) आगमो मे उपमाएँ
२५	साध्वीश्री भीखाजी (सरदारशहर)	(१) कमल की कलियाँ (कमलूजी के जीवन सस्मरण—३५० घटनाएँ)
२६	साध्वीश्री अशोकश्रीजी	(१) रेखाएँ (४८ लेख)
२७	साध्वीश्री गुणसुन्दरजी (डूंगरगढ)	(१) १०८ भजनो का सग्रह, १७ कविताएँ, ३९ उपदेश-गीतिकाएँ)
२८	साध्वीश्री यशस्वतीजी	(१) स्फुट सग्रह
२९	साध्वीश्री कनकप्रभाजी	(१) प्रगति के पथ पर (३१ कविताएँ, ५ लेख, श्लोक, सस्कृत का नाटक)
३०	साध्वीश्री फूलकुमारीजी (बडा)	(१) गीति सग्रह, दोहा सप्तति, सस्कृत शतक—(महावीर जीवन-वृत्त)
३१	साध्वीश्री जतनकुमारीजी (सरदारशहर)	(१) अन्तर्दर्शन (१०१ गद्य)
		(२) सूक्त सुमन (२५१ पृ०)
		(३) मृगापुत्र शतक (सस्कृत)
		(४) भृगुपुरोहित (निबन्ध २५०)
३२	साध्वीश्री धनश्रीजी	(१) ३० कविताएँ
३३	साध्वीश्री रत्नश्रीजी	(१) स्फुट कविताएँ, कहानी, एकाकी।
३४	साध्वीश्री झमकूजी	(१) श्रद्धासुमन (पुस्तक व्याख्यान)
३५	साध्वीश्री हर्षकुमारीजी (सरदारशहर)	(१) ४० गीतिकाएँ, ४ व्याख्यान
३६	साध्वीश्री मानकुमारीजी	(१) २ एकाकी, ७ गीतिकाएँ।

अन्त मे आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—'समय को चलते ढाई घटा हो गया, फिर भी पूरा नही हो रहा है। यह मार्ग सुन्दर निकल गया है। मुझे लगता है भविष्य मे यह ढाई दिन मे भी पूरा होनेवाला नही है।

साहित्य सृजन के प्रति जितनी उत्कण्ठा है उसका स्वागत है पर उससे पहले अध्ययन की रुचि अपेक्षित है। विषय-प्रवेश के पूव उस विषय का साहित्य पढना चाहिए। पढने से अनुभव मिलता है। कोरा लिखना ही महत्त्व नही रखता। जितना लिखा जाय उससे अधिक पढना आवश्यक है। ज्ञान की समृद्धि के लिए अध्ययन अत्यन्त जरूरी है। लिखे साहित्य को दो-तीन हाथो से निकालकर फिर गोष्ठी मे लाना चाहिए।

साहित्य-सम्पर्क किये बिना न परठा जाए। परठने से विकास का अकन नही हो पाता।

जो साहित्य उपहृत किया जाय वह सुन्दर लिपि के साथ आना चाहिए। वह अधूरा विद्वान है जो लिखना नही जानता।'

पुरस्कार

त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'एपणा' की अनुपस्थिति मे साध्वीश्री जतन-कुमारीजी और मजुलाजी ने अपने लेखो को 'अन्वेषण' पत्रिका का आकार दे दिया। शोधपूण लेखो मे साध्वियो की ओर से यह प्रयास पहले की अपेक्षा अधिक विकास का प्रतीक था। इसलिए आचार्यश्री ने उनको प्रोत्साहित करने के लिए दोनो साध्वियो को एक-एक हजार गाथाएँ पुरस्कार में दी। अन्त मे एक घोषणा करते हुए आचार्यश्री ने कहा—'राजगृह मे हमने यह घोपणा की थी कि आगमो के पाठ-सशोधन का कार्य पाँच वर्षों में पूर्ण करने का प्रयत्न करेंगे। उस समय इस कार्य मे आनेवाली कठिनाइयो का हमे इतना अनुमान नही था जितनी मात्रा मे वे आयी। इस कार्य को हम समग्र दृष्टि से सम्पन्न करना चाहते हैं।

अब तक हम दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नदी, अनुयोगद्वार, स्थानाग, सूत्रकृताग, समवायाग, उपासकदशाक, अन्तकृत, अनुतरोपपातिक,

निरयावलिका, राजप्रश्नीय, औपपातिक और विपाक—इस प्रकार अठारह आगमो का पाठ-सशोधन कर चुके हैं। भगवती व्यवहार, वृहत्कल्प और निशीथ का भी एक वार कार्य हो चुका है। परन्तु उसकी पुनरावृत्ति करना अभी शेष है। उतावली से करें तो हम शेष कार्यो को दो वर्षों मे पूर्ण कर सकते है पर वह वैसा नही होगा जैसा कि हमे करना है, इसलिए लगता है कि कुछ समय और अपेक्षित होगा।'

१४ १ ६३, खेरल्यो आचार्यश्री मजेरा से चलकर यहाँ आए। मार्ग मे ओलादर मे कुछ समय ठहरे। मन्दिर के चबूतरे पर वैठकर आचार्यश्री ने व्याख्यान किया। यात्रियो के अतिरिक्त गाँव के ७०-८० भाई-बहनों मे वीस भाइयो ने शराब का परित्याग कर दिया।

त्याग की निष्ठा

बोराट क्षेत्र मे डालचन्दजी एक प्रभावशाली व्यक्ति है। दो वर्ष पूर्व उन्होने अपने गाव मे आचार्यश्री के आगमन के उपलक्ष मे रिश्वत का त्याग किया था। उन्होने आज खडे होकर कहा—'गाव की ओर से चार वर्ष पूर्व मुझे एक ठेका मिला था—उस समय मैंने तीन सौ रुपये वीच मे हज़म किए थे और उसका हिसाव दो मास पहले दे दिया है।'

तत्काल रुपये जेव से निकालकर गाव के चौधरी को पकडा दिये। उपस्थित ग्रामीण भाई व श्रोता आश्चर्य से देखते रह गए। जो रुपये हज़म कर लिए, जिनकी डकार भी नही आयी—उनको निकालकर देना वास्तव मे कठिन कार्य है। त्याग के प्रति निष्ठा नही होती तो ऐसा अवसर देखने को नही मिलता।

दोपहर मे वहा से विहार कर घाटा पधारे। घाटा से एक मील पहले सडक से वायी ओर रीछेड का मार्ग निकला हुआ दिखाई दिया। एक महीने पूर्व की स्मृति ताजी वन गई। एक दिन इस विन्दु से हम चले थे। एक महीने तक पर्वतो के चारो ओर घूमकर उसी विन्दु पर वापस आ गए। दुनिया गोल है, इसकी लघु परिक्रमा हमने दे दी।

—

घाटावासियो को अल्पकाल के व्यवधान मे ही आचार्यश्री के पद-स्पर्श का अवसर फिर मिल गया। गाव मे विवाह होने के कारण स्थानीय भाई प्रवचन का लाभ न ले सके। इसलिए स्थानीय जैन भाई व अध्यापक तथा वैद्य मिलकर दूसरे दिन ठहरने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। रात तक स्वीकृति नही मिली पर सुबह होते-होते वह मिल गई। प्रस्तुत विवाह को छोडकर गाववालो ने सामूहिक रूप मे नये मोड के नियमो को स्वीकार किया। कई भाइयो ने प्रवेशक अणुव्रती के ग्यारह नियम भी लिए।

१५ १ ६३ दोपहर मे घाटा से आत्मा की ओर विहार हुआ।

आत्म-दर्शन करने की कई वर्षो से अभिलाषा थी पर साक्षात्कार नही कर सके। आचार्यश्री अपने जीवन के पाच दशको में पहली बार 'आत्मा' आए, इसलिए आगमन के समय उन्होने कहा—"करीबन पचास वर्षो तक घूमने के बाद आज आत्म-दर्शन हुआ है। व्यवहार-सत्य भी अलेपालकार मे चलकर दर्शन-सत्य का अर्थ देने लगा। ऐसा लगता है कि गाव का नाम देनेवाला कोई साहित्यकार और अध्यात्म-रुचि वाला व्यक्ति था।

आत्मा मे पहुचते ही स्वर्गीय श्री हेमराजजी स्वामी, धनरूपजी स्वामी और हीरालालजी स्वामी के नाम याद हो गए। तेरापथ सन्त-जगत् मे ये तीन सन्त अपना नाम अमर कर गए। वर्तमान में मुनिश्री राजमलजी भी सरल व शान्तमना है। हेमराजजी स्वामी अपने युग के चर्चावादी सन्तो मे से एक थे। धनरूपजी स्वामी और हेमराजजी स्वामी परस्पर काका-भतीजा के सम्बन्ध मे जुडे हुए थे। दोनो ही अग्रगण्य थे। हेमराजजी स्वामी का अधिकाश जीवन पृथ्वीराजजी स्वामी की सेवा मे ही बीता। हीरालालजी स्वामी ने भरे यौवन मे साधुत्व लिया, पर थोडे ही वर्षो मे वे काल के हाथ में चले गए। छोटे-से गाव मे चार सन्तो का होना महत्त्व की बात है।

१६ १ ६३ प्रात काल पचमी समिति से निवृत्त हो वापस आते समय आचार्यश्री ने श्रद्धालुओ के सभी (बाईस) घरों को पदरज से स्पर्श किया। समय के साथ आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। तदनन्तर भाइयो को त्याग के लिए आह्वान किया। सत्रह भाइयो ने शराब व मास का त्याग

किया। सरपच तथा अन्य दो व्यक्तियो ने रिश्वत लेने का त्याग किया। सात व्यक्तियो ने बीडी छोडी।

सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने सत्रह राजपूतो को जैनत्व का मन्त्र दिया व तेरापथ-सगठन के एक सूत्र मे उनको पिरो दिया। वाणी-व्यवहार से दूसरे को अपना करने मे वे कलाकार है। आचार्यश्री का आदेश पा उन्होने इस कार्य को किया है। यह कार्य यदि आगे वढता है तो सघ को लाभ तो मिलता ही है, साथ मे व्यक्ति भी अपनी याद सदा के लिए छोड जाता है।

कार्यकर्त्री पानाबाई ने घर-घर मे जाकर बहनो से सम्पर्क किया और उन्हे नये मोड अपनाने की बात सुझाई। बहन के प्रयास से काफी बहनो ने मृत्यु पर बारह दिन से अधिक प्रथा रूप रोने का त्याग किया। चार-पाच बहनो ने काले वस्त्रो को छोडा व एक मास मे दस सामायिक और प्रति दिन साधु-दर्शन का व्रत लिया।

गाववालो ने पाँच रात रहने के लिए प्रार्थना की। धीरे-धीरे स्वीकृति मिलते-मिलते तीन रात तक पहुच गई।

१८ १ ६३ आत्मा से सापोल के लिए विहार हो गया। विहार दो-तीन मील का होने के कारण और प्रात काल ठड अधिक होने से आचार्यश्री विहार कुछ विलम्ब से करते है, क्योकि अधिक ठड मे चलना श्वास रोग के लिए अनुकूल नही है।

सापोल छोटा-सा गाव है, वडी-वडी हवेलियाँ है। आवादी कम है, फिर भी प्रवचन मे उपस्थिति अच्छी थी। आसपास के भागलो (खेडो) से किसान भाई-बहनो का ताँता-सा लग गया था। दर्शन की भावना लम्बे समय से लिए बैठे थे। दोपहर मे आचार्यश्री प्रवचन देकर मकान के भीतर पधारे तो किसान भाई भी पीछे नही रहे। पैर पकड बैठ गए और प्रार्थना करने लगे कि कल और रहना होगा। बहुत समझाने पर उन्होने पैरो को छोडा। एक दिन व एक रात रहना हुआ। दो बार आचार्यश्री के प्रवचन मे यहा तेंतीस व्यक्तियो ने दारू-मास का त्याग किया। दो

व्यक्तियो ने रिश्वत लेने व दस-बारह व्यक्तियो ने मिलावट करने का त्याग किया। दूकानदारो ने कम तोल-माप न करने का व्रत लिया। इस प्रकार मेवाड के छोटे-छोटे गावो का सुधार हो रहा है। क्या ही अच्छा होता यदि शहरवासी भी इनका अनुकरण करते।

१६ १ ६३ सापोल से पुठोल जाते समय मार्ग मे मुडाण आया। दो घर महाजनो के व सात-आठ राजपूतो के थे। सभी ने आचार्यश्री को अपने गाव मे ठहरने की प्रार्थना की। आचार्यश्री ने थोडे समय के लिए वहा ठहरकर उनको उपदेश सुनाया। उनकी भावना को लक्ष्य मे रख गोचरी भी की।

यहाँ श्रद्धालुओ के दो घर हैं। फिर भी साधु-सन्तो का आगमन अधिक रहता है। इसका कारण श्री भैरूलाल की भक्ति है। भैरूलालजी का मानस श्रद्धा से भरा-पूरा है। वे वर्ष मे कई बार आचार्यश्री के दर्शन करने पहुच जाते हैं।

आज अपने गाव मे गुरुदेव सहित सौ साधु-साध्वियो को पाकर धन्य-धन्य हो गए। आस-पास के कई श्रद्धालु भाई आ गये थे। छोटा-सा गाव जनसख्या की दृष्टि से दूना हो गया था।

आचार्यश्री ने आगमन के समय प्रवचन किया। दोपहर मे फिर थोडा-सा कार्यक्रम रहा। रात को मुनिश्री अगरचन्दजी ने व्याख्यान किया। राजपूत जाति के सात भाइयों ने तेरापथ मान्यता को स्वीकार किया। सत्रह व्यक्तियो ने शराब तथा एक व्यक्ति ने रिश्वत लेने का त्याग किया।

२० १ ६३ आचार्यश्री सापोल से पीपलाजी जाना चाहते थे, पर वहा श्रावको मे विवाह होने के कारण उन्होने चाहा कि गुरुदेव १६ जनवरी के बाद हमारे गाव में पधारें। इसलिए पुठोल जाकर वापस पीपलाजी आना हुआ। विवाह का कार्य पूर्ण होने से स्थानीय भाइयो ने सेवा का अच्छा लाभ लिया। जयनारो से अपने आराध्यदेव को लाए। स्कूल मे प्रवचन हुआ और प्रवास भी।

चित्रकार होता तो अवश्य दिखाता

आचार्यश्री भोजन करके घूमते है। साधु गत-दिवस की चर्या कहने आते हैं। अनायास लघु गोष्ठी का रूप बन जाता है। विभिन्न विषयो की चर्चा चलती रहती है। आज कालूगणी की स्मृति मे आचार्यश्री ने कहा—'कालूगणी के पैरो से लेकर मस्तिष्क तक का सारा चित्र आखो मे घूम रहा है। अमुक स्थान पर तिल था, अमुक स्थान पर वह था। चोलपट्टे की बनावट ऐसी थी। पछेवडी ऐसी ओढते थे। पूर्ण चित्र रह-रहकर याद आ रहा है, सामने दीख रहा है।'

पास खडे मुनिश्री रूपचन्दजी ने कहा—'फिर भी आप हमे दिखा तो नही सकते ?'

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'यदि मैं चित्रकार होता तो अवश्य दिखाता।'

२१ १ ६३, बोरज पहाडी के आरोहण से पहले गाव दिखाई नही दे रहाथा। पहाडी पर खडे दरवाजे से जानने मे देर नही लगी कि गाँव यही है। पहाडी पर चढते ही हम लोगो ने अपने को गाँव के बीच मे देखा। बडी-बडी हवेलियाँ गाँव की सुषमाके साथ समृद्धि का प्रतिनिधित्व कर रही थी। मेवाड के छोटे गाँव मे इतनी सख्या मे हवेलियाँ कम देखने को मिली।

आचार्यश्री पहले पुठोल से सीधा केलवा जाना चाहते थे। बोरज को वापस आते समय लेना चाहते थे पर बोरजवासी गाँव के पास से गुजरने वाले अपने गुरुदेव को गाव मे देखे बिना कैसे रह सकते थे। अत प्रार्थना की और वह फलीभूत होकर सामने आयी। आचार्यश्री स्कूल मे ठहरे। स्वागत का कार्य चला। अन्त मे आचार्यश्री ने प्रवचन किया। भोजन के बाद वहाँ से केलवा के लिए विहार हो गया। गन्तव्य स्थान के दो मार्ग थे—एक पहाडी रास्ता जो लम्बाई मे कम था, दूसरा सडक का मार्ग जो घुमाव लिए था। दोनो मे दो आकर्षण थे। पहले मे चलना कम था तो दूसरे मे चलने की सुगमता थी। जिसको जो अनुकूल लगा उसी मार्ग मे

चला। आचार्यश्री ने सडक का माग लिया। सडक के बीच मे ही थे कि राजनगरवासियो का एक दल महोत्सव के स्थान-निर्णय के लिए पहुँच गया। श्री देवेन्द्र कर्णावट इन दिनो काफी अस्वस्थ थे। उदयपुर के अस्पताल से अभी-अभी महोत्सव काल के लिए आए थे। दो स्थान थे—एक गाँव मे था, दूसरा राजनगर और काकरौली के बीच बाल-निकेतन था। गाँववासी गाँव के स्थान के पक्ष मे थे। देवेन्द्रजी मौन थे। व्यवस्था की दृष्टि से बाल-निकेतन उपयुक्त लग रहा था इसलिए आचार्यश्री ने महोत्सव के स्थान का निर्णय कर लिया। बाल-निकेतन की भूमि का भाग्योदय हो गया। आगे चलकर सब एक स्थान मे मिल गए। शाम को केलवा में गढ के विशाल प्रागण मे ठाकुर दौलतसिहजी ने स्वागत मे दो शब्द कहे। उत्तर मे आचार्यश्री ने सक्षिप्त भाषण किया।

केलवा तेरापथ के प्रमुख तीर्थस्थलो मे एक है। आचार्य भिक्षु ने तेरापथ की दीक्षा का श्रीगणेश यहाँ से किया था। वह जैन मन्दिर (अन्धेरीओरी) आज भी अपना इतिहास लिए खडा है। गढ के साथ भी इतिहास जुडा हुआ है। आचार्य भिक्षु जब नये सघ के स्रष्टा के रूप मे सामने आए तो गाँववालो ने उन्हे भिक्षा नही दी। स्थानीय ठाकुर मोखमसिहजी पहले व्यक्ति थे जिन्होने आचार्य भिक्षु को भिक्षा देकर पारणा कराया और स्वय तेरापथ को स्वीकार किया। गढ मे वह स्थान आज भी अपनी स्मृति करा रहा है। इसके बाद तो सघ का इतिहास गाँव के साथ और जुडता गया। दो वर्ष पूर्व तेरापथ का द्विशताब्दी समारोह यहाँ सम्पन्न कर आचार्यश्री तुलसी ने इतिहास की एक कडी और जोड दी।

ठाकुर मोखमसिहजी से लेकर आज तक इस परिवार का तेरापथ सघ के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। धीरे-धीरे सारा गाँव तेरापथी बन गया। आगे चलकर यह जनोक्ति हो गई कि गाँव मे जो फलना-फूलना चाहे वे तेरापथी बनकर रहे। आज सारा गाँव तेरापथ का अनुयायी है।

२४ १ ६३, केलवा राजनान गाँव मे एक भाई सपत्नीक आचार्यश्री के दर्शनार्थ आ रहे थे। इन्दौर के आस-पास हृदय रोग (हार्ट) का आक्रमण हो गया। अपनी सुरक्षा के लिए उन्होने स्थानीय अस्पताल की शरण ली। कुछ स्वस्थ हुए तो डाक्टर से कहा—'मैं गुरुदेव के दर्शन के लिए चला था। मैं चाहूगा पहले इस मनोरथ को पूर्ण करूँ।' डाक्टर ने निषेध किया और कहा—'अभी जाना ठीक नही है।' उन्होने कहा—'शरीर मे मुझे मोह नही है। मैं तो गुरुदेव के दर्शन करूँगा, चाहे कुछ भी हो।' डाक्टर उनकी उत्कट अभिलाषा को न रोक सके। कहा—'जाना ही चाहते हो तो एक इन्जेक्शन देता हू। चौबीस घटे के भीतर निकट के अस्पताल जोधपुर मे पहुच जाना।' इन्जेक्शन ले वे वहाँ से मोटर मे चले। केलवा पहुचे, उस समय ग्यारह से ऊपर बज गये थे। सबसे पहले उन्होंने सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी के दर्शन किये। उन्होंने आचार्यश्री से मकान से नीचे आकर दर्शन देने के लिए निवेदन किया। भाई की भावना सफल हो गई। फिर वे कुछ समय बिताकर जोधपुर चले गए।

इस घटना को देखते ही मानस मे चिन्तन की लहरें चल पडी। एक ओर शरीर था, दूसरी ओर दर्शन की अभिलाषा। दोनो विकल्पो मे शरीर की ममता को पीठ देकर दूसरे विकल्प का चुनाव करना श्रद्धा की प्रबलता का ही द्योतक है।

२५ १ ६३ 'प्राकृत जैन विद्यापीठ', वैशाली के डायरेक्टर श्री नथमल टाटिया बिहार सरकार की ओर से अपने ग्रुप के साथ आचार्यश्री के सान्निध्य मे चल रहे आगम कार्य की जानकारी लेने आए। तीन दिन तक सेवा मे ठहरे। आगम शोधकार्य के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श किया और शोधकार्य को दृष्टि मे लिया।

प्रात काल पचमी समिति से निवृत्त हो आचार्यश्री अन्धेरीओरी जैन मन्दिर मे पधारे, जहाँ आचार्य भिक्षु ने प्रथम चातुर्मास किया था।

अन्धेरीओरी जैन मन्दिर की एक कोठरी है, जहाँ दोपहर मे भी प्रकाश का दर्शन अलभ्य है। आजकल एक खिडकी का मुह खोल दिया है,

जिससे प्रकाश भीतर जाता है।

आचार्यश्री मन्दिर के बाहरी भाग की चौकी पर बैठे, जहाँ अपने चातुर्मास मे आचायश्री भिक्षु वैठते थे और जो आचाय के लिए सुरक्षित थी। दूसरी चौकी पर वहाँ का अधिष्ठाता देव बैठना था। 'भिक्षु स्वामी द्योनी मोए भक्ति तुम्हारी' इस गीतिका के द्वारा आचार्यश्री ने आचार्य भिक्षु को श्रद्धाजलि समर्पित की। तदनन्तर कुछ क्षणो के लिए उपस्थित साधु-साध्वी तथा श्रावको ने ध्यान किया। आचार्यश्री ने मन्दिर की प्राचीनता देखी। कई स्थलो पर लेख उत्कीर्ण थे, पर सफेदी के आवरण से धुधले पड गये थे, जो पढने मे समय व श्रम माँगते थे। मन्दिर की दाहिनी ओर एक कोठरी मे बाहुबली की प्रतिमा थी, जो श्वेताम्बर और दिगम्बर के समन्वय का प्रतीक बनी हुई थी।

केसरियाजी की यात्रा मे चलते हुए आचार्य विजयविकासचन्द्र सूरि केलवा मे आए। आचार्यश्री तुलसी का कल यहाँ से विहार सुन वे शाम को वन्दना से पूर्व मिलन के लिए यहाँ आए। साथ मे दो साधु और साध्विया थी। कुल हर्षविमल जी आदि पाँच साधु और पचीस साध्वियाँ थी। औपचारिक वार्तालाप के बाद आचाय विजयविकासचन्द्र सूरि ने आचार्यश्री के हाथो मे महेन्द्र जैन पचाग थमा दिया, जिसका कि वे बीस वर्ष से सम्पादन कर रहे हैं। ज्योतिषी का रूप उनका सामने आया, तब आचार्यश्री ने पूछा—'इस वर्ष २०२० मे मास अधिक को लेकर एक समस्या सामने आयी है। कई पचागों मे आसोज मास अधिक किया है, किसी मे कातिक मास को बढाकर उसे ही क्षय कर दिया है। ऐसी स्थिति मे समाधान क्या है?' उन्होने उत्तर देते हुए कहा—'सूक्ष्म गणित व नये गणित के अनुसार कातिक मास बढता है और वही क्षय होता है।' आगे उन्होने कहा—'उत्तराध्ययन सूत्र मे भी दो मास मे एक तिथि को क्षय माना है जो चिंतनीय है।'

आचार्यश्री ने एक प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा—'जैनो का प्रमुख पर्व सवत्सरी है। उसमें भी सब एक केन्द्र पर नही हैं। कोई कभी मनाता है

और कोई कभी। अधिकांशत भाद्र शुक्ला पचमी को मनाते है। यदि एक तिथि निश्चित होती है तो जैनो मे सगठन की भावना बल पकड लेगी।' उन्होंने आचार्यश्री की समन्वय भावना का स्वागत करते हुए कहा—'दो-तीन सम्प्रदायों के लिये चिन्तनीय है। फिर भी चिंतन करने से कोई हल निकाला जा सकता है।'

सूर्यास्त का समय निकट आ गया था, इसलिए वार्तालाप को पूर्ण कर वे अपने स्थान पर लौट गए।

तेरापथ अपने आप मे एक जैन सघ है। पर आचार्यप्रवर इसे जिस रूप मे प्रस्तुत कर रहे है वह निश्चय ही सम्प्रदाय से अधिक आत्म-शुद्धि का प्रेरक है। इसीलिए वह वैश्यो और महाजनो तक ही सीमित नही रह गया है। आचार्यश्री कई बार कहते है—'जैन धर्म के साथ सचमुच यह अन्याय हुआ है कि कही-कही इसे केवल महाजनो की सीमा मे ही बाँध दिया है। पर मेरी आत्मा इसके लिए तडप रही है कि हम सब इसे अन्य लोगो के लिए भी सुगम्य बना दें। ऐसा करके हम कोई बडा कार्य नही करते है अपितु अपनी एक गलती परिमार्जित करते है।'

आज भी प्रात काल साधुओ की सभा मे बोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—'हम सघ मे इतने साधु-साध्वियाँ है पर हमारी शक्ति का अधिकाश भाग केवल प्राप्त की सुरक्षा मे ही चला जाता है, हमे अब आगे बढना चाहिए। तेरापथ के द्वार को अन्य लोगो के लिए भी खोलने का प्रयास करना चाहिए। मुझे अपने जीवन मे अनेक उपलब्धियाँ मिली है पर साधुओ मे मेरी एक अपेक्षा यह भी है कि वे मेरे इस विचार को क्रियान्वित करने के लिए कोई निश्चित रूपरेखा बनाकर आगे आए।'

यह कहते-कहते आचार्यप्रवर इतने भाव-विभोर हो गए कि प्रश्न कर उठे—'क्या मेरी यह कामना निष्फल जाएगी?'

गभीर घोष मे साधुओ ने उसे सफल बनाने का प्रतिवाद किया। तत्क्षण सारे वातावरण मे एक हर्ष-लहरी व्याप्त हो गई।

२६ १ ६३ आज प्रात काल ही यहाँ से बोरज की ओर विहार होने

वाला था पर स्थानीय स्कूल के अध्यापको ने चाहा कि इस पव (२६ जनवरी) पर आचार्यश्री हमारे बीच मे रहे। इसलिए उनकी भावना को रखने के लिए आचार्यश्री ने वहाँ प्रवचन किया। आजादी पर प्रकाश डालते हुए भावात्मक एकता पर वल दिया। स्थानीय ठाकुर दौलतसिंहजी ने उपस्थित जनता को आचार्यश्री के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। कम से कम आज के प्रवचन के पहलू भावात्मक एकता पर चलने के सकल्प के लिए जागृत किया। अन्त मे एक दोहा आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित किया।

विहार की गति मे तीव्रता थी, इसलिये कल्पना से पहले बोरज पहुच गए। दोपहर मे भाई-वहनो के बीच सक्षिप्त भाषण किया। दूसरे दिन का प्रवास भी वही रहा।

२८ १ ६३ प्रात काल की पुनीत वेला मे सूर्य ने अपने प्रकाश-पुज को धरती पर भेज दिया था। सारा मार्ग प्रकाश से भर गया। महान् परिव्राजक मर्यादानिष्ठ साधक आचार्यश्री तुलसी अपनी शिष्य-सम्पदा के साथ बोरज से चले। धूलिधूसर मार्ग मे पैरो से इतिहास लिखते जा रहे थे। ज्यो ही अपने को राजपथ पर पाया तो देखा राजनगरवासी स्वागत के लिए खडे हैं। मार्ग मे एक-एक की वन्दना लेते-लेते राजनगर आ गया। गाँव का वायुमडल हर्ष-लहरियो से परिपूर्ण था। चारो ओर तरुण तपस्वी के आगमन की चर्चा थी। मर्यादा-महोत्सव के लिए राजसमद को साधुवाद मिल रहा था।

आचायश्री तुलसी ने गाँव मे प्रवेश किया। साधु पक्तिवद्ध चल रहे थे। पीछे अनुयायी वग था। गाँव के मुख्य चौराहे पर आते ही दाहिनी ओर मुख्य सडक पर खडे वोधिस्थल ने आगे बढते चरणो को अपनी ओर मोड लिया। वापस उसी सडक से किशोरनगर मे प्रवेश किया। मर्यादा-महोत्सव के लिए वने मडप ने दूर से ही अपना परिचय दे दिया। ऐतिहासिक दयालशाह के मन्दिर के पास पहाडी की गोद मे बैठा 'वाल-निकेतन' भवन अपनी नयनाभिरामता के लिए विश्रुत है। किसी भी मकान की

छाया उसे प्रभावित न कर सकी। चारो दिशाओ का शुद्ध वायुमडल उसकी प्रियता मे हाथ बँटा रहा था। प्रवचन-पण्डाल इमी के विशाल प्रागण मे फैला हुआ था। सडक के दूमरी ओर मर्यादानगर बसाया गया था। आचार्यश्री ने यात्रा का एक चरण वाल-निकेतन के प्रागण मे प्रवेश कर पूर्ण किया। जुलूस स्वागत-सभा मे परिणत हो गया।

स्वागत-समारोह

पारमार्थिक शिक्षण-मस्था की वहनो ने मगल-गान गाया। वकील श्री सागरमल कावडिया (कविता), वकील हुसनवख्शजी, काजीम अलीजी (तहसीलदार), कवि-हृदय चन्द्रेशजी चपलोत (कविता), उप-स्वागतमत्री श्री राजेन्द्रप्रसाद (कविता), राजस्थानी आशुकवि श्री दौलतरामजी छाजेड और प्रधानाध्यापक, 'वाल-निकेतन' ने आचार्यश्री के चरणो मे श्रद्धा के सुमन चढाए।

स्वागत का उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा—'आज मैं मर्यादा का उत्सव मनाने राजसमद आया हूँ। तेरापथ मे मर्यादाओ का निर्माण आचार्य भिक्षु ने किया था, पर महोत्सव का रूप जयाचार्य ने दिया है। मर्यादा का उत्सव कही भी देखने को नही मिला। मर्यादा आज मूल्यवती लग रही है पर जयाचार्य की दूरदर्शिता ने एक शताब्दी पूर्व उसे समझ लिया था और उसे आकार भी दे दिया था।

इस वर्ष के मर्यादा महोत्सव को कई सघर्षो मे निकलना पडा। दो स्थानो को पार कर आगे आना पडा। मैंने सोचा—मेवाड मे महोत्सव हो रहा है। राजसमद को आज तक ऐसा अवसर नही मिला इसलिए उसे मौका देना चाहिए। यहाँ की भूमि मे मेरा आकर्षण है। मैं कही भी जाता हूँ पर राजसमद स्मृति से नही उतरता। तेरापथ शासन के भाग्य-विधाता ने यही वोधि प्राप्त की थी। इसलिए यह हमारी मातृभूमि है।

इस महोत्सव मे सैंकडो साधु-साध्वियाँ भाग ले रहे है। धर्म-सघ के प्रति लोगो मे श्रद्धा है और आदर की भावना है क्योकि यह सघ भारहीन

है। अन्तरिक्ष की सीमा को लाघने के वाद अन्तरिक्ष-यात्रियो ने भार-हीनता का अनुभव किया पर यह सघ जमीन पर रहकर भी भारमुक्त है। यहाँ गाँव मे सैकडो साधु आए है। वे किसी के मेहमान नही है इसलिए कोई भी भार का अनुभव नही करता। अतिथि पाच-दस आने पर भी भार वन जाते है। पर साधु मधुकरी वृत्ति से किसी को भार का अनुभव होने नही देते।

मर्यादा-महोत्सव

३ १ १ ६ ३ मर्यादा-महोत्सव मे भाग लेने के लिए वम्बई, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यभारत, राजस्थान, पजाव, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, विहार व वगाल आदि प्रान्तो के हजारो भाई-वहन आये हुए है। उनकी व्यवस्था के लिए एक मर्यादानगर बसाया गया है जो वाल-निकेतन भवन के ठीक सामने है। वाल-निकेतन स्वय पहाड पर खडा है और उसके सामने के मैदान मे भव्य पण्डाल उसकी सुषमा को कई गुणित कर रहा है तथा राजपथ पर चलने वाले की दृष्टि वलात् अपनी ओर खीच लेता है।

भवन के चबूतरे पर बैठे साधु और नीचे एक ओर सफेद वेश मे साध्वियो की पक्ति तथा दूसरी ओर अनेक भाई-वहनो की अनेक रगो की पोशाको ने दृश्य को दर्शनीय वना दिया था।

दोपहर में मर्यादा-महोत्सव का आयोजन प्रारम्भ हुआ। वम्बई-वासिनी कुसुम वहन ने मगल भजन गाया। फादर विलियम (अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय चर्च) ने भाषण किया। महासभा शिक्षा-विभाग के सयोजक श्री केवलचन्द नाहटा ने महासभा द्वारा सचालित धार्मिक परीक्षाओ का प्रगति-विवरण सुनाया। इन सात वर्षो मे १४३१३ जैन व जैनेतर छात्र-छात्राए भाग ले चुके हैं। देश के विभिन्न प्रान्तो मे करीवन एक सौ पचास केन्द्र हैं। प्रतिवर्ष केन्द्र व परीक्षार्थियो की सख्या वढ रही है जो अध्यात्म-ज्ञान की जागरूकता का प्रतीक है। तदनन्तर साध्वीश्री मजुलाजी, जयश्रीजी, कमलश्रीजी व चन्दनवालाजी ने समवेत

गीतिका गायी। मुनिश्री बुद्धमल, नगराजजी, रूपचन्दजी, सोहनलालजी व महेन्द्रकुमारजी द्वितीय ने श्रद्धाजलि समर्पित की। मुनिश्री सुखलाल ने त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'एषणा' का एक अक उपहृत किया। महासती लाडाजी ने अपनी ओर से एक गीतिका उपस्थित की। स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री कजोडीमल चपलोत ने अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये।

आचार्य भिक्षु को अपनी श्रद्धा की अजलि देते हुए आचार्यश्री ने कहा—'बोधिस्थल के पुनीत स्थल मे महोत्सव मनाकर मुझे परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। हृदय मे सहज आनन्द व उल्लास उछल रहा है। एक ओर ससार मे मर्यादा के प्रति विश्वास नही है, वहाँ दूसरी ओर आत्मविश्वास के साथ मर्यादा को स्वीकार किया जाता है और उसका महोत्सव मनाया जाता है। कितना आश्चर्य है! भिक्षु स्वामी ने हमे सूत्र दिया कि मर्यादा ही जीवन है।'

मर्यादा के सूत्रधार आचार्य भिक्षु ने मर्यादा के लिए पहला लेख-पत्र वि० स० १८३२ मे लिखा और अन्तिम पत्र १८५९ मे माघ शुक्ला सप्तमी को। अन्तिम लेखपत्र के आधार पर यह महोत्सव माघ शुक्ला सप्तमी को मनाया जाता है। जनतन्त्र प्रणाली के अनुसार गण के सभी साधुओ ने हस्ताक्षर कर मान्य किया। उस एक पत्र की छाया ने लाखो व्यक्तियो को अपने मे समेट लिया। भिक्षु स्वामी ने सघ के सदस्य के लिए सघीय भावना को मूल्यवती बताया। उन्होने कहा—'वैयक्तिक साधना के साथ सघ की सीमा चले। सघ-हित मे सबका हित है। व्यक्ति-प्रसार की भावना लेकर चलनेवाला सघ के हित की उपेक्षा कर देता है जो आगे चलकर स्वय के लिए समस्या बन जाती है। व्यक्ति व्यक्ति है और एक बूद है। सघ समुद्र है। समुद्र की बूद के साथ समुद्र का बल रहता है। व्यक्ति बूद के समान अकेला होता है, जो नश्वरता को हाथ मे लिए चलता है। सघ के प्रसार मे व्यक्ति का प्रसार स्वय हो जाता है। सदस्य के लिए सघपति मे पूर्ण निष्ठावान् रहना अपेक्षित है। सघ-हित के लिए सर्वस्व समर्पण करने को प्रतिक्षण प्रस्तुत रहना चाहिए। सदस्य मे सघीय भावना

साथ चलती है वह सदा अपने जीवन को आनन्द मे पाता है। व्यक्ति-प्रसार की भावना के साथ चिन्ता का जाल विछा रहता है। पद-प्रतिष्ठा की भावना व्यक्ति को कचोटती रहती है और उसे दिग्मूढ वना देती है। सघीय भावना मे कभी अकेलेपन का अनुभव नही होता। पत्येक सदस्य का यही लक्ष्य होना चाहिए कि सघ-वृक्ष की छाया मे सव साथ वैठकर उसे पल्लवित, पुष्पित और फलित करें।

प्रवचन करते हुए आगे आपने मर्यादा पत्र का वाचन किया और मर्यादाओ पर प्रकाश डाला। अन्त मे आचार्यश्री ने साधु-साध्वियों के कुछ भावी चातुर्मास फरमाये।

इस समय सैकडो गाँवो के व्यक्ति उपस्थित थे। चातुर्मास प्राप्ति का यह सीजन (मौसम) है। सैकडो व्यक्ति तो सम्भवत इसी उद्देश्य को लेकर उपस्थित होते हैं कि कही उनका गाव साधु या साध्वियो के चातुर्मास से वचित न रह जाए।

२ २ ६३ वोधिस्थल का उद्घाटन केन्द्रीय वित्तमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने किया। साथ मे केन्द्रीय शिक्षामन्त्री श्री कालूलाल श्रीमाली, राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री मोहनलाल सुखाडिया आदि नेता थे। उदघाटन का काय सम्पन्न कर वे आचार्यश्री के पास आए। वाल-निकेतन के हॉल मे कुछ मिनटो तक वातचीत हुई। उसके वाद प्रवचन-पडाल मे चले गए।

श्री मोरारजी देसाई ने भाषण करते हुए कहा—"यहा आने से पहले मैंने वोधिस्थल का उद्घाटन किया। उसकी रचना पुस्तकालय के स्वरूप मे है। सयोजक ने आशा प्रकट की है कि वह नालन्दा जैसी विद्यापीठ वने। आशा मे दोप तभी आता है जव उसे पूरी करने के लिए सत्य को छोड देते हैं। नीतिमत्ता के साथ काम करने से सफलता स्वय मिलती है। इस वोधिस्थल का उत्कर्प होता रहे। यह व्यापक वने। ज्यादा-से-ज्यादा लोगो को जीवन समृद्ध वनाने की शक्ति देता रहे।

"... मानता हू कि आशा पूरी हो या न हो पर कार्य ठीक होना

चाहिए। ठीक का अर्थ है खुद को फायदा पहुचे, किसी को नुकसान न हो। ऐसे कर्म मे अनासक्ति आ सकती है। ऐसे ही कार्यो मे मेरी आस्था है जिससे समाज मे नीति का स्तर ऊपर उठे, इसीलिए मैं यहाँ आया हू।

अणुव्रत-आन्दोलन समाज मे नीतिमत्ता बढा रहा है ऐसा मेरा विश्वास है। वह एक पथ की ओर से चल रहा है, इसमे दोष नही है। दोष वहाँ आता है जहाँ वह पथ के पोषण का साधन बनकर चले। वहाँ न पथ सफल होता है और न आन्दोलन ही।

धर्म मनुष्य के लिए एक ही है। फिर पथ का होना भी स्वाभाविक है। क्योकि सब जगह एक ही आचार-विचार हो यह मानना असत्य सम्भावना है। इसीलिए अलग-अलग पथ होगे। उनमे नुकसान तभी पैदा होता है जब वे एक-दूसरे को काटते हैं, बुरा-भला कहते हैं। पथ के अनुयायी ज्यादा बनें यह भावना नही होनी चाहिए। पथ के विचार शुद्ध बनें, प्रयास यह करना चाहिए। ऐसे विचारो को व्यवहार मे भी लाना चाहिए। अणुव्रत-आन्दोलन इसी उद्देश्य को लेकर चलता है, इसीलिए इसमे मेरा विश्वास है और मैंने सम्पर्क किया है। इससे मुझे फायदा भी मिला है, अपने दोष देखने मे मदद मिली है।

जो व्यक्ति सत्य-अहिसा के प्रति श्रद्धा रखकर साधना करना चाहे वह अपनी शक्ति व मर्यादा के अनुसार उसी दिशा मे प्रयत्न करे तभी वह साधना सफल होगी। सत्य की साधना अहिसा को अपनाए बिना सम्भव नही है। अपनी अशुद्धि को निकालने के लिए सत्सग मददगार बनता है इसीलिए मैं यहा आया हूँ।

उपदेश देना मेरा अधिकार नही, आचार्यश्री का है, क्योकि मेरी शुद्धि नही हुई है। सत्सग के लिए मैं यहाँ आया हू, जिससे मुझे अपनी दुर्बलता समझने मे मदद मिले।"

शिक्षामत्री श्री कालूलाल श्रीमाली ने कहा—"मनुष्य अपनी असलियत को समझे, यह प्रश्न नया नही हजारो वर्षो से चला आ रहा है। धर्म मनुष्य को स्वरूप-प्राप्ति मे मदद करता है, पर व्यक्ति के धार्मिक

जीवन और व्यवहार-जीवन मे फर्क रहता है। जीवन मे यह दोहरापन अच्छानहीं है। धर्म को जव तक जीवन में नही लाएगे तव तक धार्मिक नही। जो धर्म मनुष्य-मनुष्य मे भेद डाले वह सच्चा धर्म नही। सच्चा धम वह है जो परस्पर नजदीक लाए। उसी धर्म से स्वरूप की प्राप्ति होती है। भारतवर्ष की सस्कृति मे हजारो वर्षो से धर्म की परम्परा चली आ रही है। सभी धर्मो ने नैतिकता की बुनियाद दी है। इसलिए इस बुनियाद को मजवूत करें, जिससे मनुष्य को अपने स्वरूप की प्राप्ति हो सके।"

अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराजजी ने कहा—"समय परिवर्तनशील हुआ करता है। प्रत्येक क्षण परिवर्तन लेकर आता है। इन दो दशको ने विकास की दिशा मे ससार मे महान् परिवर्तन ला दिया है। भारत स्वतन्त्र हुआ, असीम काल से एकतन्त्रीय चला आ रहा था। विकास हुआ, जन-तन्त्र आ गया। भूमि व्यवस्था बदल गई। जमीदारी का अन्त हो गया। उद्योगपति सोचते हैं—हम तो सुरक्षित हैं। उन्होने युग की विकास रेखा को नही देखा। आज देश मे ही नही वल्कि व्यक्ति से लेकर समाज मे नाना परिवर्तन आए है। वैसे ही आज युग जाग्रति का है। चीन ने भारत वर्ष मे और जाग्रति भर दी है। चारो ओर जागरण की वेला है, पर मोरारजी सोने की वात करते है, जो नीद को उडा देने वाली है। जाग्रति का क्रम अणुव्रत के माध्यम से लें।

नीति क्या है? नीति का निर्धारण समाज करता है। समय के साथ उसमे परिवर्तन आता है। आज नए मूल्य आ रहे हैं। समाज जिनको मान्यता देता है, कडी नीति का रूप ले लेते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन का सम्वन्ध अध्यात्म से है।

जहाँ समाज है वहाँ व्यवस्था भी है, अध्यात्म भी है। अध्यात्म-पक्ष मे ब्रह्मचर्य जीवन-शुद्धि के लिए आवश्यक है। नीति समाज के व्यवहार्य पक्ष पर वल देती है। वह कहती है—समाज मे दम्पति-जीवन विताने से दुराचार नही वढेगा। वहाँ व्यवस्था है—जो दम्पति-जीवन का अति-[illegible]रे, वह दण्डनीय है। दोनो एक-दूसरे के पूरक हैं। इसी प्रकार

अणुव्रत-आन्दोलन अहिमा, मत्य, अचौर्य और अपरिग्रह की दिशा मे भी ममाधान देता है। समाज मे जो ऱ्टिया है, अणुव्रत-आन्दोलन उममे परिवर्तन चाहता है।"

। आचार्यश्री ने प्रवचन करते हुए कहा—"जिम वोधिम्थल का वित्तमत्री ने उद्घाटन किया वह म्थल आचार्यश्री भिक्षु के वोधि-प्राप्ति का है। एक रात की घटना ने उनको जगा दिया। श्रावको ने आचार-शैथिल्य मिटाने के लिए कहा। गत के ज्वर ने उनके मानम को जगा दिया। उन्होने निश्चय किया कि मुझे श्रावणो की वात पर ध्यान देकर परिवर्तन करना चाहिए। मुवह होते ही उन्होने मत्य को म्वीकार कर लिया। इसी के उपलक्ष मे यह वोधिम्थल है।

आचार्य भिक्षु ने गुरु के पाम चिन्तन उपम्थित किया। उन्होने कहा—मुझे पथ का मोह नही है। मैं मत्य की माधना पर चलना चाहता हूँ। उन्होने उसे मान्यता नही दी इसलिए वे अलग हो गए।

वे सत्य-पथ पर चले, पद-चिह्नो से पथ का निर्माण हो गया। तेरह सत और तेरह श्रावको की सम्ख्या को लक्ष्य मे रखकर एक कवि ने दोहे मे तेरापथ नाम दे दिया। नाम की सज्ञा हो चली। उमका अर्थ करने भाष्यकर म्वय वने—हे प्रभो ! यह तेरा पथ, मेरा अपना कुछ नही है।

पथ की ममता से दूर रहकर उन्होने सत्य की माधना मे जीवन खपाया। पथ से धर्म प्रभावित होता है, पर वह पथ मे ही नही रह जाता, उसमे वाहर भी उमकी उपलब्धि होती है। अणुव्रत-आन्दोलन धर्म को व्यवहार मे उतारने का एक प्रयोग है। आन्दोलन के नियम के अनुमार तेरह वर्ष पूर्व मैंने सोने की वात कही थी कि वहनें ज्यादा से ज्यादा तेरह तोले से अधिक सोना न पहनें। उस समय वहनें मोने से लदी रहती थीं। मेरी वात उनके गले कठिनता से उतर रही थी। वहुत अशो मे उन्होने स्वीकार भी किया। पर सरकार की ओर से आने वाले सोने के प्रतिवन्ध ने,तो आज स्थिति को ही वदल दिया है। उस समय का मेरा वह कथन जिनके गले नही उतरा था आज वे भी सम्भवत यह सोचने लगे हैं कि

महाराज ने ऐसा कहा था। लेकिन उस पर ध्यान नही दिया। मैं तो आज भी कहता हूँ कि सोने मे चिपके मत रहिए। सोना ही धन नही है। यह तो आवश्यकता की पूर्ति है। सच्चा धन है—अहिंसा और सयम की साधना। अणुव्रत-आन्दोलन देश मे नैतिकता को बढाने मे अधिक हाथ बँटाए, यह आन्तरिक अभिलाषा है।"

दोपहर मे आचार्यश्री के सान्निध्य मे शिक्षित युवक सेमिनार का कार्यक्रम हुआ। श्री हीरालाल कोठारी (उदयपुर) ने सेमिनार का उद्देश्य बताते हुए कहा—'युवक अणुव्रत-आन्दोलन मे रस क्यो नही लेते है तथा सामाजिक क्रान्ति रूप नये मोड से दूर क्यो भागते है? इनके कारणो पर अपना-अपना प्रकाश दें।'

श्री हीरालाल कोठारी (नाथद्वारा) ने कहा—

१ माता पिता का व्यवहार—माता-पिता जैसा हमे उपदेश देते हैं वैसा स्वय नहीं करते। कहनी और कथनी की द्वैधता हम पर असर नही डालती। हमारे तर्क का समाधान वे कर नही पाते। कोरा उपदेश देने से मन आकृष्ट नही होता।

२ हमारी शिक्षा तदनुकूल नही है। लक्ष्य एकमात्र डिग्री प्राप्त करना है। इसलिए तालमेल नही बैठता।

३ समाज के प्रमुख नेताओ मे नेतृत्व करने और प्रकाश मे आने की जितनी लालसा देखी जाती है, उतनी कार्य के प्रति निष्ठा नही है। पद पर आसीन होना ही उनका लक्ष्य दिखाई देता है।

श्री भँवरलाल बागरेचा (नमाणा) ने कहा—१ नियम को अपनाने के पूर्व भावना का समझना आवश्यक है। नियम लेने वाले नाम की भूख मे फँसकर उसे ले लेते हैं। साधु की सख्या-वृद्धि के प्रलोभन मे फँस जाते हैं। पर आगे चलकर वे भावना न समझने के कारण कोरे रह जाते हैं। ऐसे व्यक्तियो के सामने देखने से निराशा हो जाती है।

२ अणुव्रत-आन्दोलन राजनीतिक स्टट है। अधिवेशन, सेमिनार और गोष्ठियो मे नेता व सत्ताधिकारियो को ही आमन्त्रित किया जाता है।

विद्वानो का चुनाव नही होता।

३ साधु-सन्त मामायिक व साधु-दर्शन के लिए प्रतिदिन आग्रह करते है। न जाने पर पूछते है, क्यो नही आया ? इस प्रकार युवक अपना अपमान मान वहा से हटने का प्रयत्न करता है।

इन्द्रजीत कर्णावत (नाथद्वारा) ने कहा—१ 'युवक सक्रिय नहीं हैं—यह दोष हमारे पर क्यो मढा जाता है ? हमे सक्रिय बनाने का किसने प्रयत्न किया ! किया तो अपने स्वार्थ के लिए।

२ नेता लोग आदोलन मे नए खून को स्थान नही देते। उन्हे अपने पद का भय सताता है।

३ युवक कई राजनीतिक पार्टियो से सम्बन्ध रखते हैं, जब कि आन्दोलन एक पार्टी से।

४ नैतिकता के प्रचार के लिए राजमहलो के द्वार देखे जाते हैं, जो स्वय नैतिक नही है।

५ नेताओ मे अपने को ही दिखाने की वृत्ति है।

६ साधुत्व से पूर्व दीक्षार्थी अपने क्षेत्र के सभी वर्गो के युवको से सम्पर्क साधकर उनको आदोलन का रूप समझाए।

आत्माराम गुप्ता (पजाब) ने कहा—समाज मे ऐसे लोगो की प्रतिष्ठा होती है जिनका व्यावहारिक जीवन आदर्श नही है।

देवेन्द्र हिरण (गगापुर) ने कहा—१. आन्दोलन ने युवको को खुराक नही दी, जिसकी कि अपेक्षा थी। ऐसा कार्यक्रम उपस्थित नही किया जिसमे युवक अपनी शक्ति लगा सकें।

२ साधुओ ने युवको का यथासाध्य सहयोग लिया। अपेक्षा यह थी कि युवक मार्गदर्शन के लिए साधुओ का सहयोग मागते।

३ कार्यकर्त्ता अपने स्वाभिमान को सुरक्षित नही पाता। कार्यकर्त्ताओ के कार्य का मूल्याकन नही होता।

४ कुछ रुपये देकर धनीमानी व्यक्ति सस्था को खरीदना चाहते हैं। अपने नाम का विज्ञापन हर कार्य मे देखना चाहते हैं, इसलिए युवक-

शक्ति पीछे हट जाती है।

कन्हैयालाल कछारा (लावा सरदारगढ) ने कहा—आन्दोलन का सीधा सम्बन्ध तेरापथ से है। इसलिए निकट आकर भी दूसरे दूर चले जाते हैं। हम लोग दूसरो को सुधारना चाहते है, स्वय को नही।

२ नेताओ को बुलाकर प्राथमिकता दी जाती है।

३ अणुव्रत समिति उनके हाथो मे नही है जो काम करना चाहते है। तेरापथी उससे मोह तोडना नही चाहते वल्कि उससे चिपके रहना चाहते हैं।

४ कायकर्त्ताओ के सामने काम नही है। सेवा देनेवाले तैयार हैं पर उनके सामने न मार्ग है और न दिशा।

समर्थमल जैन (राजनगर) ने कहा—१ कतिपय व्यक्तियो मे पर्दा, दहेज आदि परिवर्तन लाने से सुधार नही होता। सामाजिक बुराइयो का सामूहिक उन्मूलन होना चाहिए, अन्यथा अवशिष्ट घरो के गन्दे वायुमडल से सफाई किए हुए घर अस्पृष्ट नही रह सकते।

२ अणुव्रती झूठी साक्षी भी दे देते हैं। उनके लिए सामाजिक अदालत होनी चाहिए, जिसमे उनको खडा किया जा सके।

साहित्य-परामर्शक मुनिश्री बुद्धमल ने उत्तर देते हुए कहा—'आदोलन को लेकर कई विचार-प्रश्न सामने आए। विचार ऐसे थे जो एक-दूसरे के आस-पास चलते थे। समय देखते सव पर कहना सम्भव नही लगता, फिर भी प्रयत्न करूँगा।

प्रश्न—अणुव्रती वनते हैं, उसकी भावना नहीं समझने के कारण वे तोड देते है।

ऐसी कोई अदालत नही जहा गलती करने वाले अणुव्रतियो को खडा किया जा सके।

समाधान—मार्ग मे चलने से ठोकर लग जाए या गिर जाए तव क्या चलना ही नही चाहिए ? गिर जाओ तो फिर खडे हो जाओ। हर चलने वाला गिरता है। जो चलता है वही गतिशील रहता है। अच्छा तो यही है

कोई न गिरे, पर यह सम्भव नही है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह गलती कर देता है, गलतिया करने वाले आदोलन की भी निन्दा करते है। इसलिए उन्हे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए या वह परिवर्तन कर लगा ऐसी सभावना लेकर चलना चाहिए। बुरे आदमी आदोलन मे आते है तो हमे यह मानना चाहिए सुधार उनके लिए आवश्यक है जो पतित है, जिनके जीवन की सैकडो जगह खराब है। आन्दोलन उनका क्या सुधार करे जो स्वय अच्छे है। फलित यह नही कि अणुव्रती बनकर गलतिया करते रहो और फिर उसे धोते रहो। अपेक्षा यह है कि आन्दोलन के माध्यम से बुरा अपनी बुराई को छोडे।

आश्चर्य है कि हम अपने को पूर्ण मानकर चलते है। हर युवक ने आन्दोलन मे गलती देखने का प्रयास किया, पर यह क्यो नही चिन्तन मे आया कि हम कितने सजग है?

माता-पिता गलतिया करते है। यह एक पक्ष है। दूसरा पक्ष यह भी है कि वे पढे-लिखे नही है, उनके पुत्र ग्रेजुएट है, इसलिए उनका पुत्रो पर प्रभाव नही पडता।

माता-पिता तथा आस-पास की गलतिया देखते है। देखनी भी चाहिए पर उससे पहले अपनी चालनी को चाहिए कि सूई के एक छिद्र को देखने से पूर्व अपनी ओर भी देखे। यह सत्य है, युवको मे शक्ति है। आलोचनात्मक है तो क्रियात्मक भी।

हिरण अधिक होने से क्या खेती नही की जा सकती? अणुव्रत आदोलन की दिशा यदि ठीक है तो गलत व्यक्तियो के स्थान पर आप अच्छा कार्य कैसे दे सकते है, स्वय सोचिए और आन्दोलन के अन्दर घुसकर काट-छाट करिए।

कितने युवक ऐसे है जिन्होने आन्दोलन मे रहकर काम किया हो। किसी ने किया है तो वे अपने पैरो को रोककर खडे क्यो नही रह सके? प्रवाह ने उनको कैसे बहा लिया? क्या वे प्रवाह से मुकाबला करने की शक्ति नही रखते? मैं मानता हूँ युवक वर्ग यदि आन्दोलन मे कार्य करने आगे

आए तो बहुत काम हो सकता है।

एक प्रश्न आया कि कार्यकर्त्ता को प्रेरणा नही मिल रही है, समाज उन्हे सम्मान की दृष्टि से नही देखता। कार्यकर्त्ता समाज के व्यक्ति है, समाज इस पर ध्यान देगा।

राजनैतिक व्यक्तियो को जितना महत्त्व दिया जाता है, दूसरे व्यक्तियो को उतना नही।

राजनीति मे जाने से क्या कोई राजनीतिमय ही हो जाता है, उसका दूसरा रूप नही रहता ? सोचने वाले उसके राजनीति पक्ष को ही क्यो उभारकर देखते है ? क्या वह केवल नेता ही है ?

अणुव्रत-आन्दोलन मे सभी राजनैतिक दलो—कांग्रेस, साम्यवाद, जनसघ, समाजवाद और स्वतन्त्र पार्टी के व्यक्ति है। फिर उसे एक पार्टी विशेष से कैसे जोडा जा सकता है ? एक पार्टी का नेता आता है, तब दूसरे सोचते है हमारी पार्टी के नेता को नही बुलाया। आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओ को सन्तुलन रखना चाहिए। नट बास पर तभी चल सकता है जब वह सतुलन का ध्यान रखे। जो तटस्थ नीति पर चलता है उसे दोनो पक्ष को सन्तुलन देकर चलना होता है।

अन्त मे आचार्यश्री ने युवको को आह्वान करते हुए कहा—'आपके खुले विचारो को सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैं नही चाहता आप मेरी कोरी प्रशसा ही करते रहे। मैं तो कहता हूँ उन विचारो को भी सामने लाइए जिनको आप आग मानकर चलते है। भावना रखने मे सकोच नही करना चाहिए पर वह सयत भाषा मे होनी चाहिए। फिर वे चाहे साधुओ के विषय मे हो, तेरापथ के विषय मे हो या मेरे व्यक्तिगत विषय मे हो। आपके विचारो का स्वागत होगा और उससे हमे अपने को देखने का अवसर मिलेगा।

अभी तक युवको से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध नही रहा है पर मैं चाहता हूँ वह बने। यदि युवको का एक वर्ग आन्दोलन मे काम करने आगे आता है तो मैं उसे प्रोत्साहन दूगा जहाँ तक मेरी सीमा है। मुझे उस

प्रसन्नता होगी जब युवक वर्ग आगे आकर अपनी शक्ति का योग देंगे।'

समय अधिक होने से यह बैठक रात के लिए स्थगित हो गई। श्री हीरालाल कोठारी ने युवकों से कहा—अभी आलोचना का एक पक्ष सामने आया है। युवक हृदय का उबाल निकला है। दूसरी बैठक रात को होगी, जिसमें उनके वैधानिक रूप भी सामने आने चाहिए। रात का समय ठंडा होगा। वातावरण भी शान्त होगा, उसमें कुछ कर गुजरना है। कोई निर्णय लेकर उठना है।

प्रार्थना के अनन्तर दूसरी बैठक आचार्यश्री के सान्निध्य में फिर हुई।

चतुर कोठारी ने कहा—पारमार्थिक शिक्षण संस्था न रहकर एक ऐसा शिक्षण सस्थान होना चाहिए, जहां भाई-बहन साथ रहकर धार्मिक शिक्षा प्राप्त करें।

पूर्णचन्द्रजी बडौला—

अणुव्रत-आन्दोलन के कार्यकर्त्ता चापलूसी वृत्ति के हैं। वे केवल आचार्यश्री की प्रशंसा के गीत गाते हैं। उनके सामने ठोस कार्य की कोई योजना नहीं है।

हरभजनलालजी शास्त्री—

एक नवयुवक सगठन होना चाहिए जो देश में अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से नैतिकता की शक्ति को बढ़ाए।

कुन्दनमलजी सेठिया, सुजानगढ़—

प्रत्येक गांव में एक शिक्षण केन्द्र होना चाहिए। तीन शिक्षण केन्द्रों पर एक प्रमुख कार्यकर्त्ता रखा जाय। प्रत्येक केन्द्र उसके लिए पांच रुपये प्रति मास दे। कार्यकर्त्ता सत्सग, नाटक, कहानी के द्वारा गांवों के जीवन को सस्कृत बनाए।

एक प्रश्न कइयों के द्वारा आया कि या तो बडे आयोजन किए नहीं जाने चाहिए जिसमें हजारों की सख्या हो या लाउडस्पीकर का प्रयोग होना चाहिए। होता क्या है कि मुनिजनों की वाणी हमारे तक पहुंच ही नहीं पाती। पल्ले कुछ नहीं पडता और खाली हाथ लौट जाते हैं।

प्रश्नो के उत्तर देते हुए अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराज ने कहा— "जितने प्रश्न आए है उनका समाधान दिया जाएगा। लाउडस्पीकर यह सैद्धान्तिक प्रश्न है। कलकत्ता मे दोनो पक्षो पर चिन्तन चला था। 'जैन भारती' मे भी दोनो पक्षो के लेख निकले थे। अभी इस पर निर्णय लेना कठिन है। चिंतनीय प्रश्न अवश्य है।"

अन्त मे गोष्ठी ने एक निर्णय लिया। सात व्यक्तियो की एक समिति बनी—सर्वश्री हीरालाल कोठारी, सोहनलाल गाधी, देवेन्द्रकुमार कर्णावट, कन्हैयालाल कछारा, देवेन्द्रकुमार 'हिरण', हरभजनलाल शास्त्री, भैरूलाल धाकड। समिति भविष्य के लिये रूपरेखा बना आचार्यश्री को निवेदित करे।

दोपहर मे अणुव्रत सेमिनार की दूसरी बैठक आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे हुई। भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमारजी इस अवसर पर उपस्थित थे। मुनिश्री मोहनलाल ने भारत और चीन के युद्ध के अणुव्रत दर्शन पक्ष को लेकर व्याख्या की। साध्वीश्री फूलकुमारी ने अपने विचार व्यक्त किये। तदनन्तर भाषणो का कार्यक्रम प्रश्नोत्तर मे परिवर्तित हो गया। प्रश्नो का उत्तर जैनेन्द्रकुमारजी दे रहे थे। अधिकाश प्रश्न भारत और चीन के युद्ध मे भारत की अहिंसा से सम्बन्धित थे।

दिनाक २ फरवरी, १९६३ को राजनगर मे आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे एक दर्शन-परिषद् का आयोजन हुआ था। मुनिश्री नथमलजी ने कहा—

'दर्शन शब्द आज जिस अर्थ मे व्यवहृत है उसे मैं बहुत ऊँचा नही मानता। वह आत्मा के लिए विक्षेपकारक है। दर्शन बुद्धिवाद का पर्याय बन गया है। वास्तव मे यह सच्चाई नही है। बुद्धि से दर्शन का लोप होता है। जब मनुष्य विकल्प व विचारो मे जाता है उस समय दर्शन का लोप हो जाता है।

दर्शन का अर्थ है आत्म-साक्षात्कार। प्रारम्भ मे दर्शन शब्द का प्रयोग साक्षात्कार के अर्थ मे हुआ था, अब उसका ह्रास हो गया है। मैं मानता

और स्वस्मिन् (आत्मा मे) ध्यान करे। जब तक आप अपने मे छ कारको का एकात्मक प्रयोग नही करेंगे, तब तक ध्यान का परिपाक नही होगा।

दीया जलता है। एक घटे बाद प्रकाश चला जाता है, बाती रह जाती है। बाती लौ से भिन्न है, इसीलिए लौ बुझने पर भी बाती रह जाती है। ध्यान मे यह द्वैत नही रहना चाहिए।

ध्यान की प्रक्रिया सरल है, पर लोग इसे कठिन मान बैठे है। मैं इसे समझाने का यत्न करू तो कैसे समझेंगे, क्योकि वे अपनी धारणा लिए बैठे है। प्रत्येक व्यक्ति हर वस्तु को अपने सस्कारो से देखता है। द्वारका मे भले मनुष्य कितने है और बुरे कितने है ? इस प्रश्न का दुर्योधन ने उत्तर दिया—यहा कोई भी भला नही है। उसी प्रश्न का धर्मराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—सब भले हैं। बुद्धिवाद और दर्शन एक नही हैं, बुद्धिवाद को दर्शन मानना हमारा भ्रम है। जीवन मे दर्शन का उदय होगा तो बुद्धि-वाद छोटा बन जाएगा।

प्रो० रजनीश ने कहा—'मैं धर्म और दर्शन के विषय मे कहना चाहता हू। जो मुझे दिखाई पड रहा है, उस अनुभूति मे आपको साक्षी बनाना चाहता हू। लाखो चेहरे देख रहा हू। चेहरे भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी दु ख व्याप्त है। ऐसा प्रतीत होता है, जीवन की जड से टूट गए है। जीवित है, पर मृत्यु की प्रतीक्षा मे खडे हैं। समस्त दार्शनिकों ने चाहा दु ख से छुटकारा हो जाए।

धर्म आपसे त्याग करने को कहता है। मूलत दुख-त्याग को कहता है। वास्तविक धर्म छोडने पर नही, पाने पर है। अधेरे का त्याग नही होता। दीया जलने पर वह मिट जाता है। धर्म का दीया जलने पर वे मिट जाते हैं जिसे हम दु ख, अज्ञान व ममत्व कहते है, जीवन से लेकर मृत्यु तक। महावीर, बुद्ध आदि ने भी दीए जलाए थे। विचारशील थे, दार्शनिक थे। उनका प्रभाव बढते-बढते समूचे फैल गया। वे नास्तिक हैं जिनकी ऊपर से धर्म के प्रति श्रद्धा है, भीतर प्राण टूट गए हैं। उनकी आस्था थोथी हो गई है। वह व्यक्ति को जीवन से नही जोड सकती। सत्य तक नही पहुचा सकती।

जब भी मनुष्य गहरी अनास्था मे खो जाए तो बहुत सम्भावना है कि वह आस्था को प्राप्त कर ले। वास्तविक धर्म को लौटाने का विज्ञान सीख लें तो सही धार्मिक बन जायेंगे। अगर यह सभावना व्यर्थ गई तो इसका उत्तरदायित्व उन धार्मिको पर है, जो थोथे धम की बातें करते हैं और जिनकी श्रद्धा ऊपर से है। धर्म के विज्ञान की आवश्यकता है। धम बाहरी क्रिया से दब गया है, राख रह गई है, अगार नही है, फिर भी उसे सिर पर लिए फिरते हैं क्योकि वह हमारी है।

जैन को ईसाई व्यर्थ लगता है, उसको जैन व्यर्थ लगता है। पर अपना धर्म किसी को राख नहीं लगता, व्यर्थ दिखाई नही देता। सत्य-शोधक वह है—जो भी सत्य है उसके साथ खडा होने को तैयार रहे। इसके लिए साहस करना होगा। जो परम आनन्द न दे उसे छोड दे। जो व्यक्ति सब छोडने को तत्पर रहता है उसे सब मिल जाता है। धर्म के नाम पर केवल सम्प्रदायो की चर्चा करता रहे तो धर्म का पुनरुत्थान नही होगा।

धम दो नही है। हिन्दू हो चाहे मुसलमान, गणित एक होगा। आत्मा का विज्ञान भी अनेक नही है, वह एक ही है। बोलने, कहने का ढग व भाषा भिन्न हो सकती है पर सत्य एक है। जितना एक परिपूर्ण जैन है उतना ही वह दूसरा भी है। जो धार्मिक होगा वह सीमा मे आबद्ध नही होगा। धम सीमाओ से बाहर है। जो अपने से बाहर धर्म नही मानता वह धार्मिक नही है। अपने साथ हम क्या करें, धर्म इसकी खोज है। मेरी ही सत्ता मेरे लिए प्राथमिक है। यदि मैं अपने पर मूर्च्छित हू तो बाहर कुछ नही है। आत्म-ज्ञान के अभाव मे सब अज्ञान है।

मेरे भीतर ज्ञान भरा है। उसके लिए मूर्च्छा तोडनी होगी। भीतर झाकना होगा। ऐसा लगता है भीतर से आपका परिचय नही है, पहचान नही है। ज्ञान की शुरूआत आत्म-परिचय से होगी।

टेहरी-गढवाल का नरेश जो भी चिन्तक आता उसके पास जाता और बीस वर्षो तक एक ही प्रश्न पूछता रहा। पर किसी से तृप्ति नहीं मिली। रामतीर्थ के पास भी वह प्रश्न लेकर गया। प्रात काल ही उनके पास जाकर

कहा—'मैं प्रवचन सुनने नहीं आया हूं, दार्शनिक मतवाद लेकर भी नहीं आया हूं।' 'तो क्या लेने आया है?' 'ईश्वर से मिलने आया हूं।' रामतीर्थ ने कहा—'अभी या थोड़ी देर रुक सकते हो?' उसने हाथ उठाकर उत्तर दिया—'अभी मिलना चाहता हूं।' रामतीर्थ ने कहा—'पहले अपना परिचय दे दो। उसे ईश्वर तक पहुंचा दूं।' नरेश ने अपना नाम और पूरा परिचय दे दिया। रामतीर्थ ने पूछा—'क्या यह सत्य है?' नरेश बोला—'सब सत्य है।' तब रामतीर्थ ने कहा—'सब झूठ है। तुम्हारा नाम बदलने से तुम अन्य हो जाओगे। धन-सम्पत्ति चली जाने पर भिखारी हो जाओगे, फिर तुम वह नहीं रहोगे। तुम जो बदलोगे वह हो, या नहीं बदलते हो वह हो? पहले कागज पर अपना थोड़ा परिचय लिखकर दो।' उसने उत्तर दिया—'परिचय लिखने की कठिनाई है।' रामतीर्थ ने कहा—'जो अपने से परिचित नहीं, वह परमात्मा से कैसे परिचय कर सकता है?' आत्म-ज्ञान ही प्रभु-द्वार है। जैन-दर्शन कहता है—'आत्म-ज्ञान ही परमात्मा है। आत्मा से परिचित होते ही परमात्मा से परिचित हो जाओगे। आत्म-ज्ञान ही सब कुछ है, प्राण है। परिचित होने के बाद एक क्षण भी उस रूप को खो नहीं सकते। जो खोया नहीं जाता वह स्वरूप ही है। कितने ही दूर चले जाए, उससे दूर नहीं होगे। सोचना यह है—वह कौन-सी मूर्च्छा है जिसमे मैं उलझ गया हूं? वह एक ही है—बुनियादी अज्ञान। हमारी शरीर से मूर्च्छा है। देह को अपना मान बैठे हैं। देह की वासना मेरी वासना है। देह के विकार मेरे विकार हैं। देह होकर जीता हूं। तब मृत्यु का भय पकड़ता है। देह के केन्द्र पर अधर्म आदि समस्त कर्म इकट्ठे हो जाते हैं। क्या यह उपदेश से मिट जाएगा? नहीं, 'मैं देह नहीं हूं' लाख बार दोहराने से ममत्व टूट नहीं जाएगा। देह और आत्मा का सम्बन्ध टूटने पर दीखेगा—मैं देह नहीं हूं, देह से बाहर हूं। उस समय कोई तर्क उसे तोड़ने में व्यर्थ है। यह मूर्च्छा क्यों है? चेतना शरीर के भी मन है, मन के माध्यम से शरीर को अपना मान लिया इसीलिए। मन विसर्जन हो जाए, उसका सेतु टूट जाए तो अपने को देखूंगा। यही देहासक्ति से ऊपर उठने

का उपाय है। मन को गिरा देने से आत्म-परिचय हो जाएगा। मन बहुत कमजोर है। दुर्गम नहीं है, दुर्लंघ्य नही है। मन के मुक्त होने से सरल बात दूसरी नही है। अँधेरा लाठी से दूर नही होगा। थक जाएगे। ताकत लगाने पर भी उसे नही मिटा सकेंगे। अँधेरा नकारात्मक है। उसकी सत्ता नही है। सत्ता होती तो गठरी बाध फेंक सकते हैं। प्रकाश का अभाव है। प्रकाश को लाने से मिट जाएगा। अँधेरा करोड दिनो का भी हो तो एक दीपक ही पर्याप्त है। आत्म-अज्ञान कितना ही पुराना हो, ज्ञान आने से मिट जाएगा।

ध्यान का अभाव मन है। मन से लडने से जीत नही सकेंगे। ध्यान के आने पर मन मिट जाता है। एकाग्रता ध्यान नही है। मन की दौडती हुई शक्ति को एक विषय पर केन्द्रित करना है। उससे सिद्धियाँ मिल सकती हैं। शक्ति के योग को पाने के पीछे भी वासना है। शराव पीकर या लय मे भूल जाना ध्यान नही है। भूल जाना पलायन है, ध्यान नही है। अपने को परिपूर्ण जानना या जागरूकता ध्यान है। मूर्च्छा ही मन है, जागृत होने से मन नही रहता। महावीर ने कहा—विवेक से चलें, विवेक से सोए, विवेक से उठें। विवेक का अथ है—परिपूर्ण जागा हुआ। जागृत अवस्था मे मन नही होता। मनुष्य मन के वाहर हो जाए, चेतना मे प्रतिष्ठित हो जाएगा। मन विसर्जित हो सकता है। प्रत्येक दो विचारो के वीच अन्तराल है। दो विचारों के बीच की जगह है वह मैं हू। वैदिक कथा है—इन्द्र विरोचन प्रजापति के पास गया। पूछा—मैं कौन हू? पास मे तालाव था। उसके पास भेज दिया। लहरें सो जाए तब झाकना। शान्त पानी मे देखने से उसकी तसवीर वन गई। तृप्त हो गया। इन्द्र विरोचन को सन्देह हुआ। जो दीखा वह मैं हू तो जिसको दीखा वह कौन है? वापस प्रजापति के पास आया। समाधान मिला—जो निरन्तर द्रष्टा है वही तुम हो।

अहिंसा, सत्य स्वय साधना न होकर आत्मा के परिणाम हैं। जो अपने को पा लेता है वह आत्म-द्रष्टा है। उसके लिए उपदेश निस्सार हैं। वही

प्रकाश है, वही आनन्द से भर जाता है, वही सौन्दर्य के जगत् से भर जाता है। पाने की दौड मिट जाती है। मन को तोडे विना व्यर्थ की दौड हुई है, और होगी। जन्म और मृत्यु की दौड के वाहर होना है।

आचार्यश्री तुलसी—'दर्शन का अर्थ है—'अपने आपको देखना। धर्म उसको समझने व पाने का साधन मात्र है। आत्म-द्रष्टा वनने पर सव धर्म त्याज्यवन जायेंगे। धर्म को केवल व्यवहारपरक उपासना और क्रियाकाण्डो तक ही सीमित मत रखो, उसे अव्यावहारिक आत्मा मे ले जाओ।

गौतम के प्रश्न पूछे जाने पर भगवान् ने कहा—'सामायिक वह है जहा समता की आय यानी लाभ मिलता हो। समता आत्मा है इसलिए सामायिक भी आत्मा है। साधुत्व वेश या क्रिया मे नही है, उसका सम्वन्ध आत्मा से है। जितना आत्मस्थ होते जायेंगे उतने ही साधुत्व की ओर वढते जायेंगे। एक प्रश्न आता है, साधु वनने से पहले जो विरक्ति थी वह साधु वनने के वाद उतनी नही रही। शका का समाधान है—लक्ष्य का अभाव। दीक्षार्थी के लिए साधु वनने का लक्ष्य था। उसकी प्राप्ति के वाद भावी लक्ष्य न वनने से ऐसी स्थिति होती है। यदि साधुत्व स्वीकार के वाद अयोग, अप्रमत्त या वीतराग का लक्ष्य सामने रहे तो विरक्ति की मात्रा कम नही, अधिक होगी। अयोग का अर्थ है—मन की प्रवृत्ति का विसर्जन। एकाग्रता उससे पूर्व की अवस्था है, जिसमे अनेक विषयो से मन को हटाकर एक विषय मे केन्द्रित करना होता है। एकाग्रता की साधना के वाद अयोग की साधना सुगमता से हो जाएगी, इसलिए एकाग्रता ध्यान का पहला सोपान है। इस अभ्यास से धीरे-धीरे आत्मस्थ होते जायेंगे। दर्शन का सार यही है कि आत्म-द्रष्टा वने।"

३ फरवरी, १९६३ को राजनगर मे आयोजित 'अणुव्रत अहिंसा सेमिनार' के अवसर पर वोलते हुए मुनिश्री नथमलजी ने कहा—

"इस अवसर पर भारतीय मानस मे अहिंसा की जितनी प्राणी-दयात्मक के रूप मे धारणा जमी है उतनी प्रतिकारात्मक नही। इस धारणा से करुणात्मक भावना का विकास हुआ, पर प्रतिकारात्मक भावना का

नहीं। अहिंसा मे प्रतिकारात्मक शक्ति आए बिना तेज नही आ सकता। करुणात्मक भावना के विकास के पीछे शब्दो की पकड यह है कि जीवो को मारना हिंसा है, न मारना अहिंसा। जहाँ स्वीकारात्मक भावना अधिक है वह हिंसा है, स्थिति का अस्वीकार अहिंसा है। स्थिति का जितना दवाव शुरू होता है उतनी हिंसा है। चीन ने आक्रमण कर दिया इसलिए प्रत्याक्रमण स्थिति का स्वीकार है। आक्रमण भी स्थिति के स्वीकार में से निकलता है।

बुद्ध से किसी ने कहा—अमुक आपको गाली देता है। उन्होने उत्तर दिया—मैं स्वीकार ही नही करता तो वह मेरे पर कैसे आएगी ?

अँधेरे मे डर भूत को स्वीकार करने से लगता है। क्रोध तभी पैदा होता है जव वाह्य परिस्थिति को स्वीकार कर लेते हैं। स्थिति के स्वीकार से ही किसी के मन मे किसी के प्रति जलन पैदा होती है। ये दोष परिस्थिति मे नही हैं, उसके स्वीकार मे हैं। परिस्थिति के स्वीकार का अर्थ है आत्मा की सत्ता का अस्वीकार। स्थिति को सही नही समझने से विपर्यय हो जाता है।

बुढिया गली मे बैठी सूई खोज रही थी। किसी ने पूछा—'माँ ! गली मे क्या खोज रही हो ?' 'सूई गुम हो गई।' 'कहाँ ?' 'कमरे मे।' 'गली मे क्यो देखती हो ?' 'प्रकाश यही है, कमरे में अँधेरा है।'

आचार्य भिक्षु ने लिखा है—'आँख रो ओषध पूठे घसै'। एक व्यक्ति आँख की दवा पीठ पर मल रहा था। किसी ने पूछा—'क्या कर रहे हो ?' उत्तर मिला—'भैया ! दवा मल रहा हू।' 'किसलिये ?' 'आँख मे पीडा है।' 'तो पीठ पर क्यो ?' 'आँख मे जलती है, यहाँ जलती नही।'

अहिंसा करुणात्मक स्थिति के अस्वीकार मे आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता का विश्वास वोलता है। उसकी स्वीकृति मे आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता नही रहती। अपनी प्रशसा पर फूलू और किसी के गाली देने पर रोष करूँ, वहाँ मेरी स्वतन्त्र सत्ता कुछ नही है, स्थिति का खिलौना मात्र वन जाता हू। यह हिंसा है। अहिंसा का उदय वहाँ होता हैं जहाँ फूलों से अर्चना करने

पर और कुल्हाडी से प्रहार करने पर भी वाह्य स्थिति मे न जाऊँ। स्थिति स्वीकार के ऊपर उठे विना अहिंसा के प्रति निष्ठा का अभाव है। शस्त्र मे सुरक्षा मानने से अमेरिका, ब्रिटेन आदि राष्ट्रो से शस्त्र आने लगे। यह आस्था वन गई कि शस्त्र हमे उवारेंगे। जो अहिंसावादी हैं उनके सामने प्रश्न आया—सशस्त्र आक्रमण का अहिंसा से कैसे प्रतिरोध हो ? अहिंसा से प्रतिरोध स्वय हो जाता है, करना नही पडता। कोई हम पर ज़वरन शासन थोप नही सकता। क्या कोई किसे वलात् खिला सकता है ? मारा जा सकता है पर खिलाया नही जा सकता। हमारी अहिंसा का आधार है स्थिति के अस्वीकार की आस्था और अभय। आस्था वलवान हो, भय जाता रहे तो अहिंसा मे इतनी ताकत है कि वह देश को उवार सकती है।

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने वोलते हुए कहा—'चीन हिमालय के पार से आ गया। हम घवरा गए। अनुभव किया हम वे-भान हैं। वडी शक्ति के मुकावले मे पर्याप्त शक्ति नही थी। सधि की वातें हो रही हैं, पर सभव नही है। इसीलिए शस्त्र वाहर से मगाकर अपनी रक्षा कर रहे हैं।'

शक्ति का अनुष्ठान आत्मा मे है। वस्तु मे तव तक है जव तक उसका तुम्हे पता नही है। यह व्रत व धर्म की दृष्टि है।

चीन के पास जनसख्या व शस्त्रवल अधिक है। उसको हटाने का मार्ग है—हमारे पास शस्त्रवल अधिक हो। नेहरूजी ने कहा है—'अणु सम्वन्धी विज्ञान मे हम आगे हैं। अणुवम तैयार कर सकते हैं पर करेंगे नही। चीन के पास अणुवम हैं। वह प्रयोग करेगा। अमेरिका के पास चालीस हज़ार वम है। रूस के पास सौ मेगाटन वम है। डर को कायम रखने के लिए वम वनाए जाते हैं। दूसरे के मन मे डर पैदा करने से हमारा डर कम हो जाता है, सुरक्षा मान लेते हैं। सुरक्षा का मेल निश्चिन्तता के साथ है। अभय के साथ है, भय के साथ नहीं है।

चीन के आक्रमण से भलाई हुई है कि हमारा आत्म-तुष्टि का भाव टूट गया। हम ही हम हैं, यह सन्तोष नहीं रहा। पहले शान्ति थी, परम

ध्यान मे लीन थे। कमरे से बाहर आने पर लगता है—परिवार है, समाज है, देश है। कोई अपने मे तुष्ट बन बैठ जाए वह आत्मस्थ नही बनेगा। वह अहग्रस्तता थी कि हम शान्त थे, सुरक्षित हैं, नैतिकता मे प्रतिष्ठित हैं। चीन के आक्रमण से हमारा आत्म-गौरव नष्ट हो गया। यहाँ भी तथा बाहर भी। आदमी जब अपने को गिनने लग जाता है तब गिरने लग जाता है। पहले आत्म-निरीक्षण करना चाहिए।

एक व्यक्ति के पास लाठी है। डण्डा बाह्य है। ताकत लाठी मे है या आत्मा मे। दूसरा बलवान् उसकी लाठी छीन उसे मार देता है। ताकत लाठी मे होती तो उसे वह कैसे मारता ? ताकत लाठी में नही, आत्मा मे है।

'सत्यमेव जयते' के स्थान पर 'शस्त्रमेव जयते' किसी ने नही कहा। सत्य जीतता है। शस्त्र होता है तो उसके द्वारा। सत्य की रक्षा मे आने से शस्त्र भी सहयोगी बन जाता है। विरोध मे आता है तब भी सत्य ही जीतता है।

कोई भी पराक्रम तभी सफल होता है जब उसकी भूमिका आत्मिक हो। अहिंसक मे ही पराक्रम होता है, हिंसक मे नही। मारने में पराक्रम होता ही नही। जहाँ तक अहिंसक होता है वहीं तक पराक्रम होता है। हिंसा है वहाँ पराक्रम की सीमा है। हिंसक के पराक्रम की सीमा होती है। उससे आगे उसका पराक्रम नही होता। शेर का पराक्रम पाशविक है इसलिए वह मारकर भाग जाता है।

तोप मे ताकत मानना हमारा मिथ्या-दर्शन है। देश के पास जो नैतिकता की ताकत थी वह टूट गई। वह नही आ सकती, चाहे कितने भी शस्त्र आ जाएँ। नागरिकता के पास शक्ति आ जाए, आत्म-श्रद्धा जाग जाए तो सेना का मोर्चा न रहकर सारा देश मोर्चा हो जायगा। स्वय सिपाही शस्त्र के भरोसे हैं, उनसे नागरिकता की सुरक्षा नही होगी। सुरक्षा तब होगी जब आदमी बचना नहीं मरना चाहेगा। अणुबम के डर की छाया मे सुरक्षा कहाँ है ? आत्म-शक्ति जगाइए। उससे देश चीनी आक्रमण से

ही सुरक्षित नही होगा, सदा के लिए सुरक्षित हो जाएगा। भारत के पास वह शक्ति है जिसमे वह स्वय ही नही, विश्व को सुरक्षित कर सकता है। अणुव्रत के मार्ग पर चलें। आत्म-श्रद्धा को जगाएँ।

प्रो० रजनीश ने कहा—'मनुष्य अपने आप मे पूर्ण इकाई नही है। एक भी तृप्त नही है। दिव्य अतृप्ति है, असन्तोष है, जो विकास के पथ पर अग्रसर करती है। मनुष्य एक सीटी का रास्ता है। ऊँचाई पर जाने से परमात्मा तक ले जाता है और नीचे पडने पर पशु का दर्शन कराता है।

यूनान का एक चित्रकार गाँव-गाँव मे गया। मन्दिर, गिरजाघर मे घूमा। एक आँख की खोज मे जिसमे भागवत चेतना हो। एक भोला आदमी मिला जो उन साधारणो मे से विशेष था, जिसके अन्तर मे ईश्वर होने की सम्भावना थी। चित्र ले लिया। फिर घूमा शराबखानो व कारागृहो मे जहाँ पशु का दर्शन होता हो। बीस वर्ष बाद एक व्यक्ति कारागृह मे मिल गया। दूसरा चित्र और ले लिया। कारागृह मे दोनो चित्र सामने रखे। एक व्यक्ति दोनो चित्रो को देख रोने लगा। उससे पूछा गया—'रोते क्यो हो?' 'इसलिए कि ये दोनो मेरे ही चित्र हैं। बीस वर्ष मे कितना लम्बा रास्ता तय कर लिया। परमात्मा से पशु तक आ गया। परमात्मा प्रत्येक के भीतर है। परमात्मा बन जाओ, पशु तक नीचे उतर आओ। मनुष्य पूर्ण इकाई नही, एक मार्ग है।'

धर्म समाप्त नही हुआ। मनुष्य जिस धर्म के सहारे चला है। धर्म यदि परम्परा मे होता, सम्पत्ति मे होता तो खोया जाता। धर्म खोया नही जाता। प्रत्येक स्वत्व वापस पा सकता है। बुद्ध, महावीर, ईशु को मनुष्य से इतर नही मानता। उन्होने उदात्त जीवन को प्राप्त किया। जो एक व्यक्ति को मिला वह दूसरे को भी मिल सकता है। प्रत्येक को अनुयायी बनने की आवश्यकता नही। मूलत किसी को अनुयायी नही, मित्र बनाने की आवश्यकता है। जहाँ वे खडे थे वहाँ खडा होना है।

धर्म के विज्ञान के तीन प्रयोग हैं—पहला ज्ञान का, दूसरा भक्ति का, तीसरा धर्म का। तीनों अधूरे हैं। एकातवादी साधना है। तीनो के पीछे

अखण्ड योग है—वह अनेकान्तवादी योग है। ज्ञानयोग विचार के सग्रह से नहीं है, ज्ञान इकट्ठे करने से नही है। सूचनाएँ स्मृति से भर देगी। मैं बहुत-सी व्याख्याए या सूत्र याद कर लेता हू। वे मेरे अहकार को और प्रगाढ बना देंगे। ज्ञानयोग विद्वत्ता का नाम नही है, वह आत्मा का स्वरूप है। उसे भीतर से बाहर लाना है। कुएँ से पानी बाहर निकाला जाता है। ज्ञान बाहर से भीतर नही, भीतर से बाहर लाया जाता है। जो समस्त विचारो का त्याग शून्य हो सकेगा। मैं अपने विचार के कारण भर जाता हू।

एक साधु सौ वर्ष पूर्व चीन गया। नौ वर्ष रहा। साधना से सम्बन्धित शिष्यो को बुलाया—'मैं वापस अपने देश जा रहा हू।' शिष्यो की परीक्षा की—'जल्दी-जल्दी उत्तर दो—दो शब्दो मे सत्य की उपलब्धि कर।

१ एक ने कहा—'ज्ञान सत्य के सम्बन्ध मे कुछ नही है।'

२ दूसरे ने कहा—'न जगत् सत्य है, न पाँच सघात। जो दीख रहा है वह नही है, जो नही दीख रहा है वह सत्य है।'

३ तीसरे ने कहा—'मेरी मज्जा है वह अन्तरात्मा है।'

चौथा शान्त खडा था। जो परिपूर्ण, शान्त, विचार-मुक्त हो जाएगा वही ज्ञान-योग है। एक बार भीतर उतरने के बाद बाहर कुछ नही रहता। वह तुम्हारे पास भी है और मेरे पास भी। भक्ति की साधना भजन-कीर्तन नही है। पूजा-आराधना भी नही है। प्रभु से माँगना भी नही है। अपने को देने से सम्बन्ध है। अपने को देना अहकार का विसर्जन करना है। भाव के केन्द्र अहकार का विसर्जन करना है। ज्ञान भाव का केन्द्र—प्रत्येक व्यक्ति बोध से भरा है। ज्ञान या त्याग इकट्ठा कर रहा है। मैं उठ रहा हू—अहकार है। बडे-बडे पद, प्रतिष्ठा, सब अहकार को भरने के प्रयोग हैं। जो भी प्रयोग परिपूर्ण शान्त नही, वह अहकारयुक्त है। इसको तोड देना भक्ति है। मे विसर्जित होना भक्ति है। भक्ति का भगवान् से भी मूल सम्बन्ध नही है। वह केवल हमारी कल्पना है। भगवान् माध्यम है।

। साधु से बीस लाख के त्याग की बात सुनता। साधु

कहता है—'मैंने लाखो रुपयो पर लात मार दी।' 'कब मारी ?' 'साधु बने तब।' 'कितने वर्ष हुए ?' 'बीस वर्ष।' 'बीस वर्ष हो गए, फिर भी नही भूले ?' भाई बोला—'पहले आप रुपयो के ममत्व से भरे थे, पर अब इस अहकार से भरे है कि लात मार दी।' उसका परिपूर्ण दर्शन भक्ति है।

कर्मयोग—व्यक्ति कर्म करे या नही। हम केवल प्रतिकर्म करते हैं। अपमानित करूँ तो उसके प्रति करेंगे। करने का कारण बाहर होता है। सवेदना भीतर से प्रतिक्रिया करती है, जैसे धागे से कठपुतली।

प्रतिक्रिया बाहर से आती है। आप तो केन्द्र है। बाहर की प्रतिक्रिया से व्यक्ति कर्म करता है। वह मुर्दा है, खिलवाड है, गुलाम है। स्वतन्त्र सत्ता नही है। प्रतिकर्म तभी होता है जब भीतर अहकार-वासना हो। वह केन्द्र टूट जाए। हम पढते हैं, महावीर के लिए वे शान्त रहे। वहाँ कर्म का स्वराज्य हो गया। महावीर प्रतिक्रिया के बाहर हुए तब कर्म का प्रारम्भ हुआ।

ज्ञानयोग—विचार का विसर्जन।

भक्तियोग—अहकार का विसर्जन।

कर्मयोग—कर्म का विसर्जन।

मैं मानता हू तीनो के पीछे एक है। एक मार्ग से तीनो सध जाते हैं। वह है अनेकान्त योग या ध्यान योग। मन को विसर्जित करने से सब कुछ विसर्जन हो जाएगा। ध्यान मन की मृत्यु का प्रयोग है। मन भर जाए तो अपने मे तृप्त। जो मन को छोडता है वही सन्यासी है।

परिशिष्ट

यात्रा-दर्पण

तारीख	गाव	मील
२६-३-६२	देशनोक	
२७-३-६२	रासीसर	४
२८-३-६२	बामटसर	९½
२९-३-६२	नोखामडी	१०½
३०-३-६२	सोमलसर	४
३१ ३-६२	हिम्मतसर	७½
१-४-६२	काकडा	४
२-४-६२	जसरासर	९½
३-४-६२	कातर	७¼
४-४-६२	तेनदेसर	३
	वम्बू	९
	साडवा	४
७-४-६२	वीदासर	११
१४-४-६२	चाडवास	७
१५-४-६२	छापर	२
१६-४-६२	सुजानगढ	१०
१९-४-६२	जसवन्तगढ	४

२०-४-६२	लाडनूं	५
२६-४-६२	बाकलिया	७
२७-४-६२	सिंघाणा	६
२८-४-६२	डीडवाना	७
२६-४-६२	वालिया	३½
३०-४-६२	खुनखुना	६½
	पीरवा	४
१-५-६२	छोटी खाटू	६
२-५-६२	जाखेडा	८
३-५-६२	किरोदा	४
	डेगाना स्टेशन	६
४-५-६२	डेगाना गाँव	४½
५-५-६२	सूर्यास	१०
६-५-६२	भेरूदा	५
७-५-६२	थावला	८
७-५-६२	पुष्कर	८½
	रामनगर	६
८-५-६२	अजमेर	२
११-५-६२	रामगज	३
१२-५-६२	सराधना	६½
१३-५-६२	जेठाना	८
१४-५-६२	खरवा	८
	मोहनपुरा स्टेशन	४
१५-५-६२	ब्यावर	६
१६-५-६२	गुरुकुल	२
२०-५-६२	राडियावास	५
	कुडियावास	४

२१-५-६२	माटन	८
२२-५-६२	सग्रामगढ	४½
	शभुगढ	३½
२३-५-६२	जैतगढ	४½
२४-५-६२	वदनोर	६
२५-५-६२	पडासोली	६
२६-५-६२	आसींद	३
३०-५-६२	आमेसर	७
	मोतीपुरा	४
३१-५-६२	कालियावास	२
१-६-६२	जैतपुरा	६
	पालडी	२
२-६-६२	वराणा	६
	आसींद	४
६-६-६२	चैनपुरा	८
	कीडीमाल	३
७-६-६२	कटार	३
	दातडा	४½
८-६-६२	दौलतगढ	६
११-६-६२	लाछूडा	४
१३-६-६२	तिलोली	४
१४-६-६२	धवजी का खेडा	४
	आमदला	५
१५-६-६२	वेमाली	५
१६-६-६२	राजाजी का करेडा	३
१८-६-६२	चितामा	६
१९-६-६२	वागोलिया	७

११-१२-६२	कानादेवजी के गुढे	४
	साकरोदा	५
	साया का खेड़ा	४
१३-१२-६२	गोवल	३
	कोयल	३½
१४-१२-६२	घाटा	५
१५-१२-६२	पाऊना	४
	रीछेड	४
२४-१२-६२	चारभुजा	५
१-१-६३	रीछेड	५
१२-१-६३	मजेरा	७½
	केलवाड़ा	३
	मजेरा	३
	खेरल्यो	३
	घाटा	५
१५-१-६३	आत्मा	६
१८-१-६३	सापोल	३
१९-१-६३	पुठोल	६
२०-१-६३	पीपलाजी	२
२१-१-६३	वोरज	५
	केलवा	४
२६-१-६३	वोरज	४
२८-१-६३	राजसमद	३
		७४२¾